पण्डितप्रवर ब्र. रायमल्ल विरचित

ज्ञानानन्द श्रावकाचार

•

सम्पादक :

डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री,

प्राध्यापक व अध्यक्ष,

हिन्दी-विभाग, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,

आवरा (रतलाम) म. प्र.

•

प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल,

भोपाल (मध्यप्रदेश)

समर्पण

जिनके अन्तर में
अध्यात्म समाहित था,
जिसकी आवृत्ति स्वरूप
बाह्य प्रवृत्ति मे भी
सदाचार प्रवर्तमान था,
उन महामना, उदारचेता
पण्डित बाबूभाई मेहता की
पुण्य स्मृति मे—
उनकी आस्था तथा निस्पृहता
के अनुरूप,
श्रावक व गृहस्थ के
आचार का वर्णन करके वाली
यह प्रामाणिक रचना
सादर समर्पित है।

—देवेन्द्रकुमार शास्त्री

प्रकाशकीय

आचार्यकल्प प टोडरमलजी के सहयोगी मित्र ब्र प रायमल्लजी द्वारा रचित "ज्ञानानन्द श्रावकाचार" सरल, सुबोध शैली मे निबद्ध एक आचार प्रधान ग्रन्थ है। इसमे जैन गृहस्थो के आचार का विशद वर्णन किया गया है। प्रत्येक गृहस्थ के यहाँ इस शास्त्र की कम-से-कम एक प्रति अवश्य होना चाहिये इस धारणा के कारण हमारे मन मे वर्षों से इस शास्त्र को प्रकाशित कराने की भावना थी। किन्तु सुयोग न मिलने से यह कार्य नही हो सका। लगभग दो-ढाई वर्ष पूर्व श्रावकाचार वर्ष के शुभ प्रसग पर आदरणीय डॉ देवेन्द्रकुमारजी, नीमच ने अपनी उदारता का सहज परिचय देकर इसके सम्पादन का कार्य निशुल्क करने की स्वीकृति प्रदान कर अपने वचन अनुरूप इसे प्रकाशन योग्य बनाने मे विशेष श्रम किया है। यही नही, मुद्रण-व्यवस्था, प्रूफ आदि देखने मे भी पण्डित जी ने अथक स्तुत्य परिश्रम किया है। इसके लिए हम उनके कृतज्ञ हैं।

भोपाल का दि जैन मुमुक्षु मण्डल कई वर्षों से सत्साहित्य को प्रकाशित करने तथा इसके प्रचार-प्रसार में उल्लेखनीय अपना महत्त्वपूर्ण योग-दान कर रहा है। फलस्वरूप प राजमल पवैया रचित जैन पूजाजंलि, अपूर्व अवसर लघु पूजन-सग्रह, परमात्म पूजन, पूजन पुष्प, पूजन दीपिका, पूजन किरण एव अन्य सकलित जिनार्चना, वैराग्य पाठमाला, आदि अनेक पुस्तको के प्रकाशन, का मण्डल को सौभाग्य मिला है। जैन पूजांजलि, और जिनार्चना के तो कई सस्करण निकल चुके हैं। हमारी यह पवित्र भावना है कि आगम ग्रन्थो के प्रकाशन की यह कडी सतत साकार रूप ग्रहण करती रहे।

जिन सज्जनो ने अग्रिम प्रतियाँ लेने हेतु तथा ग्रन्थ का मूल्य कम करने के लिए आर्थिक सहयोग दिया है उनके प्रति हम कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन मे मुद्रण सम्बन्धी जो अप्रत्याशित विलम्ब हुआ है उसके लिए हम क्षमा चाहते हैं।

आशा है स्वाध्यायी बन्धु इस ग्रन्थ का उचित पठन-पाठन कर इसका स्वागत-सत्कार अवश्य करेंगे।

—पण्डित राजमल जैन,
सरक्षक,
10, ललवानी गली, सर्राफा चौक, भोपाल

विषयानुक्रम

चरणानुयोग और उसका प्रयोजन

चरणानुयोग मे जिस प्रकार जीवो के अपनी बुद्धिगोचर धर्म का आचरण हो वैसा उपदेश दिया है। वहाँ धर्म तो निश्चयरूप मोक्षमार्ग है वही है, उसके साधनादिक उपचार से धर्म हैं। इसलिये व्यवहारनय की प्रधानता से नाना प्रकार उपचार धर्म के भेदादिको का इसमे निरूपण किया जाता है। क्योंकि निश्चयधर्म मे तो कुछ ग्रहण-त्याग का विकल्प नही है और इसके निचली अवस्था मे विकल्प छूटता नही है, इसलिये इस जीव को धर्मविरोधी कार्यों को छुडाने का और धर्म-साधनादि कार्यों को ग्रहण कराने का उपदेश इसमे है। वह उपदेश दो प्रकार से दिया जाता है—एक तो व्यवहार ही का उपदेश देते हैं, एक निश्चय सहित व्यवहार का उपदेश देते है।

वहाँ जिन जीवो के निश्चय का ज्ञान नही है व उपदेश देने पर भी नही होता दिखाई देता ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव को कुछ धर्म-सन्मुख होने पर उन्हें व्यवहार ही का उपदेश देते है। तथा जिन जीवो को निश्चय-व्यवहार का ज्ञान है व उपदेश देने पर उनको ज्ञान होता दिखाई देता है, ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव व सम्यक्त्व-सन्मुख मिथ्यादृष्टि जीव उनको निश्चय सहित व्यवहार का उपदेश देते हैं।

अब चरणानुयोग का प्रयोजन कहते है। चरणानुयोग मे नाना प्रकार धर्म के साधन निरूपित करके जीवो को धर्म मे लगाते हैं। जो जीव हित-अहित को नही जानते, हिंसादिक पाप कार्यों मे तत्पर ही रहते है, उन्हे जिस प्रकार पाप कार्यों को छोड कर धर्म कार्यों मे लगे उस प्रकार उपदेश दिया है। उसे जान कर जो धर्म आचरण करने को सन्मुख हुए, वे जीव गृहस्थधर्म व मुनिधर्म का विधान सुनकर आप से जैसे सधे वैसे धर्म-साधन मे लगते हैं। ऐसे साधन से कषाय मन्द होती है और उसके फल मे इतना तो होता है कि कुगति मे दुःख नही पाते, किन्तु सुगति मे सुख प्राप्त करते हैं। तथा ऐसे साधन से जिनमत का निमित्त बना रहता है, वहाँ तत्वज्ञान की प्राप्ति होना हो तो हो जाती है। तथा जो जीव तत्वज्ञानी होकर चरणानुयोग का अभ्यास करते हैं उन्हे यह सर्व आचरण अपने वीतराग भाव के अनुसार भासित होते हैं। एक देश व सर्वदेश वीतरागता होने पर ऐसी श्रावकदशा-मुनिदशा होती है, क्योकि इनके निमित्त-नैमित्तिकपना पाया जाता है। ऐसा जान कर श्रावक-मुनिधर्म के विशेष पहचान कर जैसा अपना वीतराग भाव हुआ हो वैसा अपने योग्य धर्म को साधते हैं। वहाँ जितने अंश मे वीतरागता होती है उसे कार्यकारी जानते हैं, जितने अंश मे राग रहता है उसे हेय जानते है, सम्पूर्ण वीतरागता को परम धर्म मानते हैं।

(मोक्षमार्गप्रकाशक, आठवा अधिकार पृ. 278, 270)

प्रस्तावना

आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमलजी से उनकी रचनाओं के माध्यम से लोगो का परिचय है, किन्तु ब्र पं रायमल्ल का नाम तक अधिकतर जैन भाई नहीं जानते। इसका एक कारण यह है कि वे पं टोडरमलजी के समकालीन ही नहीं, उनके अनन्य सहयोगी थे। दूसरे, वर्तमान में उनकी एक भी रचना प्रकाशित रूप मे हमारे सामने नहीं है। वे ऐसे लेखक व साहित्यकार हुए जो अपनी प्रशसा से कोसों दूर थे। पण्डितप्रवर टोडरमलजी और रायमल्लजी ने किसी भी अपनी रचना मे अपने नाम का उल्लेख नहीं किया। अपने परिचय में भी इन विद्वानो ने अन्य विवरण तो सामान्य रूप से दिया है, किन्तु अपने सबध मे अधिकतर दोनो विद्वान मौन हैं। वे केवल विद्वान् ही नहीं समाज-सुधारक, युग-प्रवर्तक और सच्चे अर्थों मे पण्डित थे। उन्होंने किसी सन्त से कम काम नहीं किया। यदि पण्डित टोडरमलजी ने दीर्घकाल से अप्रचलित, विस्मृतप्राय करणानुयोगी के शास्त्रो का तथा चारो अनुयोगों का दोहन कर "सम्यग्ज्ञान-चन्द्रिका" टीका एव "मोक्षमार्गप्रकाशक" जैसे, ग्रन्थ प्रमेय रूप में प्रदान किये। तो पण्डित रायमल्लजी ने सम्पूर्ण श्रावकाचारो का अध्ययन-मनन कर ज्ञानानन्द-पूरित-निजरसनिर्भर (सम्यक् प्रवृत्ति हेतु इस) श्रावकाचार का प्रणयन किया। विद्वत्-जगत मे दोनो ही मल्ल अध्यात्म के अखाड़े मे निजानुभूति की मस्ती को लेकर उतरे थे। दोनो ही विद्वान् अध्यात्म के मर्मज्ञ, सर्वज्ञ के वचनो का अनुसरण करने वाले थे। चारों ही अनुयोगो के ज्ञाता तथा धर्म के मर्मी वे एक ही मार्ग व पद्धति पर चलने वाले हुए। यद्यपि वे परम्परा के पोषक थे, किन्तु लोक-रूढ़ियो, मूढ़ता एव अन्धविश्वासो का दोनो ही सत्यनिष्ठ विद्वानों ने घोर विरोध किया। दोनों ही परीक्षा-प्रधानी पडित थे। धर्म की वास्तविकता को उन्होंने अपनी जीवन-साधना, साहित्य-रचना और आत्मज्ञान के प्रकाश से निर्मल दर्पण की भाँति प्रतिबिम्बित की। यथार्थ में उनका जीवन धन्य है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होने आगम और तर्क की कसौटी पर कस कर एवं प्रमाण द्वारा निर्णय करने के उपरान्त ही वस्तु-व्यवस्था को स्वीकार किया था।

परिचय—

हिन्दी-साहित्य मे "रायमल्ल" नाम के तीन साहित्यकारों का उल्लेख मिलता है। प्रथम ब्रह्म रायमल्ल हुए जो सत्रहवीं शताब्दी के विद्वान् थे। वे

हूंबड वशीय गुजराती विद्वान् थे। उनकी रची हुई अधिकतर रचनाएँ रासो सज्ञक तथा पद्यबद्ध कथाएँ हैं। दूसरे विद्वान् कविवर राजमल्लजी 'पाण्डे' नाम से सत्तरहवी शताब्दी मे प्रख्यात हो चुके थे। उनकी रचनाएँ अधिकतर टीका ग्रन्थ हैं जो इस प्रकार हैं—समयसार कलश बालबोध टीका, तत्त्वार्थसूत्र टीका एव जम्बूस्वामीचरित, अध्यात्मकमल मार्तण्ड, इत्यादि। तीसरे साहित्यकार प्रस्तुत श्रावकाचार के लेखक ब्रह्मचारी रायमल्ल है। इन्द्रध्वज विधान-महोत्सव पत्रिका के साथ ही प्रकाशित अपनी जीवन-पत्रिका मे उन्होने अपना नाम "रायमल्ल" दिया है।[1] पण्डितप्रवर टोडरमल, प दौलतराम कासलीवाल और प जयचन्द छाबड़ा, आदि विद्वानो ने अत्यन्त सम्मान के साथ उनके "रायमल्ल" नाम का उल्लेख अपनी रचनाओ की प्रशस्तियो मे किया है।[2] प दौलतराम कासलीवाल के उल्लेख से स्पष्ट है कि वे जयपुर निवासी थे। दौलतरामजी ने अपने आप को उनका मित्र लिखा है। उनके ही शब्दो मे—

रायमल्ल साधर्मी एक, जाके घट मे स्व - पर - विवेक ॥
दयावन्त गुणवन्त सुजान, पर - उपकारी परम निधान ।
दौलतराम सु ताको मित्र, तासो भाष्यो वचन पवित्र ॥5॥

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि मित्र की साक्ष्य के अनुसार रायमल्ल विवेकी पुरुष थे। दया, परोपकार, निरभिमानता आदि अनेक गुणो से विभूषित थे।

---

1 *"अथ मार्ग केताइक समाचार एकदेशी जघन्य सयम के धारक रायमल्ल ता करि कहिए है।"*

—इन्द्रध्वज-विधान-महोत्सव पत्रिका की प्रारम्भिक पक्ति

2 *यह वरणत भये परम्पराग, तिहि मार्ग रची टीका बनाय।*
भाषा रचि टोडरमल्ल शुद्ध, सुनि रायमल्ल जैनी विशुद्ध ॥

—गोम्मटसारपूजा की जयमाल, 10

बसें महाजन नाना जाति सेवे निज मारग बहु ख्याति।
रायमल्ल साधर्मी एक, जाके घट मे स्व-पर-विवेक ॥

—प. दौलतराम कृत पदमपुराण वचनिका की अन्त्य प्रशस्ति, 4

रायमल्ल त्यागी गृहवास, महाराम व्रत शील निवास।
मैं हू इनकी सगति ठानि, बुद्धि सारु जिनवाणी जानि।
शैली तेरापथ सुपथ, तामे बडे गुणी गुन-ग्रन्थ।
तिन की सगति में कछु बोध, पायो मैं अध्यातम सोध ॥

—सर्वार्थसिद्धिवचनिका प्रशस्ति

उन्हें एक दार्शनिक का मस्तिष्क, श्रद्धालु का हृदय, साधुता से व्याप्त सम्यक्त्व की सैनिक दृढ़ता और उदारता पूर्ण दयालु के कर-कमल सहज ही प्राप्त थे। वे गृहस्थ होकर भी गृहस्थपने से विरक्त थे, एकदेश व्रतो को धारण करने वाले उदासीन श्रावक थे। वे जीवन भर अविवाहित रहे। तेईस वर्ष की अवस्था मे उन्हें तत्त्वज्ञान की प्राप्ति हो गई थी। वे आत्मज्ञानी, सम्यग्दृष्टि, त्यागी-व्रती थे। उन्होने वस्तु-स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने में अथक पुरुषार्थ किया था। क्योकि घर-परिवार मे कोई ज्ञानी नही था। शास्त्रो का साधारण ज्ञान रखने वाले मनुष्य जीव और जगत् की सृष्टि का कारण या तो परमेश्वर को समझते हैं या कर्म को। जैनधर्म के मर्म से अनभिज्ञ जैनी भी कर्म को कर्ता मानते हैं। पण्डितप्रवर रायमल्लजी ने लिखा है—"बहुरि कुटुबादि बडे पुरुष तानै याका स्वरूप कदे पूछै तौ कोई तौ कहै—परमेश्वर कर्ता है, कोई कहै कर्म कर्त्ता है कोई कहै हम तौ क्यौं जानै नाही। बहुरि कोई आन मत के गुरु वा ब्राह्मण ताकू महासिद्ध वा विशेष पण्डित जानि वाकू पूछै, तब कोई तौ कहै ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये तीन देव इस सृष्टि के कर्ता हैं ऐसा जुदा-जुदा वस्तु का स्वरूप बतावैं अर उनमानसू प्रत्यक्ष विरुद्ध, तातैं हमारे सदैव या बात की आकुलता रहे, सदेह भाजै नाही। ऐसे ही विचार होते-होते बाईस वर्ष की अवस्था भई ता समैं साहिपुरा नग्र, विषै नीलापति साहूकार का सजोग भया। सो वाकै शुद्ध दिगबर धर्म का श्रद्धान, देव-गुरु धर्म की प्रतीति, आगम-अध्यात्म शास्त्रा का पाठी, षट् द्रव्य, नव पदार्थ, पचास्तिकाय, सप्त तत्त्व, गुणस्थान-मार्गणा, बध-उदय-सत्व आदि चर्चा का पारगामी, धर्म की मूर्ति, ज्ञान का सागर, ताके तीन पुत्र भी विशेष धर्मबुद्धि और पाँच-सात-दस जने धर्मबुद्धि ता सहित सदैव चर्चा हाइ, नाना प्रकार के शास्त्रा का अवलोकन होइ। सो हम वाके निमित्त करि सर्वज्ञ-वीतराग का मत सत्य जान्या अर वाके वचना के अनुसारि सर्व तत्त्वा का स्वरूप यथार्थ जान्या।"[1]

राजस्थान मे शताब्दियो से शाहपुरा धर्म का एक केन्द्र रहा है। लगभग तीन शताब्दियों से यह जैनधर्म, रामसनेही तथा अन्य धर्मावलम्बियों का मुख्य धार्मिक स्थान है। भीलवाड़ा से लगभग बारह कोस की दूरी पर स्थित शाहपुरा सरावगियो का प्रमुख गढ़ रहा है, जहाँ धार्मिक प्रवृत्तियाँ सदा गतिशील रही हैं। स्वाध्याय की रुचि सदा से इस नगर मे बनी रही है। जैन शास्त्रों का जितना बड़ा शास्त्र-भण्डार यहाँ है, उतना बड़ा सौ-दो सौ मील के क्षेत्र मे भी

1. इन्द्रध्वजविधान-महोत्सव-पत्रिका के प्रारम्भ में सलग्न जीवन-पत्रिका, पाना 2

नहीं है । रायमल्लजी का धार्मिक जीवन इसी नगर से प्रवृत्तमान हुआ, कहा गया है । वे यहाँ सात वर्ष रहे । यही पर उनको सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई थी । उनके ही शब्दों मे—

"थोरे ही दिनो मैं स्व-पर का भेद-विज्ञान भया । जैसे सूता आदमी जागि उठै है, तैसैं हम अनादि काल के मोह निद्रा करि सोय रहे थे, सो जिनवानी के प्रसाद तैं वा नीलापति आदि साधर्मी के निमित्त तैं सम्यग्ज्ञान-दिवस विषै जागि उठै । साक्षात् ज्ञानानद स्वरूप, सिद्ध सादृश्य आपणा जाण्या और सब चरित्र पुद्गल द्रव्य का जाण्या । रागादिक भावां की निज स्वरूप सू भिन्नता वा अभिन्नता नीकी जाणी । सो हम विशेष तत्त्वज्ञान का जानपणा सहित आत्मा हुवा प्रवर्ते । विराग परिणामां के बल करि तीन प्रकार के सौंगद-सर्व हरितकाय, रात्रि का पाणी, विवाह करने का आयु पर्यंत त्याग किया । ऐसे होते सते सात वर्ष पर्यंत उहां ही रहे ।"[1]

भेद-विज्ञान क्या है ? यह समझाते हुए पण्डितप्रवर राजमल्लजी लिखते हैं-"अर जाको मोह गलि गयो सो भेद-विज्ञानी पुरुष छै । ते ई पर्याय सौ कैसे आपो मानै ? अर कैसे याको सत्य जानै । अर कौन को चलायो चलै, कदाचि न चलै । तीसू मेरे ज्ञान भाव यथार्थ भया है अर आपा-पर की ठीकता भई है ।"

इससे स्पष्ट है कि वे सम्यग्दृष्टि, आत्मज्ञानी पुरुष थे । उन्होंने किसी को उपदेश देने के लिए नही, किन्तु आत्म कल्याण के लिए शुद्ध ज्ञान को ज्ञान रूप समझा था और पर्याय-बुद्धि को छोडकर अपने शुद्धोपयोग से तन्मय होने का मूल मन्त्र प्राप्त कर लिया था ।

स्थितिकाल—

जयपुर निवासी प रायमल्लजी उस युग के प्रसिद्ध विद्वान् प टोडरमलजी, प दौलतराम कासलीवाल और कवि द्यानतराय के समकालीन थे । अपनी पत्रिका मे उन्होंने प दौलतराम का और भूधरदास का उल्लेख किया है । प जयचद छाबडा, प सेवाराम, प सदासुख आदि इनके पश्चात्वर्ती विद्वान् हैं । प जयचन्द छाबड़ा ने यह उल्लेख किया है कि ग्यारह वर्ष के पश्चात् मैंने जिन-मार्ग की सुध ली । वि स 1821 में जयपुर में इन्द्रध्वज-विधान का महोत्सव हुआ था । उसमे सम्मिलित होकर आचार्यकल्प प. टोडरमल्लजी के आध्यात्मिक

1. इन्द्रध्वजविधान-महोत्सव-पत्रिका, पाना 2
2. ज्ञानानन्द श्रावकाचार

प्रवचनों से प्रभावित होकर उनकाझुकाव जैनधर्म की ओर हुआ था। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि प. रायमल्लजी की लिखी हुई पत्रिका उस युग का सबसे बड़ा दस्तावेज है जो जयपुर मे तथा निकटवर्ती क्षेत्रो में जैनधर्म की वास्तविक स्थिति पर सम्यक् प्रकाश डालने वाला है। उनके साहित्यिक कर्तृत्व का उल्लेख करते हुए प सेवाराम कहते हैं—

बासी श्री जयपुर तनी, टोडरमल्ल क्रिपाल।
ता प्रसंग को पाय कै, गह्यो सुपथ बिसाल॥
गोम्मटसारादिक तनै, सिद्धान्तन मे सार।
प्रवर बोध जिनके उदै, महाकवि निरधार॥
फुनि ताके तट दूसरो, रायमल्ल बुधराज।
जुगल मल्ल जब ये जुरे, और मल्ल किह काज॥
(शान्तिनाथपुराणवचनिका-प्रशस्ति)

प रायमल्लजी ने पत्रिका मे अपने जीवन के विषय मे जो उल्लेख किया है, उससे यह निश्चित हो जाता है कि 22 वर्ष तक उनको धार्मिक ज्ञान नहीं था। शाहपुरा मे उनको यथार्थ धर्म-बोध प्राप्त हुआ। वहाँ वे 7 वर्ष रहे। 29 वर्ष की अवस्था मे वे उदयपुर गये और वहाँ पर प दौलतराम कासलीवाल से मिले। प दौलतराम जयपुर के राजा जयसिंह के वकील थे। राजस्थान के इतिहास मे सवाई जयसिंह नाम के तीन भिन्न-भिन्न महाराजा विभिन्न कालों मे हुए। अत वे जयसिंह कौन थे ? मिर्जा राजा जयसिंह प्रथम का शासन-काल वि स 1678-1724 था। अत वे भिन्न थे। सवाई जयसिंह द्वितीय का समय वि स 1757-1800 था। जयपुर नगर की नींव महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय ने ही वि स 1784 मे डाली थी।[1] प दौलतरामजी को इनका ही वकील कहा गया है। उदयपुर से लौट कर आने पर ब्र रायमल कुछ दिनो तक शाहपुरा मे रहे। फिर, प टोडरमलजी से मिलने के लिए पहले जयपुर, आगरा, फिर सिंघाणा गये। कहा जाता है कि गोम्मटसार' की टीका प्रारम्भ होने के पूर्व (क्योंकि ब्र रायमल्ल के अनुसार उक्त टीकाओ के बनाने में तीन वर्ष का समय लगा और उनकी प्रेरणा से ही टीका लिखी गई तथा वे तीन वर्ष तक वहाँ रहे) 3-4 वर्ष पूर्व अर्थात् वि स 1808-9 मे वे प टोडरमलजी से मिलने के लिए अत्यन्त उत्सुक व प्रयत्नशील थे।[2] इन्द्रध्वज-

1 हितैषी, 1941 ई., वर्ष 1-2, अक 12-13, पृ. 92-93, जयपुर

2. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल : पण्डित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृ. 49

विधान-महोत्सव-पत्रिका से यह स्पष्ट है कि माह शुक्ल 10 वि सं 1821 में इन्द्रध्वज पूजा की स्थापना हुई थी। उसके लगभग तीन वर्ष पूर्व निश्चित रूप से वि सं 1818 मे टीकाओं की रचना हो चुकी थी। टीकाओं की रचना मे लगभग तीन वर्ष का समय लगा था। अत यदि तीन वर्ष पूर्व पण्डितप्रवर टोडरमलजी ने ब्र प रायमल्लजी की प्रेरणा से टीका-रचना का प्रारम्भ किया हो, तो वि. स 1815 के लगभग समय ठहरता है। इससे यह भी निश्चित है कि ब्र. प रायमल्ल यदि दो-तीन वर्ष उदयपुर-शाहपुरा जयपुर-आगरा-जयपुर घूम-फिर कर बत्तीस वर्ष की अवस्था मे शेखावाटी के सिंघाणा नगर मे प टोडरमलजी से मिले हो, तो वह वि स 1812 का वर्ष था और इस प्रकार उनका जन्म वि स. 1780 सम्भावित है। प दौलतरामजी और प टोडरमलजी ब्र रायमल्लजी से अवस्था मे बड़े थे। प टोडरमलजी को उन्होंने कई स्थानो पर भाईजी, टोडरमलजी लिखा है। उनकी ज्ञान-गरिमा और रचनात्मक शक्ति से वे अत्यन्त प्रभावित थे। उनके ही शब्दो मे "सारा ही विषै भाईजी टोडरमलजी के ज्ञान का क्षयोपशम अलौकिक है।" पण्डित टोडरमलजी का जन्म वि स 1776-77 कहा गया है।[1] प दौलतराम कासलीवाल का समय निर्णीत है। उनका जन्म वि स 1745 मे बसवा ग्राम मे हुआ था।[2] संक्षेप मे, ब्र प रायमल्लजी के जन्म की निम्नतम सीमा वि, स 1775 और अधिकतर सीमा वि स 1782 कही जा सकती है। क्योकि यह सुनिश्चित है कि प दौलतरामजी से वे अवस्था मे छोटे थे और तीस वर्ष की अवस्था के पश्चात् ही वे पण्डितप्रवर टोडरमलजी से मिले थे। उन्होने स्वय इस बात का उल्लेख किया है कि टीकाएँ सिंघाणा नगर मे रची गई। उन्होंने रचने का कार्य किया और हमने बाचने का। उनके ही शब्दो मे[3]—"तब शुभ दिन मुहूर्त विषै टीका करने का प्रारभ सिंघाणा नग्र विषै भया। सो वे तो टीका बणावते गये, हम बाचते गये। बरस तीन मैं गोम्मटसार ग्र थ की अड़तीस हजार, लब्धिसार-क्षपणासार ग्र थ की तेरह हजार, त्रिलोकसार ग्र थ की चौदह हजार, सब मिलि च्यारि ग्र था की पैंसिठ हजार टीका भई। पीछै सवाई जैपुर आए।" इसी के साथ उन्होने यह भी उल्लेख किया है कि इस बीच वि. सं. 1817 मे एक उपद्रव हो गया। यह सुनिश्चित है कि पण्डितप्रवर

---

1. डॉ हुकमचन्द भारिल्ल पडित टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तृत्व पृ 53
2. डॉ नेमिचन्द्र शास्त्री तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य-परम्परा. खण्ड 4, पृ. 281
3. इन्द्रध्वजविधान-महोत्सव-पत्रिका का प्रारम्भिक

टोडरमलजी वि सं 1811 मे मुलतान वालों को रहस्यपूर्ण चिट्ठी लिख चुके थे। उसमे कहीं भी किसी रूप मे ब्र रायमल्ल के नाम का उल्लेख नही है। यह भी एक अद्भुत सादृश्य है कि दोनों विद्वानों का साहित्यिक जीवन पत्रिका से प्रारम्भ होता है। यह भी सम्भावना है कि पण्डितप्रवर के इस कृतित्व और व्यक्तित्व से प्रभावित होकर ब्र रायमल्लजी ने उनसे ग्रन्थ रचना के लिए अनुरोध किया हो।[1] अत सभी प्रकार से विचार करने पर यही मत स्थिर होता है कि ब्र रायमल्ल का जन्म वि स 1780 में हुआ था।

रचनाएँ

अभी तक ब्र प. रायमल्ल की तीन रचनाए मिली हैं। रचनाओं के नाम इस प्रकार है—

(1) इन्द्रध्वजविधान-महोत्सव-पत्रिका (वि स 1821)

(2) ज्ञानानन्द श्रावकाचार

(3) चर्चा-सग्रह

इसमे कोई सन्देह नही है कि पण्डितप्रवर टोडरमलजी के निमित्त से ही ब्रह्मचारी रायमल्लजी साहित्यिक रचना मे प्रवृत्त हुए। उनके विचार और इनका जीवन अत्यन्त सन्तुलित था, यह झलक हमे इनकी रचनाओ मे व्याप्त मिलती है। "चर्चा-सग्रह" के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्त्व-विचार तथा तत्त्व-चर्चा करना ही इनका मुख्य ध्येय था। डॉ भारिल्ल के शब्दों मे "पण्डित टोडरमल के अद्वितीय सहयोगी थे—साधर्मी भाई ब्र रायमल, जिन्होने अपना जीवन तत्त्वाभ्यास और तत्वप्रचार के लिए ही समर्पित कर दिया था।[2]

"इन्द्रध्वजविधान महोत्सव-पत्रिका" की रचना माघ शुक्ल 10, वि स 1821 मे हुई थी। ब्र प रायमल्लजी के शब्दो मे "आगै माह सुदि 10 संवत् 1821 अठारा से इकबीस कै सालि इन्द्रध्वज पूजा का स्थापन हुआ। सो देस-

---

1 *रायमल्ल साधर्मी एक, धरम सधैया सहित विवेक।*
सो नाना विधि प्रेरक भयो, तब यहु उत्तम कारज थयो॥
दे. लब्धिसार, द्वि. स पृ. 637 तथा

—सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका प्रशस्ति

2. डॉ, हुकमचन्द भारिल्ल · पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृ 66 से उद्धृत

देस के साधर्मी बुलावने की चीठी लिखी, ताकी नकल यहाँ लिखिये है।"

"चर्चा-संग्रह" में विविध धार्मिक प्रश्नोत्तरों का सुन्दर संग्रह किया गया है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति वैद्य गम्भीरचन्द्र जैन को अलीगंज (एटा) के शास्त्र-भण्डार मे वर्षों पूर्व मिली थी। इस प्रति के लिपिकार श्री उजागरदास ने इसे वि सं 1854 मे लिपिबद्ध किया था। उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियो मे यह सबसे प्राचीन प्रति है। अत इसकी रचना वि स 1850 के लगभग अनुमानित है। इस ग्रन्थ की रचना ग्यारह हजार दो सौ श्लोक प्रमाण है।[1] इसमे अत्यन्त उपयोगी चुने हुए प्रश्नो के युक्तियुक्त सक्षिप्त उत्तर है। उदाहरण के लिए एक प्रश्न है[2] — चारो अनुयोगो मे किसकी मुख्यता से किस प्रकार कथन है ? उत्तर इस प्रकार है—प्रथमानुयोग मे अलकार की मुख्यता है, करणानुयोग मे गणित की, चरणानुयोग मे नीति (सुभाषित) की तथा द्रव्यानुयोग मे तर्क (न्याय) की मुख्यता है। तथा छठे गुणस्थान मे मुनि के सर्व कषायो का त्याग कहा सो वह चरणानुयोग की अपेक्षा से कहा है तथा ग्यारहवे आदि गुणस्थानो मे कषायो का और हिंसा का त्यागी कहा सो वह करणानुयोग की अपेक्षा से कहा है। करणानुयोग मे तो केवलज्ञान के जानपने की मुख्यता तारतम्य को लिए हुए है और चरणानुयोग मे अपने आचरण की मुख्यता को लिए हुए है। इसी प्रकार अन्य सभी स्थानो मे जिस विवक्षा से शास्त्र मे कथन किया हो, उसे उसी विवक्षा से समझे।

इन प्रश्नोत्तरो की विशेषता यह है कि इनमे अनेक आगम ग्रन्थो के स्वाध्याय तत्त्वचर्चा आदि से किसी एक बात या प्रश्न को इतनी अधिक स्पष्टता विशदता और विषय के प्रतिपादन की सारगर्भित सरल शैली मे कम से कम शब्दो मे इनको प्रकट किया गया है। सरल-से-सरल विषय के प्रतिपादन मे भी नवीनता लक्षित होती है। सभी प्रश्नो के उत्तर न तो अत्यन्त विस्तृत हैं और न अत्यन्त सक्षिप्त। विषय की विशदता के साथ ही भाषा का सहज प्रवाह इनमे चमत्कारोत्पादक है। उदाहरण के लिए[3]—

प्रश्न—मूढ कितने प्रकार के होते हैं ?

---

1 *चरचा सग्रह ग्रन्थ की सख्या करी सुजान।*
एकादश हजार है द्वै से ऊपर मान ॥ चर्चा सग्रह

2, *जैनपथ-प्रदर्शक, वर्ष 5, अक 9,1 सितम्बर, 1981, पृ 2 से उद्धृत*

3. *वही*

उत्तर—मूढ़ तीन प्रकार के होते हैं—1. देवमूढ़, 2. गुरुमूढ़, 3 शास्त्रमूढ़। और इनमें से प्रत्येक के सात-सात प्रकार हैं—

(1) भावदेवमूढ़—सर्व देव वन्दनीय हैं ऐसे जिनके परिणाम हों, वे भावदेवमूढ़ हैं।

(2) द्रव्यदेवमूढ़—सभी देवों को पूजे, माने सो द्रव्यदेवमूढ़ है।

(3) परोक्षदेवमूढ़—जिनके परिणाम कुल-देवताओं को पूजने, मानने, नमस्कार करने के होते हैं।

(4) प्रत्यक्ष देवमूढ़—हरि-हरादिक देवों को पूजे, माने।

(5) लोकदेवमूढ़—चण्डी-मुण्डी-क्षेत्रपाल आदि देवों को पूजे, मनौती बोले, स्त्री-पुत्र-धन-पुत्रादि के निमित्त स्वयं पूजे और लोगों से पुजावें।

(6) क्षेत्रदेवमूढ़—गृह-चैत्यालय, देव अरहन्त साक्षात् अथवा अपने घर में प्रतिष्ठित की पूजा-शुश्रूषा न करे और अपर तीर्थादिक की पूजा-वन्दना को जाय, घर का चैत्यालय अपूज्य रहे।

(7) कालमूढ़—सुकाल की वेला (समय) छोड़ कर पूजा करे, वह कालमूढ़ है। इति देवमूढ़ समाप्त। अब गुरुमूढ़ को कहते हैं—

(1) भावगुरुमूढ़—साक्षात् व्रत धारी, परन्तु मिथ्यादृष्टि हो उसे गुरु माने।

(2) द्रव्यगुरुमूढ़—जो व्रत, सम्यक्त्व से रहित हो, उसे गुरुबुद्धि से गुरु माने।

(3) परोक्षगुरुमूढ़—जो कोई हमारे पूर्वज मानते आये हैं, उन्हें हम बड़ा क्यों न मानें? ऐसा कहे।

(4) प्रत्यक्षगुरुमूढ़—श्वेत-पीत-लाल वस्त्र सग्रन्थ, जो प्रत्यक्ष दाम-संग्रह करे और ब्रह्मचारित्र से रहित को गुरुबुद्धि से माने।

(5) लोकगुरुमूढ़—लोगों की देखा-देखी जो कुगुरु को माने और लोगों से कहे कि वे औरों से कैसे अच्छे नहीं हैं? औरों से तो अच्छे ही हैं—ऐसे भाव करना।

(6) क्षेत्रगुरुमूढ़ - चैत्यालय-देहुरा में विराजे वीतराग, निर्ग्रन्थ गुरु की पूजा-वन्दना न करे, औरान गुरु को पूजे, माने सो क्षेत्रगुरुमूढ़ है।

(7) कालगुरुमूढ़—जो गुरु नियत वेला छांडि षडावश्यक-क्रिया, आहार-व्यवहार में वर्ते और उसे जो माने सो कालगुरुमूढ है।

अब शास्त्रमूढ़ को कहते हैं—

(1) भावशास्त्रमूढ—भावशास्त्र बारहवें गुणस्थान में होता है। सो भावशास्त्र कौन? शुक्ल ध्यान का दूसरा पाया एकत्ववितर्क-अविचार भावशास्त्रमूढ़ कहिये। श्रुत-शास्त्र बहुतेरे पढ़े, परन्तु शुद्धात्मा विषै दृष्टि नाहीं। षष्ठम गुणस्थानादि एकादश पर्यंत सो भावशास्त्रमूढ़ कहिये।

(2) द्रव्यशास्त्रमूढ़—ग्यारह अंग का पाठी मिथ्यादृष्टि, यद्यपि सप्त तत्त्व, नव पदार्थ, षट् द्रव्य, पचास्तिकाय, भेदाभेद उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-द्रव्य, गुण-पर्याय, हेय-उपादेय किसी को भी न जाने सो द्रव्यशास्त्रमूढ कहिये।

(3) परोक्षशास्त्रमूढ़—सूक्ष्म अध्यवसाय कैसे हैं-जो तीनो योग ते अगोचर होय तिनका वेत्ता नाही। शुभाशुभ वेत्ता सो परोक्षशास्त्रमूढ़ कहिये।

(4) प्रत्यक्षशास्त्रमूढ़—पूजिज्जे अरिहतो पालिज्जे हिंसा विवज्जए धम्मो ।।
वंदिज्जे णिग्गंथो ससारे एतिय सार ।।

ऐसा पढे, कहे, प्रतीति न माने, पुरुष कछु नाही जाने सो प्रत्यक्षसूत्रमूढ़ है।

(5) लोकमूढ—वश के हेतु, धन के हेतु शास्त्र सुने। लोगों से कहे, पढ़े कि हरिवश सुनने ते वश होता है, इत्यादि बहुत काज माने सो लोकमूढ है।

(6) क्षेत्रमूढ़—जिस क्षेत्र मे सप्तधातु, बत्तीस अन्तराय के उपद्रव हो, वहाँ सिद्धान्त-सूत्र पढे और स्त्री, नपुंसक, मनुष्यों को सुनावे सो क्षेत्रमूढ है।

(7) कालमूढ़—जो सिद्धान्त-सूत्र आदि वेला (समय) माँहि न पढ़े, कालविरुद्ध पढे सो कालमूढ है।

इस प्रकार देवमूढ़, गुरुमूढ और शास्त्रमूढ़ की व्याख्या समाप्त हुई।

"चर्चा-संग्रह" मे इस प्रकार की अनेक धार्मिक विषयों की युक्तियुक्त, स्पष्ट व्याख्या की गई है। इन चर्चाओ में अनेक ग्रन्थो का सारगर्भित है। इसलिये पढने पर नवीनता प्रतीत होती है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यही है कि किसी एक विषय पर सभी शास्त्रों का सार एक ही स्थान पर मिल जाता है।

श्रावकाचार का रचना-काल—

"ज्ञानानन्दश्रावकाचार" के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि लेखक को प्राकृत, संस्कृत आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। चारों अनुयोगों पर उनका समान अधिकार प्रतीत होता है। छन्द, अलंकार, व्याकरण आदि का ज्ञान हुए बिना वे इस शास्त्र की रचना नहीं कर सकते थे। ग्रन्थ के प्रारम्भ में तथा अन्य स्थलों पर उन्होंने अपनी पद्य-रचना के निदर्शन प्रस्तुत किए हैं। यथार्थ में उनकी शैली सरल होने पर भी गरिमा युक्त है। उदाहरण के लिए, हिन्दी-अनुवाद प्रस्तुत है—

"सो यह कार्य तो बड़ा है और हम योग्य नहीं, ऐसा हम भी जानते हैं, परन्तु "अर्थी दोष न पश्यति"। अर्थी पुरुष है वह शुभाशुभ कार्य का विचार नहीं करता; अपना हित ही चाहता है। इसलिए मैं निज स्वरूप-अनुभवन का अत्यन्त लोभी हूं। इस कारण मुझे और कुछ सूझता नहीं है। मुझे तो एक ज्ञान ही ज्ञान सूझता है। ज्ञान के भोग के बिना और से क्या है? इसलिये मैं अन्य सभी कार्य छोड़कर ज्ञान ही की आराधना करता हूं, ज्ञान ही की सेवा करता हूं तथा ज्ञान ही का अर्चन करता हूं और ज्ञान ही की शरण में रहना चाहता हूं।"[1]

यह पहले ही कहा जा चुका है कि "इन्द्रध्वजाविधान-महोत्सव पत्रिका" वि. सं. 1821 में लिखी गई थी। यह पत्रिका लेखक की सर्वप्रथम रचना कही जा सकती है। पं. जयचन्द छावड़ा उनके शिष्य थे। जिनका रचना-काल वि. संवत् 1861 से लेकर विक्रम संवत् 1875 तक कहा गया है।[2] श्रावकाचार की हस्तलिखित प्रतियों में सबसे प्राचीन प्रति जैन सिद्धान्त भवन, आरा में उपलब्ध होती है जो विक्रम संवत् 1858 की लिपिबद्ध है।[3] अतः यह स्पष्ट है कि इससे पूर्व इस "ज्ञानानन्द श्रावकाचार" की रचना हो चुकी थी। विक्रम संवत् 1818 में पण्डितप्रवर टोडरमलजी की "सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका" टीका सम्पूर्ण हुई थी। तब तक ब्र. रायमलजी लेखन के क्षेत्र में नहीं आए थे। "श्रावकाचार" में जहाँ वे लिखते हैं—"जीव का ज्ञानानन्द तो असली स्वभाव है", वहाँ हमारे ध्यान में पण्डितप्रवर टोडरमलजी की निम्नलिखित पंक्तियाँ घूम जाती हैं—

---

1 ज्ञानानन्द-श्रावकाचार, पृ. 29-30

2 डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य-परम्परा, खण्ड 4, पृ. 292

3. मिलापचन्द, रतनलाल कटारिया : जैन निबन्ध रत्नावली, प्रथम संस्करण, पृ. 159

वीतराग ह्वै ध्यावैं अर्थ, होय शुद्ध उपयोग समर्थ।
तातैं ज्ञानानंद स्वरूप, पावैं निज पद अमल अनूप॥

सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका टीका

इसी प्रकार "मोक्षमार्गप्रकाशक" की रचना के उपरान्त ही "श्रावकाचार" की रचना हुई होगी। क्योंकि पण्डितप्रवर टोडरमलजी और ब्र रायमल्लजी की विचारधारा एक थी। जिन बातो का सकेत "मोक्षमार्गप्रकाशक" मे किया गया है, किन्तु प्रकरणवश विस्तार से विवेचन नही हो सका, उसका स्पष्टीकरण इस ग्रन्थ मे किया गया है। उदाहरण के लिए, "मोक्षमार्गप्रकाशक" मे लिखा है—"तथा पूजनादि कार्यों मे उपदेश तो यह था कि—"सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ दोषायनाल" बहुत पुण्य समूह मे पाप का अश दोष के अर्थ नहीं हैं। इस छल द्वारा पूजा-प्रभावनादि कार्यों मे – रात्रि मे दीपक से व अनन्तकायादिक के सग्रह द्वारा व अयत्नाचार-प्रवृत्ति से हिंसा रूप पाप तो बहुत उत्पन्न करते हैं और स्तुति, भक्ति आदि शुभ परिणामो मे नही प्रवर्तते व थोडे प्रवर्तते हैं। सो वहाँ नुकसान बहुत, नफा थोडा या कुछ नही। ऐसे कार्य करने मे तो बुरा ही दिखना होता है। तथा जिन-मन्दिर तो धर्म का ठिकाना है। वहा नाना कुकथा करना, सोना, इत्यादि प्रमाद रूप प्रवर्तते हैं तथा वहाँ बाग-बाडी इत्यादि बना कर विषय-कषाय का पोषण करते हैं।" इसका ही विशदीकरण "श्रावकाचार" मे इस प्रकार किया गया है—

"आगे जिन मदिर मे अज्ञानता तथा कषाय से चौरासी आसादन दोष लगते हैं। किन्तु जो विचक्षण हैं और जिनके धर्म बुद्धि हैं उनके नही लगते हैं। उसका स्वरूप कहते हैं--थूकना-खखारना नहीं, हास्य-कुतूहल नही करना ... कलह नही करना धर्मशास्त्र के सिवाय अन्य कुछ लिखना या बांचना नही. . प्रतिमाजी के अग में केसर आदि नही लगाना.... रात्रि मे पूजन नही करना जिन मदिर मे जितने भी सावद्य योग वाले कार्य हैं उन सब का त्याग करना। अन्य स्थान मे किया हुआ या उपार्जित पाप को उपशान्त करने मे जिन मन्दिर कारण है किन्तु जिन मन्दिर मे उपार्जित पाप को उपशान्त करने के लिए अन्य कोई समर्थ नही है भोगने के पश्चात् ही उनसे छूटना होता है। जैसे कोई पुरुष किसी से लडता है तो राजा के पास अपना अपराध माफ करा लेता है, किन्तु राजा से ही उसकी लडाई हो तो फिर माफ कराने का ठिकाना कौन है उसका फल बदीखाना ही है। ऐसा समझ कर अपना हित मान कर जिस-तिस प्रकार विनय से रहना। विनय गुण धर्म का मूल है। मूल के बिना धर्म रूपी वृक्ष के स्वर्ग मोक्ष रूपी फल कभी भी नहीं लगते। इसलिये हे भाई! आलस-प्रमाद छोड कर तथा खोटे उपदेश का वमन कर भगवान की आज्ञा के अनुसार प्रवर्तन

करो । अधिक कहने से क्या ? यह तो अपने हित की बात है। जिसमें अपना भला होय, सो क्यों नहीं करना ? देखो, अर्हन्तदेव का उपदेश तो ऐसा है कि इन चौरासी दोषों में से कोई एक-दो दोष भी लगे तो महापाप होता है।[1]" इतना ही नहीं, इसके पहले रसोई के प्रकरण में यह भी कहते हैं —"अपने विषयों के पोषण के लिए धर्म का आश्रय लेकर अष्टाह्निका, सोलहकारण, दशलक्षण, रत्नत्रय आदि पर्व के दिनों में उत्तमोत्तम मनमाना अनेक प्रकार का अत्यन्त गरिष्ठ जो अन्य दिनों में खाने को नहीं मिलता, ऐसा भोजन करता है और सुन्दर वस्त्राभूषण पहनता है, शरीर का शृंगार करता है। सावन-भादों में, पर्व के दिनों में विषय-कषायों को छोड़ कर संयम का पालन करना, जिन-पूजन, शास्त्राभ्यास, जागरण करना, दान देना, वैराग्य की वृद्धि करना, संसार का स्वरूप अनित्य जानना, इसका नाम धर्म है। किन्तु विषय-कषाय के पोषण का नाम धर्म कदापि नहीं है। यदि झूठा ही मानो तो अपने को क्या ? उसका फल खोटा ही लगेगा।[2]"

इस प्रकार अनेक स्थलों पर इस बात को समझाया है। जिन बातों का पण्डितप्रवर टोडरमलजी "मोक्षमार्गप्रकाशक" में विस्तार से वर्णन कर चुके थे, उनका ब्र रायमल्लजी ने संक्षेप में ही वर्णन किया है। उदाहरण के लिए, सम्यक्त्व के भेद, देव, गुरु, धर्म का अन्यथा स्वरूप, सात तत्त्व आदि का स्वरूप तथा अन्य मतों से जैन मत की तुलना। इसी प्रकार प दौलतरामजी ने "जैन-क्रियाकोष में" जिन बातों का विस्तार से वर्णन किया है, उनका या तो वर्णन नहीं किया है अथवा अपने शब्दों में संक्षेप में कहा है। "जैनक्रिया-कोष" में जिन बातों का संक्षेप में वर्णन किया गया, उनका "ज्ञानानन्दश्रावकाचार" में विस्तार से वर्णन मिलता है। उदाहरण के लिए "जलगालन-विधि" द्रष्टव्य है—

> इह तौ जल की क्रिया बताई, अब सुनि जलगालन-विधि भाई।
> रंगे वस्त्र नहिं छानो नीरा, पहरे वस्त्र न गालो वीरा ॥
> नाहिं पातरे कपड़े गालौ, गाढ़े वस्त्र छाणि अघ टालो।
> रेजा दृढ़ आँगुल छत्तीसा - लंबा, अर चौड़ा चौबीसा ॥
> ताकौ दो पुड़ता करि छानौ, यही नातणा की विधि जानौ।
> जल छाणत इक बूंदहु धरती मति डारहु भाषे महाव्रती ॥
> एक बूंद में अगणित प्राणी, इह आज्ञा गावै जिनवाणी।
> गलना मिउंटी धरि मति दाबो, जीवदया को जतन धराबो ॥
> छाणे पाणी बहुते भाई, जल गलणा धोवैं चितलाई।
> जीवाणि को जतन करो तुम, सावधान ह्वै विनवैं क्यर हुम ॥

---

1. ज्ञानानन्द श्रावकाचार, पृ. 110-115
2 वहीं, पृ. 96

राखहु जल की किरिया शुद्धा, तब श्रावक व्रत लहौ प्रबुद्धा ।

यहाँ पर यह सकेत किया गया है कि जलगालन की क्रिया शुद्ध होनी चाहिए। शुद्ध क्रिया कैसी है ? इसका वर्णन केवल दो पंक्तियों में किया गया है—

ऊपर सू डारौं मति भाई, दया धर्म धारो अधिकाई ।
भवरकली को डौल लगावौ, ऊपर नीचे डोर लगावौ ।।
इ गुण डोल जतन करि बीरा, जीवाणी पधरावो धीरा ।
छाण्या जल को इह निरधारा, थावरकाय कहे गणधारा ।।
(जैन-क्रिया कोष, 74, 75)

ब्र प रायमल्लजी जल की शुद्धता के विषय मे लिखते हैं—

"तालाब, कुण्ड, अल्प पानी वाली बहती हुई नदी, अकड कुँआ, बावडी का पानी तो छाना हुआ होने पर भी अयोग्य है । इस पानी मे त्रस जीवो की राशि इन्द्रियगोचर होती है । इसलिए जिस कुए का पानी चरस से या पनघट से छटता होय, उस जल मे जीव दृष्टिगोचर नही होते । अत उस जल को आप स्वय कुए के ऊपर जा कर या आपके विश्वासपात्र आदमी को भेज कर दुहरे, सपाट, गुडी या गुडी से रहित गलने मे पानी औंधा कर धीरे-धीरे छानें । पानी गलने (छन्ने) मे औंधा करते ही तत्काल छनेगा नही, इसलिए थोडा ठहर कर ऐसे गलने से छानें, जिससे अनुक्रम स पानी छने । उस गलने (छन्ने) का प्रमाण यह है कि जिस बर्तन मे छानना हो, उससे तिगुना लम्बा-चौडा दुहरा करने पर समचौकोर हो—ऐसा जानना अथवा कुँआ से बिना छना जल भर कर अपने डेरे पर ले जाय और वहाँ सावधानी से भली-भाँति छानें । छानते समय अनछने पानी की बूँद भी आँगन मे नही गिरे अथवा अनछने पानी की बूँद अश मात्र भी छने पानी मे नही आवे, ऐसे पानी छानिये । पहले अनछने पानी के बर्तन मे अनछने पानी के हाथ को धो लीजिये, फिर छने पानी के बर्तन को पकडिये । सो उसे तीन बार धोइये, पश्चात् उसके मुख पर गलना लगाइये । बायें हाथ में डोल, भगौना या तवेला पकड कर रखें और जीमने (सीधे) हाथ से पानी भर कर डोल के ऊपर लिया, लिया बर्तन के ऊपर उँडेल दें । इस प्रकार अनुक्रम से थोडा-थोडा छाने और घना छाने, तो बर्तन उठा कर गलने के ऊपर धीरे-धीरे उडेले । इसके बाद अनछने पानी के हाथ को धोकर अगल-बगल मे सूखे गलने को पकड कर उल्टा कीजिये । पश्चात् छने हुए पानी से बचे हुए अनछने पानी मे जीवानी कीजिये । जिस बर्तन मे जीवानी करें, उसे

बीच में जीवानी की तरफ से तथा चारों तरफ से गलना को नहीं पकड़ें। पीछे चार पहर दिन के आये हुए जल को भी उसी कुए मे पहुँचा दे। किसी भी लोटे में पाँच-सात अंगुल की लकड़ी बाँध कर भीतर आड़ी लगा देने से वह लोटा सीधा चला जाता है। उसकी डोरी मे उल्टा फंदा बाँध कर कुए के पेंदे तक लोटा पहुँचा दें, तभी ऊपर से डोरी हिला देने से उस लोटे मे से लकड़ी निकल जाती है और वह औंधा हो जाता है, तब ऊपर से लोटा खींच लेना चाहिए — इस प्रकार जीवानी पहुँचाना। यदि इस प्रकार जीवानी न पहुँचा सको, तो प्रभात काल मे सारा पानी छान कर जीवानी एकत्र कर पानी भरने के बर्तन में डाल दीजिये और पनिहारिन को सौंप दीजिये। पनिहारिन को महीने के अतिरिक्त टका-दो टका और बढ़ा दीजिये तथा उससे कहिये कि यह जीवाणी सीधी कुवा मे उरासना, रास्ते मे एव ऊपर से कुआ मे नहीं डालना। यदि कदाचित् डाल दोगी, तो पानी भरने से हटा दूँगा। इतना कहने के पश्चात् भी दो-चार बार गुप्त रीति से उसके पीछे गली तक जाकर ठीक से देखिये कि जीवानी सीधी उरासी जाती है या नहीं। यदि कहे अनुसार ठीक से उरासी गई हो, तो विशेष रूप बढाई कीजिये। टका-दो-टका की गम खाइये, पाप का भय दिखाइये — इस प्रकार जीवानी पहुचाना। इसको छाना हुआ पानी जिवा कहते हैं। यदि ऊपर कहे अनुसार जीवानी न पहुँचे, तो उसे अनछना पानी पिया कहिये या शूद्र सादृश्य कहिये। जिनधर्म मे तो दया ही का नाम क्रिया है। दया बिना धर्म नाम नही पाता है। जिसके घट में दया है, वही पुरुष भव समुद्र को पार करता है। ऐसा पानी की शुद्धता का स्वरूप जानना।" (पृ. 90-92)

अन्तिम दो पंक्तियाँ बहुत ही मार्मिक हैं। वास्तव मे जीवानी डालने की जैसी शुद्धता पूर्ण क्रिया का वर्णन ब्र. प. रायमल्लजी ने किया है, वैसा अन्य किसी शास्त्र मे पढ़ने को नहीं मिला। उपर्युक्त तथ्यो पर ध्यान देने से यही निश्चय होता है कि "ज्ञानानन्दश्रावकाचार" की रचना वि. स. 1824 से लेकर 1848 के मध्य किसी समय हुई थी।

ज्ञानानन्द का अभिप्राय—

इस ग्रन्थ का पूरा नाम है—ज्ञानानन्दनिर्भरनिजरस श्रावकाचार। स्वरस का ही दूसरा नाम ज्ञानानन्द है। स्व माने अपना और अपना माने आत्मा का। आत्मा का रस ज्ञानानन्द या शान्तिक है। उसमे किसी प्रकार की आकुलता नहीं है, वह निराकुल सुख है। उसकी प्राप्ति-स्व-संवेदनरूप ज्ञानानुभव से ही हो सकती है; अन्य कोई उपाय नहीं है। ज्ञान का अनुभव कहिये या निज

स्वरूप की अनुभूति कहिये एक ही बात है। निज स्वरूप का ध्यान करने से विशेष आनन्द होता है। ज्ञानानन्द से अभिप्राय अतीन्द्रिय आनन्द से है। शुद्धोपयोगी मुनि का उदाहरण देते हुए ब्र. पं. रायमल्लजी कहते है—"जैसे ग्रीष्मकाल में भूख-प्यास से पीड़ित कोई पुरुष शीतल जल में गले हुए मिश्री के डेले को अत्यन्त रुचि के साथ गटक-गटक कर पीता है और तृप्त होता है, वैसे ही शुद्धोपयोगी महामुनि स्वरूपाचरण होने से अत्यन्त तृप्त हैं और बार-बार उसी रस को चाहते हैं। यदि किसी समय में पूर्व वासना के निमित्त से शुभ उपयोग में लग जाते हैं तो ऐसा जानते हैं कि मेरे ऊपर आफत आई है हलाहल जहर के समान यह आकुलता मुझसे कैसे भोगी जायेगी ? अभी हमारा आनन्द रस निकल गया है। फिर, हमे ज्ञानानन्द रस की प्राप्ति होगी या नहीं ? हाय ! हाय ! अब मैं क्या करूँ ? यह मेरा स्वभाव है। मेरा स्वभाव तो एक निराकुल, बधा रहित, अतीन्द्रिय अनुपम स्वरस पीने का है सो मुझे प्राप्त होवे। कैसे प्राप्त हो ? जैसे समुद्र मे मग्न हुआ मच्छ बाहर निकलना नहीं चाहता है और बाहर निकलने मे असमर्थ होता है, वैसे ही मैं ज्ञान-समुद्र मे डूब कर फिर निकलना नहीं चाहता हूँ। एक ज्ञान-रस को ही पिया करूँ। आत्मिक रस के बिना अन्य किसी मे रस नहीं है। सारे जग की सामग्री चेतन रस के बिना उसी प्रकार फीकी है; जैसे नमक के बिना अलोनी रोटी फीकी होती है।
(पृ. 20-21)

ग्रन्थ-निर्माण का प्रयोजन—

ग्रन्थकार के लिए रचना तो निमित्त मात्र है। यथार्थ मे वे अपने से जुड़े हैं, अपने चित्त को एकाग्र कर अपने उपयोग को अपने मे लगाने का पुरुषार्थ किया है। परमात्मा का स्मरण करते हुए वे अपनी पहचान करते हैं। परमात्म देव कैसे हैं ? जिनके स्वभाव से ज्ञान अमृत झर रहा है और स्व-संवेदन से जिस मे आनन्द-रस की धारा उछल रही है। वह रस-धार उछल कर अपने स्वभाव मे ऐसी गर्क हो जाती है; जैसे शक्कर की डली जल में गल जाती है। इसलिए रचनाकार ज्ञानानन्द की प्राप्ति के लिए ही इस श्रावकाचार की रचना करता है। उनके ही शब्दों मे—"ज्ञानानद की प्राप्ति के अर्थ और प्रयोजन नाही। आगै करता (कर्त्ता) आपणा स्वरूप को प्रगट करे है वा आपणा अभिप्राय जणावै है। सो कैसा हू मैं ? ज्ञानज्योति करि प्रगट भया हू, तातै ज्ञान ही नै चाहूं हूं। ज्ञान छै सो म्हारा निज स्वरूप छै। सोई ज्ञान-अनुभव-करि मेरे ज्ञान ही की प्राप्ति हो हु। मैं तो एक चैतन्य स्वरूप ता करि उत्पन्न भया, ऐसा जो शांतिक रस ताकै पीवा कूं उद्यम किया है, ग्रन्थ बनावा का अभिप्राय नाही। ग्रन्थ तौ बडा-बडा पंडिता नै घना ही बनाया है, मेरी बुद्धि काई ? पुन उस विषै बुद्धि की मंदता करि अर्थ विशेष भासता नाही अर्थ विशेष

आस्था बिना चित्त एकाग्र होता नाहीं। अर चित्त की एकाग्रता। बिना कषाय घटै नाहीं। अर कषाय घट्या बिना आत्मीक रस उपजै नाहीं आत्मीक रस उपज्या बिना निराकुलित सुख ताको भोग कैसे होय ? तातैं ग्रन्थ कौमिस चित्त एकाग्र करिवा का उद्यम किया।" इस प्रकार मुख्य प्रयोजन निज आत्मा का अनुभव करना ही है। यथार्थ में स्व-स्वरूप के सम्मुख व्यक्ति को ज्ञान के सिवाय कुछ नहीं सूझता है अत: आत्म-विनय के साथ ही ब्रह्मचारी रायमलजी ने वास्तविकता को ही प्रकट किया है। जैसे भोगी को भोग के सिवाय खाना-पीना आदि कुछ अच्छा नहीं लगता वैसे ही ज्ञान की ओर झुकने वाले को ज्ञान के भोग के बिना सब फीका लगता है।

विशेषताएँ—

लगभग एक सौ से अधिक श्रावकाचार उपलब्ध होते हैं। किन्तु उन सभी श्रावकाचारो से इसमे कई बाते विशेष मिलती हैं। इसमे कोई सन्देह नहीं है कि जैसा "ज्ञानानन्द श्रावकाचार" इसका नाम है, वैसे ही मधुर भावों से भरपूर है। इसकी विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(1) प्राय सभी श्रावकाचार पद्य मे रचे गये मिलते हैं, किन्तु यह गद्य में रची गई प्रथम रचना है। सम्पूर्ण ग्रन्थ गद्य मे है।

(2) पानी छानने, रसोई आदि बनाने से लेकर समाधिमरण पर्यंत तक की सभी क्रियाओ का इसमें विधिवत् वर्णन है। श्रावकाचार की सभी मुख्य बाते इस मे पढने को मिलती हैं।

(3) द्रव्यानुयोग और चरणानुयोग का इतना सुन्दर सामंजस्य इसमे है कि "मोक्षमार्गप्रकाशक" के सिवाय अन्य ग्रन्थो में उपलब्ध नही होता।

(4) पण्डितप्रवर टोडरमलजी, प दौलतरामजी कासलीवाल आदि ने जिस विषय का प्रतिपादन किया है, उसके समर्थन में स्थान-स्थान पर आचार्यों के उद्धरण दिए हैं। परन्तु ब्र. रायमलजी ने एक भी श्लोक या गाथा उद्धृत नहीं की। केवल नाथूराम कृत "विनय पाठ" की दो पंक्तियाँ उद्धृत की हैं।

(5) जलगालन-विधि के अन्तर्गत पानी छान कर जीवानी डालने की जैसी सुन्दर, स्पष्ट, विशद विधि इस श्रावकाचार में बताई गई है, वैसी अन्य शास्त्र में विस्तार से पढने में नहीं आई।

(6) भाषा और भावों में बहुत ही सरलता है।

(7) निश्चय और व्यवहार दोनों का सुन्दर समन्वय इसमे है ।

(8) जिन-मन्दिर के चौरासी आसादन दोषों का वर्णन इसमें विशेष रूप से है ।

(9) जिस प्रकार आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने आगम को सामने रख कर सुप्रसिद्ध अध्यात्म ग्रन्थ "समयसार" की रचना की थी, वैसे ही अध्यात्म को सामने रख कर ब्र रायमलजी ने "श्रावकाचार" की रचना की । वास्तव में चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग का सुमेल है ।

(10) किसी एक ग्रन्थ के आधार पर नही, किन्तु उपलब्ध सभी श्रावकाचारो का सार लेकर इस ग्रन्थ की रचना की गई ।

(11) सामान्य जन भी समझ सके, इस बात को ध्यान मे रख कर स्थान-स्थान पर दृष्टात दिये गए हैं ।

(12) प्रतिदिन की सामान्य क्रियाओ की भी विधि और उनके गूढ़ अर्थ को स्पष्ट किया गया है ।

(13) हेतु, न्याय, दृष्टान्त, आगम, प्रमाण आदि के उपयोग के साथ ही शास्त्रीयता की लीक से हटकर सरल, सुबोध शैली मे इस श्रावकाचार की रचना की गई ।

(14) विषय को स्पष्ट करने के लिए अनेक स्थानों पर प्रश्न प्रस्तुत कर उनका समाधान किया गया है ।

उक्त विशेषताओ पर ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस ग्रन्थ की कुछ विशेषताएँ विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है ।

युग-प्रवर्तक— इसमे कोई सन्देह नही है कि पण्डितप्रवर टोडरमलजी, प दौलतरामजी कासलीवाल, प. बखतराम साह और पं जयचन्दजी छाबड़ा आदि के सहयोग से उस युग मे ब्र. पं. रायमलजी ने आध्यात्मिक उत्क्रान्ति की थी । यथार्थ मे सामाजिक क्रान्ति का सूत्रपात सोलहवीं शताब्दी मे ही हो गया था । तारण-पंथ का जन्म इसी क्रान्ति का महत्वपूर्ण चरण था । वस्तुत आचार्य कुन्दकुन्द से लेकर आचार्य अमृतचन्द्र तक और आचार्य अमितगति से लेकर प बनारसीदास तक एव प वंशीधर से लेकर प. भागचन्द तक लगभग दो सहस्र वर्षों तक अनवरत सक्रान्त होने वाली परम्परा विद्यमान रही है । इस

परम्परा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति तथा समाज में व्याप्त होने वाले शिथिलाचार को दूर करना तथा आत्म-कल्याण करना रहा है। शिथिलाचार की प्रवृत्ति आचार्य कुन्दकुन्द के युग मे प्रारम्भ हो चुकी थी। इसलिये सद्गृहस्थ और मुनि के भेद से दो प्रकार का सयमचारित्र का विधान "चारित्रपाहुड" में में किया और "भावपाहुड" मे स्पष्ट किया कि चौरासी लाख योनियों में से एक भी ऐसा प्रदेश बाकी नहीं बचा है जहाँ भावरहित द्रव्यलिंगी साधु ने भव-भ्रमण न किया हो। इसलिये बाह्य वेष धारण करने मात्र से कोई निर्ग्रन्थ साधु नहीं हो जाता, जिनलिंगी साधु भाव से होता है। इसलिये भावलिंग ही धारण करो, द्रव्यलिंग से क्या काम सिद्ध होता है?[1] आगम के प्रमाण से इसका समर्थन करते हुए "द्वादशानुप्रेक्षा" मे कहते हैं—"शुभ-अशुभ भावों की क्रिया परम्परा से भी मोक्ष का कारण नही है। आस्रव मात्र ससार-गमन का कारण है, इसलिये निन्दनीय हैं।[2] "इतना ही नही, धर्मध्यान के होने में शुद्धोपयोग को कारण कहते है। "शुद्धोपयोग से जीव के धर्मध्यान और शुक्ल ध्यान होते हैं। इसलिये ध्यान सवर का कारण है—ऐसा निरन्तर चिन्तवन करना चाहिए।"[3] "प्रवचनसार" मे भी इसके सकेत मिलते हैं, इसलिये आ कुन्दकुन्द ने सहजलिंग से सच्चे सुख की प्राप्ति बताई है। इतना ही नही, उनका कथन अत्यन्त स्पष्ट है कि इस लोक मे जिसकी आगमपूर्वक दृष्टि (सम्यग्दर्शन) नही है, भले ही उसने मुनि वेष धारण किया हो, किन्तु उसके सयम नहीं है— ऐसा सूत्र कहता है। वास्तव मे वह असंयत है, वह श्रमण कैसे हो सकता है? इसका खुलासा करते हुए आचार्य अमृतचन्द्र कहते हैं— प्रथम तत्वार्थ श्रद्धान लक्षण वाली दृष्टि से शून्य होने के कारण उन सभी के

---

1 *सो णत्थि त पएसो चउरासीलक्खजोणिवासम्मि।*
भावविरओ वि सवणो जत्थ ण कुरुदुल्लिओ जीवो॥
भावेण होइ लिंगी ण हु लिंगी होइ दव्वमित्तेण।
तम्हा कुणिज्ज भाव किं कीरइ दव्वलिंगेण॥
भावपाहुड, गा 47-48

2. *पारपज्जाएण दु आसवकिरियाए णत्थि णिव्वाण।*
ससारगमणकारणमिदि णिंद आसवो जाण॥
द्वादशानुप्रेक्षा, गा 59

3. *सुद्धुवजोगेण पुणो धम्मं सुक्क च होदि जीवस्स।*
तम्हा सवरहेदू झाणो त्ति विचिंतए णिच्चं॥
वही, गा. 64

संयम सिद्ध नहीं होता। क्योंकि भेद-विज्ञान न होने से तथा कषायों के साथ एकत्व का अध्यवसाय होने से विषयो की अभिलाषा का निरोध नहीं हो पाता है। अतः परिणामतः वह जीव-निकाय के घाती होकर सब ओर से प्रवृत्ति करते हैं, इसलिये निवृत्ति का अभाव है। दूसरे, उनके परमात्म-ज्ञान का अभाव होने से सम्पूर्ण ज्ञेयो को क्रमशः जानने वाली स्वच्छन्द ज्ञप्ति होने से ज्ञान रूप आत्मतत्त्व मे एकाग्रता की प्रवृत्ति का अभाव है। इस प्रकार उनके संयम नहीं होने से मोक्षमार्ग भी सिद्ध नहीं होता।[1] आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने दर्शन की शुद्धता, ज्ञान की शुद्धता और प्रवृत्ति की शुद्धता पर विशेष बल दिया और तीनों की शुद्धता का विश्लेषण कर अध्यात्म और आगम की अपेक्षा उनका विशद वर्णन किया। यही कारण है कि उनको मूल आम्नाय या शुद्ध आम्नाय का कहा गया है। उनके सघ को मूलसघ कहा गया है। मूल सघ मे अन्य सघो से प्रथम भेद पचामृताभिषेक का अभाव देखा गया है। इसका प्रमाण यह है कि मूलसघ के आचार्यों ने पचामृताभिषेक का वर्णन नही किया। पूजा-पाठ का प्रसग होने पर भी आचार्य जिनसेन ने पचामृताभिषेक करने का किसी भी स्थल पर उल्लेख नही किया।[2] इसी भेद के कारण कालान्तर मे केशर-पुष्पादि से अर्चन-चर्चन आदि अनेक भेद प्रचलित हो गये। प. दीपचन्दजी वर्णी के शब्दो मे "तेरापथी खड़े होकर विनय से पूजा करते हैं, पानी से ही प्रतिमा का प्रक्षाल करते हैं तथा प्रतिमा के किसी भी अग पर कोई गंध, लेप या पुष्पादि नही चढाते हैं, निर्ग्रन्थ गुरुओ को ही गुरु मानते हैं।" जो यथाजात निर्ग्रन्थ, सर्वज्ञ, वीतराग देव-गुरु-धर्म को अनादि काल से मानते चले आ रहे हैं वे शुद्ध आम्नाय वाले है, परवर्ती काल मे उनको ही तेरापथी कहा गया। "जिन प्रतिमा जिन सारिखी" मानने वाले तेरापथी हैं, यह सकेत प. बनारसीदास लगभग चार सौ वर्ष पूर्व कर चुके थे। पन्थ का सम्बन्ध संख्यावाचक शब्द से जोड़ कर मन-माने अर्थ करना उचित नही है। इसी प्रकार बीस पन्थ को "विषम पन्थ" कहना और तेरापथ को "सम पन्थ" कहना उचित प्रतीत नही होता।[3] ब्र रायमलजी ने स्पष्ट रूप से लिखा है—"हे

---

1. *प्रागमपुव्वा दिट्ठी ण भवदि जस्सेह सजमो तस्स।*
   णत्थीदि भणदि सुत्त प्रसजदो होदि किम समणो॥
   प्रवचनसार, गा 236

   —तत्त्वप्रदीपिका एवं तात्पर्यवृत्ति टीका

2. दृष्टव्य है, *जैन निबन्ध-रत्नावली*, पृ. 393-434

3. वही, पृ 344

भगवन् ! मैं तो आपके वचनों के अनुसार चलता हूं, इसलिये तेरा पन्थी हूं। आपके सिवाय अन्य कुदेवादि का हम सेवन नहीं करते हैं।....तेरह प्रकार के चारित्र के धारक निर्ग्रन्थ दिगम्बर गुरु को ही मानते हैं, अन्य परिग्रही को नहीं मानते हैं, इसलिये गुरु की अपेक्षा भी तेरापंथी सम्भव है।....सो तेरा पन्थ तो अनादिनिधन, जिनभाषित शास्त्र के अनुसार प्रचलित रहा है। और जितने भी कुमत प्रचलित हैं वे ऋषभनाथ तीर्थंकर की आदि से लेकर आज तक तेरापन्थी की पंक्ति से निकले हुए हैं और अन्य मत में मिल गए हैं; जैसे दूध बिल्कुल शुद्ध था, किन्तु मदिरा के पात्र में जा पड़ा सो ग्रहण करने योग्य नहीं रहा। "यथार्थ में शुद्ध भाववान होने के लिए शुद्ध पन्थ अनादि से प्रचलित है, जिसमें तत्त्वज्ञान की प्रधानता है और जो बिना परीक्षा किए सुगुरु, सुदेव, सुधर्म तथा जिनागम को नहीं मानता[1]।

यथार्थ मे शुद्ध आत्मा ही परमात्मा है, भगवान है। वह स्वभाव से वीतराग है। अत वीतराग देव, वीतराग निर्ग्रन्थ गुरु, वीतराग धर्म और वीतरागता की प्रतिपादक जिनवाणी को मानने वाला तेरापन्थी है अर्थात् जिनदेव के मार्ग का पथिक है। श्री जोधराज गोदीका ने ठीक ही कहा है—

कहे जोध अहो जिन ! तेरापन्थ तेरा है।

शुद्ध आत्मा वीतराग परमात्मा को मानने वाला शुद्ध आम्नाय या मूल आम्नाय का है जिसे परवर्ती काल मे तेरापथी कहा गया। वास्तव मे आचार्य कुन्दकुन्द मूल आम्नाय मे किसी प्रकार के शिथिलाचार का पोषण नही करते। उन्होने अपने ग्रन्थो में दिगम्बर मुनियों के शिथिलाचार का स्थान-स्थान पर प्रबल शब्दो मे विरोध कर यथार्थ प्रवृत्ति का वर्णन किया। इसमे कोई सन्देह

---

1. कविवर माणिकलाल . तेरापंथदीपिका छन्द 1

तेरापंथ सम्यक् दर्शवर ज्ञान चरण,
यही मोक्ष हेतु यही परम सुखकारी है।
याही के रमैया जगमाहि सूरि उवझाय,
साधु शिव साधि भवाविरति विकारी हैं॥
याही तें समयसार होत भ्रमतम निवार,
धनि भवि जीव जिन याकी रुचि धारी है।
याही पथ रूप अर्हन्त, सिद्ध विश्वभूप,
पूरण स्वरूप तिन्हें बन्दना हमारी है॥1॥

नहीं है कि आचार्य कुन्दकुन्द दिगम्बर साधु में रंच मात्र भी शिथिलता को स्वीकार नहीं करते। नव स्थापित श्वेताम्बर संघ के साधुओं में जो विकृतियाँ आई थीं, उनसे दिगम्बर साधु को दूर रखने का उस युग में बहुत प्रयत्न किया गया था। विकृत आचरण करने वाले को "नटश्रमण" नाम से अभिहित किया गया है।[1] इसी प्रकार "मूल" का अर्थ "प्रधान" या "मूलसंघ" किया गया है।[2] अतः मूलसंघ की परम्परा का अनुगमन करने वाले को शुद्ध आम्नायी या तेरापंथी कहना उचित है। मूल आम्नाय की यह विशेषता है कि बिना मूल गुण के न तो कोई जैन हो सकता है, न कोई श्रावक हो सकता है और न कोई साधु हो सकता है। सभी की कसौटी मूल गुण है। जैन के आठ मूल गुण हैं, श्रावक के बारह हैं और साधु के अट्ठाईस मूल गुण हैं, उपाध्याय के पच्चीस हैं और आचार्य के छत्तीस मूल गुण हैं। मूल गुणों का पालन करने वाला ही व्यवहार से मूलाचार का पालक कहा जाता है। मूलभूत गुण को मूल गुण कहा जाता है। "मूलाचार" मे सर्वप्रथम मूलगुण-अधिकार का वर्णन किया गया है।[3] मूल जड को भी कहते हैं। मूल के बिना शाखा व वृक्ष कैसे हो सकता है? इससे स्पष्ट है कि मूल आम्नाय ही जिन-मार्ग की वास्तविक परम्परा है। तीर्थंकर महावीर के निर्वाण के पश्चात् आचार्य अर्हद्बली पर्यन्त मूलसंघ अविच्छिन्न रूप से प्रचलित रहा। तदनन्तर वह अनेक भेदों में विभक्त हो गया। किन्तु सभी दिगम्बर संघों का मूल मूलसंघ ही था। धीरे-धीरे कई संघों मे शिथिलाचार बढ़ता गया।[4] तेरापंथ का इतिहास ही यह रहा है कि यह सदा शिथिलाचार का विरोध करता रहा और आध्यात्मिक उत्क्रान्ति का प्रबलता से प्रतिपादन करता रहा। आज भी उसकी यही मुद्रा तथा छवि है।

यद्यपि दिगम्बर-परम्परा मे विभिन्न युग-युगों मे अनेक संघ-भेद प्रचलित हुए, किन्तु उनमे दो ही प्रमुख रहे हैं - मूलसंघ और काष्ठासंघ। सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचन्द्र शास्त्री के शब्दों मे "श्रुतकेवली भद्रबाहु के काल मे श्रीसंघ के दो भागों मे विभक्त हो जाने के बाद ही यह नाम प्रचलन मे आया है। इससे सिद्ध

---

1 आचार्य वट्टकेर कृत मूलाचार, सम्पादकीय, पृ. 8, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1984

2 वही, पृ. 9

3 मूलगुणेसु विसुद्धे वंदित्ता सव्वसंजदे सिरसा।
इहपरलोगहिदत्थे मूलगुणे कित्तइस्सामि॥ मूलाचार गा. 1

4 द्रष्टव्य है—जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश; भा 1 पृ. 340

है कि पूरे श्रीसंघ मे इसके पहले जो आम्नाय प्रचलित थी उसे ही उत्तर काल मे "मूलसघ" इस नाम से अभिहित किया जाने लगा। शिलापट्ट और मूर्ति-लेख आदि में इस नाम का कब से उल्लेख किया जाने लगा, यह कहना तो थोड़ा कठिन है। किन्तु हमारे पास जो मूर्तिलेख आदि का संकलन शेष बचा है उसमे एक ऐसा भी लेख है जिससे यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि 7 वीं शताब्दी के पूर्व ही मूर्तिलेखों आदि में "मूलसंघ" का उल्लेख किया जाने लगा था।[1] दक्षिण भारत से प्राप्त ताम्रपत्रों तथा शिलालेखों मे सातवीं शताब्दी से बहुत पहले "मूलसंघ" का उल्लेख होने लगा था। इसमें सन्देह नहीं है कि तीर्थंकर महावीर की अविच्छिन्न सघ-परम्परा विक्रम की प्रथम शताब्दी के लगभग तक प्रचलित रही पहली-दूसरी शती मे शिथिलाचार उत्पन्न होने पर शुद्धाम्नाय तथा मूलसघ जैसे नाम प्रचलित हुए। आचार्य कुन्दकुन्द के "अष्टपाहुड" तथा "प्रवचनसार" आदि परमागम ग्रन्थो मे शिथिलाचार के विरोध मे स्पष्ट स्वर सुनाई पड़ते हैं। लगभग दो सौ-ढाई सौ वर्षों में "मूलसंघ" शब्द परम्परा विशेष के लिए रूढ़ हो गया था। अत पाचवीं शताब्दी और उससे पूर्व ही निरन्तर इसका उल्लेख किया जाता रहा। दक्षिण भारत में द्वितीय शताब्दी से लेकर पाँचवी शताब्दी तक गगवशीय राजाओं ने जिन-शासन की बहुत उन्नति की। गंगवश के राजा कोगणि वर्मा के नोण के मंगल दानपत्र मे उल्लेख मिलता है कि उसने अपने राज्य के प्रथम वर्ष में अपने परम गुरु अर्हत् विजयकीर्ति के उपदेश से मूलसंघ के चन्द्रनन्दि आदि द्वारा प्रतिष्ठापित उरणूर जिनालय को बाहरी चुंगी का एक चौथाई कार्षापण दिया। श्री लुईस राइस ने इस ताम्रपत्र का समय 425 ई. निश्चित किया है।[2]" शक स: 347 के कोंगणि वर्मा के 'नोण मगल" दान पत्र के अतिरिक्त प परमानन्द शास्त्री ने आल्तम (कोल्हापुर) मे मिले शक स 411 (वि. स 516) के दान-पत्र का उल्लेख किया है जिसमे मूलसघ काकोपल आम्नाय के सिंहनन्दि मुनि को अलक्तक नगर के जैन मन्दिर के लिए कुछ ग्राम दान मे दिये गये हैं।[3]

तीर्थंकर महावीर के शासन-सघ का उल्लेख निर्ग्रन्थ श्रमण के नाम से

---

1 *सिद्धान्ताचार्य पण्डित फूलचन्द शास्त्री अभिनन्दन-ग्रन्थ, पृ. 555 से उद्धृत*

2. *डॉ नेमिचन्द्र शास्त्री भारतीय सस्कृति के विकास मे जैन वाङ्मय का अवदान, द्वितीय खण्ड, पृ 109 से उद्धृत*
तथा – जैन शिलालेख सग्रह, भा. 2, पृ. 60-61

3. *प. परमानन्द शास्त्री : जैनधर्म का प्राचीन इतिहास, द्वितीय भाग, पृ. 55*

मिलता है। पं परमानन्द शास्त्री की यह मान्यता है कि भगवान महावीर का निर्ग्रन्थ महाश्रमण संघ ही बाद में मूलसंघ के नाम से लोक मे प्रसिद्ध हुआ। इसी महाश्रमण का दूसरा भेद श्वेताम्बर महाश्रमण संघ के नाम से ख्यात हुआ।[1] इसमे कोई सन्देह नहीं है कि भगवान महावीर का श्रमण संघमूल संघ ही था। आचार्य अर्हद्बली ने सिंह, नन्दी, सेन और देव संघ आदि जिन संघो की स्थापना की थी, वे वास्तव मे मूलसंघ के ही अन्तर्गत थे। भट्टारक इन्द्रनन्दि ने "नीतिसार" में आचार्य अर्हद्बली द्वारा संघ-निर्माण का उल्लेख किया है।[2] तीर्थंकर महावीर के निर्वाण के 470 वर्ष पश्चात् विक्रमादित्य का जन्म हुआ। विक्रमादित्य के दो वर्ष पूर्व सुभद्राचार्य और उनके चार वर्ष पश्चात् भद्रबाहु स्वामी पट्ट पर बैठे। भद्रबाहु स्वामी के शिष्य गुप्तिगुप्त हुए। उनके तीन नाम थे—गुप्तिगुप्त, अर्हद्बली और विशाखाचार्य। उन्होने चार संघो की स्थापना की थी।[3] "नीतिसार" के अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सभी संघो मे आदि मूलसंघ था। क्योंकि कहा गया है—पहले मूलसंघ मे श्वेतपट्ट गच्छ हुआ, पीछे काष्ठासंघ हुआ। तदनन्तर यापनीय संघ हुआ। उसी मूल संघ मे सेनसंघ, नन्दीसंघ, सिंहसंघ और देवसंघ हुआ।[4] अतः स्पष्ट है कि मूलसंघ सभी संघो का संस्थापक है और इसीलिये उसका नाम मूल या आदि संघ है। इसे ही "शुद्धाम्नाय" कहा गया है।

यथार्थ मे द्रव्य, गुण पर्याय की शुद्धता के साथ चारो अनुयोगो की तथा सर्वनयो की कथंचित् सत्यता को स्वीकार करने वाला शुद्धाम्नाय ही है। वस्तु के सहज स्वभाव किंवा सत्यता का, अनुयोगो के अभिप्राय का, नयो की विवक्षाओं का, साधना विषयक क्रियाओं के प्रयोजन का पक्षपात रहित स्वीकार करना शुद्धाम्नाय का मूलभूत प्रयोजन है। इस मूल पद्धति या "शुद्धाम्नाय" का प्रयोग तीन अर्थो मे रूढ हैं—

---

1 पं परमानन्द शास्त्री जैनधर्म का प्राचीन इतिहास भाग 2, पृ 55 से उद्धृत

2. नीतिसार, श्लो 6-7, तत्त्वानुशासनादि संग्रह, पृ 58

3. सरस्वतीगच्छ की प्राकृत पट्टावली के लेख के अनुसार

4 पूर्वं श्रीमूलसंघस्तदनु सितपट काष्ठसंघस्ततो हि
तावाभूद्भाविगच्छा पुनरजनि ततो यापनीयसंघ एकः ॥
तस्मिन् श्रीमूलसंघे मुनिजनविमले सेन-नन्दी च संघौ
स्यातां सिंहाख्यसंघो भवदुरुमहिमा देवसंघश्चतुर्थः ॥

(1) सच्चे (परमार्थस्वरूप) देव, गुरु, धर्म, जिनवाणी का अनुसरण करने वाली पद्धति।

(2) भूमिका के अनुसार यथासम्भव सावद्य रहित (निर्दोष) प्रवृत्ति करने वाली।

(3) शुद्धनय के विषयभूत शुद्धात्मा का अनुभव करने वाली। वस्तुतः दृष्टि में द्रव्यानुयोग, साधना में चरणानुयोग, परिणाम में करणानुयोग, कथन में प्रथमानुयोग का प्रतिफलित होना शुद्धाम्नाय का मूल है।

श्रावक तथा साधु ही नहीं, सद्गृहस्थ भी शुद्धाम्नाय के धारक देखे जाते हैं। जिनके जीवन में मिथ्यात्व, अन्याय, अभक्ष्य की प्रबलता है और जो परिग्रह तथा राग में धर्म मानते हैं, वे इस आम्नाय के विपरीत हैं। श्रद्धान, परिणाम की निर्मलता तथा प्रवृत्ति की शुद्धता वीतरागता से ही जिनागम में कही गई है। इसलिये वीतरागता का श्रद्धान, ज्ञान एवं आचरण ही उपादेय है। जिस प्रकार द्रव्य के बिना परिणाम नहीं है और परिणाम के बिना कोई द्रव्य नहीं है, फिर भी द्रव्य पलटता नहीं है, अपने में ध्रुव सदा काल बना रहता है, उसी प्रकार शुद्धाम्नाय आज भी अपने मूल रूप में अखण्ड, एक, अप्रभावी अक्षुण्ण विद्यमान है।

जिनशासन में निर्लेप मूर्ति ही पूज्य है। इसलिये तेरापन्थी जिनमूर्ति के चरणों पर केशर नहीं लगाते, किसी प्रकार का लेप नहीं चढ़ाते। दिक्पाल और शासनदेव की पूजा नहीं करते, क्योंकि वे संसारी हैं, मोक्षमार्गी नहीं हैं। जिनधर्म के शासनदेव यथार्थ में जिनदेव ही हैं जो संसार से तारने वाले हैं, संसार में रुलाने वाले नहीं हैं। अतः क्षेत्रपाल, पद्मावती की पूजा मिथ्यात्व की पोषक होने से जिनमत में मान्य नहीं है। जिन-प्रतिमा अर्हन्त-सिद्ध पद की प्रतीक है जो निरावरण, निर्लेप, शुद्ध है। जैसे निर्ग्रन्थ, दिगम्बर, वीतराग, परम शान्त जिनदेव होते हैं उनकी उस मुद्रा के अनुसार ही जिनबिम्ब की स्थापना-प्रतिष्ठा होती है। ऐसी निर्ग्रन्थ, वीतराग प्रतिमा पर चन्दन-केशर आदि लगाने से तथा पुष्प चढ़ाने से वह सग्रन्थ हो जाती है, वीतरागता का आदर्श खण्डित हो जाता है। जिनमत में वीतरागता की पूजा है; सरागता की नहीं। जिनपूजन-विधान आदि के रचयिता पं. मोहनलालजी लिखते हैं—[1] "पहले शुभ अवस्था होय है पीछे देव पदवी मिले है। यहाँ पहली अवस्था जो

---

1. पं. मोहनलाल शाह - केशर-पुष्प-विधान, जयपुर, पृ. 2 से उद्धृत

गुरु पदवी ताही में तिल के तुष मात्र परिग्रह का त्याग भया, तहाँ पिछली अवस्था रूप जो देव पदवी सो तो गुरु पद सूँ भी बडा पद हैं। क्योंकि गुरु पद में तो क्षयोपशम ज्ञान था, देव क्षायिक ज्ञान भया। बहुरि गुरु पद में तो जीव के गुण के घातक घातिया कर्म बैंठे थे अर देव पद मे तिनका अभाव भया। बहुरि गुरुनि कूँ तो देव पदवी नाहीं। अर देवनि कूँ गुरु पदवी सभवै है। ऐसे बडे पद में परिग्रह का लेश हू कैसे सभवै? कदापि नाहि सभवै। उदाहरण—जैसे काहू मनुष्य ने कन्द-मूल का त्याग किया तब वाके अणुव्रतादि भये पीछे तै कन्द-मूल कैसे ग्रहण होय? तहाँ तो अधिक-अधिक विशुद्धता चाहिये, तैसे ही जानना।" इस प्रकार, केशर-चन्दन लगाना निर्ग्रन्थ प्रतिमा को परिग्रही बनाना है।

चारित्र की अपेक्षा निर्ग्रन्थ साधुओं के पाँच भेद कहे गये हैं—पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक। जैसे इन पाँचो प्रकार के साधुओ को सचित्त वस्तु का स्पर्श नही कराया जा सकता है, वैसे ही जिनमूर्ति को भी सचित्त वस्तु का स्पर्श कराना उचित नहीं है। इसी प्रकार से कोई भी स्त्री-पुरुष गुरु का स्पर्श नहीं कर सकती। जब वह गुरु का स्पर्श नही कर सकती, तो फिर प्रतिमा का अभिषेक कैसे कर सकती है? सभी जैन पुराणों में यह लिखा हुआ मिलता है कि प्रभु का जन्माभिषेक क्षीरसागर के प्रासुक जल से इन्द्र ने किया; इन्द्राणी ने नही किया। स्त्रियाँ देखा-देखी अज्ञानता के कारण अभिषेक करने लगीं जो अनुचित है। फिर, अर्हन्त सिद्ध पदो का अभिषेक नहीं होता। अभिषेक या तो जन्म के समय किया जाता है या राज्यारोहण के समय होता है। अत जन्माभिषेक तथा राज्याभिषेक नाम तो सुने हैं, किन्तु निर्वाणाभिषेक या कैवल्याभिषेक पढने-सुनने मे नही आया है। फिर, जैनमूर्ति का अभिषेक कहाँ से आ गया?

यथार्थ में जैनमूर्ति का अभिषेक करना कोई प्राचीन परम्परा नही है। बिम्ब की स्वच्छता की दृष्टि से प्रक्षाल करते थे, अभिषेक नहीं। बौद्धों के यहाँ भी मूर्ति का अभिषेक नहीं होता। भारतीय शिलालेखो तथा अभिलेखो में सर्वप्रथम सातवी शताब्दी मे अभिषेक का उल्लेख मिलता है।[1] यह वही समय था जब काष्ठासघ की स्थापना हो रही थी। आचार्य देवसेन ने "दर्शनसार" मे काष्ठासघ की उत्पत्ति का विवरण दिया है।

---

1. डॉ वासुदेव उपाध्याय . प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, पटना, पृ. 144-45

प्राचीन काल में अर्चना-विधि में प्रासुक गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि का उल्लेख मिलता है[1] अभिषेक उसमे नही है। सम्पूर्ण जिनागम के अध्ययन से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रथम शताब्दी से लेकर पाँचवी शताब्दी तक रचे गये ग्रन्थो मे जिनाभिषेक नही मिलता है। छठी शताब्दी के आचार्य पूज्यपाद के नाम पर जो "अभिषेक पाठ" मढ़ा दिया गया है, वह वास्तव में चौदहवी शती के देवनन्दि का रचा हुआ है। इस सम्बन्ध मे "देवनन्दि और गुणभद्र के अभिषेक पाठ" पर अच्छा ऊहापोह कर विशद विवेचन किया गया है।[2] यथार्थ मे जैनधर्म मे पूजा-विधि मे प्राचीनकाल में अभिषेक की परम्परा नही थी। गन्ध, अक्षतादि प्रतिमा के अग्रभाग मे चढ़ाने की परम्परा तो रही है, किन्तु मूलसघ की आम्नाय मे न तो पंचामृताभिषेक है और न जलाभिषेक है। पं. कटारियाजी ने इसका प्रामाणिक विवेचन किया है कि मूलसघ मे पंचामृताभिषेक का अभाव है।[3] किन्तु जलाभिषेक कब और कैसे प्रचलित हो गया, यह विचारणीय है?

कृति-कर्म पूजा-विधि

जैनधर्म मे गृहस्थ मुनि दोनो के लिए वन्दना, पूजा करना कहा गया है। यह एक प्रकार की विनय है। इसका वर्णन "मूलाचार" के षडावश्यकाधिकार मे कृतिकर्म के अन्तर्गत किया गया है। कृतिकर्म, चितिकर्म, पूजाकर्म, विनयकर्म ये सभी वन्दना के पर्यायवाची नाम है।[4] अक्षरों के उच्चारण रूप वचन की क्रिया से, परिणामो की विशुद्धि रूप मन की क्रिया से तथा नमस्कार आदि रूप शरीर की क्रिया से कर्मों का छेद, जिससे किया जाता है वह कृतिकर्म है। पुण्य के संचय का निमित्त होने से इसे चितिकर्म भी कहते हैं। इस कार्य मे चौबीस तीर्थंकरो तथा पाँच परमेष्ठियो की पूजा-विनय होने से इसे विनयकर्म भी कहते हैं। विनय पाँच प्रकार की कही गई है। यह विनय अर्थात् पूजा के समय की विनय दिव्य गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि निर्दोष तथा प्रासुक द्रव्यो

---

1 मूलाचार, गा. 24 की टीका

2. मिलापचन्द, रतनलाल कटारिया जैन निबन्ध-रत्नावली, श्री वीरशासन संघ, कलकत्ता, 1966 पृ 5-24

3. वही. पृ 393-434

4 किदियम्मं चिदियम्मं पूयाकम्मं च विणयकम्मं च।
कादव्वं केण कस्स व कधे व कहिं व कदि खुत्तो ॥ मूलाचार, गा 578

की श्रद्धा कर यात्री समर्पण कर करनी चाहिए ।[1] इसमें अभिषेक करने का कोई उल्लेख नहीं है । इसमे कोई सन्देह नहीं है कि षट्खण्डागम आदि ग्रन्थों में कृतिकर्म की जिस विधि का वर्णन है, वह मूल रूप में वर्तमान में परिलक्षित नहीं होती । सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचन्द्रजी के शब्दों में "वर्तमान में जो दर्शन-विधि और पूजा-विधि प्रचलित है उसमे वे सब गुण नही रहने पाये है जो षट्खण्डागम आदि में प्रतिपादित क्रिया-कर्म मे निर्दिष्ट किये गये हैं । अधिकतर श्रावक और त्यागीगण जिन्हें जितना अवकाश मिलता है उसके अनुसार इस विधि को सम्पन्न करते हैं । व्रती श्रावकों मे और साधुओं मे त्रिकाल देव-गुरु में त्रिकाल देव-वन्दना का नियम तो एक प्रकार से उठ ही गया है । प्रतिक्रमण और आलोचना करने की विधि भी समाप्त प्राय ही है । यह कृतिकर्म का आवश्यक अंग है । फिर भी समग्र पूजाविधि को देखने से ऐसा अवश्य प्रतीत होता है कि उसमें पूर्वोक्त देव-वन्दना (कृति कर्म) का समावेश अवश्य किया गया है । इतना अवश्य है कि कुछ आवश्यक क्रियाएँ छूट गई हैं और कुछ नहीं आ मिली हैं ।[2] "जिस प्रकार छठी शताब्दी के पश्चात् कृतिकर्म में परिवर्तन आ गया, उसी प्रकार पूजा की विधि मे भी कई प्रकार के परिवर्तन होते गये । भट्टारकीय युग मे इनमे जमीन-आसमान का अन्तर आ गया । जो विधान केवल प्रतिष्ठा-विधि तक सीमित था, वह भी धीरे-धीरे पूजा-विधि से जुड़ गया । अभिषेक जन्म के समय, विवाह के समय और राज्यारोहण के समय किए जाने का उल्लेख मिलता है । भगवान के जन्माभिषेक की क्रिया जिनबिंब प्रतिष्ठा-विधि (पंचकल्याणक) के समय तो हो सकती है, किन्तु प्रतिदिन की पूजा मे अभिषेक कैसा है ?

यह भी विचारणीय है कि जब अपने यहाँ गुरु का स्नान वर्जित है, उनका अभिषेक नहीं कर सकते, तो देव का अभिषेक कैसे करते हैं ? फिर, किसी भी आगम ग्रन्थ मे इस बात का उल्लेख नहीं है कि साक्षात् भगवान का किसी ने अभिषेक किया हो । प्राचीन ग्रन्थो मे "षट्खण्डागम" से लेकर "रयणसार" तक किसी भी शास्त्र मे अभिषेक का उल्लेख नहीं मिलता है । सोमदेव से पूर्व का

---

1. "*भक्तिचतुरा य-अर्चयित्वा च गन्धपुष्पधूपदीपादिभि. प्रासुकैरन्यैर्द्रव्य-रूपैश्च दिव्यैर्निराकृतमलपटलसुगन्धैश्चक्षुर्विभासितीर्थंकरपादयुगलानामर्चनं कृत्वान्यस्याश्रुतत्वात्तेषामेव ग्रहणम् ।*"

—मूलाचार, गा 24 की टीका

2. ज्ञानपीठ-पूजाञ्जलि, तृतीय संस्करण, 1977, पृ. 25 से उद्धृत

कोई श्रावकाचार या पूजा-प्रतिष्ठा-पाठ ऐसा उपलब्ध नहीं है जिसमें अभिषेक का विधान हो।[1] इसमें कोई सन्देह नहीं है कि पंचामृताभिषेक वैदिक पूजा-पद्धति से ही हमारे यहाँ ग्रहण किया गया है, क्योंकि प्रतिमा का स्नान दूध, दही, घी, शहद और शक्कर से पंचामृत होता है।[2] वैदिक पूजा-पद्धति में पूजा के सोलह उपचार कहे गये हैं। जो सोलह उपचार नहीं कर सके तो दशोपचारी पूजा करे और इतना भी न कर सके तो कम-से-कम पंचोपचारी पूजा अवश्य करे। मल्लिषेणसूरि ने देवी के आह्वान, स्थापन, सन्निधीकरण, पूजन और विसर्जन को पंचोपचार कहा है। सोमदेवसूरि ने विघ्नों की शान्ति के लिए दिग्पालों एवं ग्रहों का स्थापन, सन्निधापन तो किया है, किन्तु उनका विसर्जन नहीं किया है।[3] वास्तव में मुक्त आत्माओं को बुलाना और फिर भेजना कितना हास्यास्पद है। किन्तु हम बड़े गर्व के साथ पढ़ते हैं—

> आये जो जो देवगण पूजे भक्ति प्रमान।
> ते सब जावहु कृपा कर अपने - अपने थान॥

अतएव यह पढ़ना उचित नहीं है।

सोमदेवसूरि ने देवपूजन के छह प्रकार बतलाये हैं[4]—प्रस्तावना, पुराकर्म, स्थापना, सन्निधापन, पूजा और पूजा का फल। इसमे अभिषेक पूर्वक पूजन को पूजा कहा गया है। न तो इसमे आह्वान, स्थापना और सन्निधीकरण का कोई विधान है और न विसर्जन का ही निर्देश है। सन्निधापन क्रिया के अन्तर्गत ही अभिषेक का विधान किया गया है। कहा है[5]—यह जिनबिम्ब ही साक्षात् जिनेन्द्रदेव है, यह सिंहासन सुमेरु पर्वत है, घटो मे भरा हुआ जल साक्षात् क्षीर समुद्र का जल है और आपके अभिषेक के लिए इन्द्र का रूप धारण करने के

---

1. सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री : उपासकाध्ययन की प्रस्तावना, पृ. 54
2. द्रष्टव्य है—वही, 56, तथा 3 पूजाप्रकाश पृ. 34
3. उपासकाध्ययन, श्लोक, सं 538, पृ. 235,
4. प्रस्तावना पुराकर्म स्थापना सन्निधापनम्।
   पूजा पूजाफलं चेति षड्विधं देवसेवनम्॥
   उपासकाध्ययन, श्लोक 529
5. उपासकाध्ययन, श्लोक 537

कारण मे साक्षात् इन्द्र हूँ। तब इस अभिषेक-महोत्सव की शोभा पूर्ण क्यो नहीं होगी ?

प्रश्न यह है कि जिनेन्द्र भगवान को अभिषेक से क्या प्रयोजन है ? विचार किया जाए तो अभिषेक के तीन ही प्रयोजन हो सकते हैं—शरीर के मल को दूर करना, पूजा के द्वारा पूज्यता को प्राप्त करना और कामादि विकारो की शुद्धि। सोमदेवसूरि कहते है—हे जिनेन्द्र। शारीरिक मैल से रहित होने के कारण आपका मैल से कोई सम्बन्ध नही है। आपके चरण तीनो लोको के द्वारा पूज्य हैं, इसलिए उससे कोई उत्कृष्ट पूज्य कैसे हो सकता है ? आपका मन मुक्ति रूपी अमृत-पान मे निमग्न है, इसलिये आप काम से भी दूर है। अतएव यह स्नान आपका क्या उपकार कर सकता है ?[1] श्री वादिराज मुनि कहते है[2]—जो स्वभाव से सुन्दर नही है उसे अलंकरण की आवश्यकता होती है, जिसके शत्रु ही वह शस्त्र धारण करता है। किन्तु आप तो सर्वांग सुन्दर हैं अत आपको भूषण, वस्त्र, कुसुम आदि की क्या आवश्यकता है ? इसी प्रकार समझ लेना चाहिए कि स्नान, अभिषेक की भी आवश्यकता नही है।

इसमे दो मत नही है कि अभिषेक जन्मकल्याणक का प्रतीक माना गया है। किन्तु प्रतिष्ठित मूर्ति की पचकल्याण प्रतिष्ठा हो जाने पर फिर प्रतिदिन अभिषेक करने का क्या प्रसग है ? रत्नत्रय मे लीन रहने वाले ज्ञानियो के चित्त मे परमात्मा तिष्ठता है। कहा भी है[3]—विकल्प रूप मन भगवान आत्मा से मिल गया अर्थात् तन्मय हो गया और परमेश्वर भी मन से मिल गया—ऐसी स्थिति मे दोनो के समरस होने पर मैं अब किसकी पूजा करूँ ? यथार्थ भक्ति मे भक्त और भगवान का भेद नही रहता। परमात्मा की भक्ति मे वह इतना तन्मय, तल्लीन हो जाता है कि स्वय परमात्मरूप अनुभव करता है। अर्हन्त के गुणो मे वह इतना एकाग्र चित्त हो जाता है कि समस्त विकल्प-जाल उस

---

1 *वीतोपलेपवपुषो न मलानुषङ्ग स्त्रैलोक्यपूज्यचरणस्य कुत परोऽर्घ्य।*
मोक्षामृते घतधियस्तव नैव काम. स्नानं तत कमुपकारमिदं करोतु ॥
वही, श्लोक 531

2. एकीभावस्तोत्र, श्लोक 19

3 *मणु मिलियउ परमेसरहू परमेसरु वि मणस्स।*
बीहि वि समरसि हूवाहू पुज्ज चडावउ कस्स ॥
परमात्मप्रकाश, 123। 2

समय छूट जाता है। भक्ति की महिमा ही अपूर्व है। पं. सदासुखजी कहते हैं[1]—"यद्यपि भगवान के अभिषेक का प्रयोजन नाहीं, तथापि पूजक के ऐसा भक्तिरूप उत्साह का भाव है जो अरहंत कूं साक्षात् स्पर्श ही करूँ हूं. अभिषेक ही करूँ हूं। ऐसी भक्ति की महिमा है।" वर्तमान में जो पूजा-विधि प्रचलित है उसी के अनुसार प. सदासुखजी और ब्र प. रायमल्लजी ने दर्शन-अभिषेक-पूजन करने का उल्लेख किया है। यद्यपि "अभिषेक" और "प्रक्षाल" शब्द का प्रयोग अधिकतर समान अर्थ मे हुआ है, किन्तु मूलसंघ की आम्नाय में परम्परा से प्रक्षाल (पखाल) प्रचलित रहा है। जिनबिम्ब को साक्षात् जिनेन्द्रदेव की प्रतिकृति "जिन प्रतिमा जिन सारखी" मानने वाले ब्र प. रायमल्लजी प्रतिमाजी का अविनय देखकर कहते हैं—'अर मास्तीन मे अणछाण्या पाणी अगाध मैला चीरडा सौं प्रतिमाजी की पखाल करै। अर जैसा पुरुष-स्त्री आवै तैसा सर्व विषय-कषाय की वार्ता करै, धर्म का लवलेश भी नाहीं। इत्यादि अविनय का वर्णन कहाँ तक करिये?" अतएव जिन-प्रतिमा को प्रक्षाल करनी चाहिए। प्रक्षाल मूर्ति की स्वच्छता की दृष्टि से किया जाता है।

जिन-मन्दिर, जिन-मूर्ति की विनय—

इस ग्रन्थ मे कई स्थानों पर जिन-मन्दिर, जिन-मूर्ति, जिनवाणी और निर्ग्रन्थ गुरु के प्रति विनय पालन का उपदेश दिया गया है। सभी सावद्य योग के कार्य जिनसे पाप का बन्ध होता है उनको जिन-मन्दिर मे नहीं करना चाहिए। घर-गृहस्थी मे तेल-साबुन लगा सकते हैं, कंघी कर सकते हैं, जिन-मन्दिर की अविनय की दृष्टि से ये सभी कार्य वर्जित हैं। इनको आसादन दोष कहते हैं। ब्र प. रायमल्लजी के अनुसार जिन-मन्दिर मे अज्ञान तथा कषाय से चौरासी प्रकार के आसादन दोष लगते है जो इस प्रकार है—

थूकना-खखारना, हास्य-कुतूहल करना, कलह करना, कला-चतुराई सीखना, उगलना-कुल्ला करना, मल-मूत्र विसर्जन करना स्नान करना, गाली देना, केश मुंडाना, रक्त निकलवाना, नाखून कटवाना, फोड़े-फुन्सी की पीप निकालना, नीला-पीला पित्त डालना, उल्टी करना, भोजन पान करना, औषधी-चूरन खाना, पान चबाना, दाँत-आँख-नख-नाक-कान आदि का मल निकालना, गले, का मैल, मस्तक का मैल, शरीर का मैल, पैरों का मैल उतारना, घर-गृहस्थी की बातें करना, माता पिता, कुटुम्बी-भाई आदि की सेवा करना, सास-जिठानी-ननद आदि के पग लगन, धर्मशास्त्र से भिन्न अन्य का लेखन-वाचन करना,

---

1. रत्नकरण्डश्रावकाचार, पंचम शिक्षाव्रत अधिकार, श्लोक 119 की वचनिका

किसी वस्तु को बाँटना, उँगली चटकाना, आलस्य से शरीर मोड़ना, मूँछों के ऊपर हाथ फेरना, दीवाल का सहारा लेना, गादी-तकिया लगाना, पाँव फैला कर या मोड़ कर बैठना, कंडे थापना, कपड़े धोना, दाल दलना, धान्य आदि का छिलका उतारना, पापड़-मगौड़ी आदि सुखाना, गाय-भैंस आदि को बाँधना, राजा आदि के भय से मन्दिर में छुपना, रुदन करना, स्त्री-राज-चोर-भोजन आदि विकथा करना, गहना-आभूषण, शस्त्र आदि गढ़ाना, सिगड़ी-अँगीठी जला-कर तापना, रुपया-मोहर परखना प्रतिष्ठित प्रतिमाजी के टाँकी लगाना, प्रतिमाजी के अंग पर केशर-चन्दन आदि का चर्चन करना, प्रतिमाजी के नीचे सिंहासन के ऊपर वस्त्र बिछाना, काँच मे मुख देखना, पगड़ी बाँधना नखचूँटी आदि से केश उखाड़ना, घर से शस्त्र बाँध कर मन्दिर में आना, पावड़ी पहिन कर मन्दिर मे चलना निर्माल्य द्रव्य को खाना बेचना या मोल लेना अथवा उधार लेना, अपने ऊपर चँवर ढुराना, हवा करना या कराना, तेलादि का लेप, मर्दन करना या कराना, काम विकार भाव से नर-नारी का रूप देखना, मन्दिर की वस्तुओं को विवाहादिकार्यों मे उपयोग मे लेना देव-गुरु-शास्त्र को देख कर उठना नहीं, हाथ नही जोड़ना, स्त्रियों का एक साड़ी ओढ़ कर मन्दिर मे आना, ऊपर ओढ़नी ओढ़ कर आना, पगड़ी बाँधे बिना पूजा करना त्यागी को छोड़ कर स्नान-शृंगार करना, चन्दन का तिलक किये बिना पूजा करनी, पूजा के बिना केशर-चन्दन का तिलक करना, पाद (वाव) सरना आदि अशुचि क्रिया करना, चौपड़, सतरंज, गंजफा आदि खेल खेलना, भाँड-क्रिया करना, कठोर, मर्मछेदी, हास-परिहास, ईर्ष्या आदि के वचन बोलना, कुलाट खाना, पैरों को दबवाना, हाड़, चाम, ऊन, केश आदि लेकर मन्दिर में आना, बिना प्रयोजन मन्दिर मे आमने-सामने घूमना, तीन दिन के भीतर रजस्वला और डेढ़ महीने के भीतर प्रसूति हुई स्त्री का मन्दिर में आना, गुप्त अंगो को दिखाना, खाट आदि बिछाना, ज्योतिष-वैद्यक, यन्त्र-मन्त्र की वृत्ति करना, जल-क्रीड़ा आदि क्रीडा करना, लूला, लंगड़ा, अन्धा-काना-बहरा-गूँगा, शूद्र आदि का स्नान कर अभिषेक-पूजन करना, घर के कपड़े पहन कर द्रव्य पूजा करना, गद्दे मे पूजन करना, अनछने पानी से मन्दिर का काम करना और भी जिन कामो मे जिन पूजन आदि में बहुत त्रस जीवों का घात हो, उन सभी को छोड़ना योग्य है। ऐसे चौरासी आसादन दोष का स्वरूप जानना।

रात्रि-पूजन का निषेध—

किसी भी श्रावकाचार में रात्रि-पूजन का उल्लेख नहीं किया गया है। यह विधान अवश्य पाया जाता है कि प्रातः, मध्यान्ह और सायंकाल तीन बार

आवश्यक करे, पूजा करे ।[1] "रत्नकरण्डश्रावकाचार" की वचनिका मे पं. सदासुखजी ने रात्रि-पूजन का निषेध किया है ।[2] स्व. बख्तावरसिंह सोंधिया के शब्दों मे "किसी-किसी ग्रन्थ मे प्रात., मध्याह्न और सन्ध्या तीनों काल देव-वन्दना कही है सो सन्ध्यावन्दन से कोई रात्रि-पूजन न समझ लें; क्योंकि रात्रि-पूजन का निषेध धर्मसंग्रहश्रावकाचार, वसुनन्दि-श्रावकाचारादि ग्रन्थो मे स्पष्ट रूप से किया गया है तथा प्रत्यक्ष हिंसा का कारण भी है, इसलिये सन्ध्या के पूर्वकाल मे यथाशक्य पूजन करना ही सन्ध्यावन्दन है । रात्रि को पूजन का आरम्भ करना अयोग्य और अहिंसामयी जिनधर्म के सर्वथा विरुद्ध है, अतएव रात्रि को केवल दर्शन करना ही योग्य है[3] । श्रावकाचारो मे रात्रि-भोजन के साथ ही सभी प्रकार के सावद्य योगों का त्याग बताया गया है । पर्व के दिनों मे विशेष रूप से इनका त्याग करना चाहिए । अत रात्रि को पूजा करने का भी निषेध किया गया है । कहा है[4] — आधी रात के समय जिनेन्द्र भगवान की पूजा नहीं करनी चाहिए । क्योंकि रात मे त्रस जीवो का संचार विशेष होने से हिंसा अधिक होती है । प. आशाधरजी का कथन अत्यन्त स्पष्ट है कि उपवास के दिन उपवास करने वाला भाव पूजन करे अथवा प्रासुक द्रव्य से द्रव्य पूजन करे । किन्तु इन्द्रिय और मन की लालसा बढ़ाने वाली नृत्य-गीतादि रागवर्द्धक क्रियाओ का त्याग करे[5] । "विद्वज्जनबोधक" प्रथम काण्ड के दशमोल्लास मे (पृ 388-392) सप्रमाण रात्रि-पूजन का निषेध किया गया है ।

जिनपूजा क्यों और कैसे ?

पूजा का सम्बन्ध पूज्य आदर्श से है । जैन धर्म मे पाँच परम इष्ट, पूज्य है—अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, निर्ग्रन्थ साधु । इनके सिवाय अन्य आराध्य, पूज्य नही है । पूजा या आराधना का एक मात्र प्रतिमान है—वीतरागता । जिनके श्रद्धान-ज्ञान-चारित्र की एक निष्ठ, सहज शुद्ध परिणति प्रतिफलित हो अर्थात् जो एक देश भी वीतराग हो, वे ही पूज्य है । इससे स्पष्ट है कि दश दिग्पाल, क्षेत्रपाल, पद्मावती आदि देवी-देवता पूज्य नही है । क्योंकि मत या तो देव के नाम से होता है या गुरु के नाम से । जैन धर्म मे

---

1. सागारधर्मामृत 2, 225; प्रश्नोत्तरश्रावकाचार 20, 210
   किशनसिंह कृत "क्रियाकोष" इत्यादि ।
2. रत्नकरण्डश्रावकाचार, पंचम शिक्षाव्रत अधिकार, श्लोक 119 की वचनिका
3. बख्तावरसिंह सोंधिया . श्रावक धर्म-संहिता, पृ. 55 से उद्धृत
4. तत्त्वार्थसार 6, 187
5. सागारधर्मामृत 5, 39

प्रश्न यह है कि पूजा क्या है ? वस्तुत निज शुद्धात्मा या प्रभु के सन्मुख झुकने का नाम पूजा है। जब श्रद्धा वीतराग के गुणो का आलम्बन ग्रहण करती है, तब पूजा कही जाती है। व्यवहार मे वीतरागी के गुणों पर श्रद्धान कर उनकी वन्दना करते हुए गुणो का सन्मान करने हेतु पवित्र भावों से प्रासुक द्रव्य चढाना पूजा है। पण्डितप्रवर टोडरमलजी के शब्दो मे —"पूजा नाम भट का है—सो प्रासुक द्रव्य प्रभु को चढावै।" (पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय, वचनिका)

पूजा भावप्रधान है। पवित्र भावना तथा निर्मल श्रद्धान के साथ आदर्श के गुणो से जुडना भक्ति या पूजा कहलाती है। प्रभु से जुडना तब तक सम्भव नही है, जब तक परिचय प्राप्त न हो। अत जिन-मन्दिर मे हम अपना परिचय पाने के लिए आदर्श के पास जाते है। जिस प्रकार दर्पण मे हम काँच को नही, अपने चेहरे को देखते है, वैसे ही जिन दर्शन "निज-दर्शन" है। परमात्मा प्रभु का जो वास्तविक स्वरूप है, वही अपना रूप है। अतएव पूजा के माध्यम से अपनी पहचान करना ही मुख्य लक्ष्य है। वर्तमान पर्याय का तो परिचय है। इसलिए स्तवन करते हुए कहते है—हे भगवन्। मै पापी हूँ, अनादि काल से रोगी हूँ, मायावी, लोभी, रागी-द्वेषी हूँ। विषय-कषाय के धधे मे अपने आपको भूल गया हूँ। इसलिये अब आपके पास मै आया हूँ। किंतु अपने शुद्ध स्वरूप को नही जानता।

मूल मे पूजा दो प्रकार की है—द्रव्यपूजा और भावपूजा। वचनो के द्वारा जिनदेव का स्तवन करना, नमस्कार करना, तीन प्रदक्षिणा देना, अजुलि बाँध कर मस्तक पर चढाना तथा जल-चन्दनादिक अष्ट द्रव्य चढाना द्रव्यपूजा है। आचार्य अमितगति कहते है वचन और मन की क्रियाओ का रोककर जिनेन्द्रदेव के सन्मुख भाव प्रकट करना द्रव्यपूजा है[1] और विकल्प से रहित होना भाव पूजा है। प सदासुखजी के शब्दो मे[2] "अर अरहत के गुणनि मे एकाग्र चित्त होय, अन्य समस्त विकल्प-जाल छाडि गुणनि मे अनुरागी होना पदार्थ से पूजा के भाव प्रकट किए जाते है। उसे सर्वथा वही मान लेना बडी भारी भूल होगी वास्तविकता तो यह है कि जिस प्रकार पूजा के भगवान् कल्पित, (रचित, स्थापित) है, केवल अपने भावो को अपने मे लगाने के लिए

---

1 *वचों विग्रहसकोचो द्रव्यपूजा निगद्यते।*
तत्र मानससंकोचो भावपूजा पुरातनै ॥ श्रावकाचार, 12, 12

2 रत्नकरण्डश्रावकाचार, पचम शिक्षाव्रत अधिकार, श्लोक 119 की वचनिका।

तथा अरहंत प्रतिबिंब का ध्यान करना सो भाव-पूजा है । अथवा अरहंत प्रतिबिंब का पूजन के अर्थि शुद्ध भूमि में प्रमाणिक जल तैं स्नान करि उज्ज्वल वस्त्र पहरि महाविनय संयुक्त अञ्जुलि जोड़ि भक्ति सहित उज्ज्वल निर्दोष जल करि अरहंत के प्रतिबिंब का अभिषेक करना सो पूजन है ।" यथार्थ में समभावी, वीतराग, सहजानन्द रूप परमात्म तत्त्व का सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-चारित्र रूप अभेद रत्नत्रय मे लीन रहने वाले ज्ञानियो के चित्त मे परमात्मा तिष्ठता है । कहा भी है[1] विकल्प रूप मन भगवान् आत्मा से मिल गया अर्थात् तन्मय हो गया और परमेश्वर भी मन से मिल गया—ऐसी स्थिति मे दोनो के समरस होने पर मैं अब किसकी पूजा करूँ ? यथार्थ भक्ति मे भक्त और भगवान् का भेद नही रहता । परमात्मा की भक्ति मे वह इतना तन्मय, तल्लीन हो जाता है कि स्वय परमात्मा रूप अनुभव करता है । अर्हन्त के गुणो मे अनुरक्त हो वह इतना एकाग्र चित्त हो जाता है कि समस्त विकल्प-जाल उस समय छूट जाता है । भक्ति की महिमा ही अपूर्व है । जिन-मत मे अवतार ग्रहण कर तीर्थंकर उतर कर नहीं आते । इसलिए मूर्ति मे अर्हन्त, सिद्ध भगवान की स्थापना की जाती है । अर्हन्त प्रतिमा मे चिन्ह होता है, लेकिन सिद्ध प्रतिमा मे कोई चिह्न नही होता । एक बार जिनबिम्ब की स्थापना हो जाने पर, प्रतिष्ठा के उपरान्त पूजा करते समय पीले चावलो म स्थापना का कोई प्रयोजन नही रह जाता है । इतना अवश्य है कि पूजा का एक अग आह्वानन भी है । जिसे हम स्थापना कहते है वास्तव मे वह आह्वानन ही है । प सदासुखदासजी के शब्दो मे "अर प्रतिबिम्ब तदाकार होते किसी ग्रन्थ मे हू स्थापना का वर्णन नाही अर अब इस कलिकाल मे प्रतिमा विराजमान होते हू स्थापना ही कू प्रधान कहे है "[2] हाँ, भावो मे स्थापना अवश्य की जाती है । पूजा-स्तुति भी स्थापना निक्षेप से प्रचलित हुई है । वास्तव मे पूजा की सामग्री मे अष्ट द्रव्य भी स्थापना निक्षेप से माने जाते हैं । क्योकि न तो पूजन करते समय क्षीरसागर का जल उपलब्ध होता है और न चन्दन, चरु या नैवेद्य का तो पता ही नही चलता, दीप-धूप भी सर्वथा वही नही होते, फिर सभी ऋतुओं के फल एक साथ कैसे प्राप्त हो सकते हैं ? वास्तव मे उत्तम दोनो वीतराग माने गये हैं । आत्मा की पूर्ण वीतराग अवस्था का ही नाम देव है । पूर्ण वीतरागता के बिना अर्हन्त अवस्था प्रकट नही होती ।

---

1. *मणु मिलियउ परमेसरहं परमेसरु वि मणस्स ।*
   बीहि वि समरसि हूवाहं पुज्ज चडावउं कस्स परमात्मप्रकाश, 123, 2

2. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, पृ. 212

हैं; उसी प्रकार पूजा के द्रव्य भी कल्पित हैं। अत शुद्ध, प्रासुक द्रव्य ही पूजा करने योग्य हो सकते हैं, अन्य सामग्री योग्य नही है।

यह कहा जाता है कि पूजा का प्रारम्भ आह्वानन, स्थापन और सन्निधिकरण से किया जाता है, किन्तु ये सब पचकल्याणक के प्रतीक रूप माने गये हैं।[1] यथार्थ मे अपना उपयोग शुद्ध परमात्मा से जोडना आह्वानन है, अपने अन्तर मे आदर्श का चित्र खीचना स्थापन है और परमात्मा के स्वरूप मे भावों का लगा रहना सन्निधिकरण है। प्रतिष्ठाचार्य पण्डित सदासुखदासजी के शब्दो मे[2] — "व्यवहार मे पूजन के पाँच अगनि की प्रवृत्ति देखिए हैं—(1) आह्वानन, (2) स्थापना, (3) सनिधापन या सन्निधिकरण, (4) पूजन, (5) विसर्जन। सो भावनि के जोडवा वास्तै आह्वाननादिकनि मे पुष्प क्षेपण करिये हैं। पुष्पनि कूँ प्रतिमा नाही जानै है। ये तो आह्वाननादिकनि का सकल्प तै पुष्पाजलि क्षेपण है। पूजन मे पाठ रच्या होय तो स्थापना कर ले, नाही होय ता नाही करै।"

यथार्थ म, शुद्ध आम्नाय की पद्धति मे कल्पित पुष्प-क्षेपण का निषेध नही है, किन्तु ठोने मे या मूर्ति के ऊपर पुष्पक्षेपण का प्रबल विरोध है। क्योकि परमात्मा की स्थापना हम अन्तरग मे करते है।[3] किसी भी जैन शास्त्र मे मूर्ति के ऊपर द्रव्य या सामग्री चढाने का विधान नही है। जिन-मूर्ति के अग्रभाग मे स्थाली (थाली) मे प्रासुक सामग्री चढ़ा कर पूजा करने का उल्लेख मिलता है। लौकिक व्यवहार मे भी राजा-महाराजा के यहाँ जो भेट लेकर जाते है, वे उनके सामने ही प्रस्तुत करते हैं। फिर, चैतन्य राजधानी के चैतन्य भूप के समक्ष जो अविवेक के कारण चन्दन का लेप करते है, शृगार करते है अथवा उनके चरणो के ऊपर कुछ भी चढ़ाते है, वे अपनी अज्ञानता और मोह का ही परिचय देते हैं। भले ही हम अपनी अशक्तता से लोक मे शुद्ध क्रिया रूप आचरण न कर पाते हो, किन्तु त्रिलोकीनाथ के समक्ष तो हीन आचरण नही करना चाहिए। श्री अर्हन्तदेव की ध्यान-मुद्रा ही पूज्य है। पण्डितप्रवर टोडरमलजी के शब्दो मे[1] "बहुरि श्री अरहतदेव बिना उपाय ही स्वयमेव नासाग्र दृष्टि धरै हैं, ध्यान-मुद्रा धरे हैं। तिस करि दर्शन करने वाले भव्य जन

---

1 *रतनलाल कटारिया अष्ट द्रव्य पूजा-रहस्य, पृ. 1*

2 प सदासुखदास रत्नकरण्डश्रावकाचार, पचम अधिकार, पृ. 214

3 *मम हृदय विराजो तिष्ठ-तिष्ठ सन्निकट होहु मेरे भगवन्। निज आत्म-तत्त्व की प्राप्ति हेतु ले, अष्ट द्रव्य करता पूजन।। —पचपरमेष्ठी पूजा*

के ध्यान-अवस्था का स्मरण करि आत्मजनित आनन्द का अनुभव है। अन्य मुद्रा होती, तो ताको देखें जीवन का बुरा होता; तातैं जिससे औरनि का भला होय, ऐसी ध्यान-मुद्रा ही पाइये है।"[1] इससे स्पष्ट है कि जिनमत में ध्यान-मुद्रा ही पूज्य है। यथार्थ में परमात्मा परम ज्योतिस्वरूप स्वानुभव व स्वसंवेद-नगम्य है।[2] ऐसे पूज्य की पूजा करने वाला अपनी भावमयी वेदी पर उनको स्थापित कर शुद्धात्मोपलब्धि हेतु शुद्ध द्रव्य से पूजा करता है, किन्तु उनके अग पर किसी प्रकार की अर्चन-चर्चन की क्रिया नहीं करता है।

पूजन-विधान मे इन्द्र-इन्द्राणी का बनना भी स्थापना निक्षेप से है। यहाँ पर न तो वे द्वीप हैं और न वे प्रतिमाएँ हैं जिनकी हम पूजा करते हैं। वास्तव मे स्थापना के बिना जिन-पूजा सम्भव नहीं है।[3] पूजा करते समय पीले चावलों से जिसे स्थापना करना कहते हैं, वास्तव मे वह स्थापन न होकर आह्वानन है। क्योंकि स्थापना तो पंचकल्याणक-क्रिया में मूर्ति में उस मूर्तिमान स्थापना की करते ही है जब से वह पूज्य प्रतिमा कहलाती है। भावों में स्थापन की दृष्टि से स्थापना कही जाती है।

"ज्ञानानन्द श्रावकाचार" मे उल्लेख है—अगहीन प्रतिमा पूज्य नही है, उपांगहीन पूज्य है। अत अगहीन प्रतिमा को गहरे सरोवर या नदी मे पधरा देना चाहिये। यथार्थ मे देव तो चैतन्यदेव हैं। उनका प्रक्षालन स्वभाव-सन्मुख होकर सम्यक् ज्ञान की धारा से हो सकता है। निज स्वभाव रूप होना ही चन्दन चढाना है। इसी प्रकार अनन्त गुणो का चिन्तवन करना ही अक्षत क्षेपण है। भले मन को प्रभु के चरणों मे लगाना पुष्प चढ़ाना है। अपने ध्यान को अपने मे लगानाही नैवेद्य चढ़ाना है। अपने आत्मज्ञान को प्रकाशित करना या आत्मावलोकन करना ही दीप से पूजा करना है। ध्यान रूपी अग्नि मे कर्मों का क्षेपण करनाही धूप खेना है। चिदानन्द को उपलब्ध होना ही फल चढाना है। इसी प्रकार गुणो का विकास करना अर्घ्य है। इन आठ द्रव्यो से मोक्ष-सुख की प्राप्ति के लिए पूजा की जाती है।[1] पूजा रात्रि में नही करना चाहिये।[2] उपवास के दिन भावपूजा करनी चाहिये।[3]

---

1 समवसरण-वर्णन, अप्रकाशित हस्तलिखित प्रति से उद्धृत

2 सर्वेन्द्रियाणि संयम्य स्तिमितेनान्तरात्मना।
यत्क्षणं पश्यतो भाति तत्तत्त्वं परमात्मन'॥ —समाधिशतक, श्लोक 30

3. तुमें भक्ति सो नाहीं, इहाँ करि थापना।
पूजों जिनगृह प्रतिमा, है हित आपना॥ —नन्दीश्वरद्वीप पूजा

अष्ट मूलगुण—

श्रावकाचारो की संख्या एक सौ से भी अधिक कही जाती है। इन सभी आचारप्रधान ग्रन्थो मे आचार्य समन्तभद्र के 'रत्नकरण्डश्रावकाचार" मे निर्दिष्ट एव प्रतिपादित क्रम उपलब्ध होता है। अत सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन के स्वरूप और माहात्म्य का वर्णन उसमे किया गया है। "कार्तिकेयानुप्रेक्षा" मे सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन प्राप्त करने योग्य जीव का वर्णन किया गया है। "पद्मनन्दिपचविंशतिका" मे भी यही परिलक्षित होता है। जिन श्रावकाचारो मे सीधे सम्यग्दर्शन का वर्णन नही किया गया है उनमे दर्शन प्रतिमा या दार्शनिक श्रावक के अन्तर्गत सम्यग्दर्शन का उल्लेख किया गया है। यह सुनिश्चित है कि बिना सम्यग्दर्शन के धर्म प्रारम्भ नही होता। अत धर्म की परीक्षा कर उसे स्वीकार करना चाहिए। आचार्य सकलकीर्ति ने मिथ्यात्व को विष के तुल्य कहा है और सम्यग्दर्शन को सम्पूर्ण तत्त्वो का सारभूत कहा है।[1]

"रत्नकरण्डश्रावकाचार" मे ही श्रावको के आठ मूलगुणो का सर्वप्रथम वर्णन मिलता है। आचार्य समन्तभद्र के अनुसार हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह, इन पांच पापो के स्थूल रूप से त्याग और मद्य, मांस, मधु के सर्वथा त्याग को अष्ट मूलगुण कहा गया है।[5] वास्तव मे उनका यह वर्णन पचम गुणस्थानवर्ती श्रावक को ध्यान मे रखकर किया गया प्रतीत होता है। क्योंकि व्रती ही पांच प्रकार के पापो का त्यागी होता है। मूलगुण तो मूल ही है, जड़ है। चरणानुयोग में गृहस्थ, श्रावक तथा साधु की पहचान मूलगुण से ही है। यदि जिसके आठ मूलगुण का पालन नही वह सद्गृहस्थ नही है और जिसके व्रत नही है वह श्रावक नही है। इसी प्रकार अट्ठाईस मूलगुणो के बिना कोई साधु नही हो सकता। उत्तर गुणों में कमी हो सकती है, किन्तु मूलगुण तो पूरे होना चाहिए। मूल का अर्थ मुख्य है और गुण का अर्थ क्रिया है।

---

1 ज्ञानानन्दश्रावकाचार, पृ 10-11

2 तस्माद्रात्रौ पूजां न कुर्यादर्हतामपि।
हिंसाहेतोरवश्य स्याद्रात्रौ पूजाविवर्जनम्॥ तत्त्वार्थसार, 6।187

3 पूजयोपवसन्पूज्यान् भावमय्यैव पूजयेत्।
प्रासुकद्रव्यमय्या वा रागाङ्ग दूरमुत्सृजेत्॥ सागारधर्मामृत, 5।39

4 प्रश्नोत्तरश्रावकाचार, 4।15 तथा 2।84 3।2

5 मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपञ्चकम्।
अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहिणां श्रमणोत्तमाः॥ तृतीय अधिकार, श्लोक 66

श्रावकाचारो मे श्रावक की निरपेक्ष क्रियाओ का वर्णन मिलता है। आठ मूलगुण, बारह व्रत, बारह तप, एक समता (कषाय की मन्दता), ग्यारह प्रतिमा, चार दान, एक जलगालन, एक रात्रिभोजन-त्याग, दर्शन-ज्ञान और चारित्र ये श्रावक की निरपेक्ष क्रियाएँ है[1]। ठीक ही कहा है कि मद्य, मांस और मधु अर्थात् शहद तथा पांच प्रकार के उदुम्बर फल इनका त्याग तो श्रावक को प्रथम ही होता है—ऐसा पुरुषार्थसिद्ध्युपाय मे अमृतचन्द्राचार्य ने कहा है। जिन्हे इनका त्याग नही उन्हे व्यवहार से भी श्रावकपना नही होता और वे धर्म-श्रवण के भी योग्य नहीं। समन्तभद्रस्वामी ने भी "रत्नकरण्डश्रावकाचार" में त्रस हिंसादि के त्याग रूप पाँच अणुव्रत का पालन तथा मद्य, मांस, मधु का त्याग इस प्रकार आठ मूलगुण कहे हैं। मुख्यत तो दोनो मे त्रसहिंसा सम्बन्धी तीव्र पाप-परिणामो के त्याग की बात है। जिस गृहस्थ को सम्यग्दर्शन पूर्वक पांच पाप और तीन मकार के त्याग की दृढता हुई उसने समस्त गुण रूपी महल की नीव डाली। अनादि से ससार-भ्रमण का कारण जो मिथ्यात्व और तीव्र पाप उसका अभाव होते ही जीव अनेक गुण-ग्रहण का पात्र हुआ। इसलिए इन आठ त्यागों को अष्ट मूलगुण कहा है। बहुत से लोग दवा आदि मे मधु-सेवन करते है, परन्तु मांस की तरह ही मधु को भी अभक्ष्य मे गिनाया गया है। रात्रि-भोजन में भी त्रस-हिंसा का बडा दोष है। श्रावक को ऐसे परिणाम नही होते।[2] "ब्रह्म नेमिदत्त का कथन है कि शुद्ध सम्यक्त्व से शोभित उस श्रावकधर्म मे भव्यो को सुखदायक आठ मूलगुण सर्वप्रथम होना चाहिए।[3] आचार्य सकलकीर्ति कहते हैं कि अष्ट मूल गुण का धारक और सप्त व्यसन का त्यागी सम्यग्दृष्टि ही दार्शनिक श्रावक है।[1] प्राकृत के "भाव सग्रह", "सावयधम्मदोहा", प आशाधर कृत "सागारधर्मामृत" प गोविन्द रचित "पुरुषार्थानुशासन" और प. राजमल्ल विरचित "लाटी सहिता" आदि मे प्रथम दर्शनप्रतिमा के अन्तर्गत दार्शनिक श्रावक का वर्णन किया गया है। ब्र प रायमल्लजी ने "सागारधर्मामृत" के अनुसार श्रावक के पाक्षिक, नैष्ठिक और साधक ये तीन भेद करके उनका विशद विवेचन किया है।[2] ग्रन्थकार सभी प्रकार के पाप के आरम्भ को

---

1 गुण-वय-तव-सम-पडिमा, दाण-जलगालण च अणत्थमियं।
दसण-णाण-चरित्त, किरिया तेवण्ण सावया भणिया ॥

—रयणसार, गा 137

2 ब्र हरिलाल जैन · श्रावकधर्म-प्रकाश, पृ. 43-44 से उद्धृत

३. तत्र श्रावकधर्मेऽत्र शुद्धसम्यक्त्वशोभिते, आदौ मूलगुणोऽभव्य भव्यानां शर्मदायकै: —धर्मोपदेशपीयूषवर्षश्रावकाचार ॥ 3,8

मिटाने के लिए श्रावकाचार ग्रन्थ का प्रारम्भ करते हुए कहते हैं— अब अपने इष्टदेव को नमस्कार कर सामान्य रूप से श्रावकाचार कहते हैं। सो हे भव्य ! तू सुन। श्रावक तीन प्रकार हैं—एक पाक्षिक, एक नैष्ठिक, एक साधक। सो पाक्षिक के देव, गुरु धर्म की प्रतीति तो यथार्थ होती है, किन्तु आठ मूलगुणो और सात व्यसनो मे अतिचार लगता है। परन्तु नैष्ठिक श्रावक के मूलगुणों और सात व्यसनो मे अतिचार नही लगता है। उसके ग्यारह भेद हैं जिनका वर्णन आगे होगा। साधक श्रावक अन्त समय मे संन्यासमरण करता है। ऐसे ये तीनो श्रावक देव, गुरु, धर्म की प्रतीति से सहित हैं और सम्यक्त्व के आठ अंगो से सहित हैं।... .पाक्षिक और साधक श्रावक के ग्यारह भेद नहीं हैं; नैष्ठिक के ही होते हैं। पाक्षिक के तो पांच उदुम्बर, पीपल, बड़, ऊमर, कठूमर, पाकर इन पांच फलो का और मद्य, मधु, मास सहित इन तीन मकारो का प्रत्यक्ष त्याग है। किन्तु आठ मूलगुणो मे अतिचार लगते हैं सो कहते हैं। मास के सम्बन्धी मे चमड़े के सयोग का, घी, तेल, हींग, जल, रात का भोजन, द्विदल और दो घड़ी से अधिक का छना हुआ जल, और बिधे हुए अन्न, इत्यादि मर्यादा रहित वस्तु मे त्रस जीवो की व निगोद की उत्पत्ति है, उसके भक्षण का दोष लगता है। किन्तु प्रत्यक्ष पाच उदुम्बर, तीन मकार का भक्षण नही करता है और सात व्यसनो का भी सेवन नही करता है। और अनेक प्रकार के नियम-सयम का पालन करता है। धर्म का विशेष पक्ष होने से इसे पाक्षिक जघन्य सयमी जानो। यह प्रथम प्रतिमा का धारक भी नही है।.... पाक्षिक तो सयम के लिए उद्यमी हुआ है, करना प्रारम्भ नही किया है। किन्तु साधक सम्पूर्ण रूप से कर चुका है—ऐसा प्रयोजन जानना।

इसमे कोई सन्देह नहीं है कि साधारण श्रावक भी आठ मूलगुणो का पालन करने वाला सात व्यसनों का त्यागी होता है। प बनारसीदासजी कहते हैं[1]— अन्तर्मुख शुद्ध परिणति पूर्वक कषाय की मन्दता से अष्ट मूलगुणों का धारण और सात व्यसनों का त्याग सहज रूप से होना दर्शन प्रतिमा है। इसमें निश्चय-व्यवहार दर्शन प्रतिमा का एक साथ वर्णन है। प जयचन्दजी छाबड़ा का कथन

---

1 *प्रश्नोत्तरश्रावकाचार*, 12.60

2 *श्रावक के तीन भेद हैं— पाक्षिक (एक देश पांच पापों का त्याग, अभ्यास से श्रावक धर्म, प्रारब्ध देशसंयमी), नैष्ठिक (निरतिचार व्रत का पालन, घटमान् देश संयमी), साधक (देश संयम पूर्ण होने पर निष्पन्न देशसंयमी)*
—सागारधर्मामृत, अ. 2-3

है कि पांच अणुव्रत या पांच उदुम्बरफल तथा तीन मकार रूप आठ मूलगुण में कोई विरोध नहीं है। जिन वस्तुओं में साक्षात् त्रस दिखलाई पड़ते हैं उन सभी वस्तुओं का भक्षण नहीं करता है, देवादिक के निमित्त तथा औषधादिक के निमित्त दिखलाई पड़ने वाले त्रस जीवों का घात नहीं करता है—यह अभिप्राय है। इससे इसके अहिंसाणुव्रत आ गया और बड़े-बड़े पापों के त्याग में झूठ का और चोरी का और परस्त्री का ग्रहण नहीं है। इसमें अति लोभ के त्याग से परिग्रह का घटाना आ गया—ऐसे पांचों अणुव्रत आ जाते हैं। इनके अतिचार टलते नहीं हैं, इसलिये अणुव्रती नाम नहीं पाता है। ऐसे दर्शन प्रतिमा का धारक भी अणुव्रती है, इसलिये देशविरत सागार संयमाचरण चारित्र में इसको भी गिना है।[2] ब्र. प. रायमल्लजी ने श्रावक का वर्णन "सागारधर्मामृत" को देख कर किया है। क्योंकि वे कहते हैं—पाक्षिक जघन्य संयमी प्रथम प्रतिमा आदि संयम का धारक का उद्यमी हुआ है। इसलिये इनका दूसरा नाम प्रारब्ध है। इसी प्रकार नैष्ठिक श्रावक के ग्यारह भेदों में असंयम का हीनपना जानना। इसलिये इसका दूसरा नाम घटमान है। तीसरे साधक का दूसरा नाम निपुण है। पं. आशाधरजी ने देशसंयमी के प्रारब्ध घटमान और निष्पन्न इन तीन भेदों का उल्लेख किया है।[3] पाक्षिक श्रावक व्रती का अभ्यास करता है, इसलिये वह प्रारब्ध देशसंयमी कहा जाता है। पाक्षिक सम्बन्धी आचार के संस्कार से निश्चल और निर्दोष सम्यक्त्व वाला, संसार, शरीर और भोगों से विरक्त अथवा संसार के कारणभूत भोगों से विरक्त, पंचपरमेष्ठी का उपासक, निरतिचार अष्ट मूलगुणों का पालक आगे की प्रतिमा के धारण को उत्सुक और आजीविका के लिए अपने वर्ण, कुल और व्रत के अनुकूल कृषि आदि आजीविका करने वाला दर्शनप्रतिमाधारी दार्शनिक श्रावक कहलाता है। 'परमेष्ठिपदैकधी' पद में आये हुए 'एक' शब्द से यह सूचित होता है कि दार्शनिक श्रावक आपत्ति के समय में भी शासनदेवता की पूजा नहीं करता। 'भवांगभोगनिर्विण्ण' पदका यह अभिप्राय है कि दार्शनिक श्रावक के मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी तथा अप्रत्याख्यानावरण सम्बन्धी आठ कषायों का उदय न होने से संसार, शरीर और भोगों के भोगने पर भी उनमें उसकी आसक्ति नहीं पाई जाती। ग्यारह प्रतिमाओं का वर्णन करते हुए प. रायमल्लजी एक ही

---

1 बनारसीदास नाटक समयसार, चतुर्दश गुणस्थानाधिकार, छन्द 59

2. पं. जयचंद छाबड़ा, चारित्रपाहुड टीका, गाथा 23 वचनिका

3 प्रारब्धो घटमानो निष्पन्नश्चार्हतस्य देशयम. ।
योग इव भवति यस्य त्रिधा स योगीव देशयमी ॥ सागारधर्मामृत, 3।6

पंक्ति में कहते हैं—प्रथम दर्शनप्रतिमा का धारक तो सात व्यसनों को अतिचार सहित छोड़ता है और आठ मूलगुण अतिचार रहित ग्रहण करता है।

आठ मूलगुणों के सम्बन्ध में ग्रन्थकार ने कई आचार्यों के इस मत का भी उल्लेख किया है — पांच उदुम्बरफल का एक, तीन मकार के तीन, नवकार मन्त्र का धारण यथाचित, रात्रि-भोजन का त्याग, और दो घड़ी के उपरान्त का अनछने जल का त्याग —ऐसे आठ मूलगुण जानना। वास्तव मे आठ मूलगुणों के इन विभिन्न वर्णनों मे मूल में त्रस-हिंसा का ही त्याग है। अत नाम मे भेद है, भाव मे भेद नहीं है।

अपनी आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान, लीनता के साथ नैष्ठिक श्रावक आठ मूलगुणों का अतिचार रहित पालन करता है। सर्वप्रथम मदिरा के अतिचार है—आठ पहर (24 घटे) के बाद का अचार खाना, चलितरस तथा फूलन (फफूंद, फुई) वाली वस्तु खाना, इत्यादि। मुरब्बा, बिगड़ा हुआ दही, छाछ, (मट्ठा), घी, तेल, रस आदि एव गांजा, अफीम, तम्बाकू, भांग, कोकोकोला जैसे अल्कोहल वाले पेय पदार्थ, कोकीन, आसव-अरिष्ट, अर्क आदि मद्य के अतिचारो मे गिने जाते हैं। बहुत दिनों के बने हुए अवलेह, स्क्वेश (फलपानक), शर्बत आदि भी इनमे सम्मिलित है।

वास्तव मे भोजन और मन का गहरा सम्बन्ध है। शराब पीते ही मनुष्य मदहोश हो जाता है। बन्दर को शराब पिला दो, फिर देखो वह क्या उत्पात करता है? नशे वाली वस्तुए मन और शरीर दोनो को दूषित करने वाली हैं। इसलिये जो मनुष्य शान्ति चाहता है, उसे इस तरह की वस्तुओ का सेवन नही करना चाहिए। आगम मे जीवराशि दो भागो मे विभाजित की गई है—असख्यात (बहुत अधिक) सूक्ष्म जीव-राशि और सख्यात जीवराशि। सूक्ष्म से अभिप्राय उन जीवो से है जो आखो से तो नही दिखलाई पडते, किन्तु सूक्ष्म निरीक्षण यन्त्र (माइक्रोस्कोप) से भी स्पष्ट नही दिखाई देते है।

जिनागम मे विभिन्न प्रकार के जीवो का अनेक प्रकार से वर्गीकरण किया गया है। ससारी जीवो का ज्ञान तथा इन्द्रियो के आधार पर वर्गीकरण उसकी अपनी विशेषता कही जाती है। इसलिये जो शरीर के चिह्न आत्मा का ज्ञान कराने मे सहायक होते हैं उनको इन्द्रिया कहा गया है। इन्द्रियां पांच होती

---

1 श्रावकाचार सग्रह, भाग 2 पृ 23 से उद्धृत

हैं—स्पर्शन, रसना (जीभ), घ्राण (नाक), चक्षु (आंख) और कर्ण (कान)। एक इन्द्रिय वाले जीव को स्थावर और दो इन्द्रिय से पांच इन्द्रिय वाले जीव को त्रस कहते हैं। स्थावर जीवों के पांच भेद हैं—पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक वायुकायिक और वनस्पतिकायिक। वनस्पतियों का वर्गीकरण साधारण (अनन्तकाय) और प्रत्येक के रूप में किया गया है। इस प्रकार वनस्पति के दो भेद होते हैं—सूक्ष्म और बादर। बादर के भी दो भेद कहे गये हैं—प्रत्येकशरीर बादर और साधारणशरीर बादर। जिस एक शरीर का एक ही स्वामी (मालिक) हो उसे प्रत्येक शरीर कहते हैं और जिसके एक शरीर मे अनन्त जीव स्वामी पाये जाते हैं उसे साधारण कहते हैं, जैसे—कन्द। प्रत्येकशरीर वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। साधारणशरीर वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के हैं— बादर और सूक्ष्म एव बादर भी दो प्रकार के पर्याप्त और अपर्याप्त कहे गये हैं।

यथार्थ मे जैनधर्म मे वनस्पतियो का विवेचन पूर्णत वैज्ञानिक है। डॉ जगदीशचन्द्रबोस अपनी प्रयोग-शाला मे अपने शोध-कार्यों से यह तो सिद्ध कर ही चुके थे कि प्रत्येक वनस्पति में जीव है, वह प्राणवान है, किन्तु अपने ही जीवन-काल मे उन्होने यन्त्रो की सहायता से यह भी दिखला दिया था कि झाड़ के पत्ते मे, फूल आदि मे अलग-अलग जीव है। अत वनस्पति के मूल भेद प्रत्येक और साधारण प्रामाणिक है।[1] प्रत्येक वनस्पति के भी दो भेद कहे गये है—सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित। निगोद सहित प्रत्येक वनस्पति को सप्रतिष्ठित कहते है। साधारण जीव को ही निगोद जीव कहते है। वनस्पति मे ही साधारण जीव होते है, पृथ्वी-पवन आदि मे नही होते हैं। कन्द-मूल आदि सभी वनस्पतिया प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित दोनो प्रकार की होती हैं। दूब, बेल, छोटे वृक्ष आदि अथवा ऐसी वनस्पतिया जिनमे नसें या लम्बी-लम्बी रेखाए बन्धन तथा गाठें दिखलाई नही पडती, जिनके टुकडे समान हो जाते हैं, जिनमे तोडने पर तन्तु न लगा रहे तथा काटने पर भी जिनकी पुन वृद्धि हो जाय उसे सप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं। इसके विपरीत जिनमे रेखा, गांठें, सन्धिया स्पष्ट नजर आती हैं, जो काटने के बाद फिर न उग सके, जिनमे तन्तु हो और तोडने पर भी जिनमे तन्तु लगे रहे उनको अप्रतिष्ठित कहते हैं।[1]

---

1 'वणप्फइकाइया दुविहा, पत्तेयसरीरा साधारणसरीरा। पत्तेयसरीरा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। साधारणसरीरा दुविहा बादर सुहुमा।"
—षट्खण्डागम, 1, 1, 1

तथा—अनगार धर्मामृत टीका अ 1, श्लोक 22

साधारण वनस्पतिकायिक निगोदजीव इतने सूक्ष्म होते हैं कि किसी भी परिस्थिति मे वे दिखलाई नहीं पड़ते। अमरीका की अन्तरिक्ष प्रयोगशाला मे यह प्रयोग सिद्ध हो गया है कि प्लैवोवेक्टिन जीवाणु अतिसूक्ष्म है। इसका जन्म-मरण नही होता। यह अति शीत और अति उष्णता से भी प्रभावित नहीं होता। इसे हम निगोदिया के समकक्ष मान सकते हैं। किन्तु बादर निगोद अनन्त जीवों का पिंड है जो सूक्ष्मदर्शी यन्त्रो की सहायता से भी वस्तुतः नहीं देखा जासकता है। सूक्ष्म साधारण जीव गोलाकार, अदृश्य होते हैं और वे साधारण जीवो मे उत्परिवर्तित हो सकते हैं। ये अलिंगी होते हैं। इनको आधुनिक बैक्टैरिया के समकक्ष माना जा सकता है। प्रत्येक वनस्पति बादर ही होते है। बादर साधारण जीवों मे अनेक सूक्ष्म साधारण जीव होते हैं। इनमे फफूंदी, काई, शैवाल, किण्व आदि समाहित हैं, जिनको आजकल एलगे, फगस, वायरस आदि नामो से अभिहित किया जाता है। यदि सूक्ष्म साधारण जीव को एक कोशिकीय के समकक्ष माना जाय तो बादर साधारण और प्रत्येक जीव बहु कोशिकीय वनस्पति ठहरते है। प्रत्येक शरीर बादर के बारह भेद कहे गये है—वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, वल्ली, पर्व तृण, वलय, हरित, औषधि, जलरुह, कुहल। भूमि में बोने के अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त सभी वनस्पति सप्रतिष्ठित प्रत्येक होती है। कचिया अवस्था मे सभी वनस्पतिया अप्रतिष्ठित प्रत्येक होती है।

सप्रतिष्ठित वनस्पति को साधारण भी कहते हैं। एक साधारण शरीर मे अनन्त जीवो का निवास-स्थान होने से साधारण वनस्पति मे अनन्त जीव पाये जाते हैं। इस कारण इसको अनन्तकाय कहते हैं। उदाहरण के लिए आलू, मूली अदरक, आदि साधारण वनस्पतियो मे लोक के जितने प्रदेश हैं उनसे असख्यात गुणे जीव तो प्रत्येकशरीर मे पाये जाते हैं जिनको स्कन्ध कहते हैं, जैसे मनुष्य का शरीर। इन स्कन्धो मे असख्यात लोकप्रमाण अन्डर पाये जाते है, जैसे शरीर मे हाथ-पांव आदि। एक अन्डर मे असख्यात लोकप्रमाण पुलवी पाये जाते हैं, जैसे हाथ-पाव मे अगुली आदि। एक पुलवी मे असख्यात लोकप्रमाण आवास पाये जाते है, जैसे अगुली मे तीन पोरी। एक आवास मे असख्यात लोकप्रमाण निगोद पाये जाते हैं, जैसे अगुली के एक भाग में अनेक रेखाए पाई जाती हैं। एक निगाद शरीर मे सिद्ध समूह से अनन्त गुणे जीव पाये जाते हैं; जैसे अगुली के एक भाग मे अनेक रेखाएं पाई जाती हैं। एक निगोद शरीर मे सिद्ध समूह से अनन्त गुणे जीव पाये जाते हैं, जैसे एक रेखा में अनेक प्रदेश। इस प्रकार एक सप्रतिष्ठित वनस्पति के टुकड़े मे अनन्त जीवो का अस्तित्व पाया जाता

---

1 द्रष्टव्य है—मूलाचार, गा 216-217 तथा गोम्मटसार जीवकाण्ड, गा 188-190 एव कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गा 128 की टीका

है। एक हरितकाय में अप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर असंख्यात या संख्यात पाये जाते हैं, उनमें जितने शरीर होते हैं उतने ही जीव पाये जाते हैं। इस प्रकार जीव-हिंसा की दृष्टि से अचार, मुरब्बे, कांजी बड़े, दही बड़े, खमीरे, अमर्यादित चटनी, पापड, बडी, आदि अनेक वस्तुए शामिल हैं। कई वनस्पतियों मे जो भूमि के भीतर फलित होती हैं, जैसे आलू, अरबी, गाजर, मूली, अदरक आदि, बहुत कच्ची सब्जी, कोपल आदि और जमीन को फोड़कर निकलने वाली वनस्पति जैसे खुम्भी, साप की छत्री आदि इसी मे सम्मिलित हैं। शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी इन साग सब्जियो को नही खाना चाहिए। आयुर्वेद के वर्णन के अनुसार दो प्रकार के पदार्थ कहे गये हैं—स्वभाव से हितकारी अर्थात् मनुष्य शरीर की प्रकृति के अनुकूल और विपरीत पदार्थ। अहितकारी पदार्थों मे बासा भोजन, गुड की राब, ताबे के बर्तन मे रखा हुआ दूध-दही, दस दिन तक रखा हुआ कांसे के बर्तन का घी, गुड के साथ दही, दही के साथ ताड का फल, दूध और सुरा मिला कर लेना, इत्यादि प्रकृति-विरुद्ध है। इस प्रकार के विरुद्ध आहार को विष के समान मारक कहा गया है।[1] तीसरी दृष्टि सात्विक और तामसिक है। तामसिक भोजन मे प्याज, लहसुन आदि की गिनती की जाती है। सभी प्रकार की नशीली चीजें तामसिक कही जाती हैं। इस तरह की वस्तुए मनुष्य के अन्तर मे तामसिक वृत्ति उत्पन्न करने मे कारण बनती हैं। उदाहरण के लिए, शराब मनुष्य की बुद्धि मोहित कर देती है हित-अहित का विवेक नही होने देती और वह अनेक जीवो की योनि (उत्पत्ति-स्थान) है जिनका नियम से घात होता है। अत. मद्य की भाति उसके दोषो से भी बचना चाहिए। जीभ के रसास्वाद के लिए अनन्त जीवो का घात करना सर्वथा अनुचित है।

जिसने मांस न खाने का नियम लिया है उसे चमडे के बर्तन मे रखी हुई हींग, घी, तेल, पानी आदि का सेवन नही करना चाहिए। इसी प्रकार चमडे की चलनी तथा सूपे से स्पर्शित आटे का भक्षण न करे। चर्बी मिला कर बनाया हुआ घी, साबुन, काडलीवर आइल (मछली का तेल) जैसी औषधियो का सेवन न करे। रात्रिभोजन, द्विदल, छाने हुए जल का दो घडी बाद सेवन, घुना हुआ अन्न भक्षण करने से मांसत्याग-व्रत मे दूषण लगता है, क्योंकि इनमे त्रसजीवो व निगोदिया जीवो की उत्पत्ति होती है।

---

1 विरुद्धमपि चाहारं विषाद्विषगरोपमम्। अष्टांगहृदय सूत्रस्थान, अ 7, श्लोक 29

मधु (शहद) की एक बूंद में असंख्यात त्रस जीवों का घात होता है। इसलिये मधु का त्याग करने वाले को फूल का भक्षण नहीं करना चाहिए। आंख में आंजने के लिए औषधि रूप में भी शहद का सेवन नहीं करना चाहिए।

पांच उदुम्बर फल के अतिचार है—अजान फल का भक्षण नहीं करे और बिना शोधन किए हुए किसी भी फल का सेवन नहीं करे।

संक्षेप में, जैनधर्म में अभक्ष्य का विचार पांच दृष्टियों से किया गया है। उनके नाम है—त्रसघातक, बहुघातक अनुपसेव्य, नशाकारक, अनिष्टकारक। पं आशाधरजी कहते है कि त्रसघात, बहुस्थावरघात, प्रमादजनक अनिष्ट और अनुपसेव्य पदार्थों के खाने का मांस, मधु और मदिरा के समान त्याग किया जाना आवश्यक है।[1] जिन पर बहुत से सम्मूर्छन जीव उडकर बैठते हैं, जिनमे जीवों के रहने के लिए बहुत जगह होती है, ऐसे कमलनाल आदि त्रसघातविषयक पदार्थ हैं। जिन कन्दमूल आदि के भक्षण से अनन्त स्थावरों की हिंसा होती है वे सभी पदार्थ (जैसे—अदरक, आलू, गाजर, शकरकन्द, मूली आदि) बहुस्थावर हिंसाकारक है। कुछ विद्वान् कन्दमूल के सम्बन्ध मे यह विचार करते हैं कि 'सचित्तविरत" का उल्लेख किया है आचार्य समन्तभद्र ने, जिसमें अप्रासुक वनस्पति का त्याग किया गया है, किन्तु प्रासुक वनस्पति के भक्षण का निषेध नही है। 'प्रासुकस्य भक्षणे नो पाप" अर्थात् अचित्त के भक्षण में कोई पाप नही होता।[2] "योगसार प्राभृत" के भाष्य मे (पृ 182-83 मे भी व्याख्याकार ने यही विचार प्रकट किया है। उसके ही शब्दो मे—"जो फल, कन्दमूल तथा बीज अग्नि से पके हुए नही है और भी जो कुछ कच्चे पदार्थ हैं उन सबको अनशनीय (अभक्ष्य) समझ कर वे वीर मुनि भोजन के लिए ग्रहण नहीं करते है।" मूलाचार" की 9,95 गाथा में आगत" अनग्निपक्व' विशेषण से स्पष्ट है कि जैन मुनि कच्चे कन्दमूल नहीं खाते, परन्तु अग्नि में पका कर शाकभाजी आदि के रूप में प्रस्तुत किए कन्दमूल वे अवश्य खा सकते है। जब मुनि प्रासुक कन्दमूल खा सकते है तो श्रावक क्यों नहीं खा सकता ?" किंतु यह कथन आगम के विरुद्ध है।

---

1 *पलमधुमद्यवदखिलस्त्रसबहुघातप्रमादविषयोऽर्थः।*
त्याज्योऽन्यथाप्यनिष्टोऽनुपसेव्यश्च व्रताद्धि फलमिष्टम् ॥
—*सागारधर्मामृत*, 5,15

2 पं जुगलकिशोर मुख्तार समीचीन-धर्मशास्त्र, अ 7,
कारिका 141 की व्याख्या, पृ 184

वास्तव मे समझ की बलिहारी है। इस सम्बन्ध में पं. रतनलाल कटारिया के विचार सुचिन्तित तथा मान्य हैं। उनके ही शब्दो मे[1] "अनन्तकायिक कन्दमूल मे कन्द की जड़ें पृथ्वी में छत्तों की तरह जाल रूप मे फैलती हैं और मूल की जड़ें जमीन मे प्राय सीधी चली जाती हैं। यह दोनों मे अन्तर है। जो सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति है, उसमे साधारण अनन्त बादर निगोद पाये जाते है। अत इनका किसी भी तरह उपयोग करें तो अनन्त जीवों का निश्चित विघात होता है। इस कारण इनका सर्वथा त्याग श्रावक के लिये बताया है। अग्नि-पक्व करना तो दूर, इनके छूने का ही शास्त्रकारों ने निषेध किया है। जो श्रावक के लिए ही सर्वथा और समग्र रूप से अभक्ष्य है, अग्राह्य है वह मुनि के लिए कैसे ग्राह्य हो सकता है?" इससे स्पष्ट है कि न गीले और न सूखे कन्द-मूल का सेवन श्रावक कर सकता है। अतएव आलुओ को सुखा कर या प्रासुक कर खाना उचित नही है।

सात व्यसनो के त्याग के अतिचार इस प्रकार है—प्रथम जुआत्याग का अतिचार है—शर्त लगा कर खेलना आदि। मास और मदिरात्याग के अतिचार पहले कह चुके है। परस्त्रीत्याग के अतिचार— क्वारी लडकी से क्रीडा करना तथा अकेली स्त्री से एकान्त मे वार्तालाप करना। वेश्यात्याग के अतिचार-नृत्य-गान आदि मे आसक्ति पूर्वक प्रवृत्ति, वेश्या के घर आना-जाना, रमना, गोठ करना आदि। शिकारत्याग के अतिचार - लकडी, पत्थर, मिट्टी, धातु के बने तथा चित्रो मे अंकित घोडा, हाथी, मनुष्य आदि जीवो के आकार का छेदन-भेदन आदि करना। चोरीत्याग के अतिचार—पराये धन को बलपूर्वक ले लेना या बहुमूल्य वस्तु को थोडे मूल्य मे ले लेना, तोल मे कम तोलना, किसी की धरोहर रख कर रखने वाला भूल जाये तो रकम मार देना, तोल म अधिक लेना, भोले मनुष्य का माल चुराना, इत्यादि। इन अतिचारो का त्याग करे तो प्रथम प्रतिमा का धारक श्रावक है और कदाचित् अतिचारो का त्याग न कर सके या हो सके तो पाक्षिक श्रावक जानना चाहिए। आगे और भी कितनी ही वस्तुओ का त्याग करता है सो कहते है— विधा (घुना) हुआ अन्न अभक्ष्य है। लौनी (मक्खन) तथा द्विदल अर्थात् दुफाड़ (दो टुकड़े वाले) अनाज के संयोग से या चिरोंजी आदि के साथ कच्चे या गर्म किए हुए दूध से जमाये गये दही-

---

1. सन्मति-सन्देश, वर्ष 30, अंक 10, अक्तूबर, 1985 पृ 26 से उद्धृत

छाछ (मट्ठा) का खाना[1]। चातुर्मास के दिनों में तीन दिन, सर्दी के दिनों में सात दिन और ग्रीष्मकाल में पांच दिन के बाद का पिसा हुआ आटा नहीं खाना। दो दिन से अधिक का दही नहीं खाना। आज का जमाया हुआ दही कल खाना। जामन देने के पश्चात् आठ पहर की मर्यादा है। घुनी हुई वस्तु के भक्षण मे, दही-गुड मिला कर खाने मे, जलेबी तथा मक्खन आदि खाने मे त्रस व निगोद जीव उत्पन्न होते है, इसलिये इनका त्याग करना। इनके खाने में मास जैसा दोष है। इनमे राग भाव बहुत आता है। बैंगन, साधारण वनस्पति,[2] घोलबडा, बर्फ, ओला (करका), मिट्टी, जहर तथा रात्रि-भोजन का त्याग करें। इनके खाने मे बहुत रोग उत्पन्न होते हैं। चलितरस में बासी रसोई, अमर्यादित, आटा, घी व तेल, मिठाई का त्याग करें और जिसका रस बिगड गया हो ऐसे आम आदि का भक्षण नहीं करें। और बडे-बडे झाऊ बेर जो कोमल बहुत होते है, हाथ से फोडे तो दया नही पले, लट मरे इसलिये उसका भी त्याग कर दे। मे काना बहुत होता है। इसमे लट होती है। अपने

---

1 *आमगोरससम्पृक्तं द्विदलं प्रायशोऽनवम्।*
वर्षास्वदलितं चात्र पत्रशाकं च नाहरेत्॥

—सागारधर्मामृत, अ 5, श्लोक 18

तथा —किशनसिंह कृत क्रियाकोष द्रष्टव्य है।
प आशाधरजी ने 'द्विदल' मे चना-मूग आदि दूध, दही, छाछ (मट्ठा) और लार से मिलने पर—अन्न मात्र ग्रहण किया है। किन्तु प किशनसिंहजी ने चारोली (चिरोंजी), बादाम आदि काष्ठ द्विदल तथा तरोई, भिंडी, आदि हरित् द्विदल भी ग्रहण किया है।

2 *साधारण वनस्पति को अनन्तकाय कहते हैं। अनन्तकाय वनस्पति के सात भेद है—मूलज, अग्रज, पर्वज, कन्दज, स्कन्धज, बीजज और सम्मूर्छनज। अदरक, हल्दी आदि मूलज हैं। आर्यिका ककड़ी आदि अग्रज हैं। ईख, बेंत, आदि गाठों से उत्पन्न होने वाली पर्वज है। प्याज, सूरण, आदि कन्दज हैं। कटेरी, पलाश (ढाकरा) आदि स्कन्धज है। धान और गेहू आदि बीजज हैं। इधर-उधर के पुद्गलों के सम्मिश्रण से होने वाली वनस्पति सम्मूर्छनज हैं। इनमे से विशेषकर कन्द और मूल का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। नाली (पोली भाजी), सूरण, तरबूज, द्रोण पुष्प, मूली, अदरख, नीम के फूल, केतकी के फूल आदि के खाने मे जिह्वा-स्वाद का सुख तो थोडा है पर एकेन्द्रिय प्राणियों का घात बहुत है।*

—सागारधर्मामृत, 5:16

आप लगे हुए आम में भी सूत के तार समान लट होते हैं सो बिना देखे चूसना नहीं चाहिए। और काना सांटा (गन्ना), कानी ककडी आदि काने फल में लट उत्पन्न होते हैं, उनका भक्षण छोड देना चाहिए। सर्दी के दिनों में साग-भाजी आदि हरितकाय में बादलों के निमित्त से बहुत लट उत्पन्न होते हैं, इसलिये उनको भी नही खाना चाहिए। कोला (कद्दू, काशीफल), तरबूज आदि बड़ा फल इनके लाने तथा खाने मे निर्दयपना उत्पन्न होय है, चित्त मलिन हो जाता है—जब हाथ मे छुरी लेकर इनको चीरते हैं तब त्रस जीवों के घात जैसे परिणाम होते महसूस होते हैं। इसलिये बड़े फल का दोष विशेष है। इसी प्रकार सभी तरह के फूल, कोमल हरितकाय या कचिया वनस्पति जो अपरिपक्व हो, गन्ना आदि की पोर, बहुत नरम ककडी, नीबू आदि की जाली जो गूढ़ होय उन सबका भक्षण त्याग देना चाहिए। ऐसी वनस्पति मे निगोदिया जीव होते हैं। जिसमे त्रस जीव हो, वह सभी वनस्पति छोड देना उचित है। इतना ही नही, जिस व्यापार-धन्धा मे त्रस जीवो का बहुत घात होता है, वह भी नहीं करे। अर्हन्त देव, निर्ग्रन्थ गुरु को चढ़ाये हुए द्रव्य को निर्माल्य कहते हैं। उसका एक अश भी ग्रहण नही करना चाहिए। उसका फल नरक-निगोद है। यद्यपि भगवान को चढ़ाया हुआ द्रव्य परम पवित्र है, विनय करने योग्य है; किन्तु उसे लेना अत्यन्त अनुचित है।

षट् आवश्यक—

यथार्थ मे प्राणी मात्र के लिए धर्म एक है। धर्म एक है और एक ही रहेगा। फिर, सागार (गृहस्थ), अनगार (साधु) धर्म जैसे भेद क्यो हैं? प्रतिपादन करने के लिए गृहस्थधर्म और मुनिधर्म भिन्न-भिन्न कहा जाता है, किन्तु दोनो मे अन्तर केवल इतना है कि श्रावक धर्म का एकदेश पालन करता है और यति-मुनि सर्वदेश पालन करते हैं।[1] प्राचीन काल मे साधु और श्रावक दोनो के छह आवश्यक समान थे। इतना अवश्य है कि साधु के आत्म-लीनता व स्थिरता विशेष होने से प्रचुर सुख होता है, किन्तु श्रावक तथा सद्गृहस्थ को अपनी भूमिका के अनुसार आंशिक सुख की प्राप्ति होती है। पण्डितप्रवर टोडरमलजी के शब्दों मे—"ये षट् आवश्यक साधु को तो अवश्य कर्तव्य हैं, मुनि के तो ये पूर्ण हैं। अर श्रावक के अपनी शक्ति परमाण मुनि तैं कछु एक नून हैं। मुनि कै परिग्रह के त्याग तैं थिरता विशेष है अर श्रावक के गृहस्थ

---

1. *दुविहं संजमचरणं सायारं तह हवे णिरायारं।*
   सायारं सग्गंथे परिग्गहरहियं खलु णिरायारं॥ चारित्रपाहुड, गा. 21

परिग्रह के योग तै विरता अल्प है। श्रद्धा थोकनि के समान है।[1]" छह आवश्यको का सर्वप्रथम उल्लेख "मूलाचार" मे मिलता है। कहा है—

> समदा थवो य वदण पाडिक्कमण तहेव णादव्व।
> पच्चक्खाण विसग्गो करणीयावासया छप्पि॥ मूलाचार, गा 22

अर्थात्—सामायिक, स्तुति, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान तथा व्युत्सर्ग ये करने योग्य आवश्यक छह जानना चाहिए।

आचार्य कुन्दकुन्द ने पाहुड—रचनाओ मे, रयणसार आदि ग्रन्थो मे कही भी छह आवश्यको का उल्लेख नही किया है। केवल "नियमसार" मे यह वर्णन किया है— निर्मल स्वभाव आत्मा के ध्यान से आत्मवश होना आवश्यक है।[2] साधु प्रतिक्रमणादिक क्रियाओ को करता हुआ निश्चयचारित्र का निरन्तर पालन करे।[3] अनुयोगद्वारसूत्र मे कहा गया है कि श्रमण और श्रावक जिस विधि को अहर्निशि अवश्य करणीय समझते है उसे आवश्यक कहते है।[4] आचार्य अमितगति ने अपने "श्रावकाचार' मे सामायिक, स्तवन, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग इन छह आवश्यको का छह-छह प्रकार से पालन करने का उल्लेख किया है। उदाहरण के लिए, द्रव्यसामायिक, क्षेत्रसामायिक, कालसामायिक, भावसामायिक, स्थापनासामायिक—ऐसे ही स्तवन आदि मे भी लगा लेना चाहिए। इनको उत्कृष्ट श्रावक उत्तम रीति से (भली प्रकार) पालता है, किन्तु ससार के पार जाने की इच्छा रखने वाले साधारण श्रावक अपनी शक्ति के अनुसार यथायोग्य पालन करते है।[5]

मूल मे जिनागम मे पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इन बारह व्रतो में सम्पूर्ण श्रावकाचार समाहित था। आचार्य कुन्दकुन्द, आ समन्तभद्र, आ उमास्वामी, आ अकलक, आ अमितगति आदि इसी आम्नाय का अनुसरण करते हुए परिलक्षित होते हैं। यहाँ इतना और समझ लेना चाहिए कि अष्ट मूलगुणो का वर्णन अहिसा के अन्तर्गत किया गया है। सिद्धान्ताचार्य प

---

1 पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय, श्लोक सं 201 की वचनिका

2 नियमसार, गा. 146

3 वही, गा 152

4 अनुयोगद्वारसूत्र 28, गाथा 2

5 उत्कृष्टश्रावकेणैते विधातव्याः प्रयत्नतः।
अन्यैरेते यथाशक्ति ससारान्ते यियासुभिः॥—अमितगतिश्रावकाचार, 8, 71

कैलाशचन्द्र शास्त्री के शब्दों में "आचार्य जिनसेन (नौवीं शताब्दी) के 'महापुराण' की रचना से श्रावकधर्म का विस्तार होना प्रारम्भ हुआ। पाक्षिक, नैष्ठिक, साधक उसके भेद हुए; पूजा के विविध प्रकार हुए। प्राचीन षट्कर्म थे— सामायिक, स्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग। मुनि और गृहस्थ दोनों इनका पालन करते थे। उनके स्थान में देवपूजा, गुरूपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ये षट्कर्म हो गये और इनमें भी पूजन को विशेष महत्त्व मिलता गया।"[1] इसमें कोई सन्देह नहीं है कि उत्तरकाल में श्रावकों के कर्तव्यों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती चली गई। क्योंकि "रयणसार" (गा 10) में दान और पूजा को मुख्य बताया गया है। उसके बिना कोई श्रावक नहीं हो सकता। आचार्य कुन्दकुन्द के पाहुड ग्रन्थों में, वरांगचरित, हरिवंशपुराण, आचार्य अमितगति के श्रावकाचार में दान, पूजा, शील और तप को श्रावक का कर्तव्य कहा गया है। किन्तु उत्तरकाल में शील का स्थान वार्ता, स्वाध्याय और संयम ने ले लिया[2]। तब देवपूजा के साथ-साथ गुरुपूजा का प्रचार बढ़ता गया। और फिर, इन दोनों के लिए दान देना भी आवश्यक हो गया। वर्तमान में श्रावक के जो षट् आवश्यककर्म प्रचलित हैं उनका उल्लेख "पद्मनन्दिपञ्चविंशतिका" में इन शब्दों में हुआ है—

> देवपूजा गुरूपास्ति स्वाध्यायः संयमस्तपः।
> दानं चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने-दिने ॥ 6, 7

निश्चय आवश्यक तो शुद्ध धर्म-परिणति है। ज्ञानी श्रावक के योग्य आंशिक शुद्धि निश्चय से भाव, देव-गुरु-पूजा है। शास्त्रों का अध्ययन-मनन, पापों से विरति, इन्द्रिय-निग्रह, इच्छाओं का निरोध और स्व-पर के अनुग्रह के लिए धनादि देना व्यवहार आवश्यक है। जो पूजा नहीं करता, दान नहीं देता उस गृहस्थ का घर तो श्मसान के समान है। निश्चयधर्म का प्रतिपादन करने वाले भी इस व्यवहार को आवश्यक मानते हैं। अध्यात्म-युग के प्रवर्तक श्रीमद् कानजीस्वामी के शब्दों में "[3] जो जीव निर्ग्रन्थ गुरुओं को नहीं मानता, उनकी पहचान और उपासना नहीं करता, उसको तो सूर्य उगे हुए भी अन्धकार है। इसी प्रकार वीतरागी गुरुओं के द्वारा प्रकाशित सत् शास्त्रों का जो अभ्यास

---

1. जैन निबन्ध रत्नावली के प्राक्कथन, पृ 23 से उद्धृत
2. द्रष्टव्य है—उपासकाध्ययन की प्रस्तावना, पृ. 66
3. पद्मनन्दिपंचविंशतिका-प्रवचन से उद्धृत

नही करता, उसके नेत्र होते हुए भी विद्वान् लोग उसको अन्धा कहते हैं। विकथा पढा करे और शास्त्र स्वाध्याय न करे— उसके नेत्र किस काम के? श्रीगुरु के पास रहकर जो शास्त्र नही सुनता और हृदय मे धारण नही करता उस मनुष्य के कान तथा मन नही हैं, ऐसा कहा है। इस प्रकार देव-पूजा, गुरु-सेवा और शास्त्र-स्वाध्याय, ये श्रावक के हमेशा के कर्तव्य हैं। जिस घर में देव-गुरु-शास्त्र की उपासना नही होती, वह तो घर नही, परन्तु जेलखाना है।"

अन्य मुख्य प्रतिपाद्य विषय—

अन्य प्रतिपादित विषयो मे रसोई करने की विधि, रजस्वला की अशुचिता, दान सामायिक, समाधिमरण आदि मुख्य हैं। रसोई बनाने मे तीन प्रकार से विशेष पाप होता है–बिना बिना-छना, अशोधित अन्न, अनछने पानी और बिना देखे एव अशुद्ध ईंधन के प्रयोग से निरन्तर पाप होता रहता है। वास्तव मे द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव की शुद्धता की मर्यादा के पालन का नाम चौका है। चौके मे रसोई बनाते समय स्वच्छता तथा शुद्धता का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है। प्रासुक जल का उपयोग रसोई मे करना चाहिये। बिना प्रयोजन चौका देना उचित नही है। क्योंकि चौका देने से जीवो की हिंसा विशेष रूप से होती है। लकडी व कोयला शुद्ध ईंधन है, गोबर (छाणा) अशुद्ध है। ग्रन्थकार के शब्दो मे—"जिन धर्म विषै तो जहा निश्चय एक रागादिक भाव नै छुडाया है अर याही के वास्तै जीवा की हिंसा छुडाई है। सोई नि पापी राग भावा कै हिंसा की उत्पत्ति टरै सोई रसोई पवित्र है। जा विषै ए दोनू वधै सोई रसोई अपवित्र है—ऐसे जानना।" (पृ 96) बाजार के भोजन मे बहुत ही दोष बताया गया है। बाजार की बनी वस्तुएँ, सभी खाद्य पदार्थ असख्यात त्रस जीवो की हिंसा से उत्पन्न होने के कारण मास सादृश्य हैं। हलवाई की बनी हुई कोई भी वस्तु खाने योग्य नही है। इसी प्रकार अचार, मुरब्बा, लौंजी आदि अभक्ष्य हैं। इनका सेवन करना उचित नही है।

सामान्य रूप से मासिक धर्म के समय अशुद्ध रुधिर के स्राव से तीन-चार दिन स्त्री की स्थिति भगी या चाण्डाल के सामान अस्पृश्य रहती है। गृहस्थो को ऐसे समय मे स्त्री को किसी भी तरह से हाथ नहीं लगाने देना चाहिये। शास्त्र मे तो यहाँ तक कहा है कि किसी बर्तन से भी उसका स्पर्श होना योग्य नही है। उसकी छाया मात्र से पापड, ममोडी (बडी लाल रग की हो जाती है। कई तिर्यंच उसे देखकर अन्धे हो जाते हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी यह विवेक आवश्यक है। आज के नवयुवको को इन दिनो में अपनी पत्नी को

मासिक धर्म के समय तीन दिनो तक न तो रसोई बनाने के लिये कहना चाहिये और न रसोई के तथा अन्य किसी काम के लिये दबाव डालकर मजबूर करना चाहिये। जो महीने के समय स्त्री की छूत को नहीं मानता है उसे भी शास्त्र मे चाण्डाल के समान कहा गया है।

अतिथि-संविभाग-व्रत या दान का प्रकरण ग्रन्थकार ने आचार्य अमितगति के श्रावकाचार के आधार पर लिखा है[1]। पात्र कुपात्र तथा अपात्र का विचार करते हुए लिखते हैं- सम्यक्त्व सहित पात्र है[2]। लेकिन सम्यक्त्व से रहित चारित्र वाला कुपात्र है[3]। जिसके सम्यक्त्व और व्रतादिक दोनों नही हैं वह अपात्र है[3]। अपात्र का फल नरकादिक अनन्त संसार है।

सामायिक

समता भाव का नाम सामायिक है। इसे ही साम्य भाव, शुद्धोपयोग, वीत-राग तथा निःकषाय भी कहते हैं। वास्तव मे ध्यान की सिद्धि होने पर ही सामायिक होती है। जिसका चित्त शुद्ध हो, परिणाम दृढ हो, किसी तरह की बाधा न हो तब ध्यान हो सकता है। आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं कि स्त्री के ध्यान की सिद्धि नही है[4]। सभी प्राणियो के प्रति समता होने पर सामायिक होती है[5]। वीतराग जिनवाणी के प्रवचन का सार यही है कि जो वस्तुएँ इष्ट है उनमे राग नहीं करना और जो अनिष्ट प्रतीत होती है उनमे द्वेष नही करना। इस साम्य भाव के होने पर निज स्वरूप मे मग्न होना तो सामायिक है। सामायिक मे निज स्वरूप का भेद रूप या अभेद रूप का अनुभव होता है। अपने शुद्ध स्वरूप का अनुभव हुए बिना वीतराग भावो की वृद्धि नही होती और वह हुए बिना मोह नही गलता। इसलिये सामायिक के काल में स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र स्वकाल और स्वभाव मे शुद्धता धारण कर, आर्त-रौद्र ध्यान को छोड़कर वस्तु-स्वभाव का चिन्तवन करें। वास्तव मे सामायिक मे कुशील

1 अमितगति—श्रावकाचार, अ 10, श्लोक 33

2 वही, अ 10 श्लोक 34-35

3 भ भागचन्द कृत अमितगति-श्रावकाचार, टीका अ. 10श्लोक 36-38
द्रष्टव्य है—ज्ञानानन्द श्रावकाचार, पृ. 59

4 चित्तासोहि ण तेसिं ढिल्लं भावं तहा सहावेण।
विज्जदि मासा तेसिं इत्थीसु ण संकया झाणं ॥ सूत्रपाहुड गा. 26

5 जो समो सव्वभूदेसु थावरेसु तसेसु वा।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे ॥ नियमसार, गा. 126

को छोड़कर सुशील (स्वभाव) को प्राप्त होता है। सर्व सावद्य योगों से निवृत्ति होने पर ही सामायिक होती है।

समाधिमरण—

किसी प्रकार का विकल्प न होना समाधि है। समाधि में ममत्व परिणाम छूट जाता है। किसी भी प्रकार का राग-द्वेष परिणाम नहीं होता। पण्डित-प्रवर राजमल्लजी के शब्दों मे—"तो अब भी मेरे ई शरीर के जाते काहे का विकल्प उपजै? कदाच न उपजैं। विकल्प उपजावे वाला मोह ताका नाश किया, तासू मैं निर्विकल्प आनन्दमय जिन-स्वरूप ने बारम्बार सभालता वा आदि करता स्वभाव मैं तिष्ठूं हूं।" शुद्धोपयोग की भावना वाला ही समाधि-मरण के लिये उद्यत होता है। वह शरीर से ममत्व कैसे छोडता है? इसका वर्णन करता हुआ ग्रन्थकार कहता है—"हमारे दोनों ही तरह आनन्द है। अब जो शरीर रहसी तो फेर सुद्धोपयोग ने आराधसी। सो हमारे कोई प्रकार सो सुद्धोपयोग का सेवन मे कमी नाहीं तो हमारे परिणामां मैं सक्लेशता कोई की न उपजै, कोई तरह की आकुलता उपजावे नाहीं। आकुलता है सोई ससार का बीज है। निश्चय एक स्वरूप ही का बारबार विचार करना, वाही कूं बारबार देखना वाहीं के गुण कूं चितवन करना, वाही की पर्याय का विचार करना अर वाही का सुमरन करना, वाहीं विषै थिर रहना। कदाच सुद्ध स्वरूप सूं उपयोग चलैं तौ ऐसा विचार करे यह ससार अनित्य है।" इस प्रकार समाधिमरण का बहुत विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। इनके अतिरिक्त स्वर्गों की महिमा, गोरस की शुद्धता की क्रिया, श्रावक के अन्तराय तथा ग्यारह प्रतिमाओं का भी विस्तृत वर्णन किया गया है। खेती करने के दोष, वस्त्र धुलाने-रंगाने, जुआ खेलने आदि दोषों का भी सटीक वर्णन मिलता है। सद्‌गृहस्थ तथा श्रावक की लगभग सभी आवश्यक क्रियाओं का वर्णन इस शास्त्र में किया गया है।

रचना-शैली—

प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना-शैली सरल है। प्रसाद गुण से युक्त होने पर भी स्थान स्थान पर काव्यात्मक छटा तथा अलकारों का समुचित प्रयोग लक्षित होता है। कल्पना के यथोचित समावेश से, नई-नई उपमाओं तथा दृष्टान्तों से यह रचना भरपूर है। कही बालक-माता का दृष्टान्त है तो कहीं गाय-बछड़े का और कहीं गुरु-शिष्य का दृष्टान्त है। कई स्थलों पर वर्णन ऐसे हैं जैसे कि साक्षात् चित्र चित्रित कर दिये गये हों। एक चित्र है—"बहुरि मुनि तो ध्यान विषै गरक हुवा सौम्य दृष्टि नैं धर्‌यां है। अर वहां नगराधिक सूं राजादिक वदवानैं आवैं हैं। सो अबैं वे मुनि कहां तिष्ठै हैं? कै तौ मसानभूमि के विषैं,

कै निरजन पुराना बन विषै अर कै पर्वतादिक की कंदरा कहिये गुफा विषै अर कै नदी के तीर विषै अर कै उजाड भयानक अटवी विषै कै एकांत वृक्ष तलै अथवा वाटिका विषै अथवा नगर बाह्य चैत्यालय विषै, इत्यादि रमनीक मन के लगावानै कारन अर उदासीनता के कारनं ऐसा स्थान विषै तिष्ठे है। जैसे कोई अपनी निधि नै छिपावता फिरै अर एकांत आपना का अनुभव करै, तैसे ही महामुनि आपनी ज्ञान-ध्यान रूपी निधि को छिपावते फिरै है अर एकान्त ही में ताका अनुभव किया चाहै है। (पृ. 12) रचना में अनावश्यक वर्णन या विस्तार का अभाव है। कहीं-कहीं तो परिभाषा मात्र देकर छोड़ दिया गया है। संक्षेप में, रचना सहज, सरल तथा यथोचित विशेषताओं से समन्वित है।

भाषा—

ग्रन्थ की यह विशेषता है कि इसमें अपने समय की बोली जाने वाली ठेठ ढूँढारी भाषा का प्रयोग है। भाषा मे प्रवाह तथा मधुरता है। लेखक ने संस्कृत की शब्दावली का कम से कम प्रयोग किया है। इसलिये इसकी भाषा ठेठ है। ठेठ भाषा मैं वह भी गद्य मे लगभग तीन सौ पृष्ठों की एक बड़ी रचना करना एक सच्चे लेखक का ही कार्य हो सकता है। ग्रन्थ का सम्पादन करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि लेखक की भाषा के साथ ही वर्तनी भी ज्यो की त्यो रहे। इसमे श्रम भी अधिक करना पड़ा है। क्योंकि आदि से अन्त तक वर्तनी की एकरूपता का बराबर ध्यान रखा गया है।

ग्रन्थ-सम्पादन-विधि—

इसमे कोई सन्देह नही है कि पद्यबद्ध ग्रन्थो की अपेक्षा गद्य रचना का और वह भी ठेठ बोली जाने वाली रचना का सम्पादन करना क्लिष्ट कार्य है। क्योंकि प्रतिलिपिकारो ने प्रतिलिपि करते समय बहुत असावधानियाँ बरती है। विशेषकर मात्राओं के प्रयोग में विभिन्न प्रतिलिपिकारो ने अपने-अपने उच्चारण के साथ उनको लिपिबद्ध किया है। उपलब्ध प्रतिलिपियो के आधार पर ही भाषा का वैज्ञानिक दृष्टि से सम्पादन किया गया है, किन्तु कहीं भी पाठ-भेद नहीं दिये गये हैं। प्रकरण तथा भावों के अनुसार प्रथम तो पाठ-भेद का अवकाश मिला नहीं है, फिर एक से अधिक प्रतियों मे प्राप्त पाठ को ही तर्क-संगत व उचित होने से उसे ही मूल स्वीकार कर लिया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का सम्पादन छह हस्तलिखित प्रतियो के आधार पर किया गया है। उनमें से तीन हस्तलिखित प्रतियों का उपयोग आदि से अन्त तक किया गया है। उनमें से प्रथम प्रति फिरोज की लिखी हुई है जो श्री दि. जैन मन्दिर सरस्वती भण्डार, भोपाल से प्राप्त हुई है। इसकी क्रम सं. 145 है। इसके प्रतिलिपिकार मोहनलाल हैं। इसमें कुल पत्र सं. 209 है। यह

आश्विन शु. 2 भृगुवार, वि स 1905 की प्रतिलिपि है।' दूसरी हस्तलिखित प्रति दिल्ली की है। यह क स क्र 8 श्री दि जैन सरस्वती भण्डार, धर्मपुरा, नया मन्दिरजी, दिल्ली से प्राप्त हुई है। इसमे पाना संख्या 131 है। इसकी प्रतिलिपि कार्त्तिक कृ 11 रविवार, वि स 1929 मे हुई थी। तीसरी प्रति अलवर की है। इसकी पाना सख्या 146 है। यह अग्रवाल पचायती मन्दिर मे क. स च-67 पर सुरक्षित है। इसकी प्रतिलिपि पौष शु 14 वि स 1953 मे हुई थी। चौथी प्रति नीमच के दि जैन मन्दिर की है। इसमे लिपिकार ने सवत् नही दिया है। इसकी सबसे प्राचीन प्रतिलिपि आरा में है। वहाँ के सरस्वती भण्डार में झ-5 (क) क्रम सख्या से वह कुछ दिनों के लिये प्राप्त हुई थी। इस प्रति के ऊपर गुमानीलाल कृत श्रावकाचार लिखा हुआ है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति श्री दि. जैन मन्दिर, घुरैया (झाँसी) से प्राप्त हुई थी। किन्तु दुर्भाग्यवश सामान के साथ वह प्रति चोरी चली गई जिससे बराबर उपयोग नही हो सका। इनके अतिरिक्त एक मुद्रित प्रति का भी आदि से अन्त तक उपयोग किया गया है। यह वि. स 1975 मे सद्बोध रत्नाकर कार्यालय, बडा बाजार, सागर से प्रकाशित हुई थी। इसकी पृ सख्या 292 है। इसके सशोधक श्री मूलचन्द मैनेजर ने उस समय यह लिखा था कि इस ग्रन्थ की एक-एक प्रति वर्तमान समय मे प्रत्येक जैनी के हाथ में होना आवश्यक है। उनका यह कथन आज भी सत्य है। अन्त मे यही ज्ञातव्य है कि मूल लेखक की रचना को ज्यों की त्यो पाठकों तक पहुँचाने मे आह्लाद का विशेष अनुभव हो रहा है।

आगम व अनुयोगो की पद्धति के ज्ञाता, स्वाध्यायी पण्डित श्री राजमलजी भोपाल वालो का विशेष आभार है जिनकी सतत प्रेरणा से ग्रन्थ का सम्पादन व प्रकाशन सम्भव हो सका। मित्रवर प रतनलालजी इन्दौर का भी आभारी हूँ जो इस रचना के प्रकाशन हेतु मेरा उत्साह वृद्धिगत करते रहे। प्रोफेसर जमनालाल जैन यदि मुझे न लिखते तो यह कार्य एक बार हाथ मे लेकर भी छूट जाता। इन सभी की प्रेरणाओ के फलस्वरूप यह "श्रावकाचार" आज इस स्थिति मे प्रकट हो सका है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन मे प राजमलजी पवैया, श्री नन्नूलालजी कठनेरा, श्री विमलचन्दजी झांझरी तथा झांझरी-परिवार, श्री सत्यधरकुमार सेठी तथा खण्डवा के मुमुक्षु बन्धुओ का भी आभार है जिनके सहयोग से यह ग्रन्थ मूल रूप मे प्रकाशित हो रहा है। यद्यपि ग्रन्थ की मुद्रण प्रक्रिया मे कल्पनातीत विलम्ब हुआ है, लगभग डेढ वर्ष का समय लग गया। किन्तु यही होनहार थी। इसे कोई टाल नही सका। ग्रन्थ के स्वच्छ मुद्रण के लिए कोठारी प्रिन्टर्स, उज्जैन का आभारी हूँ जिनके सतत प्रयास से इसका सुन्दर प्रकाशन हो सका।

रक्षाबन्धन, —देवेन्द्रकुमार शास्त्री,
वीर निर्वाण स 2514 243, शिक्षक कॉलोनी, नीमच (म. प्र.)

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्य ॥

ज्ञानानन्द श्रावकाचार

मंगलाचरण

दोहा

राजत[1] केवलज्ञान जुत,[2] परम औदारिक काय ।
निरखि छवि भवि छकत[3] है, पी रस सहज सुभाय ॥१॥
अरहंत हरिकै[4] अरिन को, पायो सहज निवास ।
ज्ञान ज्योति परगट भई, ज्ञेय किये परकास ॥२॥
सकल सिद्ध वंदो सुविधि, समयसार[5] अविकार ।
स्वच्छ सुछंद उद्योत नित, लह्यो ज्ञान विस्तार ॥३॥
ज्ञान स्वच्छ जसु भाव मे, लोकालोक समाय ।
ज्ञेयाकार न परनमे,[6] सहज ज्ञान रस पाय ॥४॥
अत आंचि[7] के पाँचतें,[8] शुद्ध भये शिव-राय ।
अभेद रूप जे परनमें, सहजानंद सुख पाय ॥५॥
जिनमुखतें उतपति भई, ज्ञानामृत रस धार ।
स्वच्छ प्रवाह बहे ललित, जग पवित्र करतार ॥६॥
जिनमुखतें उतपति भई, सुरति सिन्धुमय सोइ ।
मैं नमत अघ हरनतैं, सब कारज सिध होइ ॥७॥
निर्विकार निर्ग्रन्थ जे, ज्ञान-ध्यान रसलीन ।
नासा-अग्र जु दृष्टि धरि, करे कर्म-मल छीन ॥८॥
इह विधि मंगल करनतैं, सब विधि मंगल होत ।
होत उदंगल[9] दूरि सब, तम ज्यों भानु उद्योत ॥९॥

---

१ शोभायमान २ युक्त, सहित ३ तृप्त ४ नष्ट कर ५ शुद्धात्मा
६ परिणमन ७ आँच, अग्नि ८ पाक से (द्वारा) ९ विघ्न-बाधा, द्वन्द्व

वन्दनाधिकार

इहि विधि मंगलाचरन पूर्वक अपने इष्टदेव कौ नम-स्कार करि **ज्ञानानन्द पूरित-निर्भर निजरस नामा शास्त्र** ताका अनुभवन मैं करौंगा। सो हे भव्य! तू सुणि कैसा है इष्टदेव अर कैसा है यह शास्त्र अर कैसा हू मै सो ही कहिये है। सो इष्टदेव तीन प्रकार है–देव, गुरु, धर्म। देव दोय प्रकार है–अरहंत, सिद्ध। गुरु तीन प्रकार है–आचार्य, उपाध्याय, साधु। धर्म एक ही प्रकार है। सो विशेषपने भिन्न-भिन्न निरूपण करिये है। सो कैसा है **अरहंत देव**? परम औदारिक शरीर ता विषै पुरुषाकार आत्मद्रव्य है। बहुरि घातिक कहिये घात किया है घातिया कर्म–मल जानै,[1] धोया है मल जानै। अर अनंतचतुष्टय कौ प्राप्त भया है। अर निराकुलिता, अनुपम, बाधारहित, ज्ञान सुरस करि पूर्ण भरया है। अर लोकालोक कौ प्रकाशि ज्ञेयरूप नाही परनमै है। **एक टंकोत्कीर्ण ज्ञायक स्वभाव का धरै है। अर शान्तिक रस करि अत्यन्त तृप्त है।** क्षुधादि अठारह दोषनसौ रहित है। निर्मल (स्वच्छ) ज्ञान का पिंड है। जाका निर्मल स्वभाव विषै लोकालोक के चराचर पदार्थ स्वयमेव आन प्रतिबिंबित हुए है। मानूं[2] भगवान का स्व-भाव विषै पहले ही ये पदार्थ तिष्ठै था। ताका निर्मल स्वभाव की महिमा वचन अगोचर है।

---

१ जिसने २ मानो

अर्हन्तदेव की स्तुति

बहुरि कैसे है अरहंतदेव ? जैसे सांचा विषै रूपा[1] धातु का पिड निरमापियै[2] है, तैसे अरहंतदेव चैतन्य धातु का पिंड परम औदारिक शरीर विषै तिष्ठै है। शरीर न्यारा है, अरहंत आतमा द्रव्य न्यारा है। ताकूं मैं अंजुली जोरि नमस्कार करू हू। बहुरि कैसे है अरहंत परमवीतरागदेव ? अतीन्द्रिय आनंदरस कौ पीवै है वा आस्वादे है। ताके सुख की महिमा हम कहवा समर्थ नाही। पणि[3] छद्मस्थ का जानवाने ऐसी उपमा संभवे है। तीन काल संबंधी बारह गुणस्थान के धारी शुद्धोपयोगी महामुनि ताकौ आत्मीक सुख सौ अनंतगुना केवली भगवान के एक समय विषै सुख उपजै है। परंतु केवली भगवान का सुख की जुदी जाति है। सो ए तो अतीन्द्रिय क्षायिक सम्पूर्ण स्वाधीन सुख है। अर छद्मस्थ के इन्द्रियजनित पराधीन किंचित् सुख है–ऐसा निःसंदेह है। बहुरि कैसे है केवलज्ञानी ? केवल एक निज स्वच्छ ज्ञान का पुंज है। ता विषै और भी अनंत गुण भरे है। बहुरि कैसे है तीर्थंकरदेव ? अपना उपयोग कूं अपने स्वभाव विषै गाल दिया है। जैसे लून[4] की डली पानी विषैं गल जाय, त्यों ही केवली भगवान का उपयोग स्वभाव विषैं गल गया है। फेरि बाह्य निकसवाने असमर्थ है नियम करि। बहुरि आत्मीक सुख सौ अत्यंत रत भया है। ताका रस पीवा करि तृप्ति नाहीं होय है वा अत्यंत तृप्ति है और वाका शरीर की ऐसी सौम्य दृष्टि ध्यानमय अकंप आत्मीक प्रभाव करि सोभै है, मानूं भव्य जीवानें उपदेश ही देय हैं। कांई[5] उपदेश देय है ? रे

१ चांदी २ बनाइये ३ परन्तु ४ नमक ५ क्या

भव्य जीवो ! अपना स्वरूप विषैं, ऐसे लागो, विलम्ब मत करो, ऐसा शांतिक रस पीवो, ऐसे सेन[1] करि भव्य जीवन कू अपना स्वरूप विषैं लगावे है। इह निमित्तनै पाय अनेक जीव संसार समुद्र सूं तिरे। अनेक जीव आगै तिरैंगे वर्तमान विषैं तिरते देखिये हैं। सो ऐसा परम औदारिक शरीर को भी हमारा नमस्कार होहु। जिनेंद्रदेव हैं सो तौ आत्मद्रव्य ही है, परन्तु आत्मद्रव्य के निमित्त तैं शरीर की भी स्तुति उचित है। अर भव्य जीवनै मुख्यपनै शरीर का ही उपकार है तातैं स्तुति वा नमस्कार करवौ उचित है। अर जैसे कुलाचलन[2] के मध्य मेरू सौभै है तैसे गणधरान के विषैं वा इन्द्रो के विषैं श्री भगवान सौभै है। ऐसा श्री अरहंत देवाधिदेव ई ग्रन्थ को पूरन[3] करौ।

सिद्धदेव की स्तुति

आगै श्री सिद्ध परमेष्ठी की स्तुति-महिमा वरनन[4] करि अष्ट कर्म कौ हरू हू। सो कैसे है श्री सिद्ध परमदेव ? जानै धोया है घातिया-अघातिया कर्ममल, निष्पन्न भया है जैसे सोला बानी[5] का शुद्ध कंचन अंत की आंच कर पचाया हुआ निष्पन्न होय है, तैसे अपनी स्वच्छ शक्ति करि दैदीप्यमान प्रगट भया है स्वरूप जाका सो प्रगट ही है मानू समस्त ज्ञेय कौ निगल गया है। बहुरि कैसे है सिद्ध ? एक-एक सिद्ध की अवगाहना विषै अनंत-अनंत सिद्ध न्यारे-न्यारे अपनी सत्ता सहित तिष्ठे हैं। कोऊ सिद्ध महाराज काहु सिद्ध सौ मिलै नाहीं। बहुरि कैसे हैं सिद्ध ? परम पवित्र है। अर स्वयं शुद्ध है अर आत्मीक स्वभाव

1 संकेत, इशारा 2 कुलाचलों, पर्वतविशेष 3 पूर्ण 4 वर्णन 5 ताव

विषै लीन हैं। परम अतींद्री,[1] अनुपम, बाधारहित, निराकुलित सुखकूं निरंतर अखंड पीवै हैं। तामैं अंतर नाहीं पड़े है। बहुरि कैसे हैं सिद्ध भगवान ? असंख्यात प्रदेश चैतन्य धातु के पिंड निवड[2] घनरूप धरें हैं अर अमूर्तिक चरम शरीर तें किंचित् ऊन[3] हैं। सर्वज्ञ देव नै प्रत्यक्ष विद्यमान न्यारे-न्यारे दीसै हैं। बहुरि कैसे है सिद्ध भगवान ? अपना ज्ञायक स्वभाव नै प्रगट किया है। अर समय-समय षट् प्रकार हानि-वृद्धि रूप अनंत अगुरुलघुगुण रूप परनमैं हैं। अनंतानंत आत्मीक सुख कौं आचरैं हैं वा आस्वादें है अर तृप्ति नाहीं होय है वा अत्यंत तृप्त होय है। अब कुछ भी चाह रही नाही, कृत्य-कृत्य हुआ कार्य करनौ छौ[4] सो करि चुक्या।

बहुरि कैसे हैं परमात्मा देव ? ज्ञानामृत कर श्रवै है स्वभाव जाका अर स्व संवेदन करि उछलै है आनंदरस की धारा जा विषै, उछल कर अपने ही स्वभाव विषैं गड़क[5] होय है अथवा जैसैं सक्कर की डली जल विषैं गल जाय, तैसे स्वभाव विषैं उपयोग गल गया है। फेरि बाहर निकसने कौं असमर्थ हैं। अर निज परिणति (अपने स्वभाव) विषैं रमै है। एक समय विषैं उपजै हैं अर विनसे हैं अर ध्रुव रहे हैं। पर परिणति से भिन्न अपने ज्ञान स्वभाव विषैं प्रवेश कियाअर ज्ञान परिणति विषै प्रवेश किया हैं। ऐसे एकमेक होय अभिन्न परिणमैं है। ज्ञान में अर परिणति में दोष जायगा[6] रही नाहीं, ऐसा अद्भुत कौतूहल सिद्ध स्वभाव विषैं होय है। बहुरि कैसे हैं सिद्ध ?

---

१ अतीन्द्रिय, इन्द्रियों से रहित २ निबिड ३ न्यून, कम ४ था ५ लीन
६ स्थान

अत्यंत गंभीर है अर उदार हैं अर उत्कृष्ट है स्वभाव जाका । बहुरि कैसे है सिद्ध ? निराकुलित, अनुपम, बाधा रहित, स्वरस करि पूर्ण भर्‍या है वा ज्ञानानंद करि अहल्लाद[1] है वा सुख स्वभाव विषै मगन है। बहुरि कैसे हैं सिद्ध ? अखंड है, अजर है, अविनाशी हैं, निर्मल है अर चेतना स्वरूप है, शुद्ध ज्ञान मूर्तिहैं। ज्ञायक है, वीतराग है, सर्वज्ञ है–त्रिकाल सम्बन्धी चराचर पदार्थ द्रव्य-गुण-पर्याय सयुक्त ताकौ एक समय विषै युगपत् जानै हैं। अर सहजानद है, सर्व कल्याण के पुज है, त्रैलोक्य करि पूज्य है, सेवत सर्व विघन विलय जाय है। श्री तीर्थंकरदेव भी ताकौ नमस्कार करैं है। सौ मैं भी बारम्बार हस्त जुगल मस्तक कौ लगाय नमस्कार करूँ हूं ? सो का वास्ते नमस्कार करूं हूं ? वाही के गुण की प्राप्ति के अर्थ। बहुरि कैसे है सिद्ध भगवान ? देवाधिदेव है। सो देवसज्ञा सिद्ध भगवान विषै ही शौभै है। अर चार परमेष्ठिन की गुरु सज्ञा है।

बहुरि कैसे है सिद्ध परमेष्ठी ? सर्व तत्त्व कौं प्रकाश ज्ञेय रूप नाहीं परिणवै है, अपना स्वभाव रूप ही रहै है। अर ज्ञेय को जानै ही है। सो कैसे जाने हैं ? जो ये समस्त ज्ञेय पदार्थ मानू शुद्ध ज्ञान मे डूब गया है कि मानू प्रतिबिंबित हुआ है कै मानू ज्ञान मे उकीर[2] काढ्यो[3] है बहुरि कैसे हैं सिद्ध महाराज ? शांतिक रस करि असख्यात प्रदेश भरे है। अर ज्ञानरस करि अहलादित हैं। शुद्धामृत सोई भया परम रस ताकौ ज्ञानांजुलि करि पीवै हैं। बहुरि कैसे है सिद्ध ? जैसे चंद्रमा का विमान विषैं अमृत श्रवै है।

---

१ आह्लाद, हर्ष २ उत्कीर्ण ३ बनाया, निर्माण किया

अर औरा कूं अहलाद आनंद उपजावै हैं। अर आताप कूं दूर करै, त्यों ही श्री सिद्ध महाराज आप तो ज्ञानामृत पीवै है वा आचरैं है। अर औरा कू अहलाद आनंद उपजावै है। ताको, नाम, स्तुति वा ध्यान करता जो भव्य जीव ताका आताप विलै जाय है परनाम शांत होय है, अर आपा-पर की सुद्धता होय है अर ज्ञानामृत नै पीवै हैं। अर निज स्वरूप की परतीति आवै है, ऐसे सिद्ध भगवान कौ फेर भी नमस्कार होहु, ऐसे सिद्ध भगवान जैवंता प्रवर्तो। अर मोने[1] संसार समुद्र माही सू काढौ[2] अर ससार समुद्र विषै पडनै तै राखो[3]। म्हारा[4] अष्टकर्म का नाश करो मोने कल्याण के कर्ता होउ, मोक्ष-लक्ष्मी की प्राप्ति देहु, म्हारा हृदे विषै निरतर बसो अर मोने आप सरीखा करो। बहुरि कैसे हैं सिद्ध भगवान ? जाकै जन्म-मरण नाही, जाकै शरीर नाही है, जाकै विनास नाही है, संसार विषैं गमन नाही है। जाकै असख्यात प्रदेश ज्ञान का आधार है। बहुरि कैसे हैं सिद्ध भगवान ? अनत गुणा की खान हैं, अनत गुणा करि पूर्ण भरया है। तातै औगुण आवनै जागा[5] नाहीं। ऐसे सिद्ध परमेष्ठी की महिमा वर्णन करि स्तुति करी।

जिनवाणी की स्तुति

आगै सरस्वती कहिये जिनवानी ताकी महिमा स्तुति करिये हैं। सो हे भव्य ! तू सुणि। सो कैसी है जिनवानी? जिनेंद्र का हृदय सोई भया द्रह[6] तहां थकी[7] उत्पन्न भई है। वहां थकी आगै चली सो चल करि जिनेंद्र मुखार

---

१ मुझे २ निकालो ३ बचाओ ४ मेरा, हमारा ५ जगह, स्थान
६ सरोवर ७ जिनवाणी

विंद तैं[1] निकसी, सो निकस करि गमधरदेवां का कान विषैं जाय पडी। अर पडि करि वा थकी आयैं चलि गणधरदेवां का मुखारविंद तैं निकसी। निकसि करि आगा ने चाल या धार श्रुति[2]-सिंधु मे जाय प्राप्त भई।

भावार्थ—या जिनवानी गगा नदी की उपमानै धारया है। बहुरि कैसी है जिनेंद्रदेव की वानी? स्याद्वादलक्षण करि अंकित है वा दया अमृत करि भरी है। अर चन्द्रमा समान उज्वल है वा निर्मल है। जैसे-जैसे चन्द्रमा की चादनी चद्रवसी कमला नै[3] प्रफुल्लित करै है अर सर्व जीवो के आताप नै हरै है, तैसे ही जिनवानी भव्य जीव सोई भया कमल त्यानै प्रफुल्लित करै है वा आनन्द उपजावै है अर भव आताप नै दूर करै है। बहुरि कैसी है सरस्वती? जगत की माता है, सर्व जीवा ने हितकारी है, परम पवित्र है। पणि[4] कुवादी रूप हस्ती ताका विदारवाणे वा परिहार करवा नै वादित्त रिद्धि का धारी महामुनि सोई भया शार्दूल सिंह ताकी माता है। बहुरि कैसी है जिन-प्रणीत बानी? अज्ञान-अधकार विध्वस करवा नै जिनेंद्रदेव सूर्य ताकी किरन ही है। या ज्ञानामृत की धार बरषावने कौ मेघमाला है। इत्यादि अनेक महिमा नै धरया है। ऐसी जिनवानी ताकै अर्थं म्हारा नमस्कार होहु। इहां सरूपानुभवन का विचार मैंने किया है। सो इस कार्य की सिद्धता ही है। ऐसी जिनवानी की स्तुति वा महिमा बरनन करी।

---

१ से २ जिनवाणी ३ कमलो को ४ पुन, फिर

निर्ग्रन्थ गुरु की स्तुति

आगे निरग्रन्थ गुरु ताकी महिमा. स्तुति करै हैं। सो हे भव्य ! तू सावधान होय नीकै सुणि। कैसे हैं निरग्रन्थ गुरु ? दयाल है चित्त जाका, अर वीतराग है स्वभाव जाका अर प्रभुत्वशक्ति करि आभूषित हैं। अर हेय-ज्ञेय-उपादेय ऐस विचार करि सयुक्त हैं। अर निर्विकार महिमा नै प्राप्त भये हैं; जैसे राजपुत्र बालक नगन निर्विकार शोभै हैं अर सर्व मनुष्य जन वा स्त्री जन कू प्रिय लागै हैं। मनुष्य वा स्त्री वाका रूप कू देख्या चाहै हैं अर स्त्री वाका आलिंगन करै है। परन्तु स्त्री का परनाम निर्विकार हो रहे है, सरागतादिक कौ नहीं प्राप्त होय है, तैसे ही जिनलिंग का धारक महामुनि बालवत् निर्विकार शोभै है। सर्व जन कौ प्रिय लागै है, सर्व स्त्री वा पुरुष मुन्या का रूप नै देख-देख तृप्त नाही होय है अथवा वह मुनि निर्ग्रन्थ नाही हुआ है, अपना निर्विकारादि गुणा नै ही प्रगट किया है। बहुरि कैसे है शुद्धोपयोगी मुनि ? ध्यानारूढ़ हैं। अर आत्मा—स्वाभाव विषै स्थिति है। ध्यान बिना क्षण मात्र गमावै नाहीं। कैसी स्थिति है ? नासाग्र दृष्टि धरि अपनै स्वरूप नै देखै हैं। जैसे गाय बच्छा नै देख—देख तृप्ति नाहीं होय है, निरंतर गाय के हृदय विषै बच्छा बसै है; तैसे ही शुद्धोपयोगी मुनि अपना स्वरूप नै छिन् मात्र भी विसरै नाहीं है। गौ—बच्छावत् निज स्वभाव सौं वात्सल्य किये हैं। अथवा अनादि काल का अपना स्वरूप गुमि[1] गया है ताको हेरै[2] हैं अथवा ध्यान अग्नि करि कर्म—ईंधन

---

१ खो गया २ ढूंढे

कूं आभ्यंतर गुप्त होवै हैं। अथवा नगरादिक नै छोडि वन के विषैं जाय नासाग्र दृष्टि धारि ज्ञान-सरोवर विषै पैठि सुधा अमृत नै पीवै है। वा सुध अमृत विषै केलि करै है वा ज्ञान-समुद्र में डूबि गया गया है। अथवा संसार का भय थकी डरपि आभ्यंतर विषैं अमूर्तिक पुरुषाकार ज्ञान-मय मूरति ऐसा चैतन्यदेव ताकूं सेवै है वा सब अशरण जानि चैतन्यदेव की शरण कूं प्राप्त हुआ है। या विचारै है, भाई! म्हानै[1] तो एक चैतन्य धातुमय पुरुष ज्ञायक महिमा नै धरया ऐसा परमदेव सो ही शरण है। अन्य शरण नाहीं, ऐसा म्हाकै[2] निःसन्देह अवगाढ[3] है।

देव-पूजा

बहुरि सुधामृत करि चैतन्यदेव का कर्म-कलंक नै धोय स्नपन कहिये प्रक्षालन करिये है, पाछै मगन होय ताकै सन्मुख ज्ञान-धारा को क्षेपै है। पाछै निज स्वभाव सो ही भया चंदन ताकी अर्चा कहिये ताकौ पूजै हैं। अर अनंत गुण सोई भया अक्षत ताकौ तिन विषैं क्षेपै है। पाछे सुमन कहिये भला मन सोई भया आठ पांखुडी संयुक्त पदम पहुप[4] ताकौ वा विषै चढ़ोडै[5] हैं। अर ध्यान सो ही भया नैवेद्य ता विषै सन्मुख करै हैं। अर ज्ञान सो ही भया दीप ताकूं ता विषै प्रकाशित करै है। मानूं ज्ञान-दीप करि चैतन्य-देव का स्वरूप ही अवलोकन करै हैं। पाछै ध्यान रूपी अगनि विषै कर्म सो ही भया धूप ताकूं उदार मन करि मोकला-मोकला[6] शीघ्रपनै आछै-आछै[7] क्षेपै है। पाछै निजानंद सो ही भया फल ताकूं भलीभांति ता विषै प्राप्त

१ मुझे २ मेरा ३ श्रद्धान ४ पुष्प ५ चढाता ६ बहुत-बहुत ७ अच्छे-अच्छे

करै हैं ऐसे अष्ट द्रव्य करि पूजन करै हैं। क्या वास्ते पूजन करै हैं ?

मोक्ष सुख की प्राप्ति के अर्थं। बहुरि कैसे हैं। शुद्धोपयोगी मुनि ? आप तौ शुद्ध स्वरूप विषै लग गया हैं। अर मारग के केई भोला जनावर काष्ठ का ठूठ जानि वाके शरीर सों खाज खुजावै हैं। तोहू परि[1] मुन्या का उपयोग ध्यान सौ चलै नाही है। ऐसा निज स्वभाव सौं रत हुवा है। बहुरि हस्ति, सिंघ, शूकर, व्याघ्र, मृग, गाय इत्यादि वैर भाव छोडि सन्मुख खडा होय नमस्कार करै है। अर अपना हित कै अर्थि[2] मुन्या के उपदेश नै चाहै है। बहुरि ज्ञानामृत का आचरन करि नेत्र विषै अश्रुपात चालै सो अंजुली विषै पडै है, पडता-पडता अंजुलि भरि आवै है। सो चिडी, कबूतर आदि भोला पक्षी जल जान रुचि सो पीवे है। सो ये अश्रुपात नाही चालै है, मानू यह आत्मीक रस ही श्रवै है। सो आत्मीक रस समाया नाही है, तातै बाह्य निकस्या है अथवा मानू कर्म रूपी वैरी कौ ज्ञान रूपी खड्ग करि संघार किया है। तातै रुधिर उछलि करि बाह्य निकसै है। बहुरि कैसे हैं शुद्धोपयोगी मुनि ? अपना ज्ञान रस करि छकि रह्या है। तातै बाह्य निकसवानै असमर्थ है। कदाचित् पूर्वली वासना करि निकसै है तो वानै जगत् इन्द्रजाल वत् भासै है फेरि तत्क्षण ही स्वरूप मैं लागि जाय है। फेरि स्वरूप का लागवा करि आनंद उपजै है। ता करि शरीर की ऐसी दशा होय है रोमांच ही होय है अर गद-गद शब्द होय है। अर

---

[1] किन्तु, लेकिन [2] लिए, वास्ते

कदी[1] तो जगत के जीवानैं[2] उदासीन मुद्रा प्रति-भासी है अर कदी मानूं मुन्या निधि पाई ऐसी हंस-मुख मुद्रा प्रतिभासी है । ये दोऊ दशा मुन्या की अत्यन्त शोभै है । बहुरि मुनि तौ ध्यान विषैं गरक[3] हुवा सौम्य दृष्टि नै धरया है । अर वहां नगरादिक सूं राजादिक बंदवानै आवै है । सो अबै वे मुनि कहां तिष्ठै है ? कै तो मसानभूमि कै विषै कै निरजन[4] पुराना वन विषैं अर कै पर्वतादिक की कंदरा कहिये गुफा विषैं अरु कै पर्वत के सिखर विषै, अरु कै नदी के तीर विषै अर कै उजाड भयानक अटवी विषैं, कै एकांत वृक्ष तलै अथवा वस्तिका विषैं अथवा नगर बाह्य चैत्यालय विषैं इत्यादि रमनीक मन के लगावानै कारन अर उदासी-नता के कारन ऐसा स्थान विषैं तिष्ठै है । जैसे कोई अपनी निधि नै छिपावता फिरै अर एकात जायगा का अनुभव करै, तैसे ही महामुनि आपनी ज्ञान-ध्यान रुपी निधि कौं छिपावते फिरै हैं अर एकात ही मे वाका अनुभव किया चाहै हैं । अर ऐसा विचारै है कि म्हा की ज्ञान–ध्यान निधि जाती न रहै अर म्हा का ज्ञान–भोग मे अंतर न परै । तिहि वास्तै महामुनि कठिन–कठिन स्थान विषै वसै हैं । जेठे[5] मनुष्य का संचार नाही तेठे[6] वसे हैं । अर मुनि नै पर्वत, गुफा, नदी मसान, वन ऐसा लागे है मानो ध्यान-ध्यान ही पुकारै है ? कहा कहि पुकारै है ? कहै आवो–आवो, यहाँ ध्यान करौ, ध्यान, करौ, निजानंद स्वरूप नै विलसो विलसो । थाकौ[7] उपयोग स्वरूप विषै बहुत लागसी तीसू और मति विचारौ-ऐसै कहै हैं ।

---

१ कभी २ जीवों का ३ लीन ४ निर्जन ५ जहां ६ वहां ७ तुम्हारा

बहुरि शुद्धोपयोगी मुनि घनी पवन चालै तेठै अर घना घाम[1] होय तेठै वा घना मनुष्यां का संचार होई जैठे जोरावरी[2] तैं नहीं वसै है। क्यों नाहीं वसे है ? मुन्या का अभिप्राय एक ध्यानाध्ययन करिवा को ही छै[3]। जेठे ध्यानाध्ययन घनो वधै[4] तेठै ही वसे। कोई या जानैगा कि मुनि सर्व प्रकार ऐसा कठिन-कठिन स्थानक विषै ही वसै अर सासता चाहि-चाहि परीसह को ही सहे। अर एसा दुद्धर तपश्चरन करै है। अर सासता ध्यानमई ही रहै सो यूं तो नाहीं। कारण कि मुन्या कै बाह्य क्रिया सू तो प्रयोजन है नाही अर अठाईस मूलगण ग्रहण किया है ता विषै अतीचार नाहीं लगावै है। येता उपरांत क्रिया सहन करै है सो उपयोग लगावो के अनुसार करै है सोई कहिये है—जे भोजन करि सरीरने प्रबल हुआ जानै तो ऐसा विचारै यह सरीर प्रबल होसी तो प्रमादने उपजासी। तासो एक-दोय दिन भोजन का त्याग ही करना उचित है। अर भोजन का त्याग करि सरीरने छीन हुवा जाने तो ऐसा विचारै-जो ए सरीर छीन होसी तो परिनामने सिथिल करसी। अर-परिनाम सिथिल होसी तो ध्यानाध्ययन नाही सधसी। अर कोई ई सरीर सू म्हा कै बैर नाहीं जो होय सो होय याकू छीन ही पाड़िबे। अर ई सरीर सूं म्हां कै राग भी नाहीं जो याके पोषबो ही करिये। तीसू मुन्यां कै सरीर सों राग-द्वेष का अभाव है, जा मे मुन्यां के ध्यानाध्ययन सधै सो करै। अर ऐसे ही मुनि महाराज पवन, गरमी, कोलाहल, शब्द वा मनुष्यादिक का गमन स्थानक विषै उपाय कर बैठे नाहीं। अर उठे वसे जहाँ ध्यानाध्ययन

---

१ धूप २ जबर्दस्ती ३ है ४ बढ़े

सूं परिणाम च्युत न होय । मुन्यां के एक कार्य ध्यानाध्ययन ही छै । या विषै अतराय पाडवा का जे कारन होय ता कारन को दूर ही ते तजै । अर आप तो ध्यान मे तिष्ठै है पाछै कोई ध्यान के अकारन आनि प्राप्त होय है तो ध्यान को छोडि नाही उठि जाय है । अर स्याले जल के तीर ध्यान धरैं वा उन्हाले सिला ऊपर वा पर्वत के सिखर विषै ध्यान धरै वा चौमासे मे वृक्ष्यां के तलै ध्यान कौ धरै ही तौ अपने परिणामा की विशुद्धता कै अनुसार धरै है । परिणाम अत्यत विरक्त होय तौ ऐसी जायगा जाय ध्यान धरैं, नाही तौ और ठौर[1] मन लागै जेठै ध्यान धरै । अर साम्हा[2] आया उपसर्ग कौ छोडि नाही जाय है सो मुन्या[3] की सिंघवत् वृत्ति है और मुन्या का परिणाम ध्यान विषै स्थिर रहै हैं । तब तौ ध्यान कौ छोडि और कार्य नाही विचारै है । अर ध्यान सू परिणाम उतरै है, तब शास्त्राभ्यास करै है वा औरा कू करावै है वा अपूर्व जिनवानी के अनुसार ग्रथ जोये[4] है । अर शास्त्राभ्यास करता-करता परिणाम लग जाय तौ शास्त्राभ्यास कौ छोड ध्यान विषै लागि जाय है सो शास्त्राभ्यास बीच ध्यान का फल बहुत है । तातै तलेके ओछा कार्य को छोडि ऊचा कार्य कू लागवो उचित ही है । तीसौ ध्यान विषै उपयोग की थिरता थोडी रहै है अर शास्त्राभ्यास विषै उपयोग की थिरता बहुत रहै है । तीसौं मुनि महाराज ध्यान भी धरै है अर शास्त्र भी वाचै है अर उपदेश भी देय है अर आप गुरन पै पढै हैं औरा नै पढावै है वा चरचा

१ स्थान २ सामने ३ मुनियो, साधुओ ४ अवलोकन करते, देखते

करै हैं। मूल ग्रंथां के अनुसार अपूर्व ग्रंथ जोडै हैं वा नगर सूं नगरांतर, देश सूं देशांतर विहार करैं हैं। अर भोजन के अर्थि नगरादिक विषैं जाय हैं। तेठै पडगाह्या हुवा ऊचा क्षत्री, वैश्य, ब्राह्मण कुल विषैं नवधा भक्ति सयुक्त छियालीस दोष, बत्तीस अतराय टालि खड़ा-खडा एक बार कर-पात्र में आहार लेय हैं। इत्यादिक शुभ कार्य विषै प्रवर्तै है और मुनि उत्सर्ग नै छोडि तौ परिणामो की निर्मलता के अर्थ अपवाद मार्ग नै आदरै है। अर अपवाद मार्ग नै छोडि उत्सर्ग नै आदरै है। सो उत्सर्ग मार्ग तौ कठिन है अर अपवाद मार्ग सुगम है। मुन्या कै ऐसा हठ नाही कि म्हा नैं कठिन ही आचरण आचरणा वा सुगम ही आचरण का आचरण करणा।

भावार्थ—मुन्या कै तौ परिणामा कौ तौल है, बाह्य क्रिया ऊपर प्रयोजन नाही। जा प्रवर्ति विषै परिणामा की विशुद्धता वधै अर ज्ञान का क्षयोपशम वधै सोई आचरण आचरै। ज्ञान-वैराग आत्मा का निज लक्षण है ताही कौ चाहै है। और अबै मुनिराज कैसे ध्यान विषै स्थित है अर कैसे विहार करै है अर कैसे राजादिक आय बदै है? सोई कहिये है। मुनि तौ वन विषै वा मसाण[2] विषै वा पर्वत की गुफा विषैं वा पर्वत के सिखर विषै वा सिला विषै ध्यान दिया है। अर नगरादिक सौ राजा वा विद्याधर व देव बदवानै आवै है। अर मुन्या की ध्यान अवस्था देखि दूर थकी नमस्कार करि उहा ही खडा रहै है। अर केई पुरुषां कै यह अभिलाषा वर्ते है कदि[3] मुन्या का ध्यान खुलै अर कदि मैं निकट जाय

१ निम्न, नीचे   २ श्मसान   ३ कब

प्रश्न करां अर गुरा का उपदेश नै सुन्यां अर प्रश्न का उत्तर जाणां—अर अतीत—अनागत की पर्यायसाकूं जाणां इत्यादि अनेक प्रकार का स्वरूप ताको गुरा की मुख थकी जाण्यां चाहूं छा अर केई पुरुष खडे—खडे विचार करै हैं अर केई पुरुष नमस्कार करि उठि जाय हैं। अर केई ऐसा विचारै है सो म्हे[1] मुन्या का उपदेश सुन्या विना घर जाइ काई करा ? म्हे तौ मुन्या का उपदेश विना अतृप्त छा[2] अर म्हां कै नाना तरह का संदेह छै[3] अर नाना तरह का प्रश्न छै। सो दयालु गुरु विना और कौन निवारण करै। तीसू[4] हे भाई ! म्हे तौ जेतै[5] मुन्या का ध्यान खुलै तेतै[6] ऊभा[7] ही छा। अर मुनि छैं सो परमदयालु छै।पणि आपणा हेत नै छोडि आपानै उपदेस कैसे दें ? तीसू मुन्या नै आपणै आगमन जणावौ मति; आपणा आगमन करि कदा—चित् ध्यान सू चलसी तौ आपानै अपराध लागसी, तीसू गोप्य[8] ही रहौ। अर केई परस्पर ऐसे कहै है-देखो, भाई। मुन्या की कांई दशा छै। काष्ठ, पाषाण की मूर्तिवत् अचल है।अर नासाग्र दृष्टि धरया है, अत्यन्त ससार सू उदासीन है, आपणा स्वरूप सू अत्यंत लीन है। इहाँ आत्मीक सुख के वारते राजलक्ष्मी नै वोदा[9] तृण की नाई छोडी छै। तौ आपणी याके कांई गिनती छै ? अर केई ऐसे कहता हुवा रे भाई ! आपणी गिनती तौ नाहीं सो सत्य, परन्तु यह परम दयालु छै, महा उपकारी छै, तारण—तरण समर्थ हैं, तीसू ध्यान खुलै तौ आपणो भी कार्य सिद्ध करसी।

बहुरि केई ऐसा कहता हुवा देखा भाई ! मुन्या की

---

१ मैं २ था ३ है ४ इसलिये ५ जब तक ६ तब तक ७ खड़ा
८ चुपचाप ९ निसार, तुच्छ

बहुरि केई ऐसा कहता हुवा देखो भाई ! मुन्या की कांति अर देखो भाई ! मुन्या का अतिशय अर मुन्या का साहस सो कांति करतो दसूं दिशा उद्योत कीन्ही हैं। अर अतिशय का प्रभाव करि मार्ग के सिंघ, हस्ती, व्याघ्र, रीछ, चीता, मृग इत्यादिक जानवर वैर भाव छोडि मुन्या नै नमस्कार करि निकट बैठा छै। अर मुन्या को साहस ऐसो छै। सो ऐसा क्रूर जनावर[1] ताकी प्रापति का भय थकी निर्भै हुवा ई उद्यान मैं तिष्ठै है अर ध्यान सू खिण मात्र भी नाही चालै है। अर क्रूर जनावर नै अपूठा[2] मोहि लिया है, सौ यह बात न्याय ही है। जैसा निमित्त मिलै तैसा ही कार्य उपजै। सो मुन्या की शांतिता देखकर क्रूर जनावर भी शांतिता कूं प्राप्त हुवा है। अर केई ऐसे कहता हुवा रे भाई ! या मुन्या को साहसपणो अद्‌भुत है। काई जाणा ध्यान खुलै कि न भी खुलै, तीसू अंठा सू[3] नमस्कार करि घरा चाल्यो फेर आवालां। अर केई ऐसै कहता हुवा रे भाई ! अबै काई उतावलो होहु छो। श्री गुरु की वानी सोई हुवो अमृत तीका पिया विना ही घर जावा मैं काई सिद्ध है। थानै[4] घर आछौ लागै है, म्हानै तो लागै नाही। म्हानै तै मुन्या का दर्शन उत्कृष्ट प्रिय लागै है अर मुन्या का ध्यान अब खुलसी, घनीवार हुई छै, तीसू कोई प्रकार को विकल्प मत करो। और कोई ऐसै कहता हुवा रे भाई ! तै या आच्छी कही याकै अत्यन्त अनुराग छै। श्रावक धन्य छै—ऐसै परस्पर बतलावता हुवा अर मन मैं विचारता हुवा, तैसे ही मुनि का ध्यान खुल्या। अर बाह्य उपयोग करि शिष्यजनादि नै देखवा लागा, तब शिष्यजन

---

१ क्रूर जानवर २ पूरा, पूर्ण ३ यहाँ से ४ तुम को

कहता हुवा रे भाई ! मुनि परमदयाल आपा ने क्या करि सन्मुख अवलोकन करै है । मानूं आप नै बुलावे ही हैं, तीसूं अबै सावधान होइ अर सिताब[1] ही चालौ, चालि कर अपना कारज सिद्ध करौ । सो वे शिष्य मुन्या के निकट जाता हुवा अर श्री गुरा की तीन प्रदक्षिणा देता हुवा अर हस्त जुगल मस्तक कै लगाय नमस्कार करता हुवा अर मुन्या का चरन कमल विषै मस्तक धारता हुवा अर चरन की रज मस्तक कै लगावता हुवा अर आपनौ धन्य-पनौ मानता हुवा अर न घना दूर, न घना नजीक[2] ऐसै विनय सजुक्त खडा रहता हुवा अर हाथ जोर स्तुति करता भया । काई स्तुति करता हुवा—हे प्रभु ! हे दयाल ! हे करुणानिधि ! हे परम उपगारी ! संसार-समुद्र-तारक, भोगन सूं परान्मुख अर संसार सूं उदासीन अर सरीर सूं निस्पृह अर स्व-पर कार्य विषै लीन-ऐसे ज्ञानामृत करि लिप्त थे जैवता प्रवर्तौ । अर म्हा ऊपर प्रसन्न होहु,प्रसन्न होहु बहुरि हे भगवान ! था विना और म्हा को रक्षक नाही, थै अबै म्हानै ससार माहि सूं काढौ अर ससार विषै पडता जीवा नै थै ही आधार छौ अर थै ही सरन छौ, तीसूं जी बात मैं म्हा कौ कल्याण होइ सोई करौ । अर म्हा कै आपकी आज्ञा प्रमान है । अर म्हे निरबुद्धि छै अर विवेक रहित छै । तीसूं विनय-अविनय मे समझा नाहीं छै । एक आपनै हैत नै चाहूँ छू । जैसे बालक माता नै लाड करि चाहै ज्यौं बोलै अर लड्डुवा[3] आदि वस्तुनै मांगै सो माता-पिता बालक जान वासूं प्रीत ही करै अर खाबानै मिष्टादिक चोखी[4] वस्तु काड[5] ही देय , तैसे ही प्रभु मै बालक छूं, आप

---

१ शीघ्र २ निकट, पास ३ लड्डू, लाडू ४ अच्छी, भली ५ निकाल (कर)

माता-पिता छौ[1] सो बालक जान म्हां ऊपरै क्षिमा करौ। अर म्हां का प्रश्न का उत्तर करौ अर संदेह का निवारन करौ, त्यौं म्हा को अज्ञान अधकार विलै जाइ। अर तत्त्व का स्वरूप प्रतिभासै आपा-पर की पिछान[2] होइ सो उपदेस म्हानै द्यो[3]। ऐसे शिष्यजन खडा-खडा वचनालाप करता हुवा पाछै चुपका होय रह्या, पाछै मुनि महाराज शिष्यजना का अभिप्राय के अनुसार मिष्ट, मधुर, आत्म-हितकारी, कोमल ऐसा अमृतमई वचनन की पंकति[4] ता करि मेघ कैसी नाई शिष्यजना नै पोषिता हुवा, अर कैसे वचन उच्चारता हुवा ? राजा कौ हे राजन् ! देव कौ देव, सामान्य पुरुष को हे पुत्र ! हे भव्य ! हे वत्स ! थै निकट भव्य छौ। अर अबै थाकै[5] पोतै[6] ससार थोरो[7] छै। तीसूं थाकै यह धर्मरुचि उपजी छै। अब थै म्हाका वचन अगी-कार करौ सौ मै थानै जिनवानी कै अनुसार कहौ छौ सो चित दै सुनौ। यौ संसार महाभयानक छै। धर्म बिना यौ संसार कोई तरह सौ बन्धु सहाई नाही। तीसू एक धर्म नै सेवौ, पाछे ऐसौ मुन्या को उपदेश पाय जथाजोग्य जिनधर्म ग्रहण करता हुवा मुनि का वा श्रावक का व्रत ग्रहण करता हुवा अर केई जथाजोग्य आखडी[8] को ग्रहण करता हुवा अर केई प्रश्न का उत्तर सुनता हुवा, केई अपना-अपना संदेह का निवारन करता हुवा—ऐसे नाना प्रकार के पुन्य उपार्ज्य[9] ज्ञान को वधाइ मुन्या नै फेरि नमस्कार करि मुन्या का गुणानै सुमिरता-सुमिरता आपनै ठिकाना जाता हुवा।

---

१ हो २ पहचान ३ दीजिए ४ पंक्ति ५ आपके, तुम्हारे ६ पास ७ थोड़ा ८ प्रतिज्ञा, नियम ९ कमा कर, अर्जन कर।

मुनि का विहार-स्वरूप

ऐठा[1] आगै मुन्या का विहार-स्वरूप कहिए है। जैसे निरबंध[2] स्वेच्छाचारी वन विषै हस्ती गमन करै है, तैसे ही मुनि महाराज गमन करै हैं सो हस्ती भी धीरे-धीरे सूंड की चालन करिता अर सूंडनै भूमिसू सपर्श करावता थका अर सूंडनै ऐठी-उठी[3] फैलावता थका अर धरतीनै सूंडसू सूंघता थकी[4] निशक निरभय गमन करै है। त्यौं ही मुनि महाराज धीरे-धीरे ज्ञान-दृष्टि करि भूमिकू सोधता निरभय, निशाक स्वेच्छा विहार-कर्म्म करै है। मुन्या कै भी नेत्रा के द्वार ज्ञान-दृष्टि धरती पर्यंत फैली है। सो याकै यही सूंड है, तीसूं हाथी की उपमा संभवै है। अर गमन करता जीवाकू विराध्या नाही चाहै है अथवा मुनि गमन नाही करै है, भूली निधिनै हेरता जाय है। अर गमन करता-करता ही स्वरूप मै लग जाय है, तब खडा रहि जाइ है। फेर उपयोग-तला उतरै है तब फेर गमन करै है। पाछै एकात तिष्ठ फेर आत्मीक ध्यान करै है अर आत्मीकरस पीवै है। जैसे कोई पुरुष क्षुधा करि पीडित तृषावान ग्रीषम समय शीतल जल करि गल्या मिश्री का डेला अत्यंत रुचिसूं गडक-गडक पीवै है अर अत्यंत तृप्त होय है, तैसे शुद्धोपयोगी महामुनि स्वरूपाचरन करि अत्यंत तृप्ति है, बार-बार वेई रसनै चाहै है। वाकू छोडि कोई काल पूर्वली बासना करि शुभ उपयोग विषै लागै है, तब या जानै हैं म्हानै ऊपर आफत आई। यह हलाहल विष सारसी आकुलता म्हासू कैसो भोगी जाइ ? अबार[5] म्हाकी आनंद रस

---

1 यहां से 2 बन्धनहीन, छुट्टा 3 यहां-वहां 4 हुआ 5 अभी

कढि गयो। फेर भी म्हाकै ज्ञानानंद रस की प्राप्ति होसी[1] की नाहीं। हाय-हाय! अबै म्हे काई करो, यो म्हाको स्वभाव छै? म्हाको स्वभाव तो एक निराकुलित, बाधा रहित, अतींद्रिय,अनोपम सुरस पीवा को है सोई म्हांनै प्राप्ति होई। कैसे प्राप्ति होई? जैसे समुद्र विषै मगन हुवा मच्छ बाह्य निकस्या न चाहै, अर बाह्य निकसवानै असमर्थ होय, त्यों ही मैं ज्ञान-समुद्र विषै डूब, फेर नाही निकस्या चाहूं हूं। एक ज्ञानरस ही को पीवो करो, आत्मीकरस बिना और काहू मैं रस नाही। सर्व जग की सामग्री चेतन रस विना और जडत्व स्वभाव नै धर्या फीकी जैसे लून विना अलूनी रोटी फीकी, तीसू ऐसो ज्ञानी पुरुष कौन है जो ज्ञानामृत नै छोडि उपाधिक आकुलता सहित दुख आचरै, कदाच न आचरै। ऐसे शुद्धोपयोगी महामुनि ज्ञानरस के लोभी अर आत्मीकरस के स्वादी निज स्वभाव तैं छूटे हैं, तब ऐसे झूरै[2] है। बहुरि आगै और भी मुन्या कौ स्वरूप कहिए हैं। वे महामुनि ध्यान हो धरै है सो मानू केवली की वा प्रतिमाजी की होड ही करै हैं। कैसे होड करै हैं? भग-वानजी थाकै प्रसाद करि म्हे भी निज स्वरूप नै पाया है। सो अबै म्हे निज स्वरूप को ही ध्यान करता थाको ध्यान नहीं करा, थांका ध्यान बीच म्हां का निज स्वरूप को ध्यान करता आनन्द विशेज होय है। म्हांकै अनुभव करि प्रतीति है अर आगम में आप भी ऐसौ ही उपदेश दियो छै।

रे भव्य जीवो! कुदेवानै पूजौ तातैं अनंत संसार के विषै भ्रमोला[3] अर नरकादिक का दुख सहोला[4] अर म्हानै

---

१ होसी २ विलाप करना, खेद-खिन्न होना ३ भ्रमण करोगे ४ सहन करोगे

पूजो तातैं स्वर्गादिक मंद क्लेश सहौला। अर निज स्वरूप नै ध्यावौला[1] तौ नियम करि मोक्ष सुख नै पावोला[2]। तीसू भगवानजी मैं थानै ऐसा उपदेश करि सर्वज्ञ, बीतराग जान्यां अर जे सर्वज्ञ, वीतराग हैं ते ही सर्व प्रकार जगत विषै पूज्य है—ऐसा सर्वज्ञ, बीतराग जान भगवानजी म्है थानै नमस्कार करू छू। सर्वज्ञ विना तौ सर्व पदार्थों का स्वरूप जान्या जाइ नाही अर वीतराग विना राग-द्वेष को वस करि यथार्थ उपदेश दिया जाइ नाही। कै[3] तौ अपनी सर्व प्रकार निंदा का ही उपदेश है कै अपनी सर्व प्रकार बडाई महंतता का उपदेश है। सो ए लक्षण भलीभांति कुदेवादिक विषै समवै है, तीसू भगवानजी म्है भी बीतराग छा। तीसू म्हाका स्वरूप की बडाई करा छा, तौ म्हानै दोष नाही। एक राग-द्वेष ही का दोष है। सो म्हाकै राग-द्वेष आपका प्रसाद करि विलै गया है। बहुरि कैसे है शुद्धोपयोगी महामुनि? जाकै राग अर द्वेष समान है। अर जाकै असत्कार-पुरस्कार समान है अर जाकै रतन और कौडी समान है अर जाकै उपसर्ग-अन-उपसर्ग समान है, जाकै मित्र-शत्रु समान हैं। कैसे समान हैं? सो कहिए है। पूर्व तौ तीर्थंकर, चक्रवर्ती वा बलभद्र वा कामदेव वा विद्याधर वा बडा मडलेश्वर मुकुटबद्ध राजा इत्यादि बडा महत पुरुष मोक्ष-लक्ष्मी के अर्थ ससार, देह, भोग सू बिरक्त होइ राज्यलक्ष्मीनै बोदा तृण की नाई छोडि ससार-बधन नै हस्ती की नाई बधन तोड वनके विषै आइ दीक्षा धरै हैं, निर्ग्रंथ दिगम्बर मुद्रा आदरै हैं। पाछै परिणामो का माहात्म्य करि नाना प्रकार की रिद्धि फुरै है।

---

1 दौडोगे, जाओगे 2 प्राप्त करोगे, पाओगे 3 या

कैसी है रिद्धि ? कायबल रिद्धि का बल करि चाहे जैसा छोटा-बडा शरीर बना लेहै, वा सारखी समर्थता होय है। अर वचनबल रिद्धि करि द्वादशांग शास्त्र अंतर्मुहूर्त मैं चिंतवन कर लेहैं अर आकाश विषै गमन करै हैं। और जल विषै ऊपर गमन करै है; पन[1] जल का जीव कौ विरोधै नाहीं है अर धरती विषै डूबि जाइ है, पन पृथ्वीकाय के जीव कौ विरोधै नाही है और कही विष बहराया है अर शुभदृष्टि करि देखै तौ अमृत होइ जाय है पन ऐसे मुनिमहाराज करै नाही। और कही अमृत बहराया है अर मुनि महाराज क्रूरदृष्टि करि देखै तौ विष होइ जाइ, पन ऐसे भी करै नाही। और दया, शांति दृष्टि करि देखै तौ केतइक योजन पर्यंत का जीव सुखी होइ जाइ अर दुर्भिक्ष आदि ईति-भीति दुख मिटि जाइ। सो ऐसो शुभ रिद्धि दयालु बुद्धि करि फुरै है तौ दोष नाही। अर क्रूर दृष्टि करि देखै तौ केताइक[2] जोजन के जीव भस्म होइ जाइ, पन ऐसे करै नाही।

अर जाका शरीर का गंधोदक व नवों द्वारों को मल अर चरना-तरली धूल अर शरीर का स्पर्शा पवन शरीर कू लगै, तब लागता ही कोढ आदि सर्व प्रकार के रोग नाश कू प्राप्त होइ नियम करि। और मुनि महाराजजी गृहस्थ कै आहार किया छे। तिनके भोजन विषै नाना प्रकार की अटूट रसोई होय जाइ। तिह दिन सर्व चक्रवर्ती का कटक[3] जीमै तौ भी टूटै नाही अर चार हाथ की रसोई के क्षेत्र मैं ऐसी अवगाहना शक्ति होय जाइ सो चक्रवर्ती का कटक सर्व समाय जाइ। अर जुदा-जुदा बैठि भोजन करै, तब भी सकडाई होइ नाही। अर जेठै मुनि अहार

---

१ परन्तु २ कितने ३ सेना-समूह

करैं, तीके दुवारै[1] पंचाचार्य[2] होइ। पंचाचार्य के नाम हैं— रत्नवृष्टि, पहुपवृष्टि, गंधोदकवृष्टि, जय-जयकार शब्द अर देवदुंदुभि ये पंचाचार्य जाननै। अर सम्यक्दृष्टि श्रावक मुन्याने एक बार अहार देय तौ कल्पवासी देव ही होय। अर मिथ्यादृष्टि एक बार मुन्याने अहार देय तौ उत्तम भोगभूमिया मनुष्य ही होय पाछे परंपरा मुक्ति जाये। ऐसे शुद्धोपयोगी मुन्याने एक बार भोजन देवा का फल निपजै। और मुनि मति श्रुति, अवधि, मनपर्यय ज्ञान का धारी होय, इत्यादि अनेक प्रकार के गुण सयुक्त होते संतै भी कोई रंक पुरुष आइ महामुनि कू गाली दै वा उपसर्ग करै तो वासू कदाचित् भी क्रोध न करै। परम दयालु बुद्धि करि वाका भला चाहै है और ऐसा विचारै ए भोला जीव हैं, याकौ आपना हित-अहित की खबर नाही। ये जीव या परिणामा करि बहुत दुख पावसी। म्हा कौ तौ कछु बिगार है नाही, परंतु ए जीव ससार-समुद्र माही डूबसी। तीसू जो होइ तो याको समझाइये, ऐसा विचार करि हित-मित वचन दया अमृत करि झरता भव्य जीवन कू आनंदकारी ऐसे वचन प्रकाशै—

हे पुत्र! हे भव्य! तू आपा नै ससार-समुद्र विषै मति डोबै, या परिणामो का फल तोनै[3] खोटा लागसी अर तू निकट भव्य छै अर थारा आयु भी तुच्छ रह्या है। तीसू अबै सावधान होइ जिनप्रणीत धर्म अगीकार कर। ई धर्म बिना तू अनादिकाल को संसार विषै रुल्यो अर नरक, निगोद आदि नाना प्रकार दुख सह्या सो तूं भूल गया।

---

१ द्वार पर २ पांच आश्चर्य ३ तुझे

ऐसा श्री गुरां का दयालु वचन सुन वह पुरुष संसार का भय थकी कंपायमान होता हुवा अर शीघ्र ही गुरां के चरना कू नमस्कार करता हुवा अर आपना किया अपराध नै निंदता हुवा अर हाथ जोरि खडा होय ऐसा वचन कहता हुवा, हे प्रभु ! हे दयासागर ! मो ऊपर क्षिमा करौ, क्षिमा करौ। हाय ! हाय ! अबै हू कांई करू, यौ म्हारौ पाप निवृत्ति कैसे होइ ? म्हारे कौन पाप उदय आयौ सो म्हारे या खोटी बुद्धि उपजी, बिना अपराध म्हा मुन्या नै उपसर्ग कियौ। अर जाका चरनां की सेवा इन्द्रादिक देवानै भी दुर्लभ है। अर मैं रंक, इहै परम उपगारी त्रैलोक्य करि पूज्य तानै मैं कांई जाणि उपसर्ग कियो। हाय ! हाय ! अब म्हारौ काई होसी ? अर हूँ किसी गति जासू ? इत्यादि ऐसे वह पुरुष बहुत विलाप करतौ हुवौ अर हाथ मसलतो हुवो अर वारवार मुन्या कै चरननै नमस्कार करतो हुवो। जैसे कोई पुरुष दरयाव[1] विषै डूबतौ जिहाजनै अवलंबै तैसे गुरा का चरन विषै अवलम्बतौ हुवौ अर यह निश्चै जानतो हुवौ अबै तो म्हानै ऐही का चरन कौ सरन छै, अन्य सरन नाही। जो ई अपराध सू बचौ तौ याही के चरना का सेवनि करि बचू छूं और उपाइ नाही, म्हारौ, दुख काटबानै एही समर्थ छै। पाछै ई पुरुष की धरमबुद्धि देख श्री गुरु फेर बोल्या—हे पुत्र ! हे वत्स ! तू मति डरपै, थारै संसार निकट आयो छै। तोसूं अबै थै[2] धर्मामृत रसायननै पी अर जरा-मरन दुख का नाश कर। ऐसा अमृतमई वचन करि वे पुरुषनै पोखता हुवा, जैसे ग्रीषम समय कर मुरझाई वनस्पतिकूं मेघ पोखै तैसे पोखता हुवा सो महन्त

---

१ समुद्र २ तुम

पुरुषां का यह स्वभाव ही है सो औगुण ऊपर गुण ही करै। अर दुर्जन पुरुषां कौ एह स्वभाव ही है सो गुण ऊपर भी औगुण ही करै। ऐसे गुरु तारवा समर्थ क्यों नाही होय ? होय ही होय। बहुरि शुद्धोपयोगी, वीतराग, ससार-भोग-सामग्री सूं उदासीन, शरीर सूं निस्पृह, शुद्धोपयोगी, थिरता के अर्थि शरीरनै आहार कैसे दे, ताकूं कहिए है।

मुन्या कै आहार के पाँच अर्थ है-प्रथम तो गोचरी कहिए है। जैसे गऊनै रक वा पुन्यवान कोई घासादि डारै सो चरवा[1] ही सौ प्रयोजन है और कोई पुरुष सौ प्रयोजन नाही। त्यौ ही मुन्यानै भावै तो रक पडिगाह अहार द्यो, भावै राजादिक पडिगाहि अहार द्यो। सो अहार लेवास्यो तौ प्रयोजन है अर रक वा पुन्यवान पुरुष सूं प्रयोजन नाही। बहुरि दूसरा अर्थ भ्रामरी कहिए, जैसे भौंरा उडता फूल की वासना लेय फूल नै विरोधै नाही, त्यौ ही मुनिराज गृहस्थ के आहार ले, परन्तु गृहस्थ ने असमात्र खेद उपजै नाही। बहुरि तीसरा अर्थ दाहश्रमण कहिए, जैसे लाय[2] लागी होय तीनै जीती[3] प्रकार बुझाय देना। त्यौ ही मुन्या कै उदराग्नि मोई भई लाय, तीनै जैसौ-तंसो अहार मिलै ताहि करि बुझावै है, आछा[4] -बुरा स्वाद का प्रयोजन नाही। बहुरि चौथा अक्षमृक्षण कहिए है, जैसे गाडी वाग्या[5] विना चालै नाही, त्यौ ही मुनि या जानै यह शरीर आहार दिया बिना चालै नाही, सिथिल होसी। अर म्हानै यासू मोक्षस्थान विषै पहुँचा, जेतो यासू काम है। तातै याकू आहार देय, याकै आसरे सजमादि गुन एकठा[6] करि मोक्षस्थान विषै पहुचना। बहुरि पाँचवा गर्तपूर्ण कहिए,

---

१ चरना, खाना २ अग्नि ३ जिस-तिस ४ अच्छा ५ औगन, चिकनाई
६ एकत्र

जैसे कोई पुरुष के खाई-खात आदि खाडा[1] खाली होय गया होय, तीनैं वो पुरुष भाटा[2], माटी, ईंटा का जोडि करि पूरि दिया चाहै, त्यौ ही मुन्या के नीहारादिक करि खाडा कहिए, उदर खाली हो गया होय तो जीती[3] आहार करि वाकी भरिहै। ऐसा पाच प्रकार अभिप्राय जानि वीतरागी मुनि शरीर की थिरता कै अर्थि आहार लेय हैं। शरीर की थिरता करि परिणामा की थिरता होहै। अर मुन्या कै परिणाम बिगडवा-सुधरवा को ही निरन्तर उपाय रहै है। जौ[4] बात मैं राग-द्वेष न उपजै तिहि क्रिया रूप प्रवर्तें और प्रयोजन नाहीं।

नवधा भक्ति

सो ऐसा शुद्धोपयोगी मुन्या नै गृहस्थ दातार का सात गुन संजुक्त नवधा भक्ति करि आहार देहैं सो ही कहिये है। **प्रतिग्रहण** कहिए, प्रथम तो मुन्या नै पडगाहै। पाछै **ऊँचा स्थान** कहिये, मुन्या नै ऊँचा अस्थान विषै अस्थापै। पाछै **पादोदक** कहिये, मुन्या का पद-कमल प्रक्षालन करै सो भया गंधोदक सो अपना मस्तकादि उत्तम अंग विषै कर्म के नाश के अर्थ लगावै अर आपनै धन्य मानै वा कृत-कृत्य मानै, पाछै **अर्चन** कहिये, मुन्या की पूजा करै। पाछै **प्रणमन** कहिये, मुन्या का चरणा नै नमस्कार करै। बहुरि **मनशुद्धि** कहिए, मन प्रफुल्लित, महाहर्षयिमान होय। बहुरि **वचनशुद्धि** कहिये मीठा-मीठा वचन बोलै। बहुरि **कायशुद्धि** कहिये, विनयवान होय शरीर के अगोपाग कूं नम्रीभूत करै। बहुरि **ऐषणाशुद्धि** कहिये, दोष रहित शुद्ध आहार देइ। ऐसैं नवधा भक्ति का स्वरूप जानना।

---

१ गढ्ढा २ पत्थर ३. जिस-तिस. ४ जिस

दातार के सात गुण

आगै दातार के सात गुण कहिये है। श्रद्धान होय, भक्तिवान होय, शक्तिवान, विज्ञानवान होय, शांति युक्त होय। मुन्यानै आहार देय लौकिक फल की वांछा न करै, क्षमावान होय, कपट रहित होय, अधिक सयानो न होइ अर विषाद रहित होइ, हरष संजुत्त होइ, अहंकार रहित होइ—ऐसै सात गुन सहित जानना। सोई दातार स्वर्गादिका सुख भोगि परपराय मोक्ष-स्थानक पहुँचै है। ऐसा शुद्धोपयोगी मुनि तरण-तारण है। आचार्य, उपाध्याय, साधु ताके चरन-कमल कौ म्हारा नमस्कार होहु। अर मुने! कल्याण के कर्ता होहु। अर भवसागर विषै पडता नै राखौ। ऐसा मुन्या का स्वरूप-वर्णन किया। सो हे भव्य! जौ तू आपणा हेतनै वाछै तौ सदैव ऐसा गुरां का चरणारविंद सेव, अन्य का सेवन दूर ही तै तजि। इति गुरु-स्वरूप-वर्णन सम्पूर्णम् ॥१॥

ऐसे आचार्य, उपाध्याय, साधु ये तीन प्रकार के गुरां का वर्णन किया, तीनों ही शुद्धोपयोगी हैं। तातै समानता है, विशेषता नाही। ऐसै श्रीगुरा की अस्तुति करि वा नमस्कार करि वा ताके गुण-वर्णन कह्या। आगै ज्ञानानन्दपूरित निर्भर-निजरस- श्रावकाचार नाम शास्त्र जिनवाणी कै अनुसार मेरा बुद्धि माफिक निरूपण करूंगा। सो कैसा है यह शास्त्र ? क्षीर समुद्र की शोभानै धरै है। सो कैसा है समुद्र ? अत्यत गभीर है अर निर्मल जल करि पूर्ण भर्या है। अर अनेक तरगा का समूह ता करि व्याप्त है। ताका जल कू श्रीतीर्थंकरदेव भी अगीकार करै हैं, त्यों ही

यो शास्त्र अर्थ करि अत्यंत गंभीर है अर स्वरस-रस करि पूर्ण भर्या है सोई जल है अर सर्व दोष रहित अत्यन्त निर्मल है अर ज्ञान-लहर करि व्याप्त है, ताकौ भी श्रीतीर्थंकरदेव सेवे हैं। ऐसे शास्त्र को म्हारा नमस्कार होहु। क्या वास्ते नमस्कार—होहु ? ज्ञानानंद की प्राप्ति के अर्थं और प्रयोजन नाही। आगैं करता[1] आपणा[2] स्वरूप कौ प्रगट करै है वा आपणा अभिप्राय जणावै है। सो कैसा हूँ मैं ? ज्ञानज्योति करि प्रगट भया हूँ, तातैं ज्ञान ही नै चाहूँ हू। ज्ञान छै सो म्हारा निज स्वरूप छै। सोई ज्ञान-अनुभवन करि मेरे ज्ञान ही की प्राप्ति होहु। मै तौ एक चैतन्यस्वरूप ता करि उत्पन्न भया। ऐसा जो शांतिकरस ताकै पीबा कूं उद्यम किया है ग्रन्थ बनावा का अभिप्राय नाही। ग्रन्थ तौ बडा-बडा पडितानै घना ही बनाया है, मेरी बुद्धि कांई ? पुन उस विषै बुद्धि की मंदता करि अर्थ विशेष भासता नाहीं। अर्थ विशेष भास्या विना चित्त एकाग्र होता नाहीं। अर चित्त की एकाग्रता विना कषाय गलै नाहीं। अर कषाय गल्या विना आत्मीकरस उपजै नाहीं। आत्मीकरस उपज्या बिना निराकुलित सुख ताको भोग कैसे होय ? तातैं ग्रन्थ का मिस करि चित्त एकाग्र करिवा का उद्यम किया। सो इह कार्य तौ बडा है अर हम योग्य नाही, ऐसा हम भी जानै, परन्तु "अर्थी दोष न पश्यति"। अर्थी पुरुष छै ते शुभाशुभ कार्य कूं विचारै नाही, आपना हेतनै ही चाहै है। तातै मै निज स्वरूपानुभवन का अत्यन्त लोभी हौं। तातै मेरे ताईं और कछु सूझता नाही। मेरे ताईं एक ज्ञान ही ज्ञान सूझता है। ज्ञान भोग विना और कांईं ? तातैं मैं

---

[1] कर्ता, रचयिता [2] अपना, निज आत्म द्रव्य

और सर्व कार्य छोडि ज्ञान ही कूं आराधूं छूं। अर ज्ञान ही की सेवा करू छूं अर ज्ञान ही का अर्चन करूं छूं अर ज्ञान ही के सरणे रह्या चाहू छू।

बहुरि कैसा हूँ मैं ? शुद्ध परिणति करि प्राप्त भया हू अर ज्ञान-अनुभूति करि सयुक्त हू अर ज्ञायक स्वभाव नै धर्‌या हू। अर ज्ञानानद सहज रस ताका अभिलाषी हू वा भोक्ता हूं, ऐसा मेरा निज स्वभाव छै। ताके अनुभवन का मेरे ताई[1] भय नाही। आपनी निज लक्ष्मी का भोक्ता पुरुष नै भय नाही, त्यौं ही मोनै स्वभाव विषै गमन करता भय नाही। या बात न्याय ही है। आपना भाव का ग्रहण करता कोई दड देवा समर्थ नाही, पर द्रव्य का ग्रहण करता दड पावै है। तातै मैं (मौने) पर द्रव्य का ग्रहण छोडा है। तीसू मैं निसक स्वच्छद हुआ प्रवर्तो हौ, मेरे ताईं कोई भय नाहीं। जैसे शादूंलसिंघ के ताईं कोई जीव-जतु आदि बैरी का भय नाही, त्यो ही मेरे भी कर्म रूपी बैरी ताका भय नाही। तीसू ऐसा जान अपनै इष्ट देवता कू विनय पूर्वक नमस्कार करि आगै ज्ञानानन्दपूरित निर्भर-निजरस-श्रावकाचार नाम शास्त्र ताका प्रारभ करिये है।

इति श्री स्वरूप-अनुभूति-लक्ष्मी करि आभूषित ऐसा मैं जु हौ सम्यक्‌दृष्टि-ज्ञानी आत्मा सोई भया ज्ञायक परम पुरुष ता करि चित्त ज्ञानानन्दपूरित-निर्भर-निजरस नाम शास्त्र ता विषै वदन ऐसा जो नामाधिकार ता विषैं अनु-भवन पूर्वक वर्णन भया।

---

१ लिए

२ श्रावक-वर्णनाधिकार

वंदित श्रीजिनदेव पद कहूं श्रावकाचार।
पापारंभ सबै मिटै, कटै कर्म अघ-छार ।।१।।

अथ अपने इष्टदेव कू नमस्कार करि सामान्यपनै करि श्रावकाचार कहिये है। सो हे भव्य ! तू सुन। श्रावक तीन प्रकार है–एक तो पाक्षिक, एक नैष्ठिक, एक साधक। सो पाक्षिक कै देव, गुरु, धर्म की प्रतीति तौ यथार्थ होय। अर आठ मूलगुण ता विषै अर सात विसन ता विषैं अतीचार लागै। अर नैष्ठिक कै मूलगुण विषै वा सात विसन ता विषैं अतीचार लागै नाहीं। ताका ग्यारा भेद हैं, ताका वर्णन आगै होयगा। अर साधक अंत विषै संन्यासमरन करै है। ऐसे ये तीनू श्रावक देव, गुरु,धर्म की प्रतीति सहित है अर आठ सम्यक्त्व के अग सहित है, ताकै नाम कहिए है–नि शंकित, नि कांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपगूहन, स्थिति-करण, वात्सल्य, प्रभावना। ये आठ अर आठ सम्यक्त्व के गुण सहित है, ताके नाम कहिए है–करुणा, वात्सल्य, सज्जनता, आपनिंदा, समता, भक्ति, विरागता, धर्मानुराग, ये आठ है। अर पचीस दोष ताके नाम कहिए है–जाति, लाभ, कुल, रूप, तप, बल, विद्या, अधिकार- इन आठ का गर्व तै आठ मद जानना। शंका,कांक्षा, जुगप्सा, मूढदृष्टि, परदोष-भाषण, अस्थिरता, वात्सल्यरहित, प्रभावनारहित– ए आठ मल सम्यक्त्व का आठ अग त्यासूं उलटा जानना। कुदेव, कुगुरु, कुधर्म, इन तीन का धारक, पाछै वाकी सरा-हना करनी–ए षट् अनायतन अर देव, गुरू, धर्म इन विषै

मूढदृष्टि ऐसे पचीस दोष इन करि रहित ऐसे निर्मल दर्शन करि संयुक्त तीन प्रकार के जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट संयमी जानने। पाक्षिक विषै अर साधक विषैं ग्यारा भेद नाहीं हैं, नैष्ठिक विषै ही है। सो पाक्षिक कौ तौ पांच उदंबर पीपल, बड, ऊमर, कठूमर, पाकर इन पांचनि का फल अर मद्य, मधु, मास सहित ये तीन मकार याका प्रत्यक्ष तो त्याग है। अर आठ मूलगुण विषै अतीचार सो कहिए है। मास विषै तौ चाम के संयोग का घृत, तेल, हींग, जल अर रात्रि का भोजन अर विदल[1] अर दोय घडी का छाण्या उपरात जल अर बीधा अन्न इत्यादि मर्यादा करि रहित वस्तु ता विषै त्रस जीवा की वा निगोद की उत्पति है, ताका भक्षण का दोष लागै है। अर प्रत्यक्ष पांच उदंबर अर तीन मकार का भक्षण नाहीं करै है अर सात विसन भी नाहीं सेवै है। अर अनेक प्रकार की आखड़ी संजम पालै है अर धर्म की जाकै विशेष पक्ष है– ऐसा पाक्षिक जघन्य संयमी जानना। सो यह प्रथम प्रतिमा का धारक भी नाही है। अर प्रथम प्रतिमा आदि सयम का धारक का उद्यमी भया है। तातै याका दूजा नाम प्रारब्ध है।

नैष्ठिक श्रावक के भेद

नैष्ठिक का ग्यारा भेद–१ दर्शन, २ व्रत, ३ सामायिक, ४ प्रोषध, ५ सचित्त-त्याग, ६ रात्रि-भुक्ति वा दिन विषै कुशील का त्याग, ७ ब्रह्मचर्य, ८ आरंभ-त्याग, ९ परिग्रह-त्याग, १० अनुमति-त्याग, ११ उद्दिष्ट-त्याग। ऐसैई ग्यारा

---

१ द्विदल, धान्य आदि दुफाड़ दालों को दही-छाछ के साथ मिलाकर खाना।

भेद विषैं असंजम का हीनपना जानना । तातैं याका दूजा नाम घटमान है । अर तीजा साधक ताका दूसरा नाम निपुण है ।

भावार्थ—**पाक्षिक तौ संयम विषैं उद्यमी भया है, करबा नाहीं लागे है अर साधक सम्पूर्ण कर चुक्या ।** ऐसा प्रयोजन जानना । अबै पाक्षिक वा साधकनै छोडि नैष्ठिक तिनका सामान्यपनैं वर्णन करिये है ।

ग्यारह प्रतिमाओं का वर्णन

प्रथम दर्शन प्रतिमा कौ धारक तौ सात व्यसन अतीचार सहित छोडै अर आठ मूलगुण अतीचार रहित ग्रहण करै । अर दूसरो व्रत प्रतिमा कौ धारक पाच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत इन बारौं व्रत का ग्रहण करै । अर तीसरो सामायिकव्रत धारक अथौन[१] सबारै[२] वा मध्यान्ह[३] विषै सामायिक करै । अर चौथो प्रोषधव्रतकौ धारक आठै, चौदस पर्वी[४] तिन विषैं आरभ छोडि धर्मस्थान विषैं बसै । अर पाचमो सचित्तत्यागव्रत कौ धारक सचित्त कौ त्याग करै । रात्रिभुक्तिव्रत कौ धारक रात्रि-भोजन छोडै अर दिन विषैं कुशील छोडै । अर सातमो ब्रह्मचर्यव्रत कौ धारक रात्रि वा दिन विषै मैथुन सेवन तजै । अर आठमो आरंभव्रत कौ धारक आरंभ तजै । अर नवमो अपरिग्रहव्रत कौ धारक परिग्रह तजै अर दशमो अनुमतिव्रत कौ धारक पाप-कार्य का उपदेश वा अनुमोदना तजै । अर ग्यारमो उद्दिष्टव्रत कौ धारक उपदेश सौ भोजन तजै । ऐसे सामान्य लक्षण जानना । आगै इनका विशेष वर्णन करिये है ।

---

१ सन्ध्या काल, सांझ   २ प्रातः काल, सबेरे   ३ दोपहर   ४ पर्व के दिन

दर्शन प्रतिमा

सो दर्शन प्रतिमा कौ धारक आठ मूलगुण पूर्वै कह्या सो ग्रहण करै अर सात विसन तजै अर इनका अतीचार तजै। अथवा केई आचार्य आठ मूलगुण ऐसै कह्या है–पाच उदंबर का एक अर तीन मकार का तीन, सो च्यार तौ पूर्वै ऐसै आठ कह्या। ते ही भया अर च्यार और जानना सोई कहिये हैं–नवकार मत्र का धारण अर दया-चित्त अर रात्रि-भोजन का त्याग अर दोय घडी उपरात कौ अनछान्या जल का त्याग-ऐसे आठ मूलगुण जानना। आगै सात व्यसन के नाम कहिये है—१ जुवा, २ मास, ३ दारू, ४ वेश्या, ५ परस्त्री-सेवन, ६ शिकार, ७. चोरी-ये सात व्यसन ज्या सेया राजा दड देइ अर लौकिक विषै महानिदा पावै ऐसा जानना। आगै मूलगुण वा सात व्यसन ताका अतीचार कहिये है। प्रथम दारू का अतीचार–आठ पहर उपरात अथाणा अर चलितरस अर जो वस्तु फूलन कै आई, ता वस्तु का भक्षण न करै, इत्यादि। अर मास का अतीचार–चाम के सग हीग, घृत, तेल, जल इत्यादि। शहद का अतीचार–फूल का भक्षण अर शहद का अजन ओषधि अरथ लेना इत्यादि। अर पाँच उदबर का अतिचार अजान फल का भक्षण न करै अर बिना शोध्या फल का भक्षण न करना, ऐसे जानना। ये आठ मूलगुण के अतीचार जानना।

आगै सात व्यसन के अतीचार कहिये हैं। प्रथम जुवा कौ अतीचार जानना-होड आदि। मास-मदिरा के पूर्वै कहि आये। परस्त्री के अतीचार-कुवारी लडकी सौं क्रीडा करबौ अर अकेली स्त्री सौ एकात बतलावौ, इत्यादि। अर

वेश्या के अतीचार–नृत्यादि वादित्र-गान ता विषैं आसक्ति होय देखै अर सुने अर वेश्या सौ रमै, त्यां पुरुषा सौं गोष्ठी राखै अर वेश्या के घर विषै जाइ, इत्यादि। अर शिकार के अतीचार-काष्ठ, पाषाण, मृत्तिका, धातु, चित्राम-लेखन के घोडा, हाथी, मनुष्य आदि जीवन के आकार बनाया हुवा ताका घात करना, इत्यादि। चोरी के अतीचार-पराया धन कौ लेना वा जोरावरी खोस लेना वा थोडा मोल दे घणा मोल की वस्तु लेनी, तौल में घाट देना, बाड[१] लेना, धरोहर राख मेलनी, भोले मानुष का माल चुरावना, इत्यादि। ऐसे सात व्यसनके अतीचार जानना। ये अतीचार छौडै सो तौ प्रथम प्रतिमा का धारक श्रावक अर अतीचार न पालै सौ पाक्षिक श्रावक ऐसा जानना। आगै और भी केतीक[२] बाते नीति पूर्वक प्रथम प्रतिमा कौ धारक पालै सो कहिये है। अनारभ विषै जीव का घात न करै।

भावार्थ–हवेली, महल आदि का करावा विषै हिंसा होय छै। सो तौ होय ही छै, परन्तु बिना आरभ जीवा नै मारै नाही अर उत्कृष्ट आरभ न करै।

भावार्थ–खोटा व्यापार जिह मै[३] घणी हिंसा होय, घणी झूठ होय वा जगत विषै निंदा होय, हाड-चाम आदि अथवा ता विषै घणी तृष्णा बढै, इत्यादि उकृष्ट का स्वरूप जानना। अर निज स्त्री कौ जिहि-तिहि[४] प्रकार धर्म विषैं लगावै। स्त्री की धर्म-बुद्धि सौं धर्म-साधन भला सधै है। अर आपना धर्म का अनुराग बहुत सूचै है। अर धर्माचार सहित लोकाचार उलंघै नाही।

---

१ बढ़ती २ कितनी ३ जिस में ४ जैसे-तैसे

भावार्थ—जा विषै लोक निंदा करै, ऐसा कार्य कौन करै ? परन्तु जा विषै अपना धर्म जाय अर लोक भला कहै है सौ ऐसा नाहीं कै धर्म छोडि लोक का कह्या कार्य कौ करै। तातै **अपना धर्म कौ राखि लोकाचार उलंघै नाहीं**। अर स्त्री नै पुरुष की आज्ञा माफिक रहवो उचित छै। पतिव्रता स्त्री की यह रीति छै। अर यह धर्मात्मा पुरुष है सो षडावश्यक करि भोजन करै सो कहिये है। सो प्रभात ही तौ श्री अरहत देवता की पूजा करै। पाछै निर्ग्रंथ गुरा की सेवा करै, शक्ति अनुसार तप अर संयम करै। पाछै शास्त्र-श्रवण, पठन-पाठन करै, पाछै पात्र कै ताईं वा दुखित जीवां के ताई च्यारि प्रकार दान दे। अर च्यार भावना निरन्तर भावे सो सर्व जीवा सू मैत्री भाव राखै।

भावार्थ—सर्व जीवा नै आपणा मित्र जानै, आप सारिखो स्वरूप वाकौ भी जानै। तीसू काइनै विरोधै नाही। सर्व जीवा की रक्षा पालतौ होय। अर दूसरी प्रमोद भावना सो आपसू अधिक गुणवान पुरुष त्यासू तौ विनयवान प्रवर्तै। अर तीसरी कारुण्य भावना सो दुखित जीवा कूं देखिवा की करुणा करै। अर जी प्रकार को दुख होय तोनै मेटै अर आपणो सामर्थ्य नही होय तौ दया रूप परिणाम ही करै। वानै दुखी देखि निर्दय रूप कठोर परिणाम नही राखै। कठोर परिणाम छै सो महाकषाय छै। अर कोमल परिणाम छै सो निःकषाय छै सोई धर्म छै। अर चौथी माध्यस्थ्य भावना सो विपरीत पुरुष तासू मध्यस्थ रूप रहै। नहीं तौ वेसौ[1] राग करे, नही वेसौ द्वेष करै।

---

१ उनसे

भावार्थ—कोई हिंसक पुरुष छै अथवा मिथ्यात्वी पुरुष छै अथवा सप्तव्यसनी पुरुष छै सो वानै धर्मोपदेश समझै तो समझाय पाप कमाया छुडाय दीजे, नहीं समझै तौ आप माध्यस्थ्य रूप रहिजे । ऐसै च्यार भावना कास्वरूप जानना। आगै और भी केतीक वस्तु का त्याग करै सो कहिये है। अर वीधा[1] अन्न अभक्ष्य कहिए । लूणी[2] अर द्विदल कहिए दुफाडा नाज का संयोग सहित अथवा काष्ठ चिरौंजी आदिक वृक्ष का फल वा दही, छाछ का खाणां । अर चौमासे तीन दिन, शीयालै[3] सात दिन, उन्हाले[4] पाँच दिन उपरांत का आटा भक्षण नाही करणा । दोय दिन उपरांत का दही न खाना ।

भावार्थ—आज का जमाया कालि खाना, जामन दिया पाछै अष्ट प्रहर की मर्यादा है । अर वीधी वस्तु का भक्षण अर दही गुड मिलाय खाने वा जलेबी इत्यादि विषै माखण मे त्रस जीव वा निगोद उपजै है । तातै याका त्याग करना । अर दोय घडी नैनू की मर्यादा है वा कोई आचार्य शास्त्र विषै चार घडी की मर्यादा भी लिखे है । तातैं दोय घडी वा च्यार घडी पाछै जीव उपजे हैं, परन्तु ये अभक्ष्य हैं । तातैं तुरन्त का बिलोया भी खाना उचित है नाहीं । याका खावा विषैं मास कैसा दोष है । या विषै राग भाव बहुत आवै छै । अर बैंगन अर साधारण वनस्पति अर घोलबडा अर पाला[5] अर गडा[6] अर मृत्तिका अर विष अर रात्रि-भोजन का भक्षण तजै । अर सूखा पाच उदबर अर बैंगन ताका भी भक्षण नाही करै, याका खाया सूं रोग भी

---

१ घुना हुआ, कीड़ा लगा हुआ २ नैनू, मक्खन ३ सर्दियों मे ४ गर्मियों मे ५ बर्फ ६ ओला

बहुत उपजै है। अर चलित रस विषै तामैं बासी रसोई, मर्यादा उपरांत आटा, घी व तेल, मिठाई का भक्षण तजै अर आम आदि मेवा ताका रस चलि गया होय ताका भक्षण नाहीं करै है। अर बडे-बडे झाऊ बेर कोमल बहुत है सो हाथ सू फोडै तौ वाकी दया पलै नही, लट मरै तीसूं तज ही दै। ये काना बहुत होय है, ता विषै लट होय है अर सहज का-सा लागा आम विषै भी सूत का तार सरीखा लट होय है सो बिना देख्या चूसै नाही। और काना साठा वा कानी काकडी इत्यादि काना फल ता विषै लट उपजै छै, ताका भक्षण तजै। और सियालै साग आदि हरित-काय ता विषै बादला का निमित्त करि लटा बहुत उपजै छै, ताका भक्षण तजै। अर कोला,[1] तरबूज आदि बडा फल याका ल्यावा विषै वा याका खावा विषै निर्दईपणा विशेष उपजै है। मलिन चित होय है अर याको हस्त विषै छुरी याकू विदारै तब बडा त्रस जीवा की-सी हिंसा किये कै-सै परिणाम विषै प्रतिभासै है। तातै बडा फल का दोष विशेष है। अरकेला ताका भक्षण तजै, या खाया राग बहुत उपजै है। अर फूल जाति वा नरम हरितकाय वा जाकी छालि कहिये, छोडा[2] जाडा होय वा वट के टूटै वा साठा[3] आदि की पेली[4] वा काकडी आदि ताकी लकीर अर निबू, दाड्यो[5] आदि ताकी जाली ये गूढ होय याका व्यक्त-पना नाही भासै, ताका भक्षण तजै।

भावार्थ—ऐसी वनस्पति विषै निगोद होय है। इत्यादि जीव हरितकाय विषै निगोद होय है। जा विषै त्रस जीव

---

१ कद्दू, काशीफल २ मोटा छिलका ३ गन्ना ४ पोर ५ इमली का बीज, चिया ६ कूप्पा, चर्मनिर्मित पात्र

होय ते वनस्पति सर्व ही तजनी उचित है और आगै ऐसा व्योपारादि नाहीं करै, ताका व्यौरा—लोह, लकडा, हाड, चाम, केश, हीग-सीधडा[५] का घृत, तेल, तिल, लूण, हलद, साजी, लोद रांग, फिटकरी, कसूम,[१] नील, सावन[२], लाख, विष, सहत इत्यादि पसारीपणा का सर्व ही व्यापार निषिद्ध है। अर हरितकाय का व्योपार अर वीधा अन्न आदि जीव विषै त्रस जीव विषै का घात बहुत होइ है। ऐसा सर्व ही व्योपार तजै और चांडाल, कसाई, धोबी, लुहार, ढेढ[३], डूम,[४] भील, थोरी,[५] वागरी,[६] साठ्या,[७] कूंजरा,[८] नीलगर[९] ठग, चोर, पासीगर[१०] इत्यादि याका वाणिज कहिए वाकू वस्तु मोल बेचनी वा वाकी वस्तु मोल लैनी, ताका त्याग करै।वा हलवाईगर की वस्तु तजै वा धोबी पासि धुपाई वा छीपा, नीलगर पासि रंगाय कपडा का बेचना, ताकू तजै वा खेती करावै नाही और भाड विषै वस्तु सिकावै नाहीं ।। भंडभूजा वा लुहार ताकू द्रव्य उधार दे नाही वा कोयला की भट्टी करावै नाही वा दारू की भट्टी करावै नाही वा सुरा कहिए दारू ताकूं करावै नाही वा कोयला वा मदिरा वा सुरा के करावने वाले कूं बनजै नाही वा दरियाव का काम करावै नाही। बहुरि ऊंट, घोडा, भैंसा, बलध[११], गधा, गाडी, वहल[१२], हल, कुडी[१३],चडस[१४],लाव[१५] भाडै देन ही वा आप भाडै देवावे नही वाताके बहानै पुरुषकूं उधार द्रव्य दे नही या विषै महत पाप है। जा कार्य करि

---

१ एक तरह का रग, कुसुंभी २ साबुन ३ नीच, निकृष्ट ४ डोम ५ एदी, आलसी ६-७ नीच जाति ८ कूजड़ा ९ रंगरेज १० उठाईगीरा ११ बैल १२ छोटा रथ १३ फाल, हल के संग लगने वाली लोहे की कुली १४ चरस १५ मोटा रस्सा

प्राणी दुखी होय वा विरोध्या जाय, ऐसा कार्य कूं धर्मात्मा पुरुष कैसे करे ? जीव-हिंसा उपरांत और संसार विषैं पाप नाहीं, तातै सर्व प्रकार तजना योग्य है । अर ताकूं द्रव्य भी उधार दे नाही । और शस्त्र का व्योपार तजै अर शस्त्र के व्योपारी कू उधार भी दे नाही । इत्यादि खोटा जे किसब[1] है, ते सर्व कौ तजै, अर या कि सब वाला ताको देना-लेना तजै और पापन की वस्तु मोल ले नाही । और विराने डील[2] का पहिर्‍या वस्त्र मोल ले आप पहिरै नाही, अपने डील का वस्त्र और कूं बेचै नाही । अर मंगता आदि दुखित, भिक्षुक जीव नाज आदि वस्तु मांग ल्यायो होय ताकौ भी मोल देनी-लेनी नाही । अर देव अरहंत, गुरु निर्ग्रंथ, धर्म जिनधर्म, ताके अर्थ द्रव्य चढाया ताकौ निर्माल्य कहिए, ताका अंश मात्र भी ग्रहण करै नाहीं । याका फल नरक, निगोद है ।

यहा प्रश्न जो ऐसा निर्माल्य का दोष कैसे कहा ? भगवान कू चढाया द्रव्य ऐसा निंद्य कैसे भया ? ताका समाधान—रे भाई ! ये सर्वोत्कृष्ट देव है । ताकी पूजा करिवे समर्थ इंद्रादिक देव भी नाही । अर ताके अर्थि कोई भक्त पुरुष अनुराग करि द्रव्य चढाया पाछै अपूठो[2] चढोडि[3] बाकी जायगा वाके द्रव्य कौ बिना दिया ग्रहण करै तौ वो पुरुष देव, गुरु, धर्म का महा अविनय किया । बिना दिया का अर्थ यह है जो अरहत देव तौ वीतराग है, तातै ये तौ आप करि कोईनै दे नाही, तातै बिना दिया ही कहिये है । जैसे राजादिक बडे पुरुष कोई वस्तु नजर करै, पाछै वाका बिना दिया ही माग लेहै, तो वाकै राजा महादंड देहै—

---
१ पराये शरीर २ वापस ३ चढाया हुआ

ऐसे ही निर्माल्य का दोष जानना । और भगवान के अर्थ चढ्या सर्व द्रव्य परम पवित्र है, महाविनय करने योग्य है; परन्तु लेना महा अयोग्य है, या समान और अयोग्य नाहीं । तातैं निर्माल्य कौ तजना वा निर्माल्य वस्तु मोल देनी-लेनी नाही वा निर्माल्य वस्तु को लेने वाला ताको उधार देय नाही । बहन, पुत्री आदि सवासनी[1] ताकौ द्रव्य उधार देय नाही । इत्यादि अन्याय पूर्वक सब ही कार्य कौ धर्मात्मा छांडे जा कार्य विषै अपजस होय, आपणा परिणाम संक्लेश रूप रहै वा शोक-भय रूप रहे ता कार्य को छोडे सब धर्मात्मा सहज ही होय, ऐसा भावार्थ जानना । ऐसे प्रथम प्रतिमा का धारक संयमी नीति–मार्ग चालै छै ।

व्रत प्रतिमा

आगे घर का भार पुत्रने सौंपि दूजी प्रतिमा ग्रहण करै सो कहै है । पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, च्यारि शिक्षा-व्रत, ये बारह व्रत अतिचार रहित पाले, ताकौ दूसरी प्रतिमा का धारक कहिये ।

प्रतिमा नाम प्रतिज्ञा का है अथवा याका विशेष कहिये है । दोष बुद्धि करि च्यारि प्रकार त्रस जीव घात अर बिना प्रयोजन थावर जीवा का घात नाही करै, ताका रक्षक होय ।

भावार्थ—कोई या कहै तीनै पृथ्वी को राज द्यौ छू । तू थारा हाथ सूं कीडानै मार अर नाहीं मारै तौ थारा प्राणन कौ नाश करिस्यौ अथवा थारो घर लूटि लेस्यो ।

---

१ सुवासिनी, सुहागन

ऐसा राजादिक का हठ जानै जो हूं याकूं कह्यो न करिस्यो तौ या विचारी छै सोई करसी। ऐसि जानि धर्मात्मा पुरुष ऐसा विचार करै सुमेरवत त्रस जीव ऊपर शस्त्र कैसे चलाया जाय ? तीसू शरीर, धनादिक, जाय छै तौ जावौ। याकी थिरता एती ही छै। म्हारो काई चरौ ? म्हारा राखा कैसे रहसी ? अर-याकी थिति वधती छै तौ राजा वा देव करि हण्या[१] कैसे जासी ? यह नि संदेह है। तीसू मौनै सर्वथा भयादि करि जीव-घात करिवो उचित नाही। अर कोई या कहै है अबार[२] तौ ये कहै छै सो ही करौ, पाछै थे दौरि रक्षा कर लीज्यो तौ धर्मात्मा पुरुष ईनै[३] या कहै–रे मूढ ! जिनधर्म की आखडी ऐसी नाही जो शरीर वा धनादिक कै वास्तै मत नाखिजै[४]। अर पाछै फेरि पालजै सो यो उप-देश आन[५] मत मै छै, जिनमत मै नाही। सो ऐसा जानि वे धर्मात्मा पुरुष जोव कौ मारिवौ तौ दूरि ही रहौ, पन अंश मात्रभी परिणाम चलावै नाही। अर कायरपना का वचन भी उचारै नाही अरहलन-चलनादि क्रिया विषै अर भोग-सयोगादि क्रिया विषै सख्यात-असख्यात जीवत्रस अर अनत निगोद जीव की हिंसा होय है। परतु याके जीव मारिवा का अभिप्राय नाही, हलन-चलनादि क्रिया का अभिप्राय है। अर वा क्रिया त्रस जीव की हिंसा बिना बनै नाही। तातै याकौ त्रस जोव का रक्षक ही कहिये। अर पांच थावर ताकी हिंसा का ताके त्याग है नाही, तौ भी प्रयोजन थावर जीवा का स्थूलपनै रक्षक ही है। तातै ताकू अहिसा व्रत का धारक कहिये, ऐसा जानना।

---

१ मारा, वध किया २ अभी ३ इसको ४ उल्लघन करे ५ अन्य दूसरे

सत्य व्रत

आगै सत्यव्रत का विशेष कहैं हैं। झूठ बोल्या राजा दंड दे वा जगत विषै अपजस होय। ऐसी स्थूल झूठ बोलै नाही। अर ऐसा सत्यवचन बोलै नाही जा सत्यवचन बोलैं पर-जीव का बुरा होय अर कठोरता नै लिया ऐसा भी सत्य वचन बोलै नाही। कठोर वचन करिवा का प्राण पीड्या जाय है अर आपना भी प्राण पीड्या जाय है। ऐसी सत्य-वचन का स्वरूप जानना।

अचौर्य व्रत

आगै अचौर्यव्रत का स्वरूप कहिये। ऐठा[१] की चोरी तौ सर्व प्रकार तजै। अर चोरी की वस्तु मोल ले नाही। अर गैलै[२] पडी पाई होय तौ वस्तु ताका ग्रहण करै नाही। अर भोले मारे नाही, अर वस्तु अदला-बदली करै नाही, रकम चुरावै नाही, राजादिक का हासिल[३] चुरावै नाही, चौरानै विनजै[४] नाही। तौल विषै घाटि[५] दे नाही, वाधि[६] लेवै नाही, वस्तु विषै भेला[७] करै नाही। अर गुमास्ता-गिरि विषै वा घर का व्योपार विषै किसब की चोरी भी नाही करै। इत्यादि सर्व चोरी का त्याग करै है।

भावार्थ—**मारग की माटी वा दरियाव का जल आदि का तौ याके बिना दिया ग्रहण है।** ए माल राजादिक का है, याका नाही। एती चोरी याको लागै है। अर विशेष चोरी नाही लागै है। तिहि वास्ते याको स्थूलपणे अचौर्य व्रत का धारक कहिये।

१ प्रत्यक्ष २ मार्ग मे, गली मे ३ कर, टेक्स ४ लेन-देन ५ घटती ६ बढ़ती ७ मिलावट

ब्रह्मचर्य व्रत

आगै ब्रह्मचर्य व्रत कहिये है। सो परस्त्री का तौ सर्व प्रकार त्याग करै। अर स्व स्त्री विषैं आठै,[1] चौदस, दोयज, पांचै, ग्यारस, अठाई, सोलहकारण, दशलक्षण, रत्नत्रय, आदि जे धर्म पर्व ता विषै शील पालै अर काम-विकार कौ घटावै। अर शील की नव बाड पालै ताको ब्यौरो-काम-उत्पादक भोजन करै नाही, उदर भर भोजन करै नाही, सिंगार करै नाही, परस्त्री की सेज्या[2] ऊपर बसै नाहीं, एकली स्त्री-सग रहै नाहीं। राग भाव करि स्त्री का वचन सुणै नाही। राग भाव करि स्त्री कौ रूप-लावण्य देखै नाहीं, मनमथ,[3] कथा करै नाही। ऐसे ब्रह्मचर्य व्रत जानना।

परिग्रहत्याग व्रत

आगै परिग्रह-त्याग व्रत कहै है। सो आपने पुण्य कै अनुसारि दस प्रकार के सचित्त-अचित्त बाह्य परिग्रह ताका परिमाण करै। ऐसा नाही के पुन्य तौ थोडा अर प्रमाण बहुत राखै। ताको भी परिग्रहत्याग व्रत कहिये सो यो नही है। या विषै तौ अपूठा[4] लोभ तीव्र होय है। इहां लोभ ही का त्याग करना है, ऐसी जानना। अब दस प्रकार के परिग्रह का नाम कहिये है—धरती, जान[5] कहिये पालकी आदि द्रव्य कहिये धन, धान्य कहिये नाज, हवेली, हंडवाई[6] बरतन, सेज्यासन, चौपद, दुपद ऐसे दस प्रकार के परिग्रह का परिमाण राखि अर विशेष का त्याग करना, ताकौ

---

१ अष्टमी, आठम २ शय्या, बिस्तर ३ काम ४ बहुत ५ यान, पालकी
६ झाड-फानूस

परिग्रहत्याग व्रत कहिये है। ऐसै पांच अणुव्रत का स्वरूप जानना।

दिग्व्रत

आगै दिग्व्रत का स्वरूप कहिये है। सो दिग् नाम दिशा का है। सो दसो दिशा विषै सावद्य योग अर्थि गमन करवा का प्रमाण राखि जावज्जीव विषै मरजाद करि लेई, उपरांत क्षेत्र सौं वस्तु मंगावै नाही या भेजै नाही, चिट्ठी-पत्री भेजै नाही अर उठा[1] की पत्री-चिट्ठी आई बाचै नाही, ऐसे जाननी।

देशव्रत

आगै देशव्रत कहिये है। देश नाम एक देश का है। दिन-प्रति दिशा का परिमाण करि ले। आज मोनै दोय कोस वा चार कोस वा बीस कोस मोकला[2] है अर विशेष क्षेत्र विषै गमन करने आदि कार्य का त्याग है। ता विषै गमन न करै, सही क्षेत्र मैं प्रवर्तै।

भावार्थ—दिग्व्रती विषैं एता विशेष है। सो दिग्व्रत विषैं दिशा का जावज्जीव प्रमाण राखि त्याग करै। अर देशव्रत विषैं मरजादा मैं मरजादा राखि ता विषैं भी अल्प मरजाद राखि घटाय त्याग करै। जैसे बरस, दिन का, छह महीने का वा महीना एक का वा पक्ष का वा दिन का वा पहर का व दोय घटिका पर्यन्त क्षेत्र का प्रमाण सावद्ययोग

१ वहाँ २ परिमाण सीमा

कै अर्थ करै, धर्म कै अर्थ नाहीं करै। धर्म कै अर्थ कोई प्रकार त्याग है ही नाही।

अनर्थदण्ड-त्याग व्रत

आगै अनर्थदण्ड-त्याग व्रत कहिये है। बिना प्रयोजन पाप लागै अथवा प्रयोजन विषै महापाप लागै, ताका नाम अनर्थदण्ड है। ताका पाँच भेद है—१ अपध्यान, २ हिंसादान, ३ प्रमादचर्या, ४. पापोपदेश, ५ दुश्रुतश्रवण। याका बिशेष कहैं है।

अपध्यान कहिये जा बात करि अन्य जीव का बुरा होय वा राग-द्वेष उपजै, कलह उपजै अरअविश्वास उपजै, मार्‍या जाय, धन लूटा जाय, शोक-भय उपजै ताको उपाय का चिन्तवन करै। मूवा मनुष्य कू वाके इष्टकू सुनाय देना, परस्पर बैर याद करावना, राजादिक का भय बतावना, अवगुण प्रकट करना, मर्मछेद वचन कहना, ताका ध्यान रहै, इत्यादि अपध्यान का स्वरूप जानना।

बहुरि हिंसादान कहिये हैं—छुरी, कटारी, तरवार, बरछी, आदि शस्त्र का मांग्या देना व कढाव-कडाही, चरी-चरवा आदि का मांग्या देना, ईंधन, अग्नि, दीपक का मांग्या देना, कुशी[1] —कुदाल-फावडे का मांग्या देना, चूला-मूसल घरटी[2] का मांग्या देना, इत्यादि हिंसानै कारण जो वस्तु ताका व्योपार भी करै नाही। अर बैठा-बैठा ही बिना प्रयोजन भूमि खोदि नाखै। अर पाणी ढोल दे अर अग्नि प्रजाल दे अर बीजनी[3] सू पवन करवो करै। अर वनस्पतिनै

---

१ सब्बल २ घट्टी, चक्की ३ पखा

शस्त्र करि छेदि नाखै वा हाथ सौं तोड नाखै,[1] ऐसा हिंसादान का स्वरूप जानना।

आगे प्रमादचर्या का स्वरूप कहिये है। प्रमाद लिये धरती ऊपर बिना प्रयोजन आम्हा-साम्हा[2] फिरवो करै वा हालै वा बिना देख्या ही बैठि जाय, बिना देख्यां वस्तु उठाय ले वा मेलि दै, इत्यादि प्रमादचर्या का स्वरूप जानना।

आगे पापोपदेश का रूप कहिये है। ऐसा उपदेश दे नाही फलाणा तू हवेली कराय वाकू बावडी,तलाब खिणाय[3] वा खेत, बाग वा थारे खेत निदानी[4] आयौ है। तीको निदाउ वा थारो खेत सूखै छै, जाकू जल करि सीच। वा थारी बेटी कुवारी है, तीको ब्याह कर वा थारो बेटा कुवारा छै ताको ब्याह कर वा बजार विषै नीबू, आम, काकडी, खर-बूजा, आदि जे फल बिकै छै सो तू मोल ल्याव वा मैथी, बथुवौ, गादल[5] इत्यादि बजार मै बिकै छै सो तू मोल ल्याव। तोरई, करेला, टीडसा,[6] आदि हरितकाय मोल मगावा को उपदेश दे अर अग्नि, ईंधन, जल, घृत, तेल, लूण मंगावा को उपदेश दे वा चूला बालिवा का, आगण लीपवा का, गोबर करिवा कौ उपदेश दे वा कपडा धुपावा[7] का, स्नान करावा का, स्त्री का मस्तक का केश संवारिवा का, खाट तावडे[8] नाखिवा[9] का, कपडा माहि सू जुवा काडिवा का, दीवो जोवा का उपदेश देवा बीध्यो-गल्यो नाज मंगावा का वा घृत, तैल, गुड-खांड, नाज आदि वस्तु भंडशाल[10] राखिवा का उपदेश दे। बैल, भैंस, ऊट लादिवा का, देशांतर सू वस्तु मंगावा, खिनावा[11] का उपदेश दे। वा

---

१ डाले २ इधर-उधर ३ चिनवाना, निर्माण करना ४ नीदना ५ मूली की काडर, पत्तो के बीच मे रहने वाली जड, ६ टेंडसी, टिंडे ७ धुलाने ८ धूप मे १० भण्डार-गृह ११ भेजना

कै अर्थ करै, धर्म कै अर्थ नाही करै। धर्म कै अर्थ कोई प्रकार त्याग है ही नाही।

अनर्थदण्ड-त्याग व्रत

आगै अनर्थदण्ड–त्याग व्रत कहिये है। बिना प्रयोजन पाप लागै अथवा प्रयोजन विषै महापाप लागै, ताका नाम अनर्थदण्ड है। ताका पाँच भेद है—१ अपध्यान, २ हिंसा-दान, ३ प्रमादचर्या, ४ पापोपदेश, ५ दुःश्रुतश्रवण। याका विशेष कहै है।

अपध्यान कहिये जा बात करि अन्य जीव का बुरा होय वा राग-द्वेष उपजै, कलह उपजै अरअविश्वास उपजै, मार्‍या जाय, धन लूटा जाय, शोक-भय उपजै ताकौ उपाय का चिन्तवन करै। मूवा मनुष्य कू वाके इष्टकू सुनाय देना, परस्पर बैर याद करावना, राजादिक का भय बतावना, अवगुण प्रकट करना, मर्मछेद वचन कहना, ताका ध्यान रहै, इत्यादि अपध्यान का स्वरूप जानना।

बहुरि हिंसादान कहिये है—छुरी, कटारी, तरवार, बरछी, आदि शस्त्र का माग्या देना व कढाव-कडाही, चरी-चरवा आदि का माग्या देना, ईंधन, अग्नि, दीपक का माग्या देना, कुशी[1] –कुदाल-फावडे का माग्या देना, चूला-मूसल घरटी[2] का माग्या देना, इत्यादि हिंसानै कारण जो वस्तु ताका व्योपार भी करै नाही। अर बैठा-बैठा ही बिना प्रयोजन भूमि खोदि नाखै। अर पाणी ढोल दे अर अग्नि प्रजाल दे अर बीजनी[3] सू पवन करवो करै। अर वनस्पतिनै

---

१ सब्बल २ घट्टी, चक्की ३ पखा

शस्त्र करि छेदि नाखै वा हाथ सौ तोड नाखै,[१] ऐसा हिसादान का स्वरूप जानना ।

आगे प्रमादचर्या का स्वरूप कहिये है । प्रमाद लिये धरती ऊपर बिना प्रयोजन आम्हा-साम्हा[२] फिरबो करै वा हालै वा बिना देख्या ही बैठि जाय, बिना देख्या वस्तु उठाय ले वा मेलि दै, इत्यादि प्रमादचर्या का स्वरूप जानना ।

आगे पापोपदेश का रूप कहिये है । ऐसा उपदेश दे नाही फलाणा तू हवेली कराय वाकू बावडी,तलाब खिणाय[३] वा खेत, बाग वा थारे खेत निदानी[४] आयौ है । तीको निदाउ वा थारो खेत सूखै छै, जाकू जल करि सीच । वा थारी बेटी कुवारी है, तीको ब्याह कर वा थारो बेटा कुवारा छै ताको ब्याह कर वा बजार विषै नीबू, आम, काकडी, खर-बूजा, आदि जे फल बिकै छै सो तू मोल ल्याव वा मैथी, बथुवौ, गादल[५] इत्यादि बजार मै बिकै छै सो तू मोल ल्याव । तोरई, करेला, टीडसा,[६] आदि हरितकाय मोल मगावा को उपदेश दे अर अग्नि, ईधन, जल, घृत, तेल, लूण मगावा को उपदेश दे वा चूला बालिवा का, आगण लीपवा का, गोबर करिवा कौ उपदेश दे वा कपडा धुपावा[७] का, स्नान करावा का, स्त्री का मस्तक का केश सवारिवा का, खाट तावडे[८] नाखिवा[९] का, कपडा माहि सू जुवा काडिवा का, दीवो जोवा का उपदेश देवा बीध्यो-गल्यो नाज मगावा का वा घृत, तैल, गुड-खाड, नाज आदि वस्तु भडशाल[१०] राखिवा का उपदेश दे । बैल, भैस, ऊट लादिवा का, देशातर सू वस्तु मगावा, खिनावा[११] का उपदेश दे । वा

---

१ डाले २ इधर-उधर ३ चिनवाना, निर्माण करना ४ नीदना ५ मूली की काडग, पत्तो के बीच मे रहने वाली जड, ६ टेडसी, टिडे ७ धुलाने ८ धूप मे १० भण्डार-गृह ११ भेजना

दान, तप, शील, संयम, पौसे,[1] आखडी आदि धर्म का कार्य विषै कोई पुरुष लागै, ताको मनै[2] करे । ऐसा उपदेश दे अथवा पूर्वे कही जे वस्तु सर्व का सौदा करा दे अर नाना प्रकार की खोटी चतुराई वाअ क्कल और कौ सिखावै अथवा राजकथा, चोरकथा, स्त्रीकथा, देशकथा इत्यादि नानाप्रकार की कथा ताका उपदेश दे, ऐसे पापोपदेश का स्वरूपजानना।

आगै दुश्रुत का स्वरूप कहिये है । दुश्रुत कहिये खोटी कथा का सुनना, कामोत्पादन–कथा, भोजन, चोर, देश, राज्य, स्त्री, वेश्या,नृत्यकारिणी की कथा वा रार,[3] सग्राम, युद्ध, भोग की कथा, स्त्री का रूप-हाव-भाव-कटाक्ष की कथा, ज्योतिष, वैद्यक, मत्र-तत्र-यत्र, स्वरोदय की कथा, ख्याल-तमाशा इत्यादि पापनै कारण ताकी कथा का सुनना, ताकौ दुश्रुतश्रवण कहिये है, इत्यादि बिना प्रयोजन महा-पाप ताकौ अनर्थदड कहिये, ताका त्याग करै ताको अनर्थ–दडत्याग व्रत कहिये । ऐसै तीन गुणव्रत का स्वरूप जानना ।

सामायिक व्रत

आगै सामायिक व्रत कौ स्वरूप कहिए है । सो आथोन,[4] सबारे, मध्याह्न विषै त्रिकाल समै तीन बेर[5] सामयिक करै आठै, चौदस प्रोषध-उपवास करै, ताका स्वरूप आगै कहेगे ।

आगै भोगोपभोगव्रत का स्वरूप कहिये है । सो एक बार भोगवा मै आवै सो तो भोग, जैसे–भोजनादि । अर वे ही वस्तु कौ बार-बार भोगिये, जैसे–स्त्री वा कपडा वा गहणा[6] आदि कौ उपभोग कहिए । नित च्यारि-च्यारि

---

१ प्रोषध, उपवास २ निषेध ३ कलह-झगडा ४ सांझ, शाम ५ बार
६ आभूषण, गहना

पहर का प्रमाण करि लेय। प्रभात प्रमाण करै सो तौ आथण्यादि[1] करि लेय अर आथण कौ प्रमाण कीनौ प्रभाति यादि करि लेइ। या ही का विशेष भेद ताका नाम नेम[2] कहिये। ताका ब्यौरा—भोजन, षट्रस, जलपान, कुकुमादि, विलेपन, पुष्प, ताबूल, गीत, नृत्य, ब्रह्मचर्य, स्नान, भूषण, वस्त्रादि, वाहन, शयन, आसन, सचित्त आदि वस्तु सख्या ऐसा जानना।

अतिथि-संविभाग-व्रत

आगै अतिथि-सविभागव्रत का स्वरूप कहिये है। बिना बुलाया तीन प्रकार के पात्र व दुखित आपनै वारनै[3] आवै तो त्यानै अनुराग करि दान देय, सुपात्र नै तौ भक्ति करि देय अर दुखित जीवा नै अनुकम्पा करि देय। सो दातार का सात गुण सहित दे अर मुन्या नै नवधा भक्ति करि दे। ताकौ ब्यौरो—नवधा भक्ति नाम १ प्रतिग्रहण, २ उच्च स्थापन, ३ पादोदक, ४ अर्चन, ५ प्रणाम, ६ मन शुद्धि, ७ वचन-शुद्धि, ८ काय-शुद्धि, ९ एषणा-शुद्धि ऐसा जानना। और भी दान देय मुन्या नै कमडल-पीछी, पुस्तक वा ओषधि, वस्तिका देई अर अर्जिका, श्राविकानै पाच तौ वे ही अर वस्त्र देई अर दुखित जीवा नै वस्त्र वा औषधि वा आहार वा अभयदान भी देई और जिनमदिर विषै नाना प्रकार के उपकरण चढावै, पूजा करावै वा ताकी मरम्मत करावै वा प्रतिष्ठा करावै। वा शास्त्र लिखाइ धर्मात्मा ज्ञानी पुरुष नै देई अर वन्दना-पूजा करावै, तीर्थयात्रा विषै द्रव्य खरच करै अर न्यायपूर्वक द्रव्य पैदा करै। ताका तीन भाग करै। तामै

---

१ शाम तक का २ नियम ३ द्वार पर

एक भाग तौ धर्म निमित्त खरचे अर एक भाग भोजन के अर्थ कुटुम्ब-परिवार नै सौपे अर एक भाग सचै[1] करै सो तौ उत्कृष्ट दातार जानना। अर एक भाग तौ दान अर्थ अर तीन भाग भोजन अर्थ अर दोय भाग सचै करै सो मध्य दातार अर एक भाग दान अर्थ अर छह भाग भोजन अर्थ अर तीन भाग सचै करै सो जघन्य दातार है। अर **दसमा भाग दान अर्थ न खरचै तौ वाका घर मसान समान है**। मसान विषै भी अनेक प्रकार के जीव होमे जाय हैं अर गृहस्थ के चूला विषै नाना प्रकार के जीव दग्ध होय है। अथवा कैसा है वह पुरुष ? सो **सर्व सौ हलको तौ रुई है अर तासौं[2] भी हलका आक के फूल है, तासूं भी हलका परमाणु है अर तासूं भी हलको जाचक है, तासूं भी हलको दान रहित कृपण है**। सो वानै तौ आपणे सर्वस्व खोय हाथ माड्यो[3] अर जाचना कौ दीन वचन मुख सेती[4]। भाष्यो। अर चलाय आपणे घर आयो तौ भी वाकौ दान नाही दीनो, तीसौ जाचक पुरुष सौ भी हीनदान करि रहित पुरुष है। अर धर्मात्मा पुरुष कै मुख्य धर्म देवपूजा अर दान छै। षट् आवश्यक विषै भी ये दोय मुख्य धर्म देवपूजा अर दान छै, बाकी च्यारि गौण छै— गुरुभक्ति, तप, सयम स्वाध्याय। तातै सात ठिकाने विषै द्रव्य खरचवो उचित है। मुनि, अर्जिका, श्रावक, श्राविका, जिनमन्दिर-प्रतिष्ठा, तीर्थयात्रा, शास्त्र लिखावे, ये सात स्थानक जानना।

सो दान देने का च्यारि भेद है–प्रथम तौ दुखित-भुखित जीव की खबर पाइ वाके घर देवा जोग्य वस्तु पहुचावै है

[1] सचय [2] उससे [3] फैलाया [4] से

सो तौ उत्कृष्ट दान है। बहुरि वाकौ बुलाय अपने घर दान देना सो मध्यम दान है। बहुरि आपना काम-चाकरी कराय दान देना सो अधम दान है। अर कोई प्रकार धर्म विषै द्रव्य नाही खरचै हे अर तृष्णा के वशीभूत हुवा द्रव्य कमाय-कमाय एकटा[1] ही किया चाहै है। तौ वह पुरुष मरकै सर्प होय है, पाछै परपराय नरक जाय है, निगोद जाय है। ता विषै नाना प्रकार के छेदन. भेदन, मारन, ताडन, शूला-रोपण आदि तौ नरक के दुख अर मन, कान, आख, नाक जिह्वा को तौ अभाव है अर सपरस इद्री के द्वार एक अक्षर के अनतवे भाग ज्ञान बाकी रहै है, ता विषै भी आकुलता पावजे है, ऐसा एकेद्रिय पर्याय हे। नरक विषै विशेष दुख जानना। **सो वह लोभी पुरुष ऐसी नरक-निगोद पर्याय विषै अनंत काल पर्यंत भ्रमण करै है।** अर वासौ वेइद्री आदि पर्याय पावना महादुर्लभ होय है। तातै लोभ परिणति कू अवश्य तजना योग्य है। जो जीव नरक, तिर्यच पर्याय नै छोडि मनुष्य भव विषै प्राप्त होय है अर नरक, तिर्यच गति ही कू पाछै[2] जाने योग्य है, ताका तौ यह स्वभाव होय है, ताको द्रव्य बहुत प्रिय लागे है। अर धन के वास्ते निज प्राण का त्याग करै, पण[3] द्रव्य का ममत्व छाडै नाही तौ वह रक बापुरा[4] गरीब, कृपण, हीनबुद्धि, महामोही परमार्थ के अर्थ दान कैसे करै? वाके बूतै[5] रूपे[6] का रुपया कैसे दिया जाय? बहुरि कैसा है वह कृपण? मोह की मक्षिका[7] समान है स्वभाव जाका वा कीडी समान है परिणति जाकी। बहुरि दातार पुरुष है देवगति माहि सूँ तौ आये है अर देवगति वा मोक्षगति नै जाने योग्य है सो न्याय ही है।

---

१ इकट्ठा २ पीछे, वापस ३ किन्तु ४ बेचारा ५ बल पर ६ चाँदी ७ मक्खी

तिर्यंच गति के आये जीव कै उदार चित्त कैसे होय ? ज्या बापुरा असख्यात, अनंत काल पर्यंत क्यो भी भोग-सामग्री देखी नाही अर अब मिलने की आशा नाही, तौ वाके तृष्णा रूपी अग्नि किचित् विषय-सुख करि कैसे बुझे ? अर असंख्यात वर्ष पर्यंत अहमिद्र आदि देव-पुनीत आनद सुख के भोगी ऐसा जीव मनुष्य पर्याय हाड, मास, चाम के पिंड मल-मूत्र करि पूरित ऐसा शरीर ताके पोषने विषै आसक्त कैसे होय ? अर ककर-पत्थरादिक द्रव्य विषै अनुरागी कैसे होय ? अर भेद-विज्ञान करि स्व-पर विचार भया है जाकै अर आपनै तौ परद्रव्य सू भिन्न सासता,[1] अविनाशी सिद्ध सादृश्य लोक देखनहारे आनदमय जान्या है। ताहि के प्रसाद करि सर्वप्रकार द्रव्यसू निवृंनि हुआ चाहै है। ताका सहज ही त्याग-वैराग्य रूप भाव वर्तै है। एक मोक्ष ही चाहै है। ताकै परद्रव्यसू ममत्व कैसे होय ? ये धन महा पाप क्लेश करि तौ उत्पन्न हो है अर अनेक उपाय कष्ट करि याकौ अपने आधीन राखिये है, ता विषै भी महापाप उपजै है। अर याको मान-बढाई के अर्थ वा विषय-भोग सेवनेकै अर्थ अपने हाथा करि खरचिये है। ता विषै ब्याहादिक को, हिसा करि वा द्रव्य के छीजने[2] करि महापाप कष्ट उपजै है अर बिना दिया राजा वा चोर दौडि खासि[3], लूटि लेहै। वा अग्नि सौ जलि जाय है वा वितरादि हरि लेहै वा स्वयमेव गुमि जाय है वा विनसि जाय है, ताके दुख की वा पापबध की कहा पूछणी ? सो ये परद्रव्य का ममत्व करना सत्पुरुषा नै हेय कह्या है, कोई प्रकार उपादेय नाही। परतु आपणी इच्छा करि परमार्थ के अर्थ दान विषै द्रव्य खरचै तौ

---

१ शाश्वत, नित्य २ नष्ट होने ३ छीन कर

ई लोक विषै वा परलोक विषै महासुख भोगवै अर देवा-दिक करि पूज्य होय। ताके दान के प्रभाव करि त्रिलोक करि पूज्य है चरण-कमल जाका, ऐसा जो मुनिराज ताका वृंद कहिए समूह सो दान के प्रभाव करि प्रेर्‍या हुवा बिना बुलाया दातार कै घरि चल्या आवै है।

पाछै दान कै समै वे दातार ऐसा फल सुख कौ प्राप्त होय है। अर ऐसा सोभै है सो कहिये है मानू आज मेरे आगण कल्पतरु आयो कै कामधेनु आई कै मानू चिंतामणि पाई मानू घर माही नवनिधि पाई, इत्यादि सुख के फल उपजै है। अर त्रिलोक करि पूज्य है चरण-कमल जाके, ऐसा महामुनि ताका हस्तकमल तौ तलै[1] अर दातार का हस्त ऊपरै सो वा दातार की शोभा उत्कृष्ट पात्र के दान बिना और कौन कार्य विषै होइ ? अर जो वे मुनि रिद्धिधारी होय तौ पचाश्चर्य होय ताको ब्यौरो--१ रत्नवृष्टि, २ पहुपवृष्टि, ३ गधोदकवृष्टि, ४ देव-दुदुभी आदि वादित्र अर ५ देवा के जय-जयकार शब्द। ये पाच बात आश्चर्यकारी होय, तातै याका नाम पचाश्चर्य है। बहुरि तिहि दिन च्यारि हाथ की रसोई विषै नाना प्रकार की तरकारी वा पकवान सहित अमृतमयी अटूट होय जाय। अर वा रसोईशाला विषै सर्व चक्रवर्ती का कटक जुदा-जुदा बैठि जीमै तौ सकडाई होय नाही अर रसोई टूटै नाही, ऐसा अतिशय वर्ते। पाछै बडा-बडा राजा नगर के लोग सहित अर इन्द्रादिक देव त्या[2] करि पूज्य होय अर बढाई योग्य होय अर वाका दिया दान की अनुमोदना करि घणा जीव महापुण्य कू उपार्जै, परपराय मोक्ष नै पावै ही पावै। सो सम्यक्‌दृष्टि दातार तीन प्रकार

---

१ नीचे २ उन

के पात्र नै दान दे तौ स्वर्ग ही जाय। अर मिथ्यादृष्टि दान देय तौ जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भोगभूमि जाइ, पाछै मोक्ष पाइ, ऐसा पात्र-दान ई लोक वा परलोक विषै फलै है। अर दुखित–भुखित जीवा नै दान करुणा कर दीजै तौ वाका भी महापुण्य होय है। सर्व सौ बडा सुमेर है, तासू बडा जबूदीप है, तासौ[1] भी बडा तीन लोक है। अर तासौ भी बडा लोकालोक आकाशद्रव्य है, पण ये तौ कछु देय नही, तातै याको शोभा नाही, तासू भी बडा दातार है। ता सूभी बडा अयाची त्यागी पुरुष है, तातै कोई अज्ञानी, मूर्ख, कुबुद्धि, अपघाती ऐसा फल जान करि भी दान नही करै है, तो वाकी लोभी की वा अज्ञानी की काई पूछनी ? अर कदाचित दान करै है, तो कुपात्र नै पोषै है अर पुण्य चाहै है। तो वे पुरुष कौन-सी नाई[2] ? जैसे कोई पुरुष सर्प नै दुग्ध प्यायवा का मुख सौ अमृतलियाचाहै है, जल बिलोय घृत कौ काढा चाहै है, पत्थर की नाव बैठि स्वयभूरमण समुद्र तिरया चाहै है, वा वज्राग्नि विषै कमल का बीज बाहिवा[3] के कमलिनी के पत्र की छाया विषै विश्राम लेने की हौस[4] करै है वा कल्पवृक्ष काटि धतूरा बाहै है वा अमृतकू तजि हलाहल विष का प्याला पीय अमर हुवा चाहै है तो काई वा पुरुष का मनवाछित कारज सिद्ध हुवा ? कार्यसिद्धि तौ कार्य कै लगै[5] ही होसी। अर झूठ्या ही भरम बुद्धि करि मान्या तौ काई गरज ? जैसे कोई काच का खड नै चितामणि रत्न जाणि घणा अनुरागसू पल्ले बाधि राख्या, तौ काई वह चितामणि रत्न हुवा ? अथवा जैसे बालक गारा, काष्ठ,पाषाण के आकारकू हाथी, घोडा मानि

---

१ उससे २ समान ३ बो कर ४ उमग ५ काम म लगने पर

सतुष्ट होय है, त्यौ ही कुपात्र-दान जानना। घणा[1] कहा कहिये ?

जिनवाणी विषै तौ ऐसा उपदेश है–**रे भाई ! धन-धान्यादिक** सामग्री अनिष्ट हो लागै है तौ अंध-कूवा मे नाखिदे। सो थारा द्रव्य ही जायला[2] और अपराध तौ नाही होयला[3]। अर कुपात्र नै दान दिया धन भी जाय अर परलोक विषै नरकादिक का भव विषै दुख सहना पडैगा। तीसौ प्राण जाय तौ जावो, पण कुपात्र नै दान देना उचित नाही, सो ये बात न्याय ही है। पात्र तौ आहारादिक लेय मोक्ष का साधन करै है। अर कुपात्र आहारादिक लेय अनत ससार बधावने का कार्य करै है। सो कार्य के अनुसार कारण के कर्ता दातारकूँ फल लागै है। सो वे पात्र नै दान दिया सो मानौ अपूठा मोक्ष का दान दिया अर वे कुपात्र नै दान दिया सो अनन्त ससार विषै वा नै डबोया, अन्य घणा[4] जीवा नै डुबोया। ऐसा जाणि[5] बुद्धिमान पुरुषनकू सर्व-प्रकार कुपात्रकूँ दान तजना। सुपात्र दान करना उचित है। गृहस्थ की घर की शोभा धनसूँ है। अर धन की शोभा दानसूँ है। अर धन पाइये है सो धर्म ही सूँ पाइये है। धर्म बिना एक कौडी पायवो[6] दुर्लभ है। जो आपना पुरुषार्थ करि धन की प्राप्ति होय, तौ पुरुषार्थ तौ सर्वजीव करि रहै है। एक-एक जीव कै तृष्णा रूपी खाडा ऐसा दीर्घ[7] ऊँडा[8] है, ताकै विषै तीन लोक की सपदा क्षेपी[9] हुई पर-माणु मात्र-सी दिखाई देहै[10]। सो ऐसा तृष्णा रूपी खाडा कू सर्व जीव पूर्‌या चाहै है, परन्तु आज पहली कही जीवा नै

---

१ अधिक २ जायगा ३ होगा ४ अनेक, बहुत ५ जान कर ६ पाना ७ बडा ८ गहरा ९ डाली हुई १० देती है

नाही पूर्या गया। **तातैं सतपुरुषों नै तृष्णा छोडि संतोष नैं प्राप्त भया है अर त्याग-वैराग्य नै भजैं है। ताही का प्रसाद करि ज्ञानानंदमय निराकुलित शांत रस करि पूर्ण सूक्ष्म, निर्मल, केवलज्ञान लक्ष्मी नैं पावैं है।** अविनाशी, अविकार, सर्व दोषरहित, परमसुख नै सदैव सासता अनत काल पर्यन्त भोगवै है, ऐसा निर्लोभता का फल है। तातैं सर्व जीव निर्लोभता कौ सर्व प्रकार उपादेय जानि भजौ, कृपणता नैं[1] दूरि ही तैं तजौ।

आगै दुखित-भुखित के दान का विशेष कहिये है। अधा, बहरा, गूगा, लूला, पागुला[2], बालक, वृद्ध, स्त्री, रोगी, घायल, क्षुधा करि पीडित, शीत की बाधा करि पीडित और बदीवान और क्षुधा-तृषा-शीत करि पीडित तिर्यच वा ब्याई स्त्री, कूकरी,[3] बिलाई,[4] गाय, भैसी, घोडी आदि जाका कोई रक्षक, सहायक नाही वा खावद[5] नाही अर पूर्वे कहे मनुष्य तिर्यच ते सर्व अनाथ, पराधीन है अर गरीब है, दुखित है। दुख करि महाकष्ट नै सहै है अर बिलबिलाट[6] करै है अर दीनपना का वचन उच्चारे है। दुख सहने कू असमर्थ है, ताके दुख करि बिलखाया गया है मुख जाका अर शरीर करि क्षीण है, बल करि रहित है सो ऐसे दुखी प्राणीनिकू देख दयाल पुरुष है ते भयभीत होय है। अर वाका-सा दुख आपकू होय है। अर घबराया गया है चित्त जाका, ऐसा होता सता वह दयाल पुरुष जिहि-तिहि प्रकार करि अपनी शक्ति के अनुसार वाके दुख कौ निर्वृत करै है। अर प्राणी जीव कौ मारता होय बन्दी

---

१ कजूसी को २ लगडा ३ कुत्ती ४ बिल्ली ५ पति ६ विलाप

करता होय ताकू जिहि-तिहि प्रकार करि छुडावै है । दुखी जीव का अवलोकन करि निर्दयी हुवा आगै नाही चल्या जाय है । अर वज्र समान है हृदय जाका ऐसा निर्दयी पुरुष ऐसे प्राणीकू भी अवलोकि जाके दया भाव नाही उपजै है अर या विचारै छे—ये पापी छै, पूर्वे पाप किया ताका फल कू भोगवै, ही भोगवै । ऐसा नाही जानै है, मै भी पूर्वे ऐसा दुख पाया होयगा अर फेर पाऊँगा । तातै आचार्य कहै है, धिक्कार होहु ऐसे निर्दयी परिणामनि कू ! **जिनधर्म को मूल तौ एक दया ही है । जाकै घट दया नाहीं, ते जैनी नाहीं । जैनी बिना दया नाहीं, यह नियम है ।**

दान-स्वरूप

आगै दान देने का स्वरूप कहिये है । रोगी पुरुषनि कौ औषधि दान दीजै । सो नाना प्रकार की औषधि कराय राखिजै, पाछै कोई रोगी आय मागै ताकौ दीजिए । अथवा वैद्य, चाकर[१] राखि वाका इलाज करवाइये, ताका फल देवादिक का निरोग शरीर पाइये है । आयु पर्यन्त ताकै रोग की उत्पत्ति नाही होय अथवा मनुष्य का शरीर पावै तौ ऐसा पावै अपने शरीर मे तौ रोग कोई प्रकार उपजै नाही अर अपने शरीर का स्पर्श करि वा न्हवन का जल करि अन्य जीवनि का अनेक प्रकार छिन मात्र मे रोग दूर होइ है । बहुरि क्षुधा, तृषा करि पीडित प्राणी कू शुद्ध अन्न-जल दीजै ।

भावार्थ—अन्न तौ ऐसा त्रस जीव अर हरितकाय कर रहित यथायोग्य अन्न, रोटी, छाण्या[२] जल करि पोषिये,

१ नौकर २ छने हुए

ताका फल क्षुधा करि रहित देव पद पावै। अर मनुष्य होय तौ जुगलिया, तीर्थंकर, चक्रवर्ति आदि पदवी धारक महाभोग सामग्री सहित होय। बहुरि मारते जीव कू छुडाइयै वा आप मारना छोडिये, ताका फल करि महापराक्रमी वीर्य के धारी देव, मनुष्य होइ, ताकौ कोई आशका नाही, ऐसा निर्भय पद पावै। बहुरि आप पढ्या होय तो औरनि कौ सिखाइये, तत्त्वोपदेश-जिन-मार्ग विषै लगाइये। आप शास्त्र लिखै वा सोधै[1] वा गूढ काव्य, शास्त्र की टीका बनाय अर्थ प्रगट करि टीका बनाइये अथवा धनादि खरचि नाना प्रकार के नवे[2] शास्त्र लिखाइये अर धर्मात्मा पुरुषनि कू वाचने कू दीजिए, यह ज्ञानदान सर्वोत्कृष्ट है। याका फल भी ज्ञान है। सो ज्ञानदान के प्रभाव करि मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान बिना अभ्यास किये ही फुरि[3] जाय है। पाछै शीघ्र ही केवलज्ञान उपजै है। बहुरि पर नै सुखी किया आप नै जगत सुखदायी परिणमै। बहुरि गुरादिक का विनय किया। आप जगत करि विनय योग्य है। अर भगवान के चमर, छत्र, सिहासन, वादित्र[4], चदोवा, झारी, रकेबी आदि उपकरण चढ़ोडै,[5] तौ भो ऐसा पद पावै है। सो आपके ऊपर छत्र फिरै, चमर ढरै है वा सिघासण ऊपरि बैठि देव, विद्याधरा[6] का अधिपति होय है। बहुरि जिनमन्दिर का करावा करि वा भगवान की पूजा करि आप भी त्रैलोक्य पूज्य पद पावै है।

भावार्थ—तीर्थंकर पद वा सिद्ध पद पावै है। सो ये न्याय ही है, जैसा बोज बोवे, तैसा फल लागै। ऐसा नाही,

---

१ सशोधन करे २ नये ३ प्रकट हो ४ बाजा (घटा आदि) ५ चढावै ६ विद्याधरो

जो बीज तौ और ही वस्तु का अर फल और ही वस्तु का लागै। सो ये त्रिकाल त्रिलोक विषै होय नाही, ये नियम है। सोई जगत विषै प्रवृत्ति देखिये है। जैसा-जैसा ही नाज बोवै, तैसा-तैसा ही निपजै है। सो जैसा-जैसा ही वृक्ष का बीज बोवै, तैसा-तैसा ही वृक्ष के फल उपजै है। सो जैसा-जैसा ही पुरुष वा स्त्री वा तिर्यंचनि का संयोग होय, ताकै तैसा ही पुत्रादिक उपजै। ऐसा बीज के अनुसार फल की उत्पत्ति जाननी। तीसू श्रीगुरु कहै है–हे पुत्र! हे भव्य! तू अपात्र नै छोडि सुपात्र अर्थी दान करहु अथवा अनुकम्पा करि दुखित-भुखित जीवा नै पोषि ज्यौ वाकी बाधा निवृत्त होय। धाया-धिगा,[१] लष्ट-पुष्ट[२] वा गुरु की ठमक धरावै, ताकौ दमडी मात्र भी देना उचित नाही। बहुरि कैसा है अपात्र का दान? जैसे मुरदा का चकडोल[३] काढिये है। अर रुपैया, पैसा उछालिये है अर चाडालादिक चुन-चुन लैहै। अर मुख सौ धन्य-धन्य करै है। परन्तु दान के करने वाला घर का धनी तौ ज्यू-ज्यू देखै है, त्यू-त्यू छातो ही कूटै है। तैसे ही कुपात्र नै दान दिया लोभी पुरुष जस गावै है। परन्तु दान के कारणै देने वालो कू तो नरक ही जाना होसी। **सम्यक्त सहित होय सो तौ पात्र जानना अर सम्यक्त तौ नाहीं है अर चारित्र है, ते कुपात्र जानना। अर सम्यक्त वा चारित्र दोऊ ही नाहीं, ते अपात्र का फल नरकादिक अनंत संसार है। अर सर्व प्रकार ही दान नाहीं करै है, सो कैसा है? मसाण के स्थूल मुरदा समान है।** अर धन है सो याका मास है अर कुटुम्ब परिवार के है सो गृद्ध[४] पछी है सो याका धन रूपी मास खाय है। अर विषय-कषाय रूपी

---

१ हट्टा-कट्टा २ सुन्दर-पुष्ट ३ जनाजा, शव-यात्रा ४ गीध

अग्नि है ता विषै ये जले है। तातै मसाण के मुरदा की उपमा भलीभाँति संभवै है। तातै ऐसी सर्व प्रकार निंदित अवस्था जानि कृपणता मानि परलोक का भय ठानि पर-द्रव्य का ममत्व न करना। ससार ममत्व ही का बीज है। ऐसी हेय-उपादेय बुद्धि विचारि शीघ्र ही दान करना अर परलोक का फल लेना, नही तौ यह मर्व सामग्री काल रूपी दावाग्नि विषै भस्म होयगी। पाछै तुम बहुत पछिनावोगे। सो कैसा है पछितावा ? जैसे कोई आय समुद्र की तीर बैठि काग उडावने अर्थ चिन्तामणि रत्न समुद्र विषै बहावै है। पाछै रत्न कू झूरि-झूरि मरै है, परन्तु स्वप्न मात्र भी चिन्तामणि रत्न समुद्र विषै पावै नाही, ऐसा जानना। घणी कहा कहिये ? उदार पुरुष ही सराहवा योग्य है। अर वे पुरुष देव समान है, ताकी कीर्ति देव गावै है। इनि अतिथि-सविभाग-व्रत सपूर्ण। ऐसे बारह व्रत का स्वरूप जानना।

सम्यक्त्व के अतिचार

आगै श्रावक के बारह व्रत तथा सम्यक्त्व के व अत समाधिमरण के सत्तर अतिचार ताका स्वरूप कहिये है।

प्रथम सम्यक्त्व के अतिचार पाँच[१]। ता विषै **शंका** कहियै जिनवचन विषै सदेह। **कांक्षा** कहिये भोगाभिलाष। **विचिकित्सा** कहिये दुर्गछा[२]। **अन्यद्रष्टिप्रशंसा** मिथ्यादृष्टि की प्रशसा करना। **अन्यद्रष्टिसंस्तव** मिथ्यादृष्टि के समीप जाय स्तुति करना।

---

१ देखिये, तत्त्वार्थ सूत्र अ ७ सू २३, २ ग्लानि

अहिंसाणुव्रत के अतिचार

ऐसैं अहिंसाणुव्रत के अतिचार पाँच[1]। ता विषैं **बंध** कहिये बाधना, **वध** कहिये (जान से) मारना, **छेद** कहिये छेदना, **अतिभारारोपण** कहिये बहुत बोझ लादना, **अन्न-पाननिरोधन** कहिये खान-पानादिक का रोकना।

सत्याणुव्रत के अतिचार

ऐसैं सत्याणुव्रत के अतिचार पाँच[2]। **मिथ्योपदेश** कहिये झूठ का उपदेश देना। **रहोऽभ्याख्यान** कहिये काहू की गुह्य बात प्रकाशना। **कूटलेखक्रिया** कहिये झूठे खातादिक लिखना। **न्यासापहार** कहिये काहू की धरी वस्तु अस्त-व्यस्त करनी। **साकार मंत्र-भेद** कहिये अन्य पुरुष का मुखादिक का चिन्ह देखि ताका अभिप्राय जानि प्रकाश देना।

अचौर्याणुव्रत के अतिचार

अचौर्य अणुव्रत के अतिचार पाँच[3]। **स्तेनप्रयोग** कहिये चोरी का उपाय बतावना। **तदाहृतादान** कहिये चोरनि का हर्‍या माल मोल लेना। अर **विरुद्धराज्यातिक्रम** कहिये हासिल का चुरावना। **हीनाधिकमानोन्मान** कहिये घाटि देना, बाध लेना। **प्रतिरूपकव्यवहार** कहिये बाध मोल वस्तु मैं घाट मोल वस्तु मिलावना।

ब्रह्मचर्याणुव्रत के अतिचार

ब्रह्मचर्य अणुव्रत के अतिचार पाँच[4]। **परविवाहकरण**

---

१ तत्त्वार्थ सूत्र अ ७ सू २४ २ वही, अ ७, सू २६ ३ तत्त्वार्थ सूत्र अ ७, सू २७ ४ वही अ ७, सू २८

कहिये पराया विवाह करावना। **इत्वरिकापरिगृहीतागमन** बिभचारिणी परायी स्त्री ताकै घर जाना। **परिगृहीतागमन** कहिए पतिरहित स्त्री कै घर गमन करना। **अनंगक्रीडा** कहिये शरीर-स्पर्शादि क्रीडा करनी। **कामतीव्राभिनिवेश** कहिये काम का तीव्र परिणाम करना।

परिग्रहपरिमाणाणुव्रत के अतिचार

परिग्रह-परिमाण अणुव्रत के अतिचार पाँच[1]। **इंद्रीनि के मनोज्ञ** तथा **अमनोज्ञ** जे विषय तिनि विषै हरष-विषाद करना तथा और भी कहिये है। **अतिवाहन** कहिये मनुष्य तथा पशु कौ अधिक गमन करावना। **अतिसंग्रह** कहिये वस्तुनि का बहुत संग्रह करना। **अतिभारारोपण** कहिये लालच करि अति बोझ लादना। **अतिलोभ** कहिये अति लोभ का करना और प्रकार भी कहै है। **क्षेत्रवस्तु** कहिये गाव, खेट, हाट, हवेली आदि। **हिरण्यस्वर्ण** कहिये रोकडी[2] तथा गहणा। **धन-धान्य** कहिये चौपद वा धान्यादिक। **दासी-दास** कहिये दासी—दास। **कुप्यभाड** कहिये वस्त्र तथा सुगधि भाजनादि। इनिका अतिक्रम कहिये प्रमाण किया था ताकौ उलघना।

दिग्व्रत के अतिचार

दिग्व्रत के अतिचार पाच[3]। **ऊर्ध्वव्यतिक्रम** कहिये ऊर्ध्व दिशा का प्रमाण उलघना। **अधोव्यतिक्रम** कहिये अधो दिशा का प्रमाण उलघना। **तिर्यग्व्यतिक्रम** कहिये च्यारि दिशा, च्यारि विदिशा का प्रमाण उलघना। **क्षेत्रवृद्धि**

---

१ वही, अ ७, सू २९, २ नकद, खेरची ३ तत्त्वार्थसूत्र अ ७, सू ३०

कहिये क्षेत्र का जो प्रमाण किया था, ताहि बधाय देना। **स्मृत्यंतराधान** कहिये क्षेत्र का जो प्रमाण किया था, ताहि भूल जाना।

देशव्रत के अतिचार

देशव्रत के अतिचार पाच[1]। **आनयन** कहिये मर्यादा उपरात क्षेत्र तै वस्तु का मगावना। **प्रेष्यप्रयोग** कहिये मर्यादा उपरात क्षेत्र विषै वस्तु भेजनी। **शब्दानुपात** कहिये प्रमाण उपरात क्षेत्र तै शब्द करि काहू कू बुलावना। **रूपानुपात** कहिये प्रमाण उपरात क्षेत्र विषै आपणा रूप दिखाय अभिप्राय कौ जनाय देना। **पुद्गलक्षेप** कहिये प्रमाण उपरात क्षेत्र विषै काकरी इत्यादि बगावना[2]।

अनर्थदण्डव्रत के अतिचार

अनर्थदडव्रत के अतिचार पॉच[3]। **कंदर्प** कहिये कामोद्दीपन आहारादिक का करना। **कौत्कुच्य** कहिये मुख मोडना, आँख चलावनी, भौह नचावनी। **मौखर्य** कहिये वृथा वकना। **असमीक्ष्याधिकरण** कहिये बिना देखे वस्तु का उठावना, मेलना। **भोगानर्थक्य** कहिये निषिद्ध भोगोपभोग का सेवना।

सामायिक शिक्षा व्रत के अतिचार

सामायिक व्रत का अतिचार पाच[4]। **मनोयोगदु:प्रणिधान** कहिये मन की दुष्टता। **वचनयोगदु:प्रणिधान**

---

१ तत्वार्थ सूत्र अ ७, सू ३१ २ फेकना ३ वही, अ ७, सू ३२ ४ वही, अ ७, सू ३३

कहिये वचन की दुष्टता। **काययोगदु:प्रणिधान** कहिये शरीर की दुष्टता। **अनादर** कहिये सामायिक का निरादर। **स्मृत्यनुपस्थान** कहिये पाठ का भूल जाना।

प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत के अतिचार

प्रोषधोपवास के अतिचार पाँच[1]। **अप्रत्यवेक्षिता-प्रमार्जितोत्सर्ग** कहिये बिना देखे, बिना पूछे वस्तु का उठावना। **अप्रत्यावेक्षिताप्रमार्जितादान** कहिये बिना देखे, बिना शोधे उपकरण उठावना। **अप्रत्यावेक्षिताप्रमार्जित-संस्तरोपक्रमण** कहिये बिना देखे, बिन पूछै साथर[2] बिछावना। **अनादर** कहिये निरादर सौ पौसा[3] (प्रोषध) करना। **स्मृत्यनुपस्थान** कहिये पोसा का दिन आवै चौदस जे पर्वी के दिन तिनिकू भूल जाना।

भोगोपभोगपरिमाण शिक्षाव्रत के अतिचार

भोगोपभोग परिमाण के अनिचार पाँच[4]। **सचित्ताहार** कहिये हरितकायादिक का आहार करना। **सचित्तसंबधाहार** कहिये पातल,[5] दौना आदि सचित्त वस्तु विषै मेलि जीमना इत्यादि सचित्त सबध का आहार करना। **सचित्तमिश्राहार** कहिये उष्ण जल विषै शीतल जल नाख्या होय, ताका अगीकार करना। **अभिषवाहार** कहिये सीला वा विदुल (द्विदल) इत्यादि अयोग्य आहार करना। बहुरि भले प्रकार पक्या नाही सो **दु:पक्वाहार** कहिये। ऐसे पाँच भेद जानना।

---

१ वही, अ ७, सू. ३४ २ बिस्तर बिछौना ३ उपवास ४ तत्वाथ अ ७, सू ३५ ५ पत्तल

अतिथिसंविभाग व्रत के अतिचार

अतिथिसविभागव्रत के अतिचार पाँच[1]। **सचित्तनिक्षेप** कहिये सचित्त जे पातल, दौना ता विषै मेल्यौ जो आहार ताका देना। **सचित्तपिधान** कहिये सचित्त करि ढाक्यो जो आहार ताका पात्र कौ देना। **परव्यपदेश** कहिये पात्र-दान औरनि कौ बताय आप *अन्य* कार्य कौ जाय। **मात्सर्य** कहिये औरनि का दान दिया देखि न सकै। **कालातिक्रम** कहिए हीन-अधिक काल लगावना।

सल्लेखना के अतिचार

अत सल्लेखना के अतिचार पाच[2]। **जीविताशंसा** कहिये जीवनै का अभिलाप। **मरणाशंसा** कहिए मरने की अभिलाष। **मित्रानुराग** कहिए मित्रन विषै अनुराग। **सुखानुबंध** कहिये इह भव का सुखन कौ चितवन। **निदान** कहिये परभव के भोगनि की अभिलाषा। ऐसे ये सब मिलकर सत्तर अति-चार भये तिनका त्याग करना।

सामायिक के दोष

आगै सामायिक का बत्तीस दोप कहै हे। **अनादर** कहिये निरादर सौ सामायिक करै। **प्रतिष्ठा** कहियो मान-बढाई, महिमा के वास्ते सामायिक करै। **परपीड़ित** कहियो पर जीवनै पीडा उपजावै। **दोलापति** कहिये हीडै[3] वा बालक की-सी नाईं सामायिक विषै हालै। **अंकुश** कहिए आकुश की-सी नाई सामायिक वक्रता लिए करै। **कच्छपपरिग्रह**

---

१ तत्त्वार्थसूत्र अ ७ सू ३६ २ वही अ ७ सू ३७ ३ कापे, जोर-जोर से हिले.

कहियो कछुआ की-सी नाई शरीर सकोच करि **सामायिक करै।** **मत्स्योदकवर्तन** कहियो माछला की-सी नाईं नीचो-ऊँचो होय। **मनोदुष्ट** कहियो मन मे दुष्टता राखै। **वेदिकाबंध** कहियो आम्नाय-बाह्य। **भय** कहियो भय सयुक्त सामायिक करै। **विभस्ति** कहियो गिलान सहित सामायिक करै। **ऋद्धिगौरव** कहियो ऋद्धि-गौरव मन मै राखै। **गौरव** कहियो जाति, कुल को गर्व राखै। **स्तेन** कहिये चोर की-सी नाईं सामायिक करै। **व्यतीत** कहियो व्यतीत काल। **प्रदुष्ट** कहिये अत्यन्त दुष्टता सौ करै। **तर्जित** कहियो पैलानै[1] भय उपजावै। **शब्द** कहियो सामायिक समे सावद्य कार्य लिया बोलै। **हीलनि** कहिए पर की निंदा करै। **त्रिवलित** कहिये मस्तक की त्रिवली भौह चढाया सामायिक करै। **सकुचित** कहिये मन के विषै सकुच्यौ थकौ सामायिक करै। **दिग्विलोकन** कहिये दशो दिशा माहू अवलोकन करै। **आदिष्ट** कहिये जायगा बिना देख्या, बिना पूछ्या करै। **संयम-मोचन** कहिये जैसे कोई को लहनो देनो होइ सो जिह-तिह प्रकार पूरौ पाड्या चाहै, त्यौ ही देने कैसी नाई जिह–तिह प्रकार सामायिक कौ काल पूरौ चाहै। **लब्ध** कहिये सामायिक की सामग्री, लगोट वा पोछी वा क्षेत्र की जोगाई[2] मिलै तौ करै, नाही तो आधो काढि जाय। **अलब्ध** कहिये न लब्ध। **हीन** कहिये सामायिक कौ पाठ है सौ ही न पढै अथवा सामायिक कौ काल पूरो हुवा बिना ही उठि बैठा होय। **उच्चूलिका** कहिये खण्डित पाठ करिये। **मूक** कहिये गूगे कैसी नाई बोलै। **दादुर** कहिये मीडक की-सी नाई ऊ[3] सुरनै लिया डरउ–डरउ बोलै। **चलुनित** कहिये चित्त कौ चलाइवौ। ऐसे सामायिक का बत्तीस दोष जानना।

---

1 पहले वाले को 2 साधन, जुगाड 3 उस

सामायिक की शुद्धियाँ

आगै सामायिक विषै सात शुद्धि राखि सामायिक करै, ताकौ ब्योरो कहै है । **क्षेत्रशुद्धि** कहिये जेठे[1] मनुष्या कौ कल-कलाट शब्द न होय, घणा लोग न होय, डाम–माछर न होय अर घणो पौन वा घणी गरमी, घणो शीत न होय । **कालशुद्धि** कहिये प्रात वा मध्यान्ह वा साझ ये सामायिक कौ काल छै सो उलघै नाही । जघन्य दोय घडी, मध्यम च्यारि घडी उत्कृष्ट छह घडी सामायिक कौ काल छै । सो दोय घडी, करणो होय तौ घडी तडकासू[2] लगाय घडी दिन चढया पर्यन्त, च्यारि घडी करणो होय तौ दोय घडी तडकासूँ लगाय दोय घडी दिन चढया पर्यन्त, अर छह घडी करणो होय तौ तीन घडी तडकासूँ लगाय तीन घडी दिन चढया पर्यत, ई काल की आदि विषै सामायिक की प्रतिज्ञा करै । प्रतिज्ञा सिवाय काल लगावै नाही । ऐसे ही मध्यान्ह समै वा साझ समै जानना । **आसनशुध्दि** कहिये पद्मासन वा खड्गासन सामायिक करना । **विनयशुद्धि** कहिये देव, गुरु, धर्म कौ वा दर्शन, ज्ञान, चारित्र कौ विनय लिया करै । **मनःशुद्धि** कहिये राग–द्वेष रहित मन राखे । **वचनशुद्धि** कहिये सावद्य वचन बोलना नाही । **कायशुद्धि** कहिये बिना देख्या, बिना पूछ्या पग उठावै वा धरै नाही । ऐसे सात शुद्धि का स्वरूप जानना ।

कायोत्सर्ग के दोष

आगै कायोत्सर्ग के बाईस दोष कहिये है । **कुड्याश्रित** कहिये भीति[3] कौ आसिरो लेवो । **लतावक्र** कहिये वेलि

---

१ जहाँ, २ भुनसारा, सबेरे से, ३ दीवाल

की-सी नाईं हालता रहै। **स्तंभाश्रित** कहिये स्तंभ[1] का आसिरा लेना। **कुंचित** कहिये शरीर का सकोचना। **स्तनप्रेक्षा** कहिये कुच का देखना। **काकदृक्** कहिये काग की--सी नाई[2] देखना। **शीर्षकंपित** कहिये मस्तक का कपावना। **धुराकंधर** कहिये काधा नीचा करना। **उन्मत्त** कहिये मतवाला की-सी नाई चेष्टा करनी। **पिशाच** कहिये भूत की-सी नाई चेष्टा करनी। **अष्टदिशेक्षण** कहिये आठो दिशा की तरफ चौधना[3]। **ग्रीवा-नमन** कहिये नाडि[4] कौ नमावै। **मूक-संज्ञा** कहिये गूगा की नाई सैन करना। **अंगुलि-चालन** कहिये अगुली चलावना। **निष्ठीवन** कहिये खखारना। **खलितनं कहिये** खखार का नाखना। **सारी गुह्य गूहन** कहिये गुह्य अग काढना। **कपित्थमुष्टि** कहिये काथोडी[5] की-सी नाई मूठी बाधना। **शृंखलिताप** कहियो साकल की-सी नाईं पाद का होना। **मालिकोचलन** कहिये कोई पीठ, माथा ऊपरि नीकौ आश्रय लेना। **अंगस्पर्शन** कहियो आपना अग स्पर्शना। **घोटक** घोडा की-सी नाई पाव करना। ऐसा बाईस दोष कायोत्सर्ग का जानना।

श्रावक के अंतराय

आगै श्रावक के च्यारि प्रकार अतराय कहिये है— मदिरा, मास, हाड, काचा चर्म[6]। च्यारि अगुल लोहू की धारा, बडा पचेद्री मुवा जिनावर,[7] विष्टा मूत्र, चूहडा[8] इनि आठनि कौ तौ प्रत्यक्ष नेत्रा करि देखने ही का भोजन विषै

---

१ खम्भा २ तरह ३ देखना ४ गदन ५ कथीट, कैथ ६ कच्चा चमडा ७ जानवर ८ चूहा।

अंतराय है। बहुरि आठ तौ पूर्वै देखने विषै कह्या सोई अर सूका[1] चर्म, नख, केस, ऊन, पाख, असयमी स्त्री वा पुरुष, बडा पचेंद्री तिर्यंच, ऋतुवती स्त्री, आखडी का भग, मल-मूत्र करने की शका, मुरदा का स्पर्शन, काख विषै त्रसजीव मृतक निकसै वा बाल निकसै, काख विषै वा हस्तादिक निज अग सौ बेंद्री आदि छोटा-बडा त्रस जीवा का घात, इत्यादिक का भोजन समय स्पर्श होय तौ भोजन विषै अत-राय होय है। बहुरि मरण आदिक का दुख ताका विरह करि रोवता होय ताका सुणना, लाय[2] लागी होय ताके सुनिवा का, नगरादिक का मारवा का, धर्मात्मा पुरुष कौ उपसर्ग हुये का, मृतक मनुष्य का, कोई का नाक--कान छेदने का, कोई चोरादिक नै मारि वा ले गया होय ताका, चडाल के बोलने का, जिनबिब वा जिन धर्म का अविनय का, धर्मात्मा पुरुष के अविनय का, इत्यादि महापाप के वचन सत्यरूप आपनै भासै तो ऐसे शब्द सुनने विषै भोजन का अनराय है। बहुरि भोजन करनी बार ऐसी सका उपजै कै या तरकारी तौ मास सारिखी है वा लोहू सारिखी है वा हाड सारिखी है वा चर्म सारिखी है वा विष्टा वा महद इत्यादि निदक वस्तु सारिखी भोजन समै कलपना उपजै अर मन मैं ग्लानि होय आवै अर मन वाके चाखने विषै ओठा[3] होय तौ भोजन विषै मन का अनराय है। अर भोजन विषै निदक वस्तु की कलपना ही उपजै अर मन विषै वाका जाणपणा होय तौ वाका अनराय नाही। ऐसे नेत्र करि देखवा का आठ, स्पर्श का बीस, सुनने का दश, मन का छह सब मिलि च्यारि प्रकार के अतराय के चवालीस

---

१ सूखा २ आग ३ खट्टा, फीका

जानना। अर कोई अज्ञ[१] राग भाव घटने के कारण अर अन्य जीव की दया हेतु तौ ये अतराय पालै नाही अर झूठा मृत, विषय के नाम मात्र सुनने करि अतराय मानै। पाछै झालर, थाली बजाय अंधा-बहरा कैसी नाईं देख्या-अनदेख्या करै, सुन-अनसुन्या करै, पाछै नाना प्रकार के गरिष्ठ मेवा, पकवान, दही-दुग्ध, घृत, तरकारी खाद्य-अखाद्य के विचार बिना त्रस-स्थावर जीव की हिंसा-अहिंसा के विचार बिना कामोत्पादक वस्तु अघोरी की नाईं अनभावतो ठसाठस पेट भरै है। राजी होइ स्वाद लैहै अर भिखारी की नाईं सरावगा[२] की खुशामद करि माग-माग खाय। जैसे कोई पुरुष सूक्ष्म-स्थावरा की तो रक्षा करै अर बडा-बडा त्रसजीवा कौ आख मीच आखा[३] ही निगलै है। अर पीछै कहै मै सूक्ष्म जीवा की भी दया पालौ हो, ऐसा काम करि वापरा गरीब भोला जीवन के धर्म अर लौकिक धनकू ठगै है। पाछै आपुन साथि मोह मत्र करि वश कर कुगति ले जाय, तैसे महाकालेश्वर देव अर पर्वत ब्राह्मण मायामयी इन्द्र-जाल सादृश्य चमत्कार दिखाय राजा सगर कौ वश कौ जग्य[४] विषै होम नरक विषै प्राप्त किये। अर मुख सू ऐसे कहै जग्य विषै होम्या प्राणी बैकुठ जाय है। ऐसे ही आचरणकू कुलिगा का जानना।

आगै मान जायगा मौन करने का स्वरूप कहिये—**देवपूजा** विषै, **सामायिक** विषै, **स्नान** विषै, **भोजन** विषै, **कुशील** विषै, लघु-दीर्घ बाधा विषै अथवा **मल-मूत्र क्षेपण**

---

१ अज्ञानी, अजान २ सरावगियो (श्रावको) जैनियो ३ अखण्ड, साबुत ४. यज्ञ

विषै, वमन विषै। इन सप्त मौन के धारक पुरुष हाथ सूं वा मुख सूं सैन करै नाहीं वा हुंकारा करै नाहीं।

आगै ग्यारा स्थान विषै श्रावक के जीवदया अर्थं चदोवा चाहिये सो कहै है– पूजा-स्थान ऊपर, सामायिक स्थान ऊपर, चूलहे ऊपर, परहडै[१] ऊपर, ऊखल ऊपर, चाकी ऊपर, भोजन स्थान ऊपर, सेज्या स्थान ऊपर, आटौ छानै तैठै[२], व्यापारादिक करै तैठे अर धर्म-चर्चा के स्थान विषै ऐसा जानना।

सामायिक प्रतिमा का स्वरूप

आगै सामायिक प्रतिमा का स्वरूप कहिये है। दूसरी प्रतिमा कै विषै आठै-चौदसि वा और पर्व विषै तौ सामायिक अवश्य करै ही करै। औरा दिना विषै मुख्यपनै तौ सामायिक करै ही करै, पन सर्व प्रकार नेम नाही करै वा नाही करै। अर तीसरी प्रतिमा का धारी कै सर्व प्रकार नेम है, ऐसा विशेष जानना।

प्रोषध प्रतिमा का स्वरूप

आगै प्रोषध प्रतिमा का स्वरूप कहिये है। ऐसे ही दूजी, तीजी प्रतिमा के धारी कै प्रोषध उपवास का नियम नाही है, मुख्यपणै तौ करै है अर गौणपनै नाही भी करै। अर चौथी प्रतिमाधारी के नियम है-यावज्जीव करै ही करै।

---

१ परडा, पानी भरकर रखने का स्थान २ वहाँ

सचित्तत्याग प्रतिमा का स्वरूप

आगै सचित्तत्याग प्रतिमा का स्वरूप कहिये है। दोय घडी उपरात का अनछान्या पानी अर हरितकाय मुख कर नाही विराधै है। अर मुख्यपणे हस्तादिक करि भी पाचू स्थावरान कू नाही, नाही विराधै है। याकै सचित्त भखने[1] का त्याग है। पाचू[2] स्थावरान[3] का कायादि करि त्याग नाही, मुनि कै है। हस्तादिक अग करि हिसा का पाप अल्प है अर मुख मे भखने का महापाप है। मुख का त्याग पाचमी प्रतिमा के धारी कै है। अर शरीरादि का त्याग मुनि के है। मुनि विशेष सयमकू प्राप्त भया है।

रात्रिभोजनत्याग प्रतिमा का स्वरूप

आगै रात्रिभुक्ति का त्याग दिन विषै कुशील का त्याग प्रतिमा कहै है। रात्रिभोजन का त्याग तौ पहली, दूसरी प्रतिमा सू ही मुख्यपणै होय आया है। परन्तु क्षत्री, वैश्य, ब्राह्मण, शूद्र आदि जीव नाना प्रकार के है। स्पर्शशूद्र पर्यन्त श्रावक व्रत होय है। सो जाके कुल-कर्म विषै ही रात्रिभोजन का त्याग चला आया, ताके तौ रात्रिभोजन का त्याग सुगम है। परन्तु अन्य मती शूद्र जैनी होय अर श्रावकव्रत धारै, ताके कठिन है। ताते सर्व प्रकार छठी प्रतिमा विषै ही याका त्याग सम्भवै है। अथवा अपने खावा का त्याग तो पूर्व ही किया था। इहा औरॉ कू भोजन करावने आदि का त्याग किया।

---

१ भक्षण, खाने २ पाचो ३ स्थावरो

ब्रह्मचर्य प्रतिमा का स्वरूप

आगै ब्रह्मचर्य प्रतिमा का स्वरूप कहिये है। यहा घर की स्त्री का भी त्याग किया, नव बाड सहित ब्रह्मचर्यव्रत अगीकार किया।

आरम्भत्याग प्रतिमा का स्वरूप

आगै आरम्भ-त्याग कहै है। यहा व्योपार, रसोई आदि आरम्भ करने का त्याग किया। पैला के घर वा आपने घरि न्योता बुलाया जीमै है।

परिग्रह प्रतिमा का स्वरूप

आगै परिग्रह प्रतिमा का स्वरूप कहिये है। यहा जो वाकै तुच्छ अपने पहरवा का धोवनी[1] पछेवडी[2] पोत्या[3] आदि राखै है, अवशेष परिग्रह का त्याग करै।

अनुमति त्याग प्रतिमा का स्वरूप

आगै अनुमति-त्याग प्रतिमा का स्वरूप कहिये है। यहा सावद्य कार्य का उपदेश देना भी तज्या है। सावद्य कीया कारिज की अनुमोदना भी नाही करै है।

उद्दिष्टत्याग प्रतिमा का स्वरूप

आगै उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा का स्वरूप कहिये है। यहा बुलाया नाही जीमै है। उदण्ड[4] ही उतरै है। ताका दोय भेद है। एक तौ क्षुल्लक और एक ऐलक। क्षुल्लक तौ

---

[1] धोती [2] दुपट्टा [3] अगोछा, तौलिया [4] सहसा

कमडल-पीछी, आधा पछेवडा, लगोट राखै है। स्पर्शशूद्र लोह का पात्र राखै है। ऊच कुली[1] पीतल आदि धातु का पात्र राखै। अर पाच घरा सू भोजन ले, अन्त के घर पाणी ले वहा ही बैठि करि लोहे का पात्र मे भोजन करै है अर ऊच कुली एक ही घर भोजन करै है अर एकातरा भी करावै है। अर ऐलक पछेवडा बिना एक कमण्डल-पीछी, लगोट ही राखै है अर कर-पात्र आहार करै है। अर लोच करावै है अर लगोट लाल राखै है अर लगोट चाहिये तौ भी लेय। अर आहार को जाय तब श्रावक के घर कै द्वारे ऐसा शब्द कहै है- अखै दान। अर नगर बाहरै मण्डप, मठ बाह्य विषै तिष्ठै है वा मुन्या कै समीप वनादिक विषै वसै है। अर मुन्या का चरणारविंद सेवै है अर मुन्या के साथ ही विचरै है। अर क्षुल्लक भी मुन्या के साथ ही विचरे है, अर ससार सू उदासीन रहै अर अनेक शास्त्रा का पारगामी है। अर स्व-पर विचार का वेत्ता है, तातै **आप चिन्मूर्ति हुवा शरीर सूं भिन्न स्वभाव विषै तिष्ठै है।**

अर ऐलक वा अर्जिकाजी तौ क्षत्री, वैश्य, ब्राह्मण ऊच कुल के ही नियम करि उत्कृष्ट श्रावक के व्रत धारै है। अर क्षुल्लक के व्रत स्पर्श शूद्र भी ग्रहण करै है। अर अस्पर्श शूद्र नै प्रथम प्रतिमा का धारक जघन्य श्रावक का व्रत भी नाही सम्भवै है अर पोमे सौ आखडी पालै है नाही। अर बडा सैनी पचेन्द्री तिर्यच विषै ज्ञान का धारक तानै भी मध्यम श्रावक व्रत होय है। सो देखो श्रावक की तो यह वृत्ति है। अर महापापी, महाकषायी, महा मिथ्यात्वी, महा परिग्रही, महा विषयी, देव-गुरु-धर्म के अविनयी, महा-

---

[1] कुलीन

तृष्णावान, महा लोभी. स्त्री के रागी, महा मानी, गृहस्थां कैसौ विभव, महा विकल, सप्त विसन (व्यसन) करि पूर्ण अर मन्त्र-तन्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, कामनादि के डोरा-डाँडा[1] करि मोहित किया है, बहकाया है वा वापरा भोला जीवानै अर जाकै कोई प्रकार कौ सबर नाही, तृष्णा अग्नि करि दग्ध होय गया है आत्मा जाका, सो अपने लोभ करि गृहस्था का भला मनवाने के अर्थ त्रैलोक्य करि पूज्यश्री तीर्थंकरदेव की शान्ति मूर्ति, जिन प्रतिबिंब वाके घर ले जाये वाको दर्शन करावै, पाछै अपने मतलब के अर्थ करै। सो आप तो घोरान घोर ससार के विषै बूडा[2] ही है। भोरा जीवानै ससार विषै डुबौवै है। दोय-चार गाव का ठाकुर भी सेवक का मतलब के वास्ते सेवक का ले (जाया) गया सेवक के घर जाय नाही, तो ये सर्वोत्कृष्ट देव याकू कैसे ले जाइये? इस समान पाप और हुवा न होसी। सो कैसी-कैसी विपर्यय की बात कहिये है। आजीविका के अर्थ गृहस्थन के घर जाय शास्त्र वाचे है। अर शास्त्र मे अर्थ तो विषय-कषाय, राग-द्वेष, मोह छुडावा का अर वे पापी अपूठा विषय-कषाय, राग-द्वेष, मोह ताको पोषै है। अर या कहे है— अबार तो पचम काल छै, न ऐसा गुरु न ऐसा श्रावक। आपा नै गुरु मनावा के वास्ते गृहस्था नै भी धर्म सू विमुख करै। अर गृहस्था नै एक श्लोक भी प्रीति करि सिखावै नाही, मन मे या विचारै कदाचि[3] याके ज्ञान होइ जासी तो म्हाको औगुण याने प्रतिभाससी तो पाछे म्हाकी आजीविका मनै होसी। ऐसा निर्दय आपणा मतलब के वास्ते जगतनै डुबोवे है अर धर्म पचमकाल के अन्त

---

१ गडा, ताबीज २ डूबा ३. कदाचित्

ताईं[1] रहना है। बहुरि ताके ल्याव देव याही वासना सदीव[2] वसी है। अर जिन धर्म के आसिरे[3] आजीविका को पूरी करै है। जैसे कोई पुरुष कोई प्रकार आजीविका पूरी करिवानै असमर्थ है, पाछै वह आपणी मातानै पीठे बैठारि[4] आजीविका पूरी करै है, त्यो ही **जिन धर्म सेय सत्पुरुष तो एक मोक्ष ही नै चाहै है, स्वर्गादिक भी नाहीं चाहै है तो आजीविका की कहा बात है ?** सो हाय ! हाय ! हुडावसर्पिणी काल दोष करि ई[5] पचमकाल विषै कैसी विपरीतता फैली है ! काल--दुकाल विषै गरीब का छोरा[6] भूखा मरता होय दोय-च्यार रुपया विषै चाकर गुलाम की नाई मोल बिक्या पाछै निर्माल्य[7] खाय-खाय- बडा हुआ अर जिन--मन्दिर नै आपना रहवा का घर किया अर शुद्ध देव, गुरु-धर्म के विनय का तो अभाव किया। अर कुगुरादिक के सेवने का अधिकारी हुवा- ऐसा ही औरा नै उपदेश दिया। जैसे अमृत नै छाडि हलाहल विष नै सेवै वा चिन्तामणि रत्न छाडि काच का खण्ड की चाहि करै वा कामदेव--सा भर्तार छोडि अस्पर्श शूद्री अन्धा, बहरा, गूगा, लूला, पांगुला[8] कोढी तामू विषय सेय आपनै धन्य मानै। अर या कहै मै शीलवत पतिव्रता स्त्री हू सो ऐसी रीति कुवेश्या विषै पाइयै है। अर ताही का अन्य जीव आसिरा लेय धर्म-रसायण चाहै है अर आपकू पुजाय महन्त मानने लगा।

अर आपने मुख सौ कहै है-- म्है[9] भट्टारक दिगम्बर गुरु छा, म्हानै पूजो औरनै पूजसी तो दण्ड देस्या वा थाकै माथै भूखा रहस्या वा निन्दा करस्या अर स्त्री साथ

---

१ तक २ सदा ही ३ सहारे ४ बिठा कर ५ इस ६ लडका
७ निर्माल्य, देव, धर्म गुरु का चढाया हुआ द्रव्य ८ लगडा ९ मैं

लिया फिरै । सो भट्टारक नाम तौ तीर्थंकर केवली का है अर दिगम्बर कहिये-दिग् नाम दिशा का है, अम्बर नाम वस्त्र का है । सो दशो दिशा के वस्त्र पहरे होय ताको दिगम्बर कहिये । निर्ग्रन्थ नाम परिग्रह रहित का है, ताकै तिल-तुष मात्र परिग्रह तौ बाह्य अर चौदा प्रकार का परिग्रह अभ्यन्तर परिग्रह तासूं रहित ताकू निर्ग्रन्थ कहिये । सो वस्तु का स्वभाव तौ अनादिनिधन ऐसा अर मानै कैसा सो यह कहावत कैसी ? म्हारी माँ अर बाझ सो जगत विषै परिग्रह ही सू नर्क जाय है । अर परिग्रह हो जगत विषै निन्द है । ज्यौ-ज्यौ परिग्रह छोडै, त्यौ-त्यौ सयम नाम पावै सो या बात तौ ऐसै त्याज्य करणी अर हजारा-लाखा रुपया की दौलति अर घोडा, बैल, रथ, पालकी चढनै कौ अर चाकर, कूकर अर कडा-मोती पहरे, थुरमापावडी बौढै, नरक-लक्ष्मी के पान ग्रहण करने कू वीद सादृश्य है । बहुरि चेला-चाटी सोई भई फौज अर चेली सोई भई स्त्री-ऐसो विभूति सहित राजा सादृश्य होते सता भी आपकू दिगम्बर मानै है । सो एह दिगम्बर कैसे जाना ? ह्यानै एक दिगम्बर नाही । हुडावसर्पिणी के पचम काल की विधाता ने ए मूर्ति हो घडी है कि मानू सात विसन की मूर्ति ही है कि मानू पाप का पहार ही है कि मानू जगत के डुबोवने कू पत्थर की नाव ही है ।

बहुरि कैसा है कलिकाल का गुरु? सो आहार कै अर्थि दिन प्रति नगन-वृत्ति आदरै अर भक्त बुलावै स्त्रीन का लक्षन देखै । इह मिसि स्त्रिया का स्पर्श करै । स्त्रिया का मुख कमल नै भ्रमर समान हौय वाका अवलोकन करै । पाछै अत्यन्त मग्न होय आपनै कृत्यकृत्य मानै । सो या

बात न्याय ही है। सो ऐसा तौ गरिष्ठ नाना प्रकार का नित नवा भोजन मिल्या अर नित नई जोवनमयी स्त्री मिली तो याका सुख की काई पूछनी ? सो ऐसा सुख राजा ने भी दुर्लभ सो ऐसा सुख पाय कौन पुरुष मगन नाही होय ? होय ही होय। सो कैसी है वे स्त्री अर कैसा है वाका खावद ? सो स्त्री का तौ अन्त करन परनाम कैसो बनो। अर पुरुष मोह मदिरा करि मूर्च्छित भया तातै ई अन्याय का मेटिवानै कौन समर्थ है ? तीसू आचार्य कहै है-म्है ई विपर्यय नै देखि मौन करि तिष्ठा है। याका न्याय त्रिवाना ही करने कू समर्थ है, हम नाही। सो ऐसा गुरा नै सेय पर लोक विषै भला फल नै वाछै है। सो वे काई करै है! जैसे कोई पुरुष बाँझ के पुत्र का आकाश के फूल सू सेहरा गूथि आप मुवा पाछै वाका अवलोकन किया चाहै है वा जस-कीर्तिकू सुन्या चाहै है, तिहि सादृश्य वाका स्वरूप जानना। बहुरि परस्पर प्रशसा करै है। वे तो कहै-थे[1] म्हाके सतगुरु हो। वे कहै- थे म्हाके पुण्यात्मा श्रावक हो। कौन दृष्टान्त, जैसे ऊट का तौ ब्याह अर गन्धर्व गीत गावने वारे। वे तो कहै— वीद[2] का रूप कामदेव सादृश्य कैसा बना है अर कैसा सोभे है। अर वे कहै- कैसा किन्नर जाति के देव के कण्ठ सादृश्य कैसा राग गावै है। या सादृश्य श्रावक-गुरा की शोभा जाननी।

इहा कोई कहै- घर के गुराँ[3] की दशा वरनई[4]। अर श्वेताम्बर आदि अन्य मतीनि की दशा क्यो न बरनई ? तो याके बीच भी खोटा है। ताकू कहिये है- रे भाई! यह तो न्याव थारे ही मुहडे[5] होय चुका। ब्राह्मण के हाथ की

१ तुम २ दूल्हा, वर ३ गुरुओ ४ वर्णन किया ५ मुख से

रसोई अलीन[१] ठहरी तो चाडालादि के हाथ की रसोई कैसे लीन ठहरेगी । ऐसे जानना । इहा कोई प्रश्न करे—ऐसे नाना प्रकार के भेष कैसे भये ? ताकूं कहिये है । जैसे राजा के सुभट सत्रु की फौज ऊपर लडने कू चाले पाछे वैरा के सस्त्र प्रहार कर कायर होय भाजे, पाछै राजा याकू भागा जान नगर आवना मने किया अर नगर बाहिर ही कही याको माथा मूड गधै चढाय नगर दोल्यू फेर्या । काहू कौ लाल कपडा पहराये, काहू कौ काथ्या[२] कपडा पहराये, काहू[३] कौ चूडी पहराई, काहू का राड[४] वैरि का स्वाग किया, काहू का सोहागिन स्त्री का स्वाग किया, काहू कनै[५] भीख मगाई, इत्यादि नाना प्रकार के स्वाग कर नगर बाहिर काढ दिये। अर जे रन विषै वैरी को जीत आये, मुजरा[६] किया ताकू राजा नाना प्रकार के पद दिये । अर मुख सो बहुत बडाई कीनी । त्यो ही दृष्टान्त के अनुसार दार्ष्टांत जानना । तीर्थंकर देव त्रिलोकीनाथ सोई भया सर्वोत्कृष्ट राजा ताके भक्त पुरुष भगवान के मस्तक ऊपर आग्या धारि मोह कर्म सू लडवानै ग्यान-वैराग्य की फौज को लुटाय आप कायर होय भागा ताकू भगवान की आग्या अनुसारि विधाता—कर्म ग्रहस्थपना नगर मे तै निकार बाहिज[७] ही राखा । अर रक्ताम्बर, टाटाम्बर[८] , स्वेताम्बर, जटाधारी, कनफटा आदि नाना प्रकार के स्वाग बनाये । अर जो भक्त पुरुष मोह कर्म की फौज सौ जय ने प्राप्त भया अरहन्त देव नगर का राज दिया, ताकी आपने मुख करि बहुत बडाई कीनी अर अनागत[९] काल विषै तीर्थंकर होसी, ते भी बडाई करसी । ऐसा याका

---

१ अशुध्द २ कत्थे के रग के ३ किसी ४ विधवा ५ पास ६ भेट
७ बाहर ८ टाट (फट्टी) बारदाना के बने हुए वस्त्र (धारी) ९ भविष्य

सरूप जानना । ऐसे ग्यारा प्रतिमा का स्वरूप विशेषपणै कह्या ।

रात्रि-भोजन का स्वरूप

आगै रात्रि-भोजन का स्वरूप वा दोष वा फल कहिये है । प्रथम तौ रात्रि विषै त्रस जीवां की उत्पत्ति बहुत है । सो बडा त्रस जीव तौ डास--माछर--पतगादि आख्या देखिये है । सो ही महा छोटा जीव दिन विषै भी नजरा नाही आवै । ऐसा सख्यात-असख्यात उपजै है । अर वाका स्वभाव ऐसा होय सो अग्नि विषै तौ दूरि सेती आय झुकै है । ऐसे ही कोई वाके नेत्र इन्द्रिय का विषय पीडै है । बहुरि सरदी चिगटा ? सरदी विषै बैठा हुआ चिपटि ही जाय है । अर कीडी, मकोडी, कुथिया, कसारी, माकडी, छोटा बिसमरा आदि त्रस जीवा का समूह क्षुधा करि पीडा हुवा वा नासिका वा नेत्र इन्द्रिय का पीडा हुवा भोजन–सामग्री विषै आय प्राप्त होय है । अथवा भोजन-सामग्री किया पाछै घणी वार हुई होय तौ वाही विषै मरजादा उलघै, पाछै घणा त्रस जीवा का समूह उपजै है । पाछै वे ही भोजन कौ रात्रि विषै कासा विषै धरै पाछै ऊपर सू माखी, माछर, टाटा कीडी, मकौडी, जाला, बिसमरा का बच्चा आदि आय पडै है वा कनसला, सर्प का बच्चा आय पडै है अथवा ये सारा कासा विषै तलासू चढि आवै है । अथवा जेठी-तेठी सो ठण्डा कासा विषै आय बैठे है अर निसाचर जीवन कूँ रात्रि नै विशेष सूझै है । तातै रात्रि नै गमन घणा करै है । सो गमन करतै भोजन-सामग्री विषै भी आय-जाय है । पाछै ऐसी भोजन-सामग्री नै कोई निरदै पुरुष पशु सादृश्य हुवा खाय है तौ वह मनुष्य मे अघौरी है । पाछै नाना प्रकार के

जीवनि के भखिवा करि नाना प्रकार का रोग उपजै है वा इन्द्री छीन होय है। जैसा-जैसा जीवन के मास का जैसा-जैसा विपाक होय, तैसा-तैसा रोग उत्पन्न होय, कोढ उपजि आवै, फोडा होय, सूल रोग होय, सफोदर[1] होय, अतीसार होय, पेट मे गडार पडि चालै, वाला[2] नोसरै, वाय-पित्त-कफ उपजै, इत्यादि अनेक रोग की उत्पत्ति होय। अथवा आधा होय, बहरा होय, बावला होय, बुद्धि करि रहित होय सो ऐसा दुख तौ इही पर्याय विषै उपजै। पाछै याके फल करि परलोक विषै अनन्त सर्पादिक खोटी पर्याय पावै है, परम्पराय नरकादिक जाय है। फेरि वहा सू निकसि करि स्यघ, व्याघ्र होय है। फेरि नर्क जाय है। ऐसै ही नर्क सू तिर्यंच, तिर्यंच सू नर्क केतायक काल पर्यायनि कौ धारि पाछै निगोद मे जाय पडै है। वहा सू दीर्घकाल पर्यंत भी नीसरिवो दुर्लभ होय है।

और भी दोष कहिये है– कीडी भक्षण तै बुद्धि कौ नास होय अर जलधर रोग उपजै। माखी भक्षण तै वमन होइ। मकडी तै कोढ होइ, बाल तै सुरभग होइ। अभक्ष्य वस्तु भोलै जीमि जाय। भमरी[3] तै शुनी[4] होइ, कसारी तै कफ, वाय होइ है, आखडी भग होइ है। त्रस जीवा का भक्षण तै मास का दोष लागै, महा हिंसा होइ, अपच होइ, अपच तै अजीरन होइ, अजीरन तै रोग होइ, त्रपा लगै अर काम अधै, जहर तै मरण होइ। डाकिणी, भूत-पिसाच-वितरादि भोजन झूठौ करि जाय। ऐसा पाप करि नर्क विषै पतन होइ। ऐसा दोष नै धर्मात्मा पुरुष सर्व प्रकार करि जनम पर्यंत रात्रि का खान-पान कौ तजौ। **एक मास रात्रि-भोजन-**

---

[1] शोथ, पेट मे सूजन [2] नारू, नारुवा [3] बर्रे, ततैया [4] शून्यपना, सुन्न

त्याग का फल पन्द्रह उपवास का फल होय। ऐसे रात्रि-भोजन का स्वरूप जानना। अर दिन विषै तहखाना, गुफा विषै वा बादला, आँधी व धूल्या के निमित्त करि चौडै[1] अधारा होय, ता समै भोजन करिये, तौ रात्रि-सादृश्य दोष जानना।

भावार्थ- जीव-जन्तु नजरि आवै ऐसा दिन के प्रकास विषै भोजन करना उचित है। नजरि न आवै तौ दिन विषै भी भोजन करणां उचित नाहीं। इति रात्रि-दोष।

रात्रि मे चूल्हा जलाने के दोष

आगै रात्रि नै चूल्हा वालिये[2] है, ताका दोष कहिये है। प्रथम तौ रात्रि नै कोई जीव-जन्तु सूझै नाही। अर छाणा[3] मे तौ त्रस जीवा का समूह है अर आला[4] -सूका की खबरि पडै नाही। सहज का सा आला होय, ता विषै पईसा-पईसा भर्या गिडोला[5] नै आदि दै वाल का अग्रभाग सख्यातवा भाग पर्यत सैकडा, हजारा, लाखा, सख, असख जीवा का समूह पावजे है। सो सर्व चूल्हा विषै भषम हो जाय है। अर लाकडी वालिये, तो वा विषै भी अनेक प्रकार का लट वा कीडी, कनसला वा सपलेटा[6] आदि बहुत त्रस जीवा का समूह होय हैं।

भावार्थ-घणी तरह की लाकडी तौ वीधी होय है। ता विषै तौ जीव अगणित है ही। अर केई लाकडी पोली होय

---

१ प्रत्यक्ष २ जलाइये ३ छैना, कडा ४ गीला ५ केचुवा
६ एक तरह का जानवर

है। ता विषै कीडा, मकोडा, कनसला,[1] सपलेटा पैंसि[2] जाय है। अर जे चातुरमास के निमित्त आदि सरदी होय तौ कुथिया, निगोद आदि जीवा की उत्पत्ति होय, पाछै वैसा ही वलीता[3] नै वालिये, तौ वाके जीव दग्ध होय, ती पापकी काई पूछनी ? बहुरि चूल्हा विषै उस्णता का निमित्त पाय कीडी, मकोडी आदि त्रस जीव डरि रहे है, सो भी चूल्हा विषै होम्या जाय है। बहुरि माखी, माकडी आदि जीव तौ रात्रि नै ऊपरि छति विषै विश्राम लेय, पाछै रात्रि नै चूल्हा का धुवा करौ होय, सारा घर मे आताप फैले ताका निमित्त करि सारा जीव दडक-दडक चूल्हा विषै वा हाडी विषै वा आटा विषै वा पानी विषै आय पडै है, सो सर्व प्राणात होय है। अर-अग्नि की लपट[4] दूरि थकी देखि पतगा, डास, माछर आय पडै चूल्हा मे भसम होय है। और रात्रि नै आटा-सीधा विषै इलो,[5] सुलसुली,[6] कुथिया[7] होय अर-कीडी-मकोडी, इली आदि ऊपरि चढि आवै है। अर घी व तेल, दूध, मीठा विषै जीव आनि पड है। सो वे छोटा जीव दिन विषै भी दीसै नाही, तौ रात्रि विषै वा जीव काई गम्य ? तातै आचार्य कहै है—ऐसा दोष सयुक्त अहार कैसे कीया जाय ? तातै रात्रिकू चूल्हा वालणा मसाण की पृथ्वी सू भी अधिक कह्या है। मसाण विषै तो दिन मे एक ही मुरदा होमिये है, अर चूल्हा विषै अगणित जीवता प्राणी होमिये है। तातै **रात्रि विषै चूल्हा वालिवा का महापाप है। तातै चूल्हा वालै, तौ वाका पाप की मर्यादा हम नाही जानै, केवल-ज्ञान गम्य है। अर केई धर्मात्मा पुरुष तौ ऐसा है,** रात्रि

---

१ कान खजूरा २ बैठ, प्रवेश (कर), ३ ईंधन ४ झाल, ज्वाला

५ इल्ली ६-७ उडने वाले सूक्ष्म जीव

नै दीवा भी जोवै नाहीं। ऐसे रात्रि के चूल्हा वालवे का दोष कह्या।

अनछना पानी के दोष

आगै अणछाण्या पानी का दोष कहिये है। लाख-क्रोडि वेह्डा[1] तुरत का छाण्या पानी काढो लिये, ता विषै भी एकेन्द्री जीव मारिवा का पाप घणा है। तासू असख्यात गुणा वेन्द्री के मारिवे का पाप है। तासू असख्यात गुणा तेइन्द्री को, तासू असख्यात गुणा चौइन्द्री का, तासू असंख्यात गुणा असैनी पचेन्द्री का, तासू असख्यात गुणा सैनी पचेन्द्री का मारिवा का पाप है। सो अणछाण्या पाणी का एक चलू[2] विषै वेन्द्री, तेन्द्री, चौइन्द्री, पचेन्द्री, सैनी, असैनी, लाखा-कोड्या तौ आकास का चिलका[3] विषै खेह्रा की रेणु[4] आम्ही-साम्ही गमन करै है, ता सादृश्य पाच प्रकार के त्रस जीव पावजे है। सो नोका उजाला विषै दृष्टि करि देखिये तौ ज्यों का त्यों नजर आवै। बहुरि तासू छोटा जीव, नाही के, असख्यातवें भाग सूक्ष्म अवगाहना के धारक असख्यात पाच प्रकार के त्रस और भी पावजे है। **एक-एक नातणा[5] का छिद्र मे असंख्यात त्रस जीव युगपत् पाणी छाणता परे नीसरि जाय है, इंद्रिय गोचर नाहीं आवै, अवधिज्ञान वा केवलज्ञान गम्य है।** बहुरि केई पाणी छाणै भी है अर जिवाण्या[6] जहा का तहा नाही पहोचै है तौ वह पाणी अणछाण्या पीया ही कहिये। तीसू भावै एक चलू वा अण-छाण्या पानी का आपनै हाथ सू ढोलो वा वरतौ वा पीवौ

---

१ हांडी सहित पानी का घडा २ चुल्लू ३ प्रकाश ४ आकाश की धूल ५ छन्ना, गलना ६ जीवानी

औरा नै पावो ताका पाप एक गाँव मार्या का सा है। ऐसे हे भव्य ! तू अणछाण्या पानी पीवो भावै लोहू पीवौ। अणछाण्या पानी सू सापडो[1] भावै, लोहू सू सापडो। लोहू बीचि भी अणछाण्या पानी विषै बडा पाप कहैं हैं। लोहू तो निंदनीक ही है। अणछाण्या पानी का बरतवा विषै असंख्यात त्रस जीवा को घात होय है। अर जगत विषै निंद है। महानिर्दयी पुरूष याके पाप करि भव-भव विषै रुलै है, नर्क, तिर्यंच गति के क्लेश नै पावै है। ससार—समुद्र माही सू निकसना दुर्लभ होय है। या समान पाप और नाही, घणी कहा कहिये ?

जैनी की पहचान

जैनी पुरूषनि का तीन चिन्ह है। एक तौ **जिन-प्रतिमा का दर्शन कीया बिना भोजन न करै अर रात्रि-भोजन न करै अणछाण्या जल न पीवै**। यामे सू एक मे भी कसर होय तौ जैनी नाही, अन्य मती सूद्र सादृश्य है। तातै आपणा हित का वांछक पुरुष सीघ्र ही अगाल्या[2] पाणी कौ तजौ। इति अगालित पानी-दोष।]

जुआ के दोष

आगै सात विसना विषै छह विसना नै छोडि जूवा का दोष वर्णन करिये है। छह विसना कौ दोष तौ प्रगट दीसै है। जूवा कौ दोष गूढ है। तासू छह विसना सू अधिक

---

१ नहाओ, सपरो २ अनछना

प्रगट दिखाइयै है । जूवा मे हारि होय, तब चोरी करनी पड़ै । चोरी का धन आये ते परस्त्री चाहि होय । परस्त्री का सयोग न मिले, तब वेश्या के जावै । वेश्या के घर सुरापान करै । वाके अमल मे मास की चाह होय । मांस की चाह भये सिकार खेल्या चाहै । तातै सात विसन का मूल एक जूवा है । और भी घणा दोष उपजै है । जुवारी पुरूष की जायगा आकाश रहि जाय है । ई लोक विषै अप-जस होय है । पैठि बिगडै है, विसवास मिटै है, राजादिक करि दड पावे है । अनेक प्रकार के कलह, कलेश वधे है । अर क्रोध, लोभ अत्यत वधै है । जण–जण आगै दीनपना भाषै है, इत्यादि अनेक दोष जानना । पाछै ताकै पाप करि नर्क जाय है, जहा सागरा पर्यन्त तीव्र वेदना सहै है । तातै भव्यजीव है ते द्यूतकर्म सीघ्र ही छोडो । पाडव आदि द्यूत-कर्म के वसीभूत होय सर्व विभूति अर राज खोया ।

खेती के दोष

आगै खेती का दोष कहिये है । असाढ के महिनै प्रथम वर्षा होय ताके निमित्त करि पृथ्वी सर्वजीवमयी होय जाय, सो जीव बिना आगल भी भूमिका न पाइये । ता भूमिका कू हल करि फाडिये है । सो भूमि खुदेवा करि सर्वत्र त्रस-थावर जीव नासनै प्राप्त होय है । फेरि पूर्ववत् नवा जीव उपजै । पाछै दूजी वर्षा करि वे भी सर्व मरण कू प्राप्त होय । फेरि जीवा की उत्पत्ति होय । फेरि हल करि हण्या जाय, ता भूमिका विषै बीज वाहै[1] । पाछै सर्व जायगा अन्न के अकुरा अनन्त निगोद रासि सहित उत्पन्न होय ।

---

१ बोते है

फेरि वर्षा होय, ता करि अगणित त्रस-थावर जीव उपजै। फेरि निनाणवा[१] करि सर्व जीव हण्या जाय। फेरि वर्षा करि ऐसै ही और जीव उपजै। फेरि धूप वा निनाणी करि मरै। ऐसै ही चातुरमास पूर्ण होय। पाछै सर्व क्षेत्र त्रस-स्थावर जीवा करि आश्रित ताकू दातला[२] करि काटियो सो काटिवा करि सर्व जीव दलमल्या जाय। ऐसै तो चातुर्मास की खेती का स्वरूप जानना।

आगे उन्हालू[३] की खेती का स्वरूप कहिये है। प्रथम सावण का महिना सू लगाय कातिग माह पर्यन्त पाच-सात वार हल, कुसी, फावडा करि भूमिका नै आम्ही-साम्ही चूर्ण करै, पाछै वाके अर्थ दो-च्यार वरस पहली दोडी[४] का सचय कीया था अथवा दोय-च्यार वरस की एकठी हुई मोलि ले खेत विषै नाखै। सो वे रोडी की पाल की काई पूछणी ? जेतो[५] वह रोडी[६] को बोझ होय, तेता ही लटादिक त्रस जीव जानना। एक-दोय दिन का विष्टा, गोबर चोडै पड्या रहि जाय है ता विषै लाखा, कोड्या आदि अगणित लटादिक त्रस जीव किलविल करते आख्या देखिये है। दोय-च्यार वर्ष का संचय कीया सैकडा मण गोबर, विष्टा आदि असुचि वस्तु ऊपरा-ऊपरि एकठी हुई सासती सरदी सहित ता विषै जीवा की उत्पत्ति का कौन वर्णन करै। अर वैसे जीवा की रासि कू फावडा सू काटि-काटि महानिर्दयी हुआ लोभ के अर्थि खेतादिक विषै जाय खोपै, तौ वाका निर्दयीपणा की कहा बात ? पाछै वा खातकू[७] सारा खेत विषै बखेरि[८] ता ऊपरि सोरचावरि[९] फेरे। ता पाछै बीज बोवै,

---

१ निदाई, खेत को नीद कर २ हसिया ३ गर्मी ४ खाद (कूडा)
५ जितना ६ मिट्टी ७ खाद को ८ बिखराकर ९ लाट, लकडी का पाट, (खेत मे फेरने का)

पाछै मगसिर का महीना ही सू लगाय फागण पर्यंत अण– छाण्या कूं वावडी, तलाब का जल करि दिन प्रति सासता सीच्या करै। सो पूर्वे वा जल मांहि त्रस–स्थावर जीव तौ प्रलय मैं प्राप्त होय, तबै सरदी का निमित्त करि त्रस-थावर जीव फेरि निपजै। ऐसै ही दिन प्रति च्यार-पाच महीना ताईं पूर्व जीव मरते जाय, अपूर्व-अपूर्व जीव उपजते जाय। ऐसै होत संते अनेक उपद्रव करि निर्विघन पणै खेती घर मे आवै वा न आवै। कदाचित् आवै तौ राज की बीज की देणि चूकै वा न चुकै। सो नफा तो जाका ऐसा अर पापपूर्वक कह्या तैसा। असख्यात त्रस जीव, अनन्तानन्त निगोदरासि आदि थावर-त्रस जीवा का घात करि एक नाज का कणकै बाटै[१] आवै है।

भावार्थ–एतो–एती हिसा करि एक–एक नाज का कण पैदा होय है। बहुरि कोई या जानै खेती करता सुखी होयगा, ताकौ कहिये है। जहाँ पर्यन्त खेती करने का मसकार रहै है, तहाँ पर्यन्त राक्षस, दैत्य, दरिद्रो, कलदर[२] वत् ताका स्वरूप जानना। अर परभव विषै नरकादिक फल लागै है। तातै ज्ञानी विचक्षण पुरुष खेती का किसब छोडो। ऐसै ही खेती वत् अम्बार तीका दोष जानना। सो प्रत्यक्ष चौडे दीसै है, ताको कहा लिखिये? अर, कुआ, बावडो, तलाब बनावे का, खेती–हवेली के पाप कू असख्यात अनन्तगुणा पाप जानना। इति खेती दोष।

रसोई बनाने की तैयारी

आगै रसोई करने की विधि कहिये है। सो रसोई

---

१ हिस्से मे २ कालवेल्या, सँपेरा

करिवा विषै तीन बात करि विशेष पाप होय है । एक तौ बिना सोध्या अन्न अर विवेक बिना गाल्या जल अर बिना देख्या वलीता । ये तीन पाप करि रसोई मास सादृश्य जानना । अर तीनौ रहित रसोई निपजै[1] सो शुद्ध रसोई कहिये । ताका स्वरूप कहिये है । प्रथम तो नाज का अगाऊ सग्रह न करै, दस दिन वा पाच दिन का दस-पाच जायगा अवोध देखि मोलि ल्यावै । पाछै दिन विषै नीका सोधि-वीणि दिन विषै घरटो[2] माहि सूके कपडा तै पूछि नाज पिसावै । पाछै लोह, पीतल, बास आदि चाम बिना चालनी सू छाणि लोजै । ऐसै तौ आटा की क्रिया जानना ।

वलीता छाणा नै छोडि कर फाड जीव रहित प्रासुक लकडी वा कोयला सो वलोता सुद्धता है । अर छाणा गोबर रसोई विषै अलोन है । ता विषै जीवा को उत्पत्ति विशेष है । अन्तमुंहूर्त सू लगाय जहा पर्यन्त ता विषै सरदी रहै, तहा पर्यन्त अनेक त्रस जीव उपजै हैं । पाछै गोबर का सूकिवा करि सारा नासनै प्राप्त होय है । सूक्या पीछै बडा-बडा ताका[3] कलेवर पईसा-पईसा भरि गिडोला आदि ऑख्या देखिये है । पीछै फेरि चातुर्मासादि विषै सरदी का निमित्त करि असख्यात कुथिया, लट आदि त्रस जीव उपजै है । ताते छाणा का वालिवा तौ हिंसा का दोष करि सर्व-प्रकार ही तजना । अर लकडी, कोयला ग्रहण योग्य है । सो कोयला तौ सर्व प्रकार त्रस-थावर जोव रहित प्रासुक है । तातै मुख्यपनै वालना उचित है । अर लकडी घणी खरी तौ वीधी होय है । तातै बुद्धिवान पुरुष विशेष पणै वोधी, सुलो

---

१ उत्पन्न हो २ चक्की ३ उसका

पोली, कानी कपाडि को तजि अवीध निघोट[1]का ग्रहण करै, या विषै आलस्य, प्रमाद राखै नाही। या विषै पाप अगणित अपार है सो विवेक करि तुच्छ लागै है। तातै धर्मात्मा पुरुषा नै बलीता को सावधानी विशेष राखणी। पोली लकडी विषै कीडी, मकोडी, उदेही[2], कानिखजूरा, सर्प आदि अनेक त्रस जीव पैसि जाय है। सो बिना देख्या बालिये तौ वे सर्व भस्म होय। सो पार्श्वनाथ तीर्थंकर के समय कमठ निर्दयी हुवा पचाग्नि तपै था, तहा अधजल्या पोली लकडी विषै सर्प-सर्पिणी ताकू आप अवधि (ज्ञान) करि जलता देखि ताकू नवकार मन्त्र सुनाय देवलोक नै प्राप्त किया। ऐसे बिना देख्या बलीता विषै जीवा का दग्ध जानना। घणी कहा कहिये ?

पानी की शुद्धता

बहुरि तलाब, कुंड, तुच्छ जल करि बहती नदी, अकढा कुवा, बावडी का पानी तौ छाण्या हुवा भी अयोग्य है। या जल विषै त्रस जीवा की रासि इद्रियगोचर आवै ऐसी है। तातै जा कुवा का पानी चडस[3] करि वा पणघट करि छटना होई ताका जल विषै जीव नजर नही आवै है। सो वा जल कू कूवा ऊपरि आप वा आपकी प्रतीति का आदमी जाय दोवड[4] सपीठ[5] गाढा गुढो[6] करि रहित नातणा विषै पाणी औधा हुवा एक वोट[7] थभि[8] रहै, ततकाल एक ही काल छणि[9] न जाय, अनुक्रम सू धीरै-धीरै छणै-ऐसा नातणा सू जल छाणिये। ताका प्रमाण-जा

१ छेद रहित २ दीमक ३ चरस ४ दुहरा ५ सपाट ६ गाँठ,गठान ७ क्षण ८ ठहरा ९ छना

वासण[1] विषै छाणियै ताका मूढा[2] सू तिगुणा लंबा-चौडा सो दोवडा[3] कीये समचौकोर होय जाय ऐसा जानना अथवा विना छाण्या कूवा सू भरि डेरै[4] ले जाय यत्नपूर्वक नीका छाणना। छाणती वार अणछाण्या पानी की बूद आगणै गिरै नाही वा अणछाण्या पानी की बूद छाण्या पानी मै अस मात्र भी आवै नाही—ऐसै पाणी छाणिये। अणछाण्या पानी का हाथ कू छाण्या पाणी करि अणछाण्या पानी के वासण मै खोलियै। पाछे छाण्या पानी के वासण कू पकडिये सो तीन वार पखालिये[5] पीछै वाके मूढै नातणा दीजिये। बाया हाथ विषै मालसा[6] (पालस्या) वा कचोला[7] वा तबला[8] राखिये। जीमणा हाथ मै कर वाले पाणी भरि मालसा ऊपरि लिया-लिया मोणि[9] ऊपरि कूढिये। सो अनुक्रम सू थोडा—थोडा छाणियै। अर घणा छाणिये तौ वासण उठाय नातणा ऊपरि धीरे-धीरे कूढिये पाछै अण-छाण्या पानी के हाथ कू खोलि[10] अगल—बगल सूका नातणा ताकू पकडि उलटा करियै। पीछै छाण्या पानी करि अव—शेष अणछाण्या पानी रह्या ता विषै जीवाण्या करिये। अथवा ता वासण विषै जीवाण्या करिये, बीचसू जीवाण्या की तरफ च्यौठी[11] नातणा पकडिये नाही। पीछै च्यारि पहर दिन का जल आया होय तौही कूवै पहोचाय दे। वाका पासा[12] नै उलटो बाँधि पीछै डारि अपूठी ल्याव पाच-सात आगल की लकडी बाधि लोट्या कै भीतर आडी लगाय पाछै लकडी का सहारा सू लोट्या सूधा चल्या जाय। कूवा कै पीदै[13] जल ऊपरि लोट्या पहोचै, तब ऊपरि से

---

१ बर्तन २ मुँह ३ दुहरा ४ निवास-स्थान ५ धोइये ६ डोल या बाल्टी ७ कटोरा ८ तपेला, भगोना ६ बर्तन १० धोकर ११ चारो तरफ से १२ कडा १३ पैंदा

डोर हलाय दीजे। पाछै वह लोट्या मे सू लाकडी निकसि औधा होई ऊपरि नै खैंच्या हुवा चल्या आवै-ऐसै जीवाण्या पहोचावणा। अथवा ई भाति न पहोचाया जाय, तौ सारा प्रभात पाणी छाणिय जीवाण्या एकठा करि पाणी भरिवा का वासण विषै घालिये अर पणिहारि को सौंपिये। पणिहारि नै पानी भरिवा का महीना सिवाय टका-दो टका और वधाइये अर याकू ऐसे कहिये-ये जीवाण्या सूधा उरासणा[1] कूवा मैं उरासि देणा, गैला मै वा ऊपरा सू कूवा विषै जीवाणी न नाखना। कदाचि नाख्या तोनै पाणी भरिवा सू दूरि करूगा। एता कह्या पोछै भी दोय-च्यारि वार गुपत वाकै पीछै जाय कूचा[2] पर्यत ठीक पाडिये। ऐसे पूर्वे कह्या माफिक जीवाणी सूधा उरासणा। ऐसै ही कूवा विषै उरासे है तौ वाकू विशेष बडाई दीजे। टका-दो टका की गम खाइये, पाप का भय दिखाइये-या भाति जीवाणी पहोचावै। तिनि कूँ छाण्या पानी पीया कहिये। अर पूर्ववत् जीवाण्या न पहोचै, नाकू अणछाण्या पानी पीया कहिये वा सूद्र सादृश्य कहिये। **जिन धर्म विषै तौ दया ही का नाम क्रिया है। दया बिना धर्म नाम पावै नाहीं।** जाके घट दया है तेई पुरुष भव-समुद्र कू तिरै है। ऐसा पानी का शुद्धता का स्वरूप जानना।

बहुरि **मर्याद उपरांत** आटा विषै कुथिया, सुलसली आदि अनेक जोवा की रासि वा सरदी विषै निगोद रासि सहित रासि उपजै है। ज्यौ-ज्यौ मर्याद उलघि आटा रहै, त्यों-त्यो अधिक बडी-बडी अवगाहना का धारक आटा की कणिका

---

१ औधा करना २ मुहल्ला

सारिखा त्रस जोव उपजै है सो प्रत्यक्ष ही आख्या देखिये है। तातै मर्यादा उलंघ्या आटा अर बाजार का तुरत पिसाया भी अवस्य[1] तजना। **जेता आटा की कणिका तेता ही त्रसजीव जानना।** तातै धर्मात्मा पुरुष ऐसा दोषीक आटा भक्षण कैसे करे ? बहुरि चाम का सयोग करि घीरत (घृत) विषै अतर्मुहूर्तसू लगाय जहा पर्यंत चाम का सीधडा[2] घृत रहै, तहा पर्यंत अधिक असंख्यात त्रस जीव उपजै। अर चर्म का स्पर्श करि महानिंद्य अभक्ष्य होय है। ताका उदाहरण कहिये है—काहू एक श्रावगी रसोई करिवाके समै कोई सरधानी पुरुष हाथ पईसा-टका का घृत बाजार मैं सू मगाया, तब वहो सीधडा का घृत छुडायवाके अर्थि एक बुद्धि उपजावता हूवा। सो बाजार मै सू नवा जूता मोलि लै वा मै घृत घालि वाकी रसोई विषै जाय धर्या। तब वह रसोई छोडि उठि लाग्या, तब यानै कहो रसोई क्यौ छोडे छै ? थे पूर्वं या कही थी म्हाके तौ चर्मका घृत कौ अटकाव नाही। तातै बाजार का महाजन कै तौ काचा[3] खाल विषै घृत था, मै अटकाव न जानि पाका खाल का जूता विषै घृत लाया अर थानै सौप्या, मोनै काहे का दोष ? मैं या न जाणो था कै पुरुषा वाली क्रिया है—पुरुष मोकला[4] अनछाण्या पाणी सू तौ सापडै अर सीसा सादृश्य उज्जल वासण राखे, बडा-बडा चौका दे, कोई ब्राह्मण आदि उत्तम पुरुष का स्पर्श होई तौ रसोई उतारि नाखै, पाछै कासा मैं मास ले घणा राजी होय, तातै त्यौ चाम का घृत महा अभक्ष्य जानना। ऐसा सुनत प्रमाण चाम का घृत, तेल, हीग

---

१ अवश्य २ कच्चे चमडे से निर्मित कुप्पा ३ कच्चा ४ बहुत अधिक

जल आदि दोषीक वस्तु का त्याग वे पुरुष कीया। ऐसा जानि और भी भव्य जीव त्याग करो।

रसोई करने की विधि

आगै रसोई करणे की विधि कहिये है। जहां जीव की उत्पत्ति न होय, ऐसा स्थानक विषै खाडा-खोचरा[1] रहित चूना की वा माटी की साफ जायगा देखि ऊपरी चदोवा बाधि गारे का वा लोह का चूल्हा धरिये। चूना की जायगा नै तो जीव जतु देखि कोमल बुहारी तैं बुहारि तुच्छ पाणि करि जायगा आला चीरडासू[2] पूछिये[3] अथवा धोय नाखिये[4]। अर गारे की जायगानै तुच्छ शुद्ध माटी सेवो दया पूर्वक लीपिये। ता विषै उज्जल कपडा पहरि तुच्छ[5] पाणी सू हाथ-पाव धोय सर्व वासणा कू माजि रसोई विषै धरिये। पूर्वे कह्या तैसा आटा, चावल, दालि, घृत, वलीता सोधि रसोई विषै ले बैठिये। रसोई विषै जेता पाणी लागै, तेता छाणि लौग, डोडा, मिरचि, कायफल, कसेला, लूण, खटाई आदि या माहि सू येक-दोय वस्तु तै प्राशुक कीजिये। प्रासुक पाणी की मर्यादा दोय पहर की है। रसोई करने विषै दोय-च्यारि घडी लागै है। अर छाणे पाणी की मर्यादा दोय घडी की है। तातै प्राशुक पाणी तै रसोई करणा उचित है। प्राशुक पानी कौ दोय पहर पैलै बरताय देना। आगै राख्या यामै जीव उपजै है, जीवाणी याको होय नाही। ऐसे दया पूर्वक क्रिया सहित रसोई निपजै। ताकू उज्जल कपडा पहिर हाथ-पाव धोय पात्राकू वा दुखित जीवाकू दान

---

१ छोटे-बड़े गड्ढे २ गीले कपडे से ३ पोछिये ४ डालिये
५ अल्प, थोड़ा

देय, राग भाव छाडि चौकी-पाटा बिछाय, पाटा ऊपरि बैठि चौकी ऊपरि भोजन की थाली धरि, थाली ऊपरि दृष्टि राखि, जीव-जतु देखि, मौनि[1] सयम सहित भोजन करै। ऐसा नाही कै दान दिया बिना अघोरी की नाई आप तौ खाय लेय अर पात्र वा दुखित वारनै आय उठि जाय। ऐसे कृपण महारागी, महाविषयी दड देने योग्य है। तातै धर्मात्मा पुरुष है तौ विधिपूर्वक दान दीया पीछै भोजन करै। ऐसे दया सहित, राग भाव रहित भोजन की विधि कही। बहुरि रसोई जीमे पीछै वा रसोई विषै कूकरा, बिलाई, हाड-चाम, मल-मूत्र के लिप्त वस्त्र सूद्र आइ-जाइ वा विशेष ऊठि[2] पडी होय, तौ प्रभात ऊपर सू नितप्रति रसाई करवा के समय पहला चूल्हा की राख सर्व कादि नाखिये, नजरसू जीव-जतु देखि कोमल-बुहारी सेती बुहारी देय, पाछै चौका दीजे। अर हाड-चाम पूर्वे कहे ताका ससर्ग होय नाही, तौ नित चौका न दीजे। चौका दिये बिना ही राख काढि परै करिये, यत्न पूर्वक बुहारी देय रसोई करिये। बिना प्रयोजन चौका देना उचित नाही। चौका देने सू जीवा की हिसा विशेष होय है। अर **अशुचि जायगा विषै रसोई करिये तौ चौका की हिसा बीचि तौ अक्रिया के निमित्त करि राग भाव का पाप विशेष होइ है। तातै जामें थोडा पाप लागे सो करना। धर्म दयामयी जानना। धर्म बिना क्रिया कार्यकारी नाहीं।** अर केई दुर्बुद्धि नाज, लकडी कौ धोवै है तो लाचारी, तवा आदि वासन ताका पींदा धोय आरसी उज्जल राखै है, मोकला पानी सू सापडि वा चौका देहै, स्त्री के हाथ की रसोई न खाय, नाना तरह की तरकारी, मेवा व मिष्ठान्न,

---

१ मौन २ जूठन

दही-दूध, हरितकाय सहित संवारि-संवारि भोजन बनावै है। पीछे राजी होय दोय-च्यारि वार ठूसि-ठूसि तिर्यंच की नाई पेट भरे हैं। अर या कहै हैं–म्हे बडा क्रिया पात्र हा, बडे संयमी हा। ऐसा झूठा डिंभ धारि धर्म का आसरा ले तापारि भोला जीवानै ठगै है। **जिनधर्म विषै तौ जहां निश्चय एक रागादिक भाव नैं छुडाया है अर याही के वास्तै जीवा की हिंसा छुडाई है। सोई निःपापी, राग भावा कै हिंसा की उत्पत्ति टरै सोई रसोई पवित्र है। जा विषै ए दोनू[1] वधै सोई रसोई अपवित्र है–ऐसे जानना।** बहुरि आपणा विषै पोखिवा का अर्थि धर्म का आसरा लेय अष्टान्हिका, सोलहकारण, दशलक्षण, रत्नत्रय आदि पर्व दिना विषै आछा-आछा[2] मनमान्या नाना प्रकार का महा गरिष्ठ, और[3] दिन विषै कबहू मिलै नाही–ऐसा तो भोजन खाना अर चोखा-चोखा वस्त्र-आभूषण पहरना, सरीरनै सवारना सो सावण भादवा आदि और पर्व दिना विषै विषय-कषाय कौ छोडना, सयम कौ आदरना, जिन-पूजन, शास्त्राभ्यास, जागरण का करना, दान का देना, वैराग्य का बधावना, ससार का स्वरूप अनित्य जानना, ताका नाम धर्म है। विषय-कषाय पोषने का नाम धर्म कदापि नाही। झूठा ही मान्या तौ गर्ज काई ? वाका फल खोटा ही लागेगा।

बाजार के भोजन में दोष

आगै कदोई[4] की वस्तु खाने का दोष दिखाइये है। प्रथम तौ कदोई का स्वभाव निर्दयी होय है। पीछै लोभ का

---

[1] दोनो [2] अच्छा-अच्छा [3] अन्य, दूसरे [4] हलवाई

प्रयोजन परै है। ता करि विशेष दवा रहित होय है। जाका किसब[१] ही महा हिंसा का कारण है। सो ही विशेष पणं कहिये हैं। नाज सोधा[२] होय सो मोलि ल्यावै सौ सोधा तौ दीधा, सुल्या, पुराणा[३] ही आवै है। नाज नै रात्रिनै बिना देख्या पीसावै, पाछै वह आटा वेसण व मैदा महीना, पद्रह दिन पडा रहि जाय, ता विषै अगिणति त्रस जीव उपजै है। पीछै वैसा तौ आटा अर अणछाण्या मसक का पाणी[४] ता करि ऊसणै[५] वीधा, मुल्या, आला, गीला भट्टी बिषै रात्रि नै वलीता वालै। अर चाम का घणा दिन का वासिला घृत विषै तलै अर-रातिनै अग्नि का निमित्त करि दूरि-दूरि सू डस-माछर, पतग-माखी, कसारी-कीडी, विसमर्‍या, कानखजूरा कढाई मै पडै। पीछै वह मिठाई, पकवान तुरत ही तौ सर्व बिक जाय नाही। अनुक्रम सू बिकै सो बिकता पद्रह दिन महीना—दो महीना पर्यत पडी रहि जाय, ता विषै अनेक लट आदि त्रस जीव पडि चालै। अर अपरस सूद्रकू वह मिठाई बेचै। बाको भीटी—चूटी[६] मिठाई आपणा वासण मै डारि ले। अर घणा कंदोई कलाल, क्षत्री आदि अन्य जाति होय है, ताके दया कहा पाइये? अर कोई वैश्य कुल के भी कदोई होइ है सो भी वा सादृश्य जानना। अर जल, अन्न सू मिलाई घृत मैं तलिये सो वा रसोई समान ही है। ससारी जीवा नै थोडा -बहोत अटक मै राखने अर्थि सखरी-निखरी[७] का प्रमाण बाधे है। वस्तु विचारता दोनो एक ही है। ऐसी कोई जैनी कुल विषै रात्रि नै अन्न का भक्षण छोड्या, दूध, पेड़ा, आदि

---

१ व्यापार २ बीना हुआ, शोधित ३ पुराना ४ पानी ५ उसने, मूंदे
६ जूठी—चखी हुई ७ अस्पृश्य

राख्या, तौ काई वह रात्रि-भोजन का त्यागी हूवा ? जै एती परवानगी नही देता तौ अन्नादिक सर्व ही वस्तु का भक्षण करता । याकै खाया बिना तौ रह्या जाय नाही । तातै अन्न की वस्तु छुडाय मर्यादा मै राख्यौ । अन्न का निमित्त तौ रंकादिक कै भी सास्वता पाइये, दूध-पेडा आदि का निमित्त कोई पुन्यवान कै कोई काल विषै पाइये । तातै घणी बात घणी वस्तु का रात्रि विषै सवर होय-ऐसा प्रयोजन जानना । तातै ग्यानी बुद्धिवान पुरुष छै ते असख्यात त्रस जीवा की हिंसा करि निपजी अनेक त्रस जीवा की राशि महा अक्रिया सहित मास सादृश्य अभक्ष्य ऐसी कदोई की वस्तु, ताकू कैसे खाय ? अर ठगी गई है बुद्धि जाकी, आचार करि रहित है स्वभाव जाका, परलोक का भय नाही है जाकै, ऐसा पुरुष कदोई की वस्तु खाय है । ताका फल परलोक विषै कटुक है, तातै जानै अपना हेत चाहिये ते पुरुष हलवाई घर की वस्तु सर्वथा तजो । बहुरि कोई अज्ञानी रसना इंद्री के लोलुपी ऐसे कहे है-कदोई की वस्तु वा जाका वासण विषै मद्य, मास वापरै ऐसा जाट, गूजर, राजपूत, कलाल आदि सूद्र के घर का दही-दूध, रोटी आदि प्रासुक है या निर्दोष हुई । तौ और ई उपरान दोषीक वस्तु कैसी होसी ? हाड-चाम के देखने का वा मृतक के सुनने का ही भोजन विषै अतराय है, तौ प्रत्यक्ष खाइबा कौ कैसे दोष न गिणिये ? तातै जो वस्तु हिंसा करि निपजो वा अक्रिया करि निपजी, धर्मात्मा पुरुष कोई प्रकार आचरै नाही । प्राण जाय तौ जावौ, पणि अभक्ष्य वस्तु खानी उचित नाही और कोई प्रकार दीनपना का वचन कहना उचित नाही । **दीनपना सिवाय और पाप नाहीं ? तातै जिनधर्म विषै अजाची वृत्ति कहीं है ।**

शहद भक्षण के दोष

आगै सहत का दोष दिखाइये है–माखी, टाट्या,[1] वनस्पति का रस, जल और विष्टा आदि मुख मै लेय आवै बैठे, वाके मुख विषै वह वस्तु लाल[2] रूप परणावै। पाछै लोभ के अर्थि जैसे कीडी नाज ल्याय बिल मै एकठा करै, पीछै भीलादिक सकल पहुचै सो वाके सर्व कुटुब, परिवार सहित नाज नै सोर[3] ल्यावै। पीछै सर्व कोडी का तौ स्यघार[4] होइ, नाज भोल खाय जाय। तैसे ही मक्षिका (के) तृष्णा के वशीभूत हुवा वाकू एक स्थानक विषै चोय-चोय[5] एकठा करै। पीछै ऐसे होते-होते घणी लाल एकठो होय। घणा काल के रहने करि मिष्ट स्वाद रूप परणवै। ता विषै समय–समय लाखा, कोट्या बडा–बडा आख्या देखिये। तानै आदि दे और असख्यात सूक्ष्म त्रस जीव उपजै है और निगोदरासि उपजै है अर वाही विषै माख्या[6] नीहारि करै है, ताका विष्टा भी वा ही विषै एकठा होय है। पीछै भीलादिक महानिर्दयो वाकू पथरादिक करि पोडै है। पोछै वाकै कच्चा-बच्चा सुद्धा अर माहिला अडा सुद्धा[7] मसरि[8] निचोय-निचोय[9] रस काढै है। पाछै पंसारी आदि निर्दयी, अक्रियावान नै बेचै है। ता विषै माखी, कीडी-मकोडी आदि अनेक त्रस जीव आय उलझि रहे है वा चिपटि जाय है। अर दोय-च्यारि वर्ष पर्यंत लोभी पुरुष सचय करै हैं। ता विषै पूर्ववत् जा समै मुहाल[10] को उत्पत्ति होइ, ता समय सू लगाय जहा तहाई सहत रहै, तहा पर्यंत असख्यात त्रस जीव

---

१ भँवरी, भ्रमरी २ लार ३ एकत्र, इकट्ठा ४ सहार ५ टपका-टपका कर ६ मधुमक्खियाँ ७ सहित ८ मसल कर ६ निचोड-निचोड १० शहद

सासता उपजै हैं। सो ऐसा सहत पंचामृत कैसे हुवा ? पणि आपणा लोभ के अर्थि ए जीव कांई-काई अनर्थ न करै ? अर कांई-काई अखादि[1] वस्तु न खाय ? तातै ए सहत मांस सादृश्य है। मद (मधु), मास, सहत एक-सा है। सो याका खावा तौ दूरि ही रहौ, ओषधि मात्र भी याका स्पर्श करना उचित नाही। जैसे मदिरा, मास की ओषधि उचित नाही, तैसे जानना। याको ओषधि मात्र भी ग्रहण किया दीर्घकाल का सच्या पुन्य नास नै प्राप्त होय है।

कांजी भक्षण के दोष

आगै काजी का दोष कहिये है। छाछिकी मर्यादा विलोयां पाछै आथण(अस्तवन, सूर्यास्त)ताई की है। पाछै रह्या पाछै अनेक त्रस जीव उपजे है। ज्यौ–ज्यौ घणा काल ताईं रहै त्यौ–त्यौ त्रस जीव उपजे है, जैसे रात्रि वसा का अणछाण्या जल अभक्ष्य है। सो एक तौ या दोष और छाछि विषै राई पडै है। राई का निमित्त करि ततकाल छाछि विषै त्रस जीवा की उत्पत्ति होय है। ताही वास्ते छाछि राई का रायता अभक्ष्य है। एक या दोष अर छाछि विषै भुजिया पडै है सो विदल है। काची छाछि, दुफाडा, नाज, मुख की लाल तीनो का सयोग भये मुख विषै ततकाल बहुत त्रस जीव उपजे है सो एक विदुल का दोष। बहुरि छाछि विषै मोकला पाणी अर लूण परै है सो इनका निमित्त पाय शीघ्र ही घणा त्रस जीवा की उत्पत्ति होय है। एक या दोष। पाछै दस-पनरा (१०-१५) दिन ताई याका जीवा रहे हैं। जैसे धोबी, छीपा नीलगर के कूडि का जीव रहै, तैसे काजो

---

१ अखाद्य, अभक्ष्य

का जीव जानना। ज्यौं-ज्यौं घणा दिन कांजी रहै, त्यौं-त्यौं वाका स्वाद घणा अधिक-अधिक होइ। अज्ञानी जीव इंद्रियाँ का लोलुपी राजी होय खाय, या जाणै नाही कै ए स्वाद घणा त्रस जीवा के मास-कलेवर का है। सो धिक्कार है ऐसा राग भाव कै ताई! ऐसी अखादि वस्तु कौ आचरै। ऐसा ही दोष डोहा की राब का जानना। या विषै भी त्रस जीव घणा उपजै है।

अचार-मुरब्बा के दोष

आगै अथाणा-संधाणा, न्यौजी (लौजी) का दोष कहिये है। सो लूण, घृत, तेल का निमित्त पाय नीबू, कैरी आदि का अथाणा विषै दोय-च्यारि वर्ष पर्यंत सरदी मिटै नाही। सो लूण, घृत, तेल का निमित्त पाय अनेक त्रस जीवा की रासि उत्पन्न होय है, वाही विषै मरै है। ऐसा जन्म-मरण जहाँ ताई वाकी स्थिति रहै, तहा ताईं होबो करै। ऐसे ही न्योजी (लौजी), सधाणा (अचार), मुरबा (मुरब्बा) विषै जीवा की रासि का समूह जानना। सो नष्ट भई है बुद्धि अर नष्ट भया है आचार जाका-ऐसा दोषीक जान अवश्य तजना योग्य है। अर सर्वथा नही रह्या जाय तौ आठ पहर को खानो निर्दोष है। अथवा सूकी (सूखी) आवली वा आवला (आमला) की न्योजी बनाय ल्यौ। वृथा ही आपनै ससार-समुद्र मै मति डोवो।

जलेबी के दोष

आगै जलेबी का दोष कहै है। प्रथम तौ रात्रि विषै मैदा मै खटाइये है। सो खटायवा का निमित्त प्रत्यक्ष नजर

आवै । ऐसा हजारां, लाखां, लटा का समूह उपजै है । वीं खटाया मैंदा नै मही का कपडा विषै अधर–अधर लें जल ऊपरि कूढि-कूढि छाणिये । सो मैंदा तौ पाणी की साथि छणि जाय, लटा का समूह कपडा ऊपरि रहि जाय । ऐसो लटा सहित मैंदानै स्वाद कै अर्थि घृत का कढाह मैं तलिये । पाछै खाँड की चासणी लगाय रात्रि नै वा दिन नै अघोरी हुवा थका निर्दयी हुवा भोजन करै । सो ये भोजन कैसा अर ई का पाप कैसा सो हम न जाणै, सर्वज्ञ जानै है ।

एक थाली में एक साथ जीमन के दोष

आगै भेला (एक साथ) जीमैं वाका (उसका) दोष कहिये । सो जगत विषै औठि (जूठी) ऐसी निद्य है । सो मण-दो मण मिठाई की छावडी, (टोकरी) ता माँही सू एक-एक कण को उठाय मुख मैं दीजै तो वा मिठाई नै कोई भीटै (उच्छिष्ट, जूठी) नही अर या कहै इह तौ औठि होय गई सो तजने योग्य है । अर यह मूढ श्रावक ऐसा पाच-सात जणा एकै कॉमा मै भेले बैठि भोजन-प्रसाद करै सो मुख माँहि सू सारा की औठि थाली मै परै वा मुख की लार थारी मै पडै है । अथवा ग्रास की साथि पाँचौ आगली (अगुलियाँ) मुख मै जाय सो मुख विषै आँगल्या लार सू लिप्त होय जाय, फेरि वे ही हाथ सू ग्रास उठाय मुख मैं देहै। ऐसे ही सारा की औठि कॉमा विषै घिलि-मिलि (घुल-मिल) एकूकार (एकाकार) होय जाय । सो परस्पर सरावे तौ वाकी औठि खायवे, वाकी औठि खाय परस्पर सारा हास्य, कौतूहल, अत्यत स्नेह बधाय वा मनुहारि करि पूर्ण

इंद्री पोषै । ताके पोषने करि काम-विकार तीव्र होय वा मान अत्यत वधै । सो भेलै जीमवा विषै ऐसा अनेक तरह पाप उपजै है, तातै सगा भाई, पुत्र, इष्ट मित्र वा धर्मात्मा साधर्मी ताकै भी भेलै जीमना उचित नाही ।

रजस्वला स्त्री के दोष

आगै रजस्वला स्त्री का दोष कहिये है । सामान्य पणै महीना कै आसि-पासि वाके योनि–सस्थान माहि सू ऐसा निंद्य रूधिर–विकार का समूह निकसै है, ताके निमित्त करि मनुष्य, तिर्यच केई आधे होय जाय वा आखि मै फूला पडि जाय, पापड, मगोडी लाल होय जाय, इत्यादि वाकी छाया वा देखिवा का वा कपडा स्पर्श करि तीन दिन पर्यत अनेक औगुण उपजै हैं । याकै रजा[1] समै महा पाप का उदय है, चूहडी समान है । याका हाथ की स्पर्शी वस्तु सर्व अलेण[2] है । पीछै चौथे दिन वा केई आचार्य छठै दिन कहै है । भावार्थ–छठे दिन वा पाचवे दिन वा चौथे दिन स्नान करि उज्जवल कपडा पहरि भगवान का दर्शन करि पवित्र होय है । मुख्यपणै चौथा स्नान करि भर्तार समोप जाय है । कोई पमू सूद्र समान याकी छोति[3] भिन्न नाही गिणै है, तौ वह भी चाडाल सादृश्य है । घणा कहा लिखिये ?

गोरस की शुद्धता की क्रिया

आगै दूध, दही, छाछि, घृत को क्रिया लिखिये है । गारडी,[4] उटडी,[5] आदि का दूध तौ अलेण ही है–या

---

१ मासिक धर्म २ अशुध्द ३ छूत, स्पर्शपना ४ भेडनी ५ उटनी

विषैं दोहता-दोहता त्रस जीव उपजै हैं। अर गाय-भैंसि का दूध लेण[1] है। सो छाण्यां पानीसू दोहने वारे के हाथ धुवाय गाय-भैंसि का आचल धुवाय चोखा[2] माज्या चरी-तौला[3] ताकू जल करि धोय वा विषै धुवाइये, पाछै दूजे वासण मैं कपडा सो छाणिये। पछि दोहा पाछै दोय घडी पहली पी जाइये अथवा दोय घडी पहला उष्ण करिये। दोय घडी उपराति काचा रहि जाय, तौ वा विषैं नाना प्रकार त्रस जीव उपजै है। तातै दोय घडी पहली उष्ण करना उचित है। सो प्रथम आवलि आदि खटाई वा रूपया दूध विषै डारि जमाइये। वाकी मर्याद आठ पहर की है। आज का जमाया दही कू कपडा विषै बाधि वाकी मुगोडी तोडि सुकाइये। पीछै और ही वा मुगोडी का जावण दै दूध जमाइये-ऐसा दूध, दही आचरने योग्य है। मूठ वा और खटाई वा जसद[4] रूपा[5] का भाजन[6] करि जमि जाय है। कैई दुराचारी जाट, गूजर आदि अन्य जातिका दूध, दही, छाछ खाइये है ते धर्मविषैवा जगत विषै महा निद्य है। और ऐसा शुध्द ही कू विलोया पीछै लोण्या तो तुरत अग्नि उपरि ताता[7] करि ताइये[8]। छाछ आथोन[9] ताई उठाय दीजे रात्रि विषैं राखिये नाही। रात को राखी सवारै अणछाण्या पानी समान है। ऐसे दूध, दही, छाछ, घृत की क्रिया जाननी। अर केई विषय के लोलुपी क्रिया का आसरा लेय गाय, भैस मोलि ले निज घर विषै आरभ बधावै है। सो ज्यौ-ज्यौ आरभ वधै त्यौ-त्यौ हिसा प्रचुर बधै। चौपदा राखिवा का विशेष पाप है सो कहिये है। सो वह तिर्यंच हरितकाय खाया

---

१ लेने योग्य २ अच्छा ३ गजी-तपेली ४ जस्ता
५ चाँदी ६ बर्तन ७ गर्म ८ तपाइये, पिघालइये ९ शाम

बिना वा अणछाण्या पानी पिया बिना न रहै । अर सूका तिणा अर छाण्या पानी का मिलना कठिन है । अर जो कदाच कठिनपने वाका साधन राखिये तो विशेष आकुलता उपजै । **आकुलता है सो कषाय का बीज है । कषाय है सो ही महापाप है** । बहुरि कदाचि वाकू भूखा, तिसाया[1] राखिये, शीत- उष्ण, डसमशकादि के दुख का जतन न करियै तौ वाके प्राण पीडे जाय । मुखसू वासू बोल्या जाय नाही । अर याकू सासनी कैसे खबरि रहै ? अर शीत-उष्णादि बाधा के मेटवे का उपाय कठिन । तातै वाकै सासती वेदना होय । वाका सहाय न बनै तो पाप राखने वारे को लागै । बहुरि वाके गोबर, मूत्र विषै विशेष त्रस जोवा को रासि उत्पन्न होय । अर दूध का निमित्त करि सासता रात-दिन चूल्हा बल्या करै । चूल्हा के निमित्त करि छहूं काय के जीव भस्म होय, लोभ- तृष्णा अत्यंत वधै । तातै ऐसा पाप जानि चौपद कोई प्रकार राखना उचित नाही । बहुरि तेल्ही खाने का विशेष पाप है । घणा दिन कौ कुमल [2] दूध गाय-भैंसि का पेट विषै रहै है । पीछे वाके प्रसूति होय । अर ता समय वाके आचल माहि सू रक्त सादृश्य निचोय काढिये । वाकू उष्ण करि जमाइये । ताका आकार और ही तरह का होय जाय । ताकू देखि गिलानि उपजै । पीछे ऐसी निंद्य वस्तु को आचरिये तौ वाके राग भाव की काई पूछणी ? तातै अवश्य याका आचरण न करना । अर छेलो[3] प्रसूति भया पीछै आठ दिवस का अर गाय का दस दिवस पीछे अर भैंसि का पद्रह दिन पीछै दुग्ध लेना योग्य है । पहली अभक्ष्य है । अर आधौ दुग्ध वाके बच्चा कौ छोडिये ।

---

१ प्यासा २ अशुध्द, मल सहित ३ बकरी

वस्त्र धुलाने-रंगाने के दोष

आगै कपड़ा धुवावने का रगावने का दोष कहिये है। प्रथम तो वा कपड़ा विषै मैल के निमित्त करि लीख, जू आदि अनेक त्रस जीव उपजै है। सो वे जीव खोम मे वा तेजी के पानी मे नासनै प्राप्त होय । पीछे वे कपड़ा नै दरियाव विषै सिला उपरि पछारि-पछारि धोवै । सो पछारिवा करि मीड़की,[1] माछली पर्यंत अगिणत छोटा वा बड़ा त्रस जीव कपड़ा के पुड़त मे आवै ता कपड़ा की साथि सिला ऊपरि पछाड्या जाय । सो पछाडिवा करि जीवा कौ खड-खड होय जाय । बहुरि वे तेजी का खारा पानी दरियाव विषै घणो दूरि फैले वा बहती नदी होय तौ घणी दूरी बहता चल्या जाय। सो जहा पर्यंत तेजी का खार रस पहोचै तहा पर्यंत सर्व जीव मृत्यु कू प्राप्ति होय । बहुरि कपड़ा कू साबन[2] सैतो[3] दरियाव मै धौवै। सो वैसे ही जहाँ ताईं साबुन का अस पहुँचे तहा ताई दरियाव का दरियाव प्रासुक होय जाय। जैसे एक पानी के मटका विषै चिमटो भरि लौग, डोडा, इलायची का नाखिवा करि प्रासुक होय है, तैसे एक-दोय कपड़ा के धोयवा करि सरव[4] दरियाव का जल प्रासुक होय है। अर केई महन्त पाप के धारक सैकडा, हजारा थान छदाम, अधेला के लालच के वास्ते धुवाय बेचै है, तो वाके पाप की वार्ता कौन कहे ? तातै धर्मात्मा पुरुष धोबी के कपड़ा धुपायवा तजौ । याका पाप अगिणत है । अर कदाचि पहरिवा का धोया बिना न रहै जाय तौ गाढा नातिना सू दरियाव बारै कुडी टुकडा मटका विषै पानी छाणि जीवाणि

---

१ मेंढकी २ साबुन ३ एक तरह का बर्तन ४ सभी

पहोचायां पाछै दरियाव वा कुवा में बिलोकि कपडा की जूं, लीख सोधि करि धोइये।

भावार्थ– मैला कपडा नै डील[1] सू उतारयां पाछै दस-पद्रा दिन तौ कपडा नै राखिये। पीछै वा विषै फेरि भी कोई जू, लीख रही होइ ताकू नेत्र करि देखिये। अर कोई नजरि आवै ताकू नेत्र करि देखियै। अर कोई नजरि आवै ताकू लेय और डील के विशेष मैल का भर्या पुराणा वस्त्र ता विषै मेलियै, आगन मै नाखिये नाही। कपडा विषैं वे जूं मैल के निमित्त करि घणा दिन ताई मरै नाही है, आयु पूरी हुवा ही मरै है। बहुरि ऐसी जायगा धोइये सो वे पानी दरियाव के वारै मूकि जाय, ता विषै प्रासुक स्थान विषै जल वहा का वहाई सूकि जाय, वा भूमि विषै सूकि जाय। अर जे कदाचि वह पानी दरियाव मे अपूठा जात तौ अणछाण्यां पाणी सादृश्य ही धोया कहिये। तातै **विवेक पूर्वक छाणैं पानी सूं धोवना उचित है।** बेचिवा का कोई प्रकार धोवना उचित नाही।

वस्त्र रंगाने के दोष

आगै रगावने का दोष कहिये है। नीलगार के छीपा, रगरेज आदि कै दोय-च्यारी वा पच रग पर्यंत रग के पानी का भाण्डार[2] रहै है। पीछे वा विषै कपडा का समूह डबोय मसलि रगे है। सो मसलवा करि सारी कुडि का जीव मसल्या जाय है। पीछै दरियाव मै जाय धोवै हैं। फेरि रगै है, फैरि धोवै है। ऐसे ही पान्च–सात बार धोवना–रंगना करै है। सो धोवा विषै वैसे ही रंग का पानी जहा पर्यन्त

[1] शरीर [2] बर्तन

दरियाव मे फैले है, तहा पर्यंत का जीव बारंबार हन्या जाय। तातै ऐसा रगावने का महापाप जानि सतपुरुषनि कू **रंगावना त्याज्य है।**

शहद खाने के दोष

आगै सेत[1] खाने का पाप दिखाइये है। एक बार मध्यान्ह समय चौडे रमना विषै निहार करिये हैं। सो तत-काल ही असख्यात सन्मूर्छन मनुष्य और असख्यात त्रस जीव सूक्ष्म अवगाहना के धारक जीव उत्पन्न होय हैं। पीछै दो-च्यारि पहर के आतरे निजरया[2] आवै है। ऐसा लटादिक के समूह जेता वह मल होय, तेता ही जीवा का रासि उत्पन्न होता आख्या देखिये है। तौ जहा सासती गूढ सरदी रहै अर ऊपरा-ऊपर दस-बीस पुरुष--स्त्री मल--मूत्र क्षेपै वा सीलाउन्हा पानी कूढै सो ऐसे अशुचि स्थान विषै जीव की उत्पत्ति का कहा कहना अर हिंसा का दोष को कहा पूछनी अर वाके पाप का कहा पूछना ? तातै ऐसा **महन्त पाप जानि सुपना मात्र भी सेत खाना (खाया) जाना उचित नाहीं।**

पंच स्थावर जीव के प्रमाण

आगै निगोद आदि पच स्थावरा के जीवा का प्रमाण दिखाइये है। एक खाना[3] की माटी की डली बिचि असख्यात पृथ्वीकाय के जीव पाइये है। सो तिजारा का दाणा के दाणा के मानि देह धरै तौ जम्बूद्वीप मे मावे नाही वा

---

१ शहद २ नजर ३ खान खदान

संख्यात, असंख्यात द्वीप-समुद्रा में मावे नाहीं। एता ही एक पानी की बून्द मैं वा अग्नि का तिनगा[1] मै वा तुच्छ पवन मैं वा प्रत्येक वनस्पति का सुई का अग्र भाग मात्र। गाजर कांदा[2], मूला, सकरकन्द, आदा[3], जुवारा, कूंपल[4] आदि वनस्पति विषै तासूं अनन्त गुणाजीव पाइये। सो ऐसा जाणि पांच थावरा की भी विशेषपणैं दया पालनी। बिना प्रयोजन थावर भी नही विरोधना। अर त्रस सर्वं प्रकार नही विरो- धना। थावर की हिंसा बिच त्रस की हिंसा का बडा दोष है। सो भी आरम्भ की हिंसा बिच निरपराध जीव हतन (हनन) का तीव्र पाप है।

द्वाति के दोष

आगै दुवाति (दवात) के दोष कूं दिखाइये है। सो दुवाति विषै दो-च्यारि बरस पर्यंत जीव रहे है। ता विषैं असख्यात त्रस जीव अनन्त निगोद रासि सासता उपजै है। सो ए लीलगर के कुण्डि होय हैं, ताके हजार, पचासवे भाग समान ए छोटी कुण्डि है सो या विषै जीव की हिंसा विशेष होय है। तातै उष्ण पाणी सू स्याही गालि वामैं का पाणी जो प्रभात करि राखिये, पीछे आथण नै वै का पानी सुकाय दीजे, प्रभाति फेरि भिजोइये। ऐसे ही नित्य **स्याही करि लेना-ए सदा प्रासुक है**। यामै कोई प्रकार दोष नाही। थोडा प्रमाद छोडिवा करि अपरम्पार नफा होय है।

---

१ तिनका, चिन्गारी २ प्याज ३ अदरक ४ कोपल

धर्मात्मा पुरूष के रहने का क्षेत्र

आगै धर्मात्मा पुरुष के वसने का क्षेत्र कहिये है। जहा न्यायवान जैनी राजा होय, नाज-वलीता सोध्या होय, पानी छाण्या होय, विकलत्रय जीव थोडा होय, घर को वा पैल. को फौज का उपद्रव न होय, सहर दोल्यू[1] गढ होय, जिन मन्दिर होय, साधर्मी होय, कोई जीव की हिंसा न होय, बालक राजा न होय, अनवैसि[2] बुद्धि का धारक राजा न होय, औरा की बुद्धि के अनुसार राजा कार्य न करै, राजा विषै बहु नायक न होय, स्त्री का राज न होय, पच का स्थाप्या राज न होय, नगर दोल्यू विरानी फौज का घेरा न होय, मिथ्याती लोगा का प्रबल जोर न होय, इत्यादि दुख नै कारण वा पाप नै कारण ऐसै स्थानक तातै दूरि ही तजना योग्य है।

आसादन दोष

आगै जिन मन्दिर विषै अग्यान वा कषाय करि चौरासी आसादन दोष लागै। अर विचक्षण धर्मबुद्धि करि नही लागै, ताका स्वरूप कहिये है–श्लेष्मा नाखै नाही, हास्य कौतूहल करै नाही, कलह करै नाही, कोई कला--चतुराई सीखे नाही, कुरला-उगाल नाखै नाही, मल-मूत्र खेपै नाही, स्नान करै नाही, गाली बोलै नाही, केश मु डावै नाही, लौहू कढावै नाही, नोह लिवावे नाही, गूमडा, पाव आदिक रेचक नाखै नाही, नीला-पोला पित नाखै नाही, वमन करै नाही, भोजन-पान करै नाही, औषधि-चूरण खाय नाही, पानताबूल

---

१ आसपास २ अपरिपक्व

चाबै नाही, दांत–मल, आँख–मल, नख–मल, नाक––मल, कान-मल इत्यादि काढै नाही, गला का मैल, मस्तक का मैल शरीर का मैल, पगा का मैल उतारै नाही, गृहस्थपणा की वार्ता करै नाही, माता––पिता, कुटुम्ब, भ्राता, व्याही, व्याहणि आदि लौकिक जनता की सुश्रूषा करै नाही, सासू-जिठानी-नणद आदि का पगा लागै नाही, धर्मशास्त्र उप-रांति लेखक-विद्या करै नाही वा वाचै नाही, कोई वस्तु का बटवारा करै नाही, आँगली चटकावै नाही, आलस्य मोडै नाही, मू छा ऊपरि हाथ फेरै नाही, भीति का आसिरा ले बैठे नाही, गादी-तकिया लगावै नाही, पाव पसारि वा पग ऊपरि पग धरि बैठे नाही, छाणा थापे नाही, कपडा धोवै नाही, दालि दलै नाही, सालि आदिक खोटै नाही, पापड-मु गोडो आदि सुकावै नाही, गाय-भैंसि आदि तिर्यंच बाधे नाही, राजादिक के भय करि भाजि देहुरै[१] जाय नाही, वा लुकै[२] नाही, रुदन करै नाही, राज-चोर-भोजन-देश आदि विकथा करै नाही , भाजन–गहणा–शास्त्रादि घडावै नाही, सिघरी[३] बालि तापै नाही, रूपया-मोहर परखै नाही, प्रतिमाजी की प्रतिष्ठा हुवा पाछै प्रतिमाजी के टाकी लगावै नाही, प्रति-माजी के अग केशर, चन्दन आदि चर्चन करै नाही, प्रति-माजी तले सिंघासन ऊपर वस्त्र विछावै नाही। ये भगवान सर्वोत्कृष्ट वीतराग हैं, तातै सरागता के कारण जे सर्व ही वस्तु ताका ससर्ग दूर ही तिष्ठौ। अर-कोई कुबुद्धि आपना मान-बडाई का पोषने के अर्थ नाना प्रकार के सरागता के कारण आनि मिलावै है, ताका दोष का काई पूछनी ? मुनि महाराज के भी तिल–तुष मात्र परिग्रह मना किया तो भग-

१ मन्दिर २ छिपे ३ सिगडी, अगीठी

वान के केसर आदि का संयोग कैसे चाहिये ? कोई यहां प्रश्न करै है–चमर,छत्र,सिंघासन कमल भी मनै किया होता ? ताको कहिये हैं-ये सरागता के कारण नाही, प्रभुत्व के कारण हैं। जल करि अभिषेक कराइये है सो स्नानादि विनय का कारण है। याके गंधोदक के लगाये से पाप गले है वा धोया जाय है। अर चवर, छत्र, सिंहासन अलिप्त रहै हैं। तातै जो वस्तु विनय नै साधती होय ताका दोष नाही, विपर्यय नै कारण ताका दोष गनिये है। तातै भगवान का स्वरूप निराभरण ही है। पाग बाधै नाही, काच मे मुख देखै नाही, नक (ख) चटी आदि सू केश उपाडै नाही, घर सू शस्त्र बाध्या देहुरे आवै नाही, पाउडी[1] कै पहिरे मंदिर विषै गमन करै नाही, निर्माल्य खावै नाही, वा बेचै नाही वा मोल ले नाही अथवा देहरा का द्रव्य उधार भी लेय नाही, चमर आप ऊपर ढुरावे नाही, पवन करावे नाही वा आप करै नाहीं, तेलादि विलेपन वा मर्दन करै नाही वा करावै नाही, जाको मानना उचित है ताही को पूजना योग्य है। बहुरि प्रतिमाजी के हजूर बैठिये नाही, जो पग दूखवा लागै तो दूर जाय बैठिये। काम-विकार रूप परणावै नाही, वा स्त्रियां के रूप-लावण्य विकार भाव करि देखै नाही, देहरा को बिछायत, नगारा-निसानादि[2] वस्तु विवाहादिक के अर्थि वरतै नाही, देहरा का द्रव्य उधार भी न ले वा पईसा दे मोल न लेय वा आप मन मे ऐसा विचार किया, ये वस्तु, ये द्रव्य देव, गुरु, धर्म के अर्थि है। पाछै वह वस्तु द्रव्य-संकल्प किया जो फिरि करि नही चढ़ोडै, तौ याका अंस मात्र भी विश्वा अपनै घर विषै रह्या हुआ

---

१ खड़ाऊ, चप्पल २ नगाड़ा, तबला आदि

निरमायल का दोष सादृश्य जानना। निरमायल के ग्रहण का पाप सादृश्य और पाप नाही। या पाप अनत संसार नै करै है। देव, गुरु, शास्त्र नै देखि तत्काल उठि बैठा होय हाथ जोडि नमस्कार करना, स्त्री जन एक साडी वोढि[१] देहरै आवै, ऊपरि उरणी[२] आदिक औढि आवै, पाग बांध्या पूजा न करना, स्नान वा चदन का तिलक और आभूषणादि श्रृ गार बिना सरागी पुरुष तिन कौ पूजा करनी, त्यागी पुरुष नै अटकाव नाही। अर पूजा बिना देहरा की केसरि-चदन आदि का तिलक करना नाही। प्रतिमाजी आगै चहोड्या फूल टाकवा आदि के अर्थि अगीकार न करना। याका ग्रहण विषै निर्मायल का दोष लागै। देहरा मे बाव सरिवा[३] आदि अशुचि क्रिया न करै। गेडी, गेदडी, चौपड, सतरज, गजफा आदि कोई प्रकार का ख्याल (खेल) न खेले वा होड नही पाडै, देहरा मे भाड-क्रिया न करै, रेकारे, तूकारे, कठोर वचन वा तर्क लिया वचन, मर्मछेद वचन, मस्करी, झूठ, विवाद, ईर्ष्या, अदया, मृषा, कोई नै रोकिवो, बाधिवो, लगिवो इत्यादि वचन न बोलै, कुलाट न खाइ, पगा कै दरबडी[४] वा चंपावै नाही, हाड, चाम, ऊन, केश आदि मदिर विषै ले जाय नाही, मदिर विषै बिना प्रयोजन आम्हो-साम्हो फिरै नाही, कपडा[५] हुई स्त्री तीन दिन वा प्रसूति हुई स्त्री डेढ महीना पर्यंत देहरा विषै जाय नाही, गुह्य अग दिखावै नाही, खाट आदि बिछावै नाही, ज्योतिष-वैद्यक, मन्त्र-यन्त्र करै नाही, जल-क्रीडा आदि कोई प्रकार क्रीडा करै नाही; लूला-पागुला, विकल, अधिक अगी, बावना,[६] अंधा, बहरा, गूंगा, काणा, माजरा, सूद्र वर्ण, सकर वर्ण

---

१ ओढ़कर २ ओढनी ३ वायु सरना ४ दौड ५ रजस्वला ६ बौना

पुरुष अस्नान करि उज्जल वस्त्र पहरि भी श्रीजी की पखालादि अभिषेक करि अष्ट द्रव्य सू पूजन न करै। और अपने घर सू विनय पूर्वक चोखा द्रव्य ल्याय कपडा पहर्‌या ही श्रीजी के सनमुख खडा होय आगै धरि पीछै नाना प्रकार की स्तुति-पाठ पढ़ि नमस्कारादि करि उठि जाय-ऐसे द्रव्य-पूजा वा स्तुतिपूजा करै, रात्रि-पूजन न करै। मदिर सू अडता[1] च्यार्‌यौ तरफ गृहस्थी का हवेली, घर न होय, बीच मे गली होय सो सर्वत्र मल-मूत्र आदि अशुचि वस्तु रहित पवित्र होय। अणछाण्या जल करि जिन मदिर का काम करावै नाही। और जिनपूजन आदि सर्व धर्मकार्य विषै बहोत त्रसजीवा का घात होय सो सर्व कार्य तजना योग्य है। ऐसे चौरासी आसादन दोष का स्वरूप जानना।

भावार्थ–जिन मदिर विषै सर्व सावद्य योग नै लीया ये कार्य होय ते सर्व तजना। और स्थान विषै पाप किया वा उपार्ज्या ताके उपशाति करने कू जिन मदिर कारण है अर जिनमदिर माहि पाप उपार्ज्या ताके उपशाति करने कू और कोई समर्थ नाही, भुगत्या ही छूटै है। जैसे कोई पुरुष कही सू लड्या ताकी तकसीर तौ राजा पासि माफ करावै है। अर राजा ही सू लड्या बाकी तकसीर[2] माफ करिवानै ठिकाणा कौन ? वाका फल बदी रखाना ही है। ऐसा जानि निज हित मानि जिह-तिह प्रकार विनय सू रहना। **विनय गुण है सो धर्म का मूल है। मूल बिना धर्म रूपी वृक्ष के स्वर्ग-मोक्ष रूपी फल कदाचि लागै नाहीं।** तीसू हे भाई! आलस्य छोडि, प्रमाद तजि, खोटा उपदेश का वमन करि

---

१ भिड़ता हुआ २ अपराध

भगवान की आज्ञा माफिक प्रवर्तो। घणी कहिवा करि काई ? ए तौ आपणा हित की बात है। जामे आपणा भला होय सो क्यो न करना ? सो देखौ अरहत देव का उपदेश तो ऐसा या चौरासी दोष माहि सू कोई एक-दोय दोष भी लागै तौ महापाप होय।

मन्दिर-निर्माण का स्वरूप तथा फल

आगै चौथा काल विषै जिन-मिन्दर करायेअर पाचवा काल विषै करावै है ताका स्वरूप वा फल वर्णन करिये है। चौथा काल विषै बडे धनाढ्य कै ये अभिलाषा होती सो मेरे द्रव्य बहोत ताकूं धर्म के अर्थि खरचिये। ऐसा विचार करि धर्म-बुद्धि पाक्षिक श्रावक सादृश्य महत बुद्धि के धारक अनेक जैन शास्त्रा के पारगामी बडे-बडे राजानि करि माननीक ऐसा गृहस्थाचार्य हुवे, ता समीप जाय प्रार्थना करै-हे प्रभो ! मेरा जिनमदिर करायवे का मनोरथ है, आपकी आज्ञा होय तौ मेरा कार्य करूं। पीछै वे धर्मबुद्धि गृहस्थाचार्य रात्रि नै मत्र को आराध करि सैन[१] करै, पोछै रात्रि नै सुपना देखै। सो भला शुभ सुपना आया होय तौ या जानै ये कार्य निर्वाण पहौचसी[२], अशुभ आया होय तौ या जाने ये कार्य निर्विघ्न-पणै पूर्ण होने का नाही। पीछै वे गृहस्थी फेरि आवै, ताकू शुभ सुपना आया होय तौ या कहै-विचार्यो सो करौ, सिद्धि होसी। अशुभ आया होय तौ या कहै-थाकै धन है सो तीर्थ-यात्रा आदि औरहू शुभकार्य है ता विषै द्रव्यका सकल्पकरौ, एता द्रव्य मौनै[३] या कार्य अर्थि खरचनौ, पीछै जैसा परि-णाम होय तैसा कार्य विचारै या द्रव्य विषै मेरा ममत्व

---

१ शयन २ निर्विघ्न सम्पन्न होगा ३ मुझे

नाहीं, ताकू अलाधा[1] एक जायगा धरै। ऐसा नाहीं कै पर-मान[2] कीया बिना देहरा कै अर्थि अनुक्रम सू खरच्या जाय। सो याका प्रमाण कांई ? पहली तौ प्रमाण साम्हा होय। ता विषै बहोत द्रव्य खरचना विचार्‌या ही, पीछै परिणाम घटि जाय वा पुन्य घटि जाय तौ पूर्व विचार माफिक द्रव्य का खरचना कैसे बने ? अपूठा निर्मायल का दोष लागै। तातै पूर्ववत् द्रव्य का परिणाम करिले तौ माहि सू ही खरच्या करै। पीछै राजा की आज्ञा सू बडा नगर जहा जैनी लोग घणा बसता होय ताके बीचि आस-पास दूरा गृहस्था का घर छोडि पवित्र ऊँची भूमि का दाम दे राजी दावै मोल लेय, वरजोरी नाही लेय। पीछै भला मुहूर्त देखि गृहस्थाचार्य वाकै ऊपरि मन्त्र माडै। पीछै जत्र का कोठा विषै सुपारी, अक्षत आदि द्रव्य धरै। वाके धरने करि ऐसा ग्यान होय, फलाणी जायगा एता हाथ तलै मसाण की राख है, एता हाथ तलै हाड-चाम है। पीछै वाकू खुदाय राख, हाड, चाम, अशुचि वस्तु ऊपरि काढै। पीछै श्रेष्ठ नक्षत्र, योग्य लग्न देखि नीव विषै पाषाण धरै। जो दिन सू नीव लागी, तो दिन सू करावने हारा गृहस्थी स्त्री सहित ब्रह्मचर्य अगोकार करै। सो प्रतिष्ठा किया पाछै श्रीजी मदिर विषै विराजै, तहाँ पर्यंत प्रतिज्ञा पालै। और छाण्या पाणी सू काम करावै, चूना की भठी (भट्टी) करावै नाही, प्राशुक ही मोल लेय। और कारीगर, मजूरा (मजदूर) सू काम की घणी ताकीद[3] न करै, वा वाका रोजगार विषै कसर नही देय, वाकै सदीव निराकुलता रहै। ऐसा द्रव्य दे मदिर का काम करावै। म्है तौ धर्म-कार्य विचार्‌या है सो अमोघा काम कराय चोखा

---

१ अलग २ प्रमाण ३ निर्देश

काम होय है । मैघी (मँहगी) वस्तु मोलि आई चोखी होय है । अर कृपणता तजि दुखित-भुक्षित जीवानै सदीव दान दे और कारीगर, मजूर (मजदूर) वा चाकर आदि जे प्राणी जनता ऊपरि कोई प्रकार कषाय नाही करै । सदा प्रसन्न चित्त ही रहै । सारा कू विशेष हेत जनावै, सौजन्यता गुण पालै, मन मे एक उच्छव वर्तै है । कब जिनमंदिर की पूर्णता होय ? श्रीजी विराजे और जिनवाणी का व्याख्यान होय । ताके निमित्त करि घना जीवा का कल्याण होय, जिनधर्म का उद्योत होय, घना जीव ई स्थानक विषै धर्म-साधन करि स्वर्ग-मोक्ष विषै गमन करै । औरमैं भी ससार-बधन तोडि मोक्ष जाऊँ । ससार का स्वरूप महा दुख रूप है । सो फेरि जिनधर्म के प्रताप करि न पाऊँ । ये वीतराग देव है सो स्वर्ग-मोक्ष के फल नै शीघ्र दे है । तातै जिनदेव की भक्ति परम आनदकारी है । आत्मिक सुख की प्राप्ति याही सो होय है । ताते मैं स्वर्गादिक के लौकिक सुख नै छोडि अलौकिक सुखा नै वाछू हूँ और म्हारै कांई बात का प्रयोजन नाही । ससारी सुख सो पूरो परो । धर्मात्मा पुरुष के तौ एक मोक्ष ही उपादेय है । मैं हूँ सो एक मोक्ष का अर्थी हूँ सो याका फल मेरे ये निपजो । धर्मात्मा पुरुष धर्म एक मोक्ष नै चाहै है । मान, बडाई, यश, कीर्ति, नाव (नाम), गौरव नाही चाहै, स्वर्ग–मोक्ष ही चाहै है ।

प्रतिमा-निर्माण का स्वरूप

आगै प्रतिमाजी का निर्मापण कै अर्थि खानि जाय पाषाण ल्यावै ताका स्वरूप कहिये है । सो वह गृहस्थी महा

उच्छव सू खानि जावे, खानि की पूजा करे। पीछे खानि कू नौति आवै अर कारीगरा नै मेल्हि[1] आवै। सो वे कारीगर ब्रह्मचर्य अगीकार करै, अल्प भोजन ले, उज्जल वस्त्र पहरै, शिल्पशास्त्र का जानपणा विनयसूँ टाची करि पाषाण धीरै-धीरै फोरि काढै। पीछै वह गृहस्थी गृहस्थाचार्य सहित वा कुटुब परिवार युक्त घणा जैनी लोग सहित और गाजा-बाजा बजावता, मगल गावता, जिनगुण का स्तोत्र पढता महा उच्छव सहित जाय। पीछै फेरि पूजन करि बिना चाम के सयोग महामनोज्ञ सोना-रूपा के काय महा पवित्र मनकू रजायमान करने वारा रथ ता विषै मोकला रुई का महल मेलि पेटि-पाषानकू धरै। पीछै पूर्ववत् उच्छव सूँ जिनमदिर ल्यावै। पीछै एकात, पवित्र स्थानक विषै घणा विनय सहित शिल्पकार शास्त्र अनुसार प्रतिमाजी का निर्मापण करै। ता विषै अनेक प्रकार गुण-दोष लिख्या है। सो सर्व दोषा नै छोडि सपूर्ण गुणा सहित यथाजात स्वरूप की निपुणता दोय-च्यारि वर्ष मे होय। एक तरफ तो जिन-मदिर की पूर्णता होय, एक तरफ प्रतिमाजी अवतार धरै। पीछै घणा गृहस्थ वा आचार्य, पडित, देश-देश का साधर्मी ताकूँ प्रतिष्ठा का मुहूर्त ऊपरि कागद देय, घणा हेत सू बुलावै। वा सघ को नितप्रति को भोजन, रसोई होय अर सर्व दुखित नै जिमावै। नित और कोई जीव विमुख न रहै, अति महा प्रसन्न रहे। और कुत्ता, बिलाई आदि सर्व तिर्यंच भी सर्व पोष्या जाय, वे भी भूखा न रहै। पीछै भला दिन, भला मुहूर्त विषै शास्त्र अनुसार प्रतिष्ठा होय, घणो दान बटै, इत्यादि घणो महिमा होय। ऐसा **प्रतिष्ठ्या**

[1] छोडकर

प्रतिमाजी पूजने योग्य है । बिना प्रतिष्ठा पूजने योग्य नाहीं । अर आने भोले सू सौ वरष पूजता हुवा होय तौ वह प्रतिमाजी पूज्य है । अगहीन पूज्य नाही, उपागहीन पूज्य है । अगहीन होय ताको जाका पानी कदे टूटै नाही, तातै जल विषै पधराय देना । याका विशेष स्वरूप जान्या चाहो तौ "प्रतिष्ठापाठ" विषै वा "**धर्मसंग्रहश्रावकाचार**" आदि और शास्त्रा तै जानि लेना । इहा सक्षेप मात्र स्वरूप दिखाया है । ऐसे धर्म-**बुद्धि नै लिया विनय सेती परमार्थ के अर्थि जिनमंदिर बनवाये है** वा नाना प्रकार के चमर, छत्र, सिंहासन, कलस आदि उपकरण चढ़ोडै है । सो वह पुरुष थोडा-सा दिना मे त्रिलोक्य पूज्य पद पावै है । वाका मस्तग ऊपरि भी तीन छत्र फिरै अर अनेक चमर ढुलै और इद्रादिक ससारीक सुख की कहा बात ? ऐसै चौथा काल का भक्त पुरुष जिनमदिर निर्मापे, ताका स्वरूप वा फल कह्या । अर पचम काल विषै बने ताका स्वरूप कहिये है । मान का आशय नै लिया गौरव सहित महत पुरूषा नै बूझ्या बिना आपनी इच्छा अनुसारि जिनमदिर की रचना जिह-तिह स्थान विषै बनावै हैं । देहरा के अर्थि द्रव्य का सकल्प किया बिना द्रव्य लगावै है वा सकल्प किया द्रव्य नै आपणा गृहस्थपणे के कार्य विषै लगावै है । अथवा नारेल[1] आदि निर्मायिल वस्तु भडार विषै एकठा करिवा का द्रव्य लगावै है वा पचायती मे नावा माडि[2] वरजोरी गृहस्था कनै पईसा मगाय लगावै । पीछै भाडे देने के अर्थि मदिर के तलै मोकलो हाटि[3] बनावै वा हाट्या विषै कदोई, छीपा, दरजी, हटवाण्या पसारी, गृहस्थी आदि वा विषै राखै है । वा नाज सू हाट्या भरि

---

१ नारियल २ नाम माडकर ३ लम्बा-चौडा बाजार की दूकानें

देय सो गृहस्थी तौ वहाँ कुशीलादिक सेवै, कदोई राति-दिन भठी बालै, नाज की हाट्या मे जेता नाज का कणिका तेता ही जीव परै है, सो ऐसा पाप जहाँ पर्यंत मदिर रहै है, तहां पर्यंत हुवा करै। वाके भाडे[1] का द्रव्य जिनमदिर के कार्य विषै लगावै वा पूजा करने वारे कू दे। बहुरि जिनमदिर विषै कुलिग्या नै राखि घोरानघोर पाप श्रीजी का अविनय करै। वे वहा ही खाय-पीवै, वहा ही सोवै वा मत्र-जत्र, ज्योतिष, वैद्यक कौ आराधे, स्त्री की हासी-मस्करी करै, देहरा की वस्तु मनमानी वरतै वा बेचि खाय, आपकौ पुजावै अर लुगाया देहरै आवै है सो तहा विकथा करि महापाप उपार्जै। प्रतिमाजी कू तौ पीठ दे, परस्पर पगा लागै और पडित, जती, जैनी लोगा प्रति नमस्कारादि करावै। और पुरुष जेता आवै तेता लौकिक बात करे, बारबार परस्पर शिष्टाचार करै। प्रतिमाजी का वा शास्त्रजी का अविनय होय, ताकी खबरि नाही। अर जाजम, नगारा आदि देहरा की निर्मायल वस्तु गृहस्थी आपना विवाहादि कार्य विषै ले जाय वर्ते। ऐसा विचारै नाही यामे निर्मायल का दोष लागै है। इत्यादि जहा पर्यंत मदिर रहै, तहा पर्यंत मंदिर विषै अयोग्य कार्य होय। धर्मोपदेश का कार्य अश मात्र भी नाही। श्रेणिक महाराज चेलणा राणी की हास्य करने अर्थि कौतूहल मात्र मुन्या का गला मे मृतक सर्प नाख्यो हो। सो नाखते प्रमाण ही सातवे नर्क की आयु-बध किया। पाछै मुन्या का शाति भाव करि परिणाम सुलट्या महादरेग[2] उपज्यो सम्यक्त की प्राप्ति भई। श्री वर्द्धमान अंतिम तीर्थंकर के निकट क्षायिक सम्यक्त कौ पाय तीर्थंकर गोत

---

१ किराये २ महान् आदर भाव

को बांध्यौ, सभा-नायक भया तो भी कर्मां सों छूट्या नाहीं, नर्क ले ही गया । ऐसा परम धर्मात्मा सूं कर्मां गम न खाई, तौ तीर्थंकर महाराज के प्रतिबिंब का अविनयी तासो गम कैसे खासी ? सो धर्मात्मा पुरुष ऐसा अविधि का कार्य शीघ्र ही छोडौ । और कोई विरले सतपुरूष पचम काल विषै भी पूर्वे अविधि कही, त्या विना आपणी शक्ति अनुसार महा विनय सहित धर्मार्थी होय जिनमदिर निर्मापै है । नाना प्रकार के उपकरण चढ़ोडै तौ वह पुरुष स्वर्गादिक के सुखा नै पाय मोक्ष सुख का भोक्ता होहै । बहुरि आन (अन्य) मती राजा जिनधर्म त्रा प्रतिपक्षी त्या का दरबार सू सायर का चयौत्रा (चबूतरा) सू पाच-सात रूपया को महीना जिन-मदिर के अर्थि वा कने जाचना करि पूजादिक के अर्थि रोजग्ना बाधै है सो ये महापाप है । श्रीजी के मदिर द्रव्य अपने परम सेवका विना इनका द्रव्य लगावना उचित नाही । बैरी का पईसा कैसे लगाइये ? तातै धर्म विषै विवेक पूर्वक कार्य करना ।

छह काल का वर्णन

...गे छह् काल का वर्णन करिये है । दश कोडाकोडी सागर प्रमाण अवसर्पिणी काल-एता ही उत्सर्पिणी काल ताका नाम कालचक्र है । एक-एक अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी विषै छह् काल पाइये । प्रथम सुखमासुखमा च्यारि कोडा-कोडी सागर प्रमाण, ता विषै आयु तीन पल्य, काय तीन कोस । दूसरा सुखमाकाल तीन कोडाकोडी सागर प्रमाण, तामे आयु दोय पल्य, काय दोय कोस । तीसरा सुखमा-दुखमा दोय कोडाकोडी सागर प्रमाण, ता विषै आयु एक

पल्य, काय एक कोस । चौथा दुखमासुखमा बियालीस हजार वर्ष घाटि एक कोडाकोडी सागर प्रमाण, ता विषै कोडिपूर्व आयु, सवा पाँच सै धनुष काय । सो प्रथम चौदमा नामिराजा कुलकर भये, तहाँ पर्यंत नौ कोडाकोडी सागर ताईं जुगलिया धर्म राह्य, सयम का अभाव अर दश प्रकार के कल्पवृक्ष ना करि दिया भोग ताको अधिकता । पीछै अंतिम कुलकर आदिनाथ तीर्थकर भया । ज्या दीक्षा धरी, त्या की साथि च्यारि हजार राजा दीक्षा धरी सो वे मुनिव्रत के परीषह सहवानै असमर्थ भया । अजोध्या नगर मे तौ भरतचक्रवर्ती के भय करि गये नाही, वारै ही वन-फल, अनछाण्या पानी भक्षण करने लगे । तब वन की देवी बोली-रे पापी ! कोई नगन मुद्रा धारि थे अभक्ष का भक्षण करौ ज्याहौ सो थाने म देस्यौ, थाकै बूते ई जिनमुद्रा विषै क्षुधादिक परीषह न सही जाय तौ और लिग धरौ । पाछै वा भ्रष्टी ऐसे ही किया । केई तो जटा बधाई, केई नख बधाया, केई विभूति लगाई, केई जोगो, केई सन्यासी, कनफडा, एकदडी, त्रिदडी, तापसी भये, केईक लगोट राखी, इत्यादि नाना प्रकार के भेष धरे । पीछै हजार वर्ष गया भगवान नै केवलज्ञान उपज्या सो केतायक तौ सुलटि दीक्षा धरी, केतायक वैसा ही रह्या, केतायक नाना प्रकार के भेष भये । बहुरि भरतचक्रवर्ती दान देना विचार्या सो द्रव्य तौ बहोत अर लेने वारे कोई पात्र नाही । तब नगर के सर्व लोग बुलाये अर मार्ग विषै हरितकाय उगाई, केई मारग प्रासुक राखे । अर सर्व पुरुषनि कौ आज्ञा दीनी इस्या[1] अप्रासुक मारग आवौ । तब निर्दय है हृदय जाका ते तौ

[1] इस

बहुत लोग उस ही हरित काय ऊपरि पग दे दे आये अर दया सलिल करि भीज्या है चित्त जिनका ते उहां ही खडे रहे, आगै नाही आए। तब चक्री कही-इस ही मारग आवौ। तब वा कही-म्हे तौ सर्वथा प्रकार हरितकाय कौ विरोध आवा नाही। तब भरतजी उन पुरुषा कौ दयावान जानि प्रासुक मारग बुलाया अर वानै कही थे ये धन्य हौ। सो तुम्हारे दया भाव पाइये है सो अब हम कहै सो तुम करौ। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र की तौ तीन तार कौ कंठसूत्र कहिये जनेऊ कठ विषै धारो अर पाक्षिक श्रावक के व्रत धारो अर गृहस्थ-कार्य की प्रवृत्ति चलावो, अर दान ल्यौ अर दान धो, या मे कोई प्रकार दोष नाही। थे म्हा करि माननीक होस्यौ सो वे वैसे ही करता हुवा सो ही गृहस्थाचार्य कहाये। पीछै ये ब्राह्मण स्थापे। केतायक काल पीछै श्री आदिनाथ भगवान को पूछो-ये कार्य मैं उचित किया कि अनुचित किया? तब भगवान की दिव्यध्वनि विषै ऐसा उपदेश भया-सो थे कार्य विरुद्ध किया, आगै शीतलनाथ तीर्थंकर के समय सर्व भिष्ट होसो, आन मती होय जिन-धर्म का विरोधी होसी। पीछै भरत मन के विषै बहुत खेद पाय कोप करि याका निराकरण करता हुवा सो होतव्य के वश करि प्रचुर फैले, व्युच्छिति नाही भई। फेरि भगवान की दिव्यध्वनि विषै उपदेश हुवा-ये तौ ऐसे ही होणहार है, तू खेद मत करै। ऐसै ब्राह्मण का कुल की उत्पत्ति जाननी। सो ही अब विपर्जै[1] रूप देखिये है। बहुरि अतिम तीर्थंकर के समय भगवान का मोस्याई[2] भाई ग्यारा अग के पाठी मसकपूर्ण नाम भया। ताकै महाप्रज्वल कषाय उपजी, तानै

---

१ विपर्यय, विपरीत २ मौसेरा

म्लेच्छ भाषा रची अर म्लेच्छ-तुरका कौ मत चलायो। शास्त्र का नाम कुरान ठहराया। ताका तीस अध्याय का नाम तीस सिपारा ठहराया। ऐसा घोराघोर हिंसामयी धर्म प्ररुप्या। सो काल का दोष करि प्रचुर फैल्या, जैसे प्रलय-काल का पवन करि प्रलयकाल को अग्नि फैले। ऐसे तुरका के मत की उत्पत्ति जाननी।

बहुरि वर्द्धमान स्वामी नैं मुक्ति गया पीछै इकईस हजार वर्ष प्रमाण पचम काल ता विषै केतायक काल गये, वरष सै अढाई उनमान गया, तब भद्रबाहु स्वामो आचार्य भये। ता समै केवली, श्रुतकेवली, अवधिज्ञानी की व्युच्छित्ति भई। ता ही समै एक चद्रगुप्त राजा उज्जेणी नगरी का हुवा। तानै सोला स्वप्ना देख्या। ताकौ फल फेरि भद्रबाहु स्वामी तै पूछ्या। तब वह जुदा-जुदा स्वप्ना का फल कह्या, ताको स्वरूप कहिये है। कल्पवृक्ष की डालो टूटी देखी, ता करि तौ क्षत्री दीक्षा का-भार छाडसी। सूर्य अस्त देखिवा करि द्वादशाग का पाठी कौ अभाव होसो, चद्रमा छिद्र सहित देखिवा करि जिनधर्म विषै अनेक मत होसी, भगवान की आज्ञा सू विमुख ? होय घर-घर विषै मनमाना मत स्थापसी, बारह फणा का सर्प देखिवा करि बारह वर्ष का काल पडिसो-एती क्रियातै भिष्ट होसो। देव-विमान अपूठा जाता देखिवा करि चारणमुनि, कल्पवासो देव, विद्या-धर पंचम काल विषै न आवसी। कमल कूडा विषै उपज्यो देखिवा करि सयम सहित जिनधर्म वैश्यघरि रहसी, क्षत्री विषै विमुख होसो। नाचता भूत देखिवा करि नीचे देव का मान होसो, जिनधर्म सू अनुराग मद होसी, चमकती अग्नि

देखिवा करि जिनधर्म कठै-कठै[1] अल्प, कोई समै घणो घटि जासी,कोई समै अल्प वध जासो,मिथ्यामत नै घणा सेवसी। सूखे सरोवर विषै दक्षिण दिसा की तरफ तुच्छ जल का देखिवा करि धर्म दक्षिण की तरफ रहसी, जहाँ-जहाँ पंच-कल्याणक भये तहाँ-तहा धर्म का अभाव होसी। सोना के भाजन मे स्वान[2] क्षीर खाता देखिवा करि उत्तम जन की लक्ष्मो नीच जनो के भोगसी। हस्ती ऊपरि कपि[3] चढ्यो देखिवा करि नीच कुल के राजा होसी। क्षत्री कुल के वाकी सेवा करसी। मर्यादा लोप तौ समुद्र देखिवा करि राजा नीति छाडि प्रजा नं लूटि खासी। तरुण वृषभ[4] रथ के जुया देखिवा करि तरुण अवस्था मे धर्म, सयम आदरसी, वृद्धपणो सिथिल होसी। ऊट ऊपरि राजपुत्र चढ्यो देखिवा करि राजा जिनधर्म छाडि हिंसक मिथ्याती होसी। रत्ना की राशि धूल सू ढकी देखिवा करि जति[5] परस्पर दोषो होसी। काला हस्ती का समूह लडता देखिवा करि समय-समय वर्षा थोडी होसी, मनमान्या मेघ न बरससी। सोला स्वप्ना का अर्थ अशुभनै सूचता भद्रबाहु स्वामो निमित्त ज्ञान का बल सू राजा चन्द्रगुप्त नै याका अर्थ यथार्थ कह्या,या करि राजा भयभीत भया। ऐसे स्वप्ना कौ फल सारा सुन्या प्रसिद्ध जान्यौ। ये ही सोला स्वप्ना चतुर्थकाल के आदि भरत-चक्रवर्ती नै आये थे। सो वह भो याका फल श्री आदिनाथ जी कौ पूछ्या, तब श्री भगवानजी की दिव्यध्वनि विषै ऐसा उपदेश भया। आगै पचमकाल आवसी, ता विषै हुडाव-सर्पिणी का दोष करि अनेक तरह का विपर्ज[6] होसी, ता करि या भव विषै वा परभव विषै जीवा नै महादु:ख के

---

१ कही-कही २ कुत्ता ३ बन्दर ४ जवान बैल ५ साधु ६ विपर्यय,विपरीत

कारण होसी । सोला स्वप्ना पंचमकाल में राजा चंद्रगुप्त नै आये अर राजा चद्रगुप्त दीक्षा धारी । ता विषै बारा (१२) फण का सर्प देखिवा थको बारा वर्ष को काल पडवो जान्यौ । तब चौईस हजार मुन्या कौ सिंघाडो[1] छौ, त्यानै बुलाय कही-ई देश विषै बारा बरस कौ काल पडेलौ, ऐसे रहसी सो भ्रष्ट होसी, दक्षिण मे जासी ज्या कौ मुनिपद रहसी, ऊठीनै[2] काल कौ अभाव होसी । पीछै ऐसो उपदेश कह्यौ सो त्या मे भद्रबाहु स्वामी सहित बारह हजार मुनि तौ दक्षिण दिशा नै विहार कियो । अवशेष बारह हजार मुनि यहा ही रह्या सो अनुक्रम सू भ्रष्ट हुवा। पातरा,[3] झोली, पछेवडी[4] राखता हुवा ऐसे बारह बरस पूर्ण भया पीछै सुभिक्षकाल भया । तब भद्रबाहु स्वामी तौ परलोक पधारे और दक्षिण के सर्व मुनि आये, याकी भ्रष्ट अवस्था देखि निन्द्या । तब केतायक तौ प्रायश्चित दड ले छेदोपस्थापना करि शुद्ध हुवा । अर केतायक प्रमाद के वशीभूत हुवा विषय-कषाय के अनुरागी धर्मसू शिथिल हुवा । कायरपणानै धारता हुवा अर मन मे ऐसा चितवन करता हुवा सो यह जिनधर्म का आचरण तौ अति कठिन है, तातै म्है ऐसे कठिन आचरण आचरवे कौ असमर्थ । तातै अबै सुगम किरिया माफिक प्रवर्तस्या अर काल पूर्ण करिस्या । पीछै ऐसा ही उपाय करता हुवा जिनप्रणीत शास्त्र का लोप करि जामे अपना मतलब सधै, विषय-कषाय पोष्या जाय तौ अनुसार नै लिया पैतालीस शास्त्र पडिताई का बल करि मनोक्त-कल्पित गूथे । अर ताका नाक द्वादशाग धर्या । ता विषै देव, गुरु, धर्म का स्वरूप अन्यथा लिखा । देव, गुरु के

१ सघ २ वहा पर ३ पात्र ४ अगोछा

परिग्रह ठहराया । धर्म सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र बिना वा सादिक विषैक लेश वीतराग भाव बिना स्थापित कीन्हे । सो तब तौ तोन पछेवडी, ओघा, मूपत्ती, पातरा आदि राखे थे, दीक्षादि का अभाव थे । पीछै ज्यों-ज्यो काल हीण आवता गया, त्यो-त्यो बुद्धि विशेष राग भाव नै अनुसरती गई । तीह[1] माफिक द्रव्य, असवारो आदि विशेष परिग्रह राखते भये, मत्र-यत्र, ज्योतिष वैद्यक करि मूर्ख गृहस्थ लोगानै वश करते भये । आपणा विषय-कषायनै पोषते भये, ता विषै भी कषाया के तीव्र वशीभूत भये तथा बीजा मत खरतरा आदि चौरासी मत थापे । पीछै विशेष काल दोष करि ताका मता विषै ही मारवाड देश विषै एक चेला लडि करि ढूढ्या विषै जाय बैठा । पाछै ऊ ढूढ्या मत चलाया अर पैतालीस शास्त्र माहि सू बत्तोस शास्त्र राखे । ता विषै प्रतिमाजी का तौ स्थापन है, पूजन का फल विशेष लिख्या है । अकृत्रिम चैत्याले वा प्रतिमाजी तीन लोक विषै असख्यात है । ताका विशेष महिमा, वर्णन लिख्या है । परतु हिंदू वा मुसलमान उत[2] दिगबर वा पूर्व श्वेताबर सो दोष पालने अर्थि प्रतिमाजी का वा जिनमदिर का वा जिनबिब पूजन का उत्थापन किया सो कालदोष करि खोटा मत की वृद्धि प्रचुर फैलि गई, शुद्ध धर्म की प्रवृत्ति वरजोरी भी चाल सकै नाही सो ही प्रत्यक्ष देखिये है । ऐसे श्वेताबर मत की उत्पत्ति भई । याको विशेष जान्या चाहो तौ भद्रबाहुचरित्र तै देखि लीज्यो । बहुरि पीछै अवशेष दिगबर गुरु रहे थे । केतेक काल पर्यंत तौ वा की भी परिपाटी शुद्ध चली आई । पीछै काल दोष के वश करि कोई-कोई भ्रष्ट होने लगे सो वनादिक नै

---

१ उस २ अथवा

छोडि रात्रि समै भय के मारे नगर समीप आय रहते हुए। पीछे वा विषै शुद्ध मुनिराज थे, ते निंदा करते हुए हाय-हाय! देखो काल का दोष मुनि की सिंघवृत्ति, छी ! सो स्यालवृत्ति आदरी। सिंघनै वन के विषै काहे का भय? त्यो मुन्या नै काहे का भय? स्याल रात्रि के समै नगर के आसरे आइ विश्राम ले, त्यो ही स्यालवत् ये भ्रष्ट मुनि नगर का आसरा लेहैं। प्रभात समै ये तो सामायिक करने बैठिसी अर नगर की लुगाया[१] गोबरी-पानी के अर्थि नगर के बाहरे आवसी सो याकी वैराग्य-सपदानै लूटि ले जासी। तब निर्धन होय नीच गति विषै जाय प्राप्त होसी और या भव के विषै महानिंदा नै पासी। सो नगर के निकट रहने ही करि भ्रष्टता नै प्राप्त हुवा तौ और परिग्रह-धारक कुगुरु की कहा बात? सो वे गुरु भी ऐसे ही भ्रष्ट होते-होते सर्व भ्रष्ट हुए। अर अनुक्रम तै अधिक भ्रष्ट होते आए सो वे प्रत्यक्ष अबै देखिये ही है। बहुरि ऐसे ही कालदोष करि राजा भी भ्रष्ट हुए अर जिनधर्म का द्रोही होय गये। सो ऐसे सर्व प्रकार धर्म की नास्ति होती जानि जे धर्मात्मा गृहस्थी रहे थे, ते मन केविषै विचारते हुए अबै काई करनौ? केवली, श्रुतकेवली का तौ अभाव ही हुवा अर गृहस्थाचार्य पूर्वे ही भ्रष्ट भये थे, अब राजा अर मुनि सर्व भ्रष्ट भये सो अब धर्म किसके आसरे रहै? तीस्यौ आपानै धर्म राखणो। सो अबै श्रीजी की डोला ही पूजन करौ अर डोला ही शास्त्र वाचौ।

---

१ स्त्रियाँ

चौरासी अछेरा

आगै श्वेतांबर दिगंबर धर्म सू विरुद्ध चौरासी अछेरा[१] माने है, तिनका निर्देश वा स्वरूप-वर्णन करिये है। **केवली के कवलाहार**-ऐसा विचार करै नाही, संसार विषै क्षुधा उपरांत और तीव्र रोग नाही अर तीव्र दुख नाही। अर जाके तीव्र दुख पाइये सो परमेश्वर काहे का? ससारी सादृश्य ही हुवो तौ अनत सुख पावना कैसे सभवै? अर छियालीस दोष, बत्तीस अतराय रहित निर्दोष आहार कैसे मिले? केवली तो सर्वज्ञ हैं सो केवली नै तौ दोषीक-निर्दोषीक वस्तु सर्व दीसे अर त्रिलोक हिंसादि सर्व दोष मयी भरि रहै हैं। सो ऐसे दोष को जानता-सुनता केवली होय दोषीक आहार कैसे करै? **मुनि महाराज सदोष आहार नहीं करै तौ सर्व मुन्या करि सेवनीक त्रिलोकयनाथ इच्छा बिना सदोष आहार कैसे लेहैं**? अर एक आहार लिये पीछे क्षधा, तृषा, राग, द्वेष, जन्म, जरा, मरण, रोग, सोग भय, विस्मय, निद्रा, खेद, स्वेद, मद, मोह, अति, चिंता ये अठारा[२] दोष उपजै तौ ऐसे अठारा दोष के धारक परमेश्वर आन मती के परमेश्वर सादृश्य होय गये। और यहाँ कोई प्रश्न करै-तेरहा गुणस्थान पर्यंत आहार-अनाहार दोन्यो कह्या है सो कैसे है? ताका उत्तर-यहु आहार है सो छह प्रकार के है- (१) कवल, (२) कर्म-वर्गणा, (३) मानसिक, (४) ओज, (५) लेप, (६) नोकर्म, ताके अर्थ लिखिये है। सो कवल नाम मुख मे ग्रास लेने का है सो बेंद्री तेंद्री, चौइद्री, असैनी पचेंद्री ये तो तिर्यंच और मनुष्य के पाइये। अर कर्म-वर्गणान को आहार

---

१ अतिशय २ अठारह

नारकीय के पाइये हैं। अर मानसिक आहार मन मे इच्छा भये कठ मा सू अमृत श्रवै ता करि तृप्ति होय ताकै कहिये सो च्यारि प्रकार के देव-देवागना ताके पाइये है। अर पंखी गर्भ मे सू बाहिर अडा धरै है सो केतेक दिन जात थका कवला–आहार विना ही वृद्धि नै प्राप्ति होय है। सो वा विषै वीर्य-रज-धातु पाइये, ताके निमित्त करि शरीर पुष्ट होय है। कोई कहै है–हस्तादिक लगाया वीर्य गलि अडा गलि जाय है। बहुरि लेप आहार सर्वांग शरीर विषै व्याप्त होय ताको कहिये है। सो एकेंद्री पाचो थावरा के पाइये है, जैसे वृक्ष मृत्तिका, जल को जड सेती खेचि सर्वांग अपने शरीर सू परिणमावै है। सो यह च्यारि प्रकार के आहार तौ क्षुधा की निर्वृति करने का कारण है। बहुरि नोकर्म-आहार तै पर्याप्ति पूर्ण करने को कारण है। समै-समै सर्वजीव आकाश मा सू नोकर्म जाति-वर्गणा का ग्रहण करै छै, पर्याप्ति रूप परिणमावे है। सो कार्माण का तीन समै अतराल का छोडि वाके समुद्घात विषै प्रतरकाल जुगल का दो समय पूर्ण कर एक समय विना आयु का एक समय पर्यंत त्रिलोक के सर्व जीव सिद्ध अजोगगुणस्थानवर्ती केवली या विना लेहै। ताकी अपेक्षा तेरहा गुणस्थान पर्यंत आहारक कह्या है सो तो हम भी माने है। परन्तु कवलाहार छठा गुणस्थान पर्यंत ही है। ताही तै आहार सज्ञा छठे गुणस्थान विषै ही है। बहुरि कार्माण-आहार आठो कर्मनके ग्रहण करने का है सो ये सर्व जीव सिद्ध अयोगकेवली विना प्रथम गुणस्थान तै लगाय तेरह गुण स्थान के अत पर्यंत आयु सहित आठवा आयु विना सातवा योग विनासै। सातावेदनीय एक कर्म का

ग्रहण करै है। ऐसे षट् प्रकार के आहारका स्वरूप जानना, । तातै केवली के कवलाहार सभवै नाही। अर जे पूर्वापर विचार करि रहित है ते माने है। और श्वेताबर मत विषै आहार सज्ञा छठा गुणस्थान पर्यंत ही कही है। मोह का मार्या अहकार मति का पक्ष नै लिये वाका विचार ही करै नाही। ये आहार कैसा है ? अर तेरहा गुणस्थान पर्यंत भी कह्या सो आहार कैसा है ? ऐसा विचार उपजै ही नाही। सो यह न्याय ही है--अपने औगुण न ढाकने होय तब आप सू गुणा करि अधिक होय, ताको औगुण पहली थापै, जैसे सर्व अन्य मत्या आपको विषय-भोग सेवता आया तब परमेश्वर के भी लगाय दिया, त्यो ही श्वेताबर आपनै एक दिन विषै बहु बेर आहार करना आया, तातै केवली के भी आहार स्थाप्या। सो धिक्कार होहु या भाव को! हे भाई! अपने मतलब के वास्ते ऐसा निर्दोष परम केवली भगवान ताकौ दोष लगावे है। ताके पाप की बात को हम नही जानै, कैसा पाप उपजे है सो ज्ञानगम्य ही है। बहुरि केवली के रोग, केवली को नीहार, केवली को केवली नमस्कार करै, केवली को उपसर्ग, प्रतिमा के भूषण, अर तीर्थंकर भस्म लपेटे, तीर्थंकर की पहली देसना अहली जाय, महावीर तीर्थंकर देवानंदी ब्राह्मण के घरि औतार लियो, पाछै इद्रजी वा का गर्भ मे सू काढि त्रिसलादे राणी का गर्भ विषै जाय म्हैं ल्याया छै-वाके गर्भ थकी जन्म लियो, आदिनाथ भाई-बहन सुनदा जुगलिया, सुनदा बहन को आदिनाथ परणा, केवली को छीक आवै, सुदकर ब्राह्मण मिथ्यादृष्टि को गौतमजी साम्हा गया, स्त्री को महाव्रत पलै, स्त्री को मुक्ति, तीर्थंकर नै दीक्षा समय इद्र

देवलोक तै श्वेतवस्त्र आणि दे सो मुनि अवस्था में पहरे रहैं, प्रतिमाजी कै लगोट कदोरा[1] को चिन्ह, श्री मल्लिनाथ को तीर्थंकर स्त्री-पर्याय माने, जुगल्या के छोटी काय करि देव भरत क्षेत्र में ल्यायैं, चोया काल के आदि तासौ फेरि जुगल्यो धर्म चालसी, जुगल्या सौ हरिवश चाल्यौ, जति के चौदा उपकरण, मुनिसुव्रत तीर्थंकर के घोडा गणधर हुवा, मुनि श्रावका सौं आहार आप विहरि ल्यावै अर उपासरा[2] में कवाड जुडि भोजन खावे अर दूणो[3] आहार करे, ताका अर्थ यहु जो कोई साधु आहार विहरि ल्याये होय, आहार किया पाछै अवशेष बाकी रह्यौ तौ वा आहार कौ तेला आदि घणा उपवास के धारी और कोई साधु होय ताका पेट मे नाखि दीजिये तौ दोष नाही, साधु को उदर छै सो रोडो समान छै। भावार्थ—तेला आदि घणा उपवास विषै और साधु को बच्यो भोजन लेनो उचित छै या मे उपवास का भग नाही, यह निर्दोषी आहार छै। नौ पानो आहार करै, ताका अर्थ यहु जो जल को विधि नाही मिलै तो मूत पीय करि तृषा बुझावे साधु को कैसा स्वाद ? अर नौ जाति का विधि का भेद सो घृत, दुग्ध, दही, तेल, मीठा, मद, मास, सहद एक और अथवा कोई श्रावका नौ पानो आहार पचाया होय सो भी साधु को लेना उचित है, निद्वक मार्‌या को पाप नाही, जुगल्या मरि नर्क भी जाय, भरतजी ब्राह्मी भगिनी को परणिवा के अर्थि अपने घर मे राखो, भरतजी गृहस्थ अवस्था विषै महला मे आभूषण पहर्‌वा भावना भावे ते केवलज्ञान उपार्ज्यो, महावीर जनमकल्याण समै बालक अवस्था विषै ही पग के अगूठा सू सुमेरु कपायमान किया,

---

१ करधनी २ उपाश्रय, धर्मस्थानक ३ दुगना

पंच पांडव एक द्रोपदी स्त्री पंच भरतारी शीलवंती महासती हुई, कुबडा चेला के कांधे गुरु चढ्या अर गुरु ओघा का दंड की चेला का माथा मे देता जाय तब चेला खिमा खमाई, तब खिमा के प्रभाव करि चेला को केवलज्ञान उपज्यो, तब चेला सूधा गमन करने लागा, तब गुरु फरमाया काई चेला सूधा गमन करने लगा सो तूनै केवलज्ञान उपज्या, तब चेला कही--गुरु का प्रसाद। अर जैमाली जाति तो माली सो महावीर तीर्थंकर की बेटी परणया, कपिल नारायण नै केवलज्ञान उपज्यो तब कपिलनारायण नाच्यो, धातकीखड को ईठे आयो छे, वसुदेव के बहत्तरि हजार स्त्री हुई, मुनि स्पर्शशूद्र कै आहार लेय, अर कोई मासादिक बेहराया[1] होइ तौ साधु ऐसा विचार करै जो साधु की वृति तो ये है बेहरावे सो ही लेना, अर लिया पीछै पृथ्वी ऊपरि खेपिये[2] तौ बहु जीवनि की हिसा होइ तातै भक्षण ही करना उचित है, पीछै गुरान तै खैया का दड प्रायश्चित ले लेंगे, देवता मनुष्यनि सौ भोग करै सो सुलसा श्रावकणी कै देव सौ बेटो हुवा, चक्रवर्ती के छह हजार स्त्री हुई, त्रिपृष्ठ नारायण छीपा का कुल विषै उपज्यो, बाहुबल को सवा पाच सै धनुष उत्तुग शरीर नही माने, क्यो घाटि मानै, अनार्य देश विषै वर्द्धमान स्वामी विहार-कर्म कियो, चौथे आरे सयमी को यति पूजै, धनदेव को एक कोस मनुष्य के च्यारि कोस बराबर छै, समोसरण माही तीर्थंकर केवली नगन नाही दीसै, कपडा पहर्या दीसै, जति हाथ मे डड[3] राखै, मरूदेवी माता नै हस्ती ऊपरि चढ्या केवलज्ञान उपज्यो।
भावार्थ-द्रव्य चारित्र विना केवलज्ञान उपजै, चाडालादि

---

१ आहार मे दिया २ डालिये ३ डडा (ओघा)

नीच कुली दीक्षा धारै वा मोक्ष जाय, चंद्रमा-सूर्य मूल विमान सहित महावीर स्वामी को बंदिवा आये, पहला स्वर्ग को इंद्र दूजा स्वर्ग को जाय स्वामी होय अर दूजा स्वर्ग का इंद्र पहला स्वर्ग का स्वामी, जुगल्या को शरीर मुवा पीछै पड्यो रहै, जिनेश्वर का मूल शरीर कौ दाग दे, श्रावक-यति कौ स्त्री आय मन थिरता करावैं तौ स्त्री को दोष नाही, पुण्य ही उपजै, जति वा श्रावक की विकार-बाधा मिटी, अठारा दोष सहित तीर्थंकर कौ मानै, तीर्थंकर का शरीर सू पंच थावर की हिंसा होय, तीर्थंकर की माता चौदह स्वप्ना देखै, स्वर्ग बारह, गंगादेवी सौ भोगभूमिया पचावन हजार वर्ष पर्यंत भोग भोग्या, अर बहत्तर जुगल प्रलयकाल मर्मै देव उठाय ले जाय, वधना नाही ले जाय, चामडा कौ पानी निर्दोष, घृत, पकवान वा सकरी रसोई, वासी निर्दोष छै, महावीर भगवान का माता-पिता भगवान दीक्षा लिया पहली पर्याय पूरी करि देव गति गये, बाहुबली मुगल कौ रूप, मागा फल खाया दोष नाही, जुगल्या परस्पर लरै, कषाय करै, त्रेसठि-शलाका पुरुषा के नीहार मानै इंद्र चौसठि जाति के मानै, सौ जाति के नाही माने, जादवा मास भख्यो, मानुषोत्तर आगै मनुष्य जाइ, कामदेव चौबीस नाही मानै, देवता तीर्थंकर का मृतक शरीर का मुख माहि को दाढ उपाडि स्वर्ग ले जाय पूजै, नाभिराजा मरुदेवी जुगलिया, नवग्रैवेयक का वासी देव अनुदिश पर्यंत जाय, चेलो आहार ल्यायौ सर्व गुरु वाका पातरा[1] मे थक्यो, चेले गुरु की औठि[2] जानि खाइ गयो, तातै केवलज्ञान उपज्यो, अर शास्त्र को बाधि

[1] पात्र, बतन [2] झूठा

बेसने[1] का चौका-पाटा ताकें नीचे धरि दे वा शास्त्र का सिराणा[2] दे सोवै अर या कहै यह तो जड है याका कहा विनय करिये ? और प्रतिमाजी को भी कहै यह भी जड है, याको पूजे वा नमस्कार करिये कहा फल दे ? अर कुदेवादिक के पूजने का अटकाव नाही, यह तौ गृहस्थपनै का धर्म है। अर औरा नै तौ कहै धर्म के अर्थि त्रस मात्र भी हिंसा कीजै नाही, सैकडा स्त्री वा पुरुष चातुर्मासादि नौरत्या विषै गारा[3] खूदता–खूदता असख्यात-अनत थावर-त्रस जीवा की हिंसा कराय आपनै निकट बुलावै वा आपको नमस्कार करावै, वा चालता अपूठा जाय, आवता पाच-सात कोस साम्हा जाय. इत्यादि धर्म अर्थि नाना प्रकार की हिंसा करै, ताका दोष गिणै नाही अर मुख के पाटी[4] राखै, कहै पवनकाय की हिंसा होय है, सो मुख का छिद्र तौ सासता मुद्रित रहै है, अब बोलै भी मुख की आडा सो स्वास निकलता नाही, सास तौ नाक की वोडी सो निकसै है, सो ताकै तौ पाटी दे ताही अर मूढा की लाल[5] सौ असख्यात जीव उपजै ताका दोष गिनै ही नाही, जैसे एक स्त्री अपने लघु पुत्र कौ अपने शरीर कौ आडा पट दे पुत्र कौ आचल चुसावै मुख सौ या कहे ये लडका पुरुष है तातै याका स्पर्श किये कुशील का दोष लागै है अर मैं परम शीलवती हौ तातै पुरुष नाम मात्र का स्पर्श करना मोन उचित नाही, पीछै खावद कौ निद्रा विषै सूतौ छोडि व खावद की आख चुराय दाव-घात करि आधी रात्रि कै सम वा दिन विषै वा मध्यान्ह समय चाहै जब अपने घोडा ं चखादार नीचकुली, कूबडा, महाकुरूप, निर्दयी, तीव्र कषाय

---

१ बैठने २ सिरहाना ३ कीचड ४ पट्टी मुखवास्त्रिका ५ लार

एसे निकृष्ट पुरुष सौ जाय भोग करे अर वह स्त्री कदे[1] जार कनै[2] मोडी-बेगी[3] जाय तब वे जार ऊनै लाठी, मूकी[4] आदि करि मारै तो भी जार सू विनयवान होय प्रीति ही करै, कामदेव सम निज भर्तार ताको इच्छै नाही, तैसै श्वेताबर कोई प्रकार मुखस्यू बोलने करि त्रस-स्थावर के रक्षक परम दिगबर जोगीस्वर वनोपवासी, संसार-देह-भोग सू उदासीन, परम वीतरागी, शुद्धोपयोगी, तारण-तरण, शान्तिमूर्ति, इन्द्रादिक देवनि करि पूज्य मोक्षगामी ताका दर्शन किये ही ज्ञान-वैराग्य की प्राप्ति होय, आपा पर का जानपना होय, ऐसे निर्विकार निर्ग्रंथगुरु भी खुले मुख उपदेश काहे कौ देते ? सो तौ वाके मुख कं कोई प्रकार हस्तादिक करि भी आच्छादित देखिये नाही, सो जा बात मे कोई प्रकार हिंसा नाही ताका तौ ऐसा यत्न करे अर सीली दोय-च्यारि दिन की वा सूद्र के घर का अणछान्या पानी खाल के स्पर्श जल, मदिरा, मास के सयोग सहित ऐसे गारे के भाजन ता विषै रात्रि समै पचाई रसोई दीन पुरुष की नाई जाचि सूद्र के घरकी ले आवै, वे जैनधर्म के द्रोही सो जैनधर्म की आज्ञा करि रहित भिक्षुक वत अनादर सू आहार दे सौ ऐसा भोजन के रागी ताका भक्षण करते असं मात्र भी दरेग[5] मानै नाही, कैसा है भोजन ? त्रसजीवा की रासि है, वहुरि ऐसे ही त्रसजीवा की रासि कदोई की वस्तु, अथाणा, सधाणा, नौजो, काजी आदि महा अभक्ष का आचरन करै है, ताकी हिंसा मे दोष गिणै नाही अर वाको प्रासुक कहै है सो यह प्रासुक कैसे ? जो प्रासुक होना तौ गृहस्थी याका त्याग काहे को करते ? सो

---

१ कभी २ प्रेमी पर पुरुष के पास ३ देर-सबेर ४ मुक्का, घूसा ५ दोष, अपराध

रागी पुरुषा की विडंबना कहा लग कहिये। बहुरि चित्राम की पुतली का नखै[1] रहने का दोष गिनै अर संकडा स्त्री ताकी सिखावै-पढावै, उपदेश देवा के समर्ग रहै वाका लालन-पालन करै अर वाको नाडी देखै, नाडी देखिवा के मिस ही वाका स्पर्श करै वा औषधि, ज्योतिष, वैद्य करि मनोरथ सिद्धि करै, बहुत द्रव्य का संग्रह करै ता करि मनमान्या विषय-पोषै, स्त्री का सेवन करै वाको गर्भ रह्या होय तौ वाको औषधि दे गर्भ का निपात करै अर कहै म्हे जति छा, म्हे साधु छा, म्हानै पूजो, सो ऐसे साधता भया समर्थ कैसे होय ? पत्थर की नाव समुद्र विषै आप ही डूबे तौ औरानै कैसे तारै ? बहुरि स्त्री का भला मनावा के वास्ते वाको कपडा सहित गृहस्थपना से ही मोक्ष बतावे अर या भी कहे वज्रवृषभनाराच सहनन विना मोक्ष नाही, अर कर्मभूमि स्त्री के अंत का सहनन है तौ स्त्री मोक्ष कैसे जाय ? सो ताके शास्त्र मे पूर्वापर दोष तो ऐसा, शास्त्र प्रमाणिक कैसे ? अर प्रमाणिक विना सर्वज्ञ का वचन कैसे ? तातै नेम करि उनमान[1] प्रमाण करि भी यह जाण्या गया ये शास्त्र कल्पित हैं, कषायी पुरुषा अपने मतलब पोषने के अर्थि रच्या है। बहुरि वे कहै हैं-स्त्री को मोक्ष नाही तौ नवम गुणस्थान पर्यंत तीनों वेद का उदय कैसे कह्या ? ताका उत्तर यहु जो यह कथन भावा की अपेक्षा है सो भाव तौ मोह कर्म का उदय सू होय हैं अर द्रव्य पुरुष-स्त्री-नपुसक का चिन्ह नाम-कर्म के उदय तै होय है। सो भाव तीनो वेदवारे नै तौ मोक्ष हम भी मानै है, द्रव्य स्त्री-नपुसक कौ मोक्ष नाही, वाकी सामर्थ्य तौ पचमा गुणस्थान पर्यंत चढने का है, आगे नाही

---

१ पास १ अनुमान

ये नेम है। आगै एक द्रव्यपुरुष का ही मोक्ष है। सो एकेन्द्री आदि असैनी पंचेद्री पर्यंत अर सन्मूर्छन वा देव, नारकी, जुगल्या याकै तौ जैसा द्रव्यचिन्ह है तैसा ही भाववेद पाइये है अर सैनो, गर्भज, पचेद्री मनुष्य वा तिर्यंच याकै द्रव्य माफिक भाववेद होय वा अन्य वेद का भो उदय होय, यह गोम्मप्सारजी विषै कह्या है। जैसे उदाहरण कहिये है– द्रव्य तौ पुरुष है अर वाके पुरुष सू भोग करवा की अभिलाषा वर्ते है ताको तौ भावस्त्रोवेदी, द्रव्य पुरुषवेदी कहिये अर एकै काल पुरुष-स्त्री दोन्या ही सू भोग करने की अभिलाषा होय ताको भावा नपुसकवेदी अर द्रव्या पुरुषवेदी कहिये। ऐसे द्रव्या पुरुष भावा तीनो वेदवारे जीव के मोक्ष होय है। ऐसे ही तीनो वेद का उदय द्रव्या स्त्री वा नपुसक को जानने। ताको पचमा गुण-स्थान पर्यंत आगै होय नाही, ताको ये मोक्ष मानै है, ताका विरूद्धपणा है। बहुरि दिगबर धर्म विषै वा श्वेताबर धर्म विषै ऐसा कह्या है–आठ समय उत्कृष्ट एक सौ आठ जीव मोक्ष जाय। अडतालीस पुरुषवेदी, बत्तीस स्त्री वेदो, अठाईस नपुसकवेदी मोक्ष जाय सो यह ऐसे वेद के धारी की अपेक्षा तौ विधि मिलै है अर द्रव्या की अपेक्षा विधि मिलती नाही। पुरुप-स्त्री तौ आधी-आधी देखने मे आवै है। द्रव्या नपुसक लाखा पुरुष-स्त्री मे एक भो देखिवा मे आवै नाही। तातै तुम्हारा शास्त्र की बात झूठो भई। बहुरि बाहुबली मुनि की वेई ऐसे कहै है–वरस दिन ताईं केवलज्ञान दौडो-दौडो फिरिवौ कर्‌यौ, परनु बाहुबलीजो कै परिणामा विषै ऐसा कषाय रह्‌या, यह भूमि भरत की ता ऊपरि हम तिष्ठै है सो यह उचित नाही। ऐसै मान कषाय करि केवलज्ञान उपज्यौ नाही, इत्यादि असभव

वचन वावला पुरुष की नाईं ताके मत विषै कहे हैं। तो वे अन्य मत तै कहा घटै है ? जिनधर्म की बात ऐसी विपर्यय होय नाहीं। ऐसी बात तौ कहानी मात्र लडका भी कहै नाही। ज्या पुरुषा कदे सिंघ देख्या नाही ताकै भावै विलाव ही सिंघ है, त्यौ ही **ज्या पुरुषा वीतरागी पुरुषा का मुख थकी सांचा जिनधर्म कदे सुन्या नाहीं ताकै भावै मिथ्याधर्म ही सत्य छै**। तातै आचार्य कहै है–अहो भव्यजी वो ! धर्म को परीक्षा करि ग्रहण करो। ससार विषै खोटे धर्म बहुत है, खोटे धर्म का उपदेश देनहारे आचार्य बहुत है। साचा जिनधर्म के कहनहारे वीतरागी पुरुष विरले है सो यह न्याय है- आछी वस्तु जगत विषै दुर्लभ है। सो **सर्वोत्कृष्ट शुद्ध जिनधर्म है सो दुर्लभ होय ही होय**। तातै परीक्षा किया विना खोटा धर्म का धारक होय है, ताके सरधान करि अनत ससार विषै भ्रमण करना परै। यह जीव ससार विषै रुलै है सो एक मिथ्या धर्म के सरधान करि ही रुलै है। ताके रुलने का कारण एक यही है और नाही। और कोई कारण माने है सो भ्रम है। तातै धर्म-अधर्म के निर्धार करने की अवश्य बुद्धि चाहिये। घणी कहा कहिये ? ऐसे श्वेताबरा की उत्पत्ति वा ताका स्वरूप काह्य ।

स्त्री-स्वभाव का वर्णन

आगै स्त्री के विना सिखाये हुवै सहज ही यह स्वभाव होय है, ताका स्वरूप विशेष करि कहिये है। मोह की मूर्ति, काम-विकार करि आभूरित, शोक का मदिर है, धीर-जता करि रहित है, कायरता करि सहित है, साहस करि निवृत्ति है, भय करि भयभीत है माया करि हृदय मैला है,

मिथ्यात अर अज्ञान का घर है, अदया, झूठ अशुचि अंग, चपल अंग, वाचाल नेत्र, अविवेक, कलह, निश्वास-रुदन, क्रोध, मान, माया, लोभ, कृपणता, हास्य अंग-म्लानता, ममत्व, वा लट, सन्मूर्छन मिनख,[1] आदि त्रस-स्थावर जीवनि की उत्पत्ति की कोथली[2] जोनिस्थान कहै। कोई की आछी वा बुरी बात सुण्या पाछै हृदय विषै राखिवानै असमर्थ है, मिथ्या बात करिवानै प्रवीण है, विकथा के सुणिवा नै अति आसक्त है, भाड विकथा बोलवानै अति आपताप[3] है, घर के षट् कार्य करने विषै अति चतुर है, पूर्वापर विचार करि रहित है, पराधीन है, गाली गीत गावानै बडी वक्ता है, कुदेवादिक की राति जगावानै, शीत कालादिक विषै परीसह सहिवानै अति सूरवीर है। आरभ-प्रारभ करने की सलाह देवा नै बडी चतुर है, धन एक ठौर करिवा नै मक्षिका वा कीडो सादृश्य है। गर्व करि सारा गृह चारे कै भार नै धर्‍या है वा भार दहवानै समर्थ है,पुत्र-पुत्री सौ ममत्व करने कौ बादरी[4] सादृश्य है, धर्मरतन के कोष वानै बडी लुटेरी है वा धर्मरतन के चोरवानै प्रवीण चोरटी[5]है,नरकादिक नीच कुगति ले जावानै सहकारी है, स्वर्ग-मोक्ष की आगल[6] है, हाव-भाव-कटाक्ष करि पुरुष के मन अर नेत्र बाधने को पासि[7] है अर ब्रह्मा, विष्णु, महेसर, इंद्र-धरणेंद्र, चक्रवर्ती, सिंघ, हस्ती आदि बडा जोधा तिन कौ क्रीडा मात्र वश करने कू मोहन धूलि डारि वश करै है। बहुरि मन मै, क्यो ही वचन मैं, क्यो ही काय करि, क्यो ही कोई कौ बुलावै, कही कौ सैन दे, कोई सौ प्रीति जोरै, कोई सौ प्रीति तोरै, छिन

---

१ मनुष्य २ थैली ३ व्याकुल ४ वानरी, बदरिया ५ चोट्टी ६ अर्गला, बेंडा ७ पाश, फांस

मै मिष्ट बोले, छिन मै गाली देय, छिन में लुभाय करि निकटि आवै, छिन मै उदास होय जाती रहै, इत्यादि मायाचार स्वभाव काम की तीव्रता के वश करि स्वयमेव ऐसा स्वभाव पाइये है। स्त्री कै कारिसा[1] को अग्नि सादृश्य काम दाह की ज्वाला जाननी। पुरुषा कै तृणां की अग्नि सादृश्य काम अग्नि जाननी अर नपुसक कै पिजावा[2] की अग्नि सादृश्य अग्नि जाननी। बहुरि दान देने कौ कपिला दासी समान कृपण है। सप्त स्थानक मौन करि रहित है। चिडी वत चकिचकाटि किया बिन दुचित बहुत है। इ द्रायण कै फल सादृश्य रूप कौ धर्‍या है। बाह्य मनोहर भीतर विष सादृश्य कडुवा, देखने कौ मनोहर, खाये प्राण जाय, त्यो ही स्त्री बाह्य दीसै तौ मनोहर अतर कडवी प्राण हरै ही दृष्टि विषसर्पिणी सादृश्य है। शब्द सुनाय विचक्षण सूरवीर पुरुषानि कौ विह्वल करने कौ वा कामजुर उपजावने कौ कारण है। रजस्वला विषै वा प्रसूति होते समै चडाली सादृश्य है। ऐसे औगुण होते सतै भी मान के पहाड ऊपर चढी औरन कू तृण सादृश्य मानै है। सो आचार्य कहै है-**धिक्कार होहु या मोह के ताईं जो वस्तु का स्वभाव यथार्थ भासै नाहीं, विपर्यय रूप ही भासै है। ताही तै अनंत संसार विषै भ्रमै है।** मोह के उदै तै ही जिनेद्रदेव नै छोडि कुदेवादिक नै पूजै है सो मोही जीव काई अकल्याण की बात नही करै ? अर आपनै ससार विषै नाही बोवै ?

स्त्री की शर्म-बेशर्म का वर्णन

आगै स्त्रीन की शर्म का, बेशर्म का स्वरूप कहिये है।

---

1 कडे 2 भट्टी

पाग की सरम होय सो तौ स्वयमेव ही नाहीं अर मूछ की सरम होय है सो मूछ नाही। आख्या की सरम होय सो काली करि नाखी, नाक की सरम होय सो नाक कौ वीधि काढ्यौ अर छाती का गढा-सा होय आडी काचली पहरि लीनी अर भुजा का पराक्रम होय सो हाथ विषे चूडी पहरि लीनी अर लखिणान्हा[1] जाणै का भय होय सो मेहदी करि लाल करि दीन्हे, काछ की सरम होय सो काछ खोलि नाखी अर मन का गढास होय है सो मन मोह अर काम करि विह्वल होय गया अर मुख की सरम होय है सोमुख वस्त्र करि आच्छादित कीना मानू यह मुख नाही आच्छाद्य है, ऐसा भाव जनावै है। सो कामी पूरुष म्हाका मुख नै देखि नर्क विषै मति जावो। अर जाघा की सरम होय है सो घाघरा पहरि लिया, इत्यादि सरम के कारण घणे हो है सो कहाँ लगि कहिये। तातै ये स्त्री नि शक, निर्लज्ज स्वभाव नै धर्‌या है, बाह्य तो ऐसी शर्म दिखावै सो अपना सर्व अग कपडा करि आच्छादित करै अर भ्रात, पिता-माता, पुत्र, देवर, जेठ आदि कुटुब का लोग देखता गावै ता विषै मन-मान्या विषय पोषै। अतरग की वासना कारण पाय बाह्य झलके बिना रहै नाही। बहुरि कैसो है स्त्री ? काम करि पीडित है मन अर इद्री जाका। अर नख सो ले अर सिख पर्यंत सप्त कुधातु मयी मूर्तिवती है। भीतर तौ हाड कौ समूह है, ताके ऊपर मास अर रुधिर भर्‌या है, ऊपरि नसा[2] करि वेढी है, चाम करि लपेटी है, ता ऊपरि केशनि के कुड है, मुख विषै लट सादृश्य हाड के दात है। बहुरि आभ्यतर वाय[3], पित्त, कफ, मल, मूत्र, वीर्य करि पूरित है, उदराग्नि

---

१ लक्षणो, हथेली की रेखाओ २ नसे ३ वात

वा अनेक और रोगनि करि ग्रासित है, जरा-मरण करि भयभीत है, अनेक प्रकार की पराधीनता कौ धर्‌या है ।

एती जायगा सन्मूर्छन उपजै है-काख विषै, कुचा विषै, नाभि तले, जोनि स्थान विषै वा मल-मूत्र विषै असख्यात जीव उपजै है । बहुरि नौवो दुवार विषै वा सर्व शरीर विषै त्रस वा निगोद सदीव उपजिवौ ही करै है वा बाह्य तन के मैल विषै लीख वा जूं वा अनेक उपजै है सो नित काढते देखिये ही है । अर केई निर्दयी पापमूर्ति वाकौ मारै भी है । दया करि रहित है हृदय जाकौ । सो देखो सराग प्रणामा[१] को माहात्म्म ! निद्य स्त्री को बडे-बडे महत पुरष उत्कृष्ट निधि जानि सेवै है अर आपनै कृतार्थ मानै है, वाका आलिगन करि जनम सफल मानै है । सो आचार्य कहै है-धिक्कार होहु मोह कर्म कै ताई वा वेद कर्म के ताई ! अर धिक्कार होहु ऐसी स्त्री को मोक्ष मानै है ताकौ । अर सदा ग्लान करि युक्त अत्यत कायर, शका सहित है स्वभाव जाका, ऐसी स्त्री कू मोक्ष कैसै होय ? सोलहा स्वर्ग अर छठा नर्क आगै जाय नाही । अंत का तीन ही सहनन उपरात सहनन होय नाही, अर तीन होय है । अर भोगभूमि जुगलिया कै पुरुष वा स्त्री, तिर्यंच वा मनुष्या कै एक आदि का ही सहनन होय । तातै पुरुषार्थ करि रहित है तौ नाही तै ताकै शुक्लध्यान की सिद्धि नाही, अर शुक्लध्यान विना मुक्ति नाही । सो एह निंद्यपणा कह्या । सो सरधान रहित वा सीलरहित स्त्री हैं ताकौ निषेध कह्या है । **अर सरधावान सीलवती स्त्री है सो**

१ परिणामो

निंदा करि रहित है। वाका गुण इंद्रादिक देव गावै हैं अर मुनि महाराज वा केवली भगवान भी शास्त्र विषै बढाई करै हैं। अर स्वर्ग-मोक्ष की पात्र है तौ औरां की कहा बात है ? सो ऐसी निंद्य स्त्री भी जिनधर्म के अनुग्रह करि ऐसी महिमा पावै है तो जो पुरुष धर्म साधै है ताकी कहा पूछनी? बहुगुण आगै लघु औगुण का जोर चालै नाही-ये सर्व तरह न्याय है। ऐसा स्त्री का स्वरूप वर्णन किया।

दश प्रकार की विद्याओं के सीखने के कारण

आगै दश प्रकार विद्या सीखने का कारण कहिये है। विषै पाच बाह्य के कारण हैं-सिखावने वारे आचार्य, पुस्तक, पढने का स्थानक, भोजन की स्थिरता, ऊपरली टहल करने वाले टहलुवा। अभ्यतर के पाँच-निरोग शरीर, बुद्धि का क्षयोपशम, विनयवान, वात्सल्यत्व, उद्यमवान, एवं सगुण कारण है।

वक्ता के गुण

आगै शास्त्र वाचवा वाला वक्ता का उत्कृष्ट गुण कहैं हैं—कुल करि ऊचा होय, सुँदर शरीर होय, पुण्यवान होय, पडित होय, अनेक मत के शास्त्रां के पारगामी होय, श्रोता का प्रश्न पहली ही अभिप्राय जानिवानै समर्थ होय, सभा-चतुर होय, प्रश्न सहिवानै समर्थ होय, आप जैन मत का घणा शास्त्रां का वेत्ता होय, उक्ति-युक्ति मिलावणे कौ प्रवीण होय, लोभ करि रहित होय, क्रोध-मान-माया वर्जित होय,

उदारचित्त होय, सम्यक्-दृष्टि होय, संयमी होय, शास्त्रोक्त क्रियावान होय, निशंकित होय, धर्मानुरागी होय, आन मत का खंडिवानै समर्थ होय, ज्ञान-वैराग्य को लोभ होय, पर दोष का ढांकने वाला होय, अर धर्मात्मा के गुण का प्रकाशने वाला होय, अध्यात्म रस का भोगी होय, विनयवान होय, वात्सल्य अंग सहित होय, दयालु होय, दातार होय, शास्त्र वांचि शुभ का फल नाही चाहै, लौकिक बढाई नाही चाहै, एक मोक्ष ही चाहै, मोक्ष के ही अर्थि स्व-पर उपदेश देने की बुद्धि होय, जिनधर्म की प्रभावना करने विषै आसक्त-चित्त होय, सज्जन घनौ होय, हृदय कोमल होय, दया जल करि भीज्या होय, वचन मिष्ट होय, हित-मित नैं लिया वचन होय, शब्द ललित होय, उत्तम पुरुष होय, और शास्त्र वाचते समै वक्ता आगुली कडकावै[१] नाही, आलस मोरै नाही, घूमै नाही, मंद शब्द बोलै नाही, शास्त्र सूं ऊंचा बैठे नाही, पाव ऊपरि पाव राखै नाही, ऊकडा बैठे नाही, गोडा दावरि[२] बैठे नाही, घना दीरघ शब्द उचारै नाही, अर घणा मंद शब्द भी बोलै नाही, भरमायल शब्द बोलै नाही, श्रोता का निज मतलब के अर्थि खुसामदी करै नाही, जिनवानी के लिखे अर्थ को छिपावै नाही। जो एक अक्षर को छिपावै तौ महापापी होय, अनंत संसारी होय। जिनवानी के अनुसार विना अपने मतलब पोसने के अर्थि अधिक हीन अर्थ प्रकासै नाही।

जा शब्द का अर्थ आपसूं नाही उपजै, ताकै अर्थ मान-बड़ाई कै लिया अनर्थ कहै नाही, जिनदेव नैन भुलाय देय

---

१ चटकावे २ पैर मोड़ कर

मुख सौं सभा विषै ऐसा कहै-या शब्द का अर्थ हमारे ताईं कछु भास्या नाही, हमारी बुद्धि की नूनता (न्यूनता) है, विशेष ग्यानी मिलैगा तौ वाकौ पूछि लेगे, नाही मिलैगा तौ जिन-देव देख्या सो प्रमाण है, ऐसा अभिप्राये होय । हमारी बुद्धि तुच्छ है, ताके दोष करि तत्त्व का स्वरुप और सू और होने मे वा साधने मे आवे, तौ जिनदेव मो परि क्षमा करौ । मेरा अभिप्राय तौ ऐसा ही है, जिनदेव नै ऐसा ही देख्या है, तातैं मैं भी ऐसे ही धारौ हौ अर ऐसे औरा कू आचरण कराऊ हौ । मेरे मान-बढाई, लोभ-अहकार का प्रयोजन हैं नाही अर ग्यान की नूनता करि सूक्ष्म अर्थ और सू और भासता है, तौ मैं कहा करूँ ? ताही तै मो आदि गणधरदेव पर्यंत ग्यान की नूनता पाइये है । ताही तै अत का उभै मनयोग, वचनयोग बारवा गुणस्थान पर्यत कह्या है, सत्यवचन योग केवली के कहै, तातै मूनै भी दोस नाही । सो ग्यान तौ एक केवलग्यान सूर्य प्रकाशक है सो ही सर्व प्रकार सत्य है । ताकी महिमा वचन अगोचर है, एक केवलज्ञान ही गम्य है। केवली भगवान बिना और का जानिबा का सामर्थ्य नाही । तातै ऐसे केवली भगवान के अर्थि बारवार मेरा नम-स्कार होहु । वे भगवान मौनै बालक जानि मो ऊपरि खिमा करौ अर मेरे शीघ्र ही केवलग्यान की प्राप्ति करौ । सो मेरे भी निःसदेह सर्व तत्त्व की जानने को सिद्धि होय, ताही माफिक सुख की प्राप्ति होय ।

ग्यान का अर सुख का जोडा है । जेता ग्यान तेता सुख । सौ मै सर्व प्रकार निराकुलता सुख का अर्थी हू, सुख विना और सर्व असार है, तातै वे जिनेद्रदेव मोनै सरणि

होहु। जामण-मरण के दुख सो रहित कर हूं, संसार-समुद्र सूं पार करहु, आप समान करहु, मेरी तो दया शीघ्र करहु, मैं ससार के दुःख सौ अत्यंत भयभीत भया हूँ, तातै सपूर्ण मोक्ष का सुख कौ देहु। घणी कहा कहिये ? इति वक्ता का स्वरूप-वर्णन।

श्रोता के लक्षण

आगैं श्रोता का लक्षण कहियै है। सो श्रोता अनेक प्रकार के है, तिनि के दृष्टांत करि कहिये है- (१) माटी, (२) चालणी, (३) छयाली[१] (छेली), (४) बिलाव, (५) सुवा, (६) वक, (७) पाषाण, (८) मर्प, (९) हस, (१०) भैंसा, (११) फूटा घड़ा, (१२) डसमसकादिक, (१३) जोक, (१४) गाय, ऐसैं ये चौदह दृष्टात करि या सादृश्य श्रोता का ये लक्षण कहिये हैं। सो यामे कोई मध्यम है अर कोई अधम है। आगे परम उत्कृष्ट श्रोता के लक्षण कहिये है-बिनयवान होय, धर्मानुरागी होय, ससार का दुख सौं भयभीत होय, श्रद्धानी होय, बुद्धिवान होय, उद्यमी होय, मोक्षाभिलाषी होय, तत्त्वज्ञान-चाहक होय, भेदविज्ञानी होय, परोक्षाप्रधानी होय, हेय-उपादेय करने की बुद्धि होय, ग्यान-वैराग्य कौ लोभी होय, दयावान होय, खिमावान होय, मायाचार रहित होय, निरवाछिक होय, कृपणता रहित होय, प्रसन्नतावान होय, प्रफुल्लित मुख होय, सौजन्य गुण सहित होय, शीलवान होय, स्व-पर विचार विषै प्रवीण होय, लज्जा-गर्व करि रहित होय, ठीमर[२] बुद्धि न होय, विचक्षण होय, कोमल परिणामी होय, प्रमाद करि रहित होय, सप्त बिसनां का त्यागी होय,

---

१ छेरी, बकरी २ मन्द

सप्त भय करि रहित होय, वात्सल्य अंग करि संयुक्त होय, आठ मद करि रहित होय, षट् अनायतन वा तीन मूढता करि रहित होय, आन धर्म का अरोचक होय, सत्यवादी होय जिनधर्म का प्रभावना अंग विषै तत्पर होय, गुरादिक का मुख सौ जिन-प्रणीत वचन सुनि एकात स्थानक विषै बैठि हेय-उपादेय करि वाका स्वभाव होय, गुणग्राही होय, निज औगुण कौ हैरौ होय, बीजबुद्धि-रिद्धि सादृश्य बुद्धि होय, ग्यान का क्षयोपशम विशेष होय, **आत्मीक रस का आस्वादी होय, अध्यात्म वार्ता विषै विशेष प्रवीण होय**, निरोगी होय, इंद्री प्रबल होय, आयु वृद्धि होय वा तरुण होय, ऊँच कुल होय, अर किया उपकार नै भूलै नाही। जो पर-उपकार नै भूलै सो महापापी होय, या उपरात और पाप नाही। लौकिक कार्य के उपकार कौ सतपुरुष नाही भूलै, तौ पर-मार्थ कार्य का उपकार कौ सत्पुरुष कैसे भूलै ? एक अक्षर का उपकार कौ भूलै सो महापापी हैं, विश्वासघाती-कृतघ्नी कहिये, किया उपकार भूलै सो ससार विषै तीन महापापी है—स्वामी-द्रोही अर गुरादिक वा आप सू गुणाकरि अधिक होय। त्या छता शिष्य दीक्षा-धर्मोपदेश दे नाही, जो देय तौ वे शिष्य दंड देने योग्य हैं। बहुरि आप तै गुणां करि अधिक बडे पुरुष होय, ते उपदेश देय। अर वे गुरु आप सन्मुख न बोलै, तिनके वचन कौ पोषने रूप वचन कहै अर कदाचि गुरा का उपदेश कह्या मे कोई तरह का सदेह पडे, ताकौ पोषने रूप वचन कहै। अर विनय सहित प्रसन्न करि ताके उत्तर सुनि निःशल्य होय चुपका होय रहै, बार-बार अगाऊ गुरा कै वचनालाप करै नाही। गुरा के अभिप्राय के अनुसार गुरु सन्मुख अवलोकन करै, तब प्रश्न करने रूप वचन बोलै।

ऐसा नाहीं, जो गुरा पहली ही औरां नै उपदेश देने लागि जाय, सो गुरु पहले ही उपदेश का अधिकारी होना-ये तीव्र कषाय का लक्षण है। यामें मान कषाय की मुख्यता है, अतरंग विषै ऐसा अभिप्राय वर्तै है सो मैं भी विशेष ग्यानवान हौं। तातै उत्तम शिष्य होय, ते पहली आपना औगुन काढै, आपको वार-वार निंदै, विशेष दरेग[1] करै, हाय! मेरा काई होसी? मैं तीव्र पाप सौ कब छूटस्यौ, कब निवृंत्त होस्यौ? तातै आपनै सदीव न्यूनता ही मानै। पीछै कोई मौसर[2] पाय आप जिनधर्म का रोचक होय, तिनका हेत-निमित्त नै लिया उपदेश देय, तौ दोष नाही। बहुरि सुदर तन होय, पुण्यवान होय, कठ स्पष्ट, वचन मिष्ट होय, आजीविका की आकुलता करि रहित होय, गुरा का चरणकमल विषै भ्रमर समान तल्लीन होय, साधर्मी जनो की सगत होय, साधर्मी ही है कुटुब जाके। बहुरि नेत्र तीक्षण, कसौटी का पाषाण-दर्पण अग्नि सारिखे अर सिद्धात रूप रतन के परीक्षा करने का अधिकारी है। बहुरि सुनने की इच्छा, श्रवण, ग्रहण, धारणा, समान, प्रश्न, उत्तर, निहचै ये आठ श्रोतानि के और गुण चाहिये। ऐसे श्रोता शास्त्र विषै सराहने योग्य कह्या है। सो ही मोक्ष के पात्र हैं, ताकी महिमा इंद्रादिक देव भी करै है। अर महिमा करने वारे पुरुष कै पुण्य का सचय होय है अर वाका भी मोह गलै है। गुणवान की अनुमोदना किये वाके भी गुण का लाभ होय है, औगुण वान की अनुमोदना किये वाको औगुण का लाभ होय है। तातै औगुणवान को अनुमोदना न करनी, गुणवान की अनुमोदना करनी। इति श्रोता का गुण सपूर्ण।

---

१ अपराध २ अवसर

आगै गुणचास भग का स्वरूप कहै हैं-मन-वचन-काय, कृत-कारित-अनमोदना या तीन करण अर तीन जोगा के परस्पर पलटनि करि गुणचास भग उपजै है। सो जिस भग करि सावद्य जोग का त्याग करणा होय अर आखडी आदि व्रत का ग्रहण करना होय सो या गुणचास भगा करि करिये। ताकौ व्योरौ-कृत, कारित, अनुमोदना ये तौ तीन भग प्रत्येक, इक सयोगी जानना। कृत-कारित, कृत-अनुमोदना कारित-अनुमोदना-ये दुसयोगी तीन भंग है। कृत-कारित-अनुमोदना, ये त्रिसयोगी भग है। ऐसे ये सात भग तीन योगा का हुवा। अर सात भग करने का पूर्वै कह्या सो एक-एक उपरि सात-सात का भग लगाये गुणचास भग होय है। सो याका विशेष कहिये है-कृत-कारित-मन करि, कृत-कारित-वचन करि, कृत-कारित-काय करि, कृत करि मन करि, कृत करि वचन करि, कृत मन-काय करि, कृत वचन-काय करि, कृत मन-वचन-काय करि ये सात तौ कृत तनै भग भये है। ऐसे ही और जानने-कारित मन-काय करि, कारित वचन-काय करि, कारित मन-वचन-काय करि, अनुमोदना मन करि, अनुमोदना वचन करि, अनुमोदना काय करि, अनुमोदना मन-वचन-काय करि, अनुमोदना मन-काय करि, अनुमोदना वचन-काय करि, अनुमोदना मन वचन-काय करि, कृत-कारित मन करि, कृत-कारित वचन करि, कृत-कारित काय करि, कृत-कारित मन-वचन करि, कृत-कारित मन-काय करि कृत-कारित-वचन काय करि, कृत-कारित मन-वचन-काय करि, कृत अनुमोदना मन करि, कृत-अनुमोदना वचन करि, कृत-अनुमोदना काय करि, कृत-अनुमोदना मन-वचन-काय करि, कारित-अनुमोदना मन करि, कारित-अनुमोदना

वचन करि, कारित-अनुमोदना काय करि, कारित-अनुमोदना मन-वचन-काय करि; ऐसे ये गुणचास भंग जानने । सो इक भेणो-इक भेणो के भंग९, इक भेणो-दुभेणो के भंग९, इक भेणो तिभेणो के भग३, दुभेणो-इक भेणो के भंग९,दुभेणो-दुभेणो के भग९, दुभेणो-तिभेणो के भंग३, तिभेणो-एक भेणो के भग३, दुभेणो-दुभेणो के भग३, दुभेणो तिभेणो के भग३, ऐसे गुणचास भंग को सज्ञा जाननी । अर तीन काल करि इस ही गुणचाम भंगनि को गुणाये, तो एक सौ सैंतालीस भेद होय । इति भगा का स्वरूप सपूर्ण ।

सोलहकारण भावना

आगै षोडश भावना का स्वरूप लिखिये है । दर्शनविशुद्धि कहिये दर्शन नाम सरधा का है । सो सरधान का निश्चै व्यवहार विषै पचीस मल दोष रहित समकित को निर्मलता होय, ताको नाम दर्शनविशुद्धि कहिये । विनय–सपन्नता कहिये दे॰, गुरु, धर्म का वा आपतै गुणा करि अधिक जे धर्मात्मा पुरुष ताका विनय करिये । अर 'शीलव्रतष्वनतिचार'–कहिये-शीलव्रत है, ता विषै अतिचार भी लगावै नाही । मुन्या कै तो पाच महाव्रत है, अवशेष गुण तेईस तेई शील हैं । अर श्रावक के बारा (बारह) व्रता मे पाच अणुव्रत तौ व्रत हैं अर अवशेष सात शील है, ऐसा अर्थ जानना । निरंतर ग्यानाभ्यास होय, ताकौ अभीक्षण–ज्ञानोपयो कहिये । धर्मानुराग होय, ताकौ सवेग कहिये । अर अपनो शक्ति अनुसार त्याग करै, ताकौ नाम शक्तित त्याग कहिये । अपनो शक्ति कै अनुसार तप करिये, ताकौ नाम शक्तितः तप कहिये । निःकषाया मरण करिये, ताकौ साधु-

समाधि कहिये । दस प्रकार के संघ का वैयावृत कहिये, चाकरी करिये वा आप सौ गुणा करि अधिक धर्मात्मा पुरुष होय, ताकी भी पगचपी आदि चाकरी करिये, ताकौ नाम वैयावृत कहिये । अरहत देव की भक्ति करियै, ताकौ अरहत-भक्ति कहिये। आचार्य-भक्ति, करिये ताकौ आचार्यभक्ति कहिये । उपाध्याय आदि बहुश्रुत कहिये, घणा शास्त्र कौ जामे ज्ञान होय, ताकी भक्ति करियै, ताकौ बहुश्रुत भक्ति कहिये । जिनवानी समस्त सिद्धात ग्रन्थ ताकी भक्ति करिये ताकौ प्रवचनभक्ति कहिये । षट् आवश्यक विषै दिन प्रति अतराय न पारिये, ताकौ आवश्यकपरिहाणि कहिये । अर ज्या-ज्यां धर्म अग करि जिनधर्म की प्रभावना होय, ताकौ प्रभावना अग कहिये । जिनवानी सौ विशेष प्रीति होय, ताकौ प्रवचन -वात्सल्य कहिये । ये सोलहकारण भावना तीर्थंकर-प्रकृति बधने कौ चौथा गुणास्थान सू लगाय आठमा गुणस्थान पर्यंत बधने का कारण है । तातै ऐसा सोला प्रकार के भाव निरतर राखिये, याका विनय करिये, यासो विशेष प्रीति राखिये, याको बडे उच्छव सू पूजा करिये वा कराइये, अर्घ उतारिये, याका फल तीर्थंकर पद है । एव षोडश भावना का सामान्य अर्थ सपूर्ण ।

दशलक्षण धर्म

आगै दशलक्षण धर्म का स्वरूप कहियै है । न क्रोध कहिये, क्रोध का अभाव, ताकौ उत्तमक्षमा कहिये। मान के अभाव भये विनय गुण प्रकटै, ताकौ उत्तममार्दव कहिये । जाके कोमल परिणाम होय, ताकै आर्जव कहिये । झूठ जो असत्य मन वचन, काय की प्रवृत्ति तै रहित होय, ताकौ सत्य कहिये । पर धन, पर स्त्री,

अन्याय को त्याग वा अति लोभ को त्याग वा आत्मा तै मंद कषाय करि उज्ज्वल करै सो शौच कहिये। पांच थावर, छठा त्रस की दया पालै, पाच इंद्रिय, छठा मन इनको इनके विषय में न जाने दे सो सयम कहिये बारह प्रकार को तप करै, छह प्रकार को तो बाह्य अनशन, अवमोदर्य, व्रतपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन, काय-क्लेश, छह तो बाह्य अर छह अभ्यतर—यह प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग, ध्यान—ऐसे बारह प्रकार का तप करना सो तप कहिये। चौबीस प्रकार के परिग्रह—दश प्रकार का तो बाह्य अर चौदह प्रकार का अभ्यतर का त्याग, ताकौ त्याग कहिये। किंचित् तिल-तुम मात्र परिग्रह सो रहित, नगन स्वरूप, ताकौ आर्किचन्य कहिये। शील पालना ताकौ ब्रह्मचर्य कहिये। ऐसा सामान्य पणै दशलक्षणीक धर्म का स्वरूप जानना।

रत्नत्रय धर्म

आगै रत्नत्रय धर्म का स्वरूप कहिये है।"सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग" ऐसा "तत्वार्थसूत्र" विषै कह्या है। दर्शन नाम सरधान का है। दर्शनोपयोग का नाम यहाँ दर्शन नाही है। दर्शन, ज्ञान के अनेक अर्थ हैं। जहाँ जैसा प्रयोजन होय,तहाँ तैसा अर्थ जानि लेना। सो दर्शन के यहाँ अनेक नाम हैं—सौ भावै दर्शन कहौ वा प्रतीति कहौ वा सरधान कहौ व रूचि कहौ, इत्यादि जानना। स्वयमेव ऐसै ही है, यो ही है, अन्यथा नाही और प्रकार नाही—ऐसा सरधान होय, ताकौ तौ सामान्य दर्शन का स्वरूप कहिये। बहुरि सराहिवा योग्य कहौ, भावै भला प्रकार कहौ, भावै

कार्मकारी कहो, भावै सम्यक् प्रकार कहो भावै सत्य कहो वा यथार्थ कहो। बहुरि यासो उलटा जाका स्वभाव होय, ताकौ बिसरावा[1] जोग्य कहिये, भावै मिथ्या प्रकार कहिये, भावै अन्यथा कहो, भावै अकार्यकारी कहो, भावै प्रकार कहो, ये सब एकार्थ हैं। तातै सप्त तत्त्व का यथार्थ श्रद्धान होय। तातै निश्चै सम्यग्दर्शन कहिये। याही तैं यथार्थ तत्त्वार्थ का सरधान सम्यदर्शन कह्या है। अर तत्त्व का अयथार्थ सरधान किये, मिथ्यादर्शन कह्या है। **तत्त्व का नाम वस्तु के स्वभाव का है। अर अर्थ नाम पदार्थ का है। सो पदार्थ तौ आधार है अर तत्त्व आधेय है।** सो यहा मोक्ष होने का प्रयोजन है। सो मोक्ष का कारण मोक्षमार्ग ज्यौं रत्नत्रय धर्म है। **प्रथम धर्म सम्यग्दर्शन, तानै कारण तत्त्वार्थ सरधान है।** सो तत्त्व सप्त प्रकार है—जीव, अजीव, आश्रव, बध, संवर, निर्जरा, मोक्ष। यामे पाप, पुण्य मिलाये, याही का नाम नव पदार्थ है। सो तत्त्व कहो, भावै पदार्थ कहो सो सामान्य भेद है, ताकौ तौ सप्त तत्त्व कह्या अर विशेष भेद है, ताकौ नव पदार्थ कह्या। याका मूल आधार जीव- अजीव दोय पदार्थ है। अस्तित्व तौ एक ही प्रकार है। अजीव पच प्रकार है पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, याही कौ षट्द्रव्य कहिये। काल बिना पचास्तिकाय कहिये, याही तै सप्त तत्त्व, नव पदार्थ, षट्द्रव्य, पचास्तिकाय का स्वरूप विशेष जाण्या[2] चाहिये। **सो याका विशेष भेदाभेद कहिये अर याका ग्यान ताकौ विग्यान[3] कहिये, दोन्या का समुदाय भेद कौ भेद-विज्ञान कहिये। याही तैं सम्यग्दर्शन होने का भेद-विज्ञान जिनवचन विषै कारण कह्या है। तातै ग्यान की वृद्धि सर्व भव्य जीवा नै करनी**

---

१ भुलाने २ जानना ३ विशेष ज्ञान

उचित है । तीन मूल कारण जिनवाणी करि कह्या है— जैन सिद्धांत ग्रन्थ ताका मुख्य पहलो अवलोकन करना । जेता सम्यक्चारित्र आदि और उत्तरोत्तर धर्म है–ताकी सिद्धि सिद्धांतग्रथ के अवलोकन तै ही है । तातै वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय, धर्मोपदेश, ये पाच प्रकार के स्वाध्याय निरतर करना । याका अर्थ 'वाचना' नाम शास्त्र के वाचने का है । 'पृच्छना' नाम प्रश्न करने का है । 'अनुप्रेक्षा' नाम वार-वार चिंतवन करने का है ।' 'आम्नाय' नाम काल के काल पढने का है, जा काल जो पाठ पढने का होय सो पढै । 'धर्मोपदेश' नाम परमार्थ धर्म का उपदेश देने का है ।

सात तत्व

आगै सप्त तत्त्व के आदि तै स्वरूप कहिये । सो चेतना लक्षण जीव, जामे चेतनपनो होय, ताकौ जीव कहिये । जामें चेतनपनो नाहीं, ताकौ अजीव कहिये । द्रव्यकर्म आवने कौ कारण चाहिये, ताकौ आस्रव कहिये । सो आस्रव दोय प्रकार है—द्रव्यास्रव तौ कर्म की वर्गणा तिनि कौ कहिये अर भावास्रव जो कर्म की शक्ति, अनुभाग ताकौ कहिये । तथा भावास्रव मिथ्यात्व५, अविरिनि१२, कपाय२५, योग १५, सत्तावन आस्रव भाव को कहिये । सो यहाँ च्यारि जाति के जीव का भाव जानि लेना । बहुरि द्रव्यास्रव, भावास्रव का अभाव होना, ताकौ कहिये । पूर्वे द्रव्यकर्म बसता विषै बधे थे, तिनका सवर पूर्वक एकदेश निर्जरा का होना, ताकौ निर्जरा कहिये । बहुरि जीव के रागादिक भाव कौ निमित्त करि कर्म की वर्गणा आत्मा के प्रदेश विषै बंधै, ताकौ बंध कहिये । बहुरि द्रव्यकर्म के उदै का अभाव होना अर सत्ता

का भी अभाव है, आत्मा का अनंत चतुष्टय भाव प्रकट होना, ताकौ मोक्ष कहिये। मोक्ष नाम द्रव्यकर्म, भावकर्म सू मुक्ति होने का वा निर्बन्ध होने का वा निर्वृत्ति होने का है। सिद्धक्षेत्र के विषै जाय, तिष्ठने का नाम मोक्ष होना नाही है—हुवा तो जीव कर्म सौ रहित हुवा, पीछै ऊर्ध्व गमन निज स्वभाव करि जाय तिष्ठै है। आगै वा ऊपरि धर्मद्रव्य का अभाव है। तातै धर्मद्रव्य के सहकारी विना आगै गमन करने की सामर्थ्य नाही, तातै वहा ही स्थित भये। उस क्षेत्र मे अरु और क्षेत्र में भेद नाही। वह क्षेत्र ही सुख का स्थानक होय, तौ उस क्षेत्र विषै सर्व सिद्धनि की अवगाहना विषै पाचो जाति के थावर, सूक्ष्म-बादर अनत तिष्ठै है। ते तो महादुःखी, महा अग्यानी, एक अक्षर के अनतवे भाग ग्यान के धारक, तीव्र प्रचुर कर्म के उदै सहित सदैव तीन काल पर्यंत सासते तिष्ठै है। तातै यह निश्चय करना सो सुख, ग्यान, वीर्य, आत्मा का निज स्वभाव है। सो सर्वकर्म उदै घटतै आत्मा विषै शक्ति उत्पत्ति होय है। सो यह स्वभाव भी जीव का है या भावारूप जीव ही परिणमे है अर द्रव्य परिणमता नाही। और द्रव्य तो जीव को निमित्त मात्र है। तातै ज्यौ पर-द्रव्य के निमित्त कौ जीव पाय जीव की शक्ति तै उत्पन्न ताकौ औपाधिक या विभाव वा अशुद्ध वा विकल्प वा दुःखरूप भाव कहिये।

सम्यक् दर्शन

जीव का ग्यानानन्द तो असली स्वभाव है अर अज्ञानता, दुःख आदि अशुद्ध भाव हैं, पर द्रव्य के सयोग तै है, तातै कार्य के विषै कारण का उपचार करि प्रभाव ही कहिये।

ऐसे सप्त तत्त्व का स्वरूप जानना या विषै पुण्य-पाप मिला-इये ताको नवपदार्थ कहिये। सामान्य करि कर्म एक प्रकार है। विशेष करि पुण्य-पाप रूप दोय प्रकार है। सो आस्रव भी पुण्य-पाप करि दोय प्रकार है। ऐसै ही बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष विषै भी दो-दो भेद जानना। ऐसै नव पदार्थ का विशेष स्वरूप जानना। मूलभूत याका षट् द्रव्य है। काल बिना पंचास्तिकाय है। ताका द्रव्य, गुण, पर्याय वा द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव वा प्रमाण, नय, निक्षेप, अनुयोग, गुणस्थान, मार्गणा विषै बंधै। उदीर्ण, सत्ता, नाना जीव अपेक्षा वा नाना काल अपेक्षा लगाइये वा त्रेपन भाव गुण-स्थान के चढने के उतरने मे लगाइये, इत्यादि नाना प्रकार के उत्तरोत्तर तत्त्व का विशेष रूप ज्यौं-ज्यौं घणो-घणा भेद, निमित्त, नाम तथा आधार-आधेय, निश्चय-व्यवहार, हेय-उपादेय इत्यादि ज्ञान विशेष अवलोकन होय, त्यौं-त्यौं सरधा निर्मल होय। याही तै क्षायिक सम्यक्त्व का घातक नाम पाया, अर केवली, सिद्ध के परम क्षायिक सम्यक्त्व नाम पाया। **तातै सम्यक्त्व की निर्मलता होने कौ ग्यान कारण है, तातै ग्यान ही बधावना,** तीसौ सर्व कार्य विषै ज्ञान गुण ही प्रधान है। यहा कोई ऐसा प्रश्न करै सप्त तत्त्व ही का सर-धान करने कौ मोक्षमार्ग कह्या और प्रकार क्यो न कह्या? ताका उत्तर कहिये है- जैसे कोई दीरघ रोगी वा पुरुष कौ रोग की निवृत्ति कै अर्थि कोई सयाना वैद्य वाका चिन्ह देखै, सो प्रथम तौ वा रोगी पुरुष की वय[1] देखै, पीछे रोग का निश्चय करै। पीछे यह रोग कौन कारण तै भयौ सा जानै अर कौन कारण सो रोग मिटै, ताका उपाय विचारै। अर

---

[1] अवस्था, उम्र

यह रोग अनुक्रम सूं कैसे मिटै, ताका उपाय जानैं । अर इस रोग सौं कैसे दुखी है, रोग गया पीछे कैसे शुद्ध होयगा ? जैसा पूर्वै निज स्वभाव जाका था, तैसा ही वाको रोग सूं रहित करि दे–ऐसा साचा वाका जाननहारा वैद्य होय, ताही सौ रोग जाय, अजान वैद्य सू रोग कदाचि जाय नाही । अजान वैद्य जम समान है, तैसे ही आस्रवादि सप्त तत्त्व का जानपणा सम्भवे है सो ही कहिये है । सो सर्वजीव संपूर्ण सुखी हुवा चाहै है । सो सम्पूर्ण सुख का स्थान मोक्ष है, तातै मोक्ष का ग्यान बिना कैसे बने ? बहुरि मोक्ष तौ बध के अभाव हाने का नाम है । पूर्वै बन्ध होय तो मोक्ष होय,तातै बन्ध का स्वरूप अवश्य जानना । बहुरि बधने का कारण आस्रव है, आस्रव बिना बध होता नाही । तातै आस्रव का स्वरूप जान्या बिना कैसे बने ? बहुरि आश्रव का अभाव ने कारण सवर है, सवर बिना आस्रव का निरोध होय नाही। तातै सवर कौ अवश्य जानना योग्य है । बहुरि बध का अभाव निर्जरा बिना होय नाही, तातै निर्जरा का स्वरूप जानना । बहुरि या पाच का आधारभूत जीव-पुद्गल द्रव्य है, तातै जीव–अजीव का स्वरूप अवश्य जानना । ऐसे सप्त तत्त्व जान्या बिना नेम करि मोक्षमार्ग की सिद्धि कैसे होय ? याही तै सूत्रजी विषै "तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यक्दर्शनम्" कह्या है । सो यह सर्वत्र ही न्याय है । जा कारन करि उर–झार[१] पड्या होय, तिनसौ विपर्यय उष्णता के निमित्त तै वायर[२] की निवृत्ति होय, ऐसा नाही कै सीत के निमित्त करि उत्पन्न भया वाया का रोग, सो फेरि सीत के निमित्त करि वाय मिटै सो मिटै नाही, अति तीव्र वधि जाय, त्यौ ही पर द्रव्य सौ

---

१ हृदय मे जलन २ वात रोग

राग-द्वेष करि जीव नामा पदार्थ कर्मां सौ उलझसी । वीत-राग भाव किये बिना सुलझै नाही । अर **वीतराग भाव होय, सो सप्त तत्त्व के यथार्थ स्वरूप जाने तैं होय ।** तातै सप्त तत्त्व का जानपणा ही निश्चय सम्यक्त्व होने कौ असाधारण, अद्वितीय, एक ही कारण कह्या । ऐसे सम्यक्दर्शन का स्वरूप जानना । तातै श्री आचार्य कहै हैं, हित करि वा दया बुद्धि करि कहै है– सर्व जीव ही सम्यक्दर्शन कौ धारो । **सम्यक्-दर्शन बिना त्रिकाल विषै मोक्ष मिलै नाहीं, चाहौ जेतो तपश्चरण करिवो करो । जो कार्य का जो कारण होय, ताही कारण तै कार्य की सिद्धि होय**–ये सर्व तरह नेम है । इति सम्यक्दर्शन वर्णन-स्वरूप सम्पूर्णम् ।

सम्यग्यान

आगै सम्यक्ग्यान कौ स्वरूप कहिये है । सो ज्ञान ज्ञेय जानने का नाम है, सो ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी का क्षयो-पशम तैं जानिये है । सम्यक् सहित ज्ञानपणा कौ सम्यग्ज्ञान कहिये है । मिथ्यात के उदै सहित जानपणे कौ मिथ्याज्ञान कहिये । यहा ज्ञान विषै दर्शन कौ गर्भित जानना । सामान्य करि दोन्यो का समुदाय कौ ग्यान कहिये । सो सप्त तत्त्व का जानपणा विषै मोह, भ्रम नाही होय, ताकौ सम्यक्ज्ञान कहिये । और उत्तरोत्तर पदार्था कौ जथार्थ वा अजथार्थ जानै, तौ वाके जानपणा तै सम्यक् नाम वा मिथ्यात्व नाम पावै नाही । तातै सप्त तत्त्व मूल पदार्थ का जानपणा सशय, विमोह, विभ्रम करि रहित हुवे सम्यग्यान नाम पावै है । अर निश्चय विचारियै तौ मूल सप्त तत्त्वा का जान्या बिना उत्तरोत्तर तत्त्वा का स्वरूप जान्या जाय नाही । कारण–

विपर्यय, स्वरूप-विपर्यय करि कसर रहि जाय, जैसे कोई पुरुष सोना नै सोना कहै, रूपा नै रूपा कहै, खोटा-खरा रुपया की परीक्षा करै हैं, इत्यादि लौकिक विषै घणा ही पदार्था का स्वरूप जानै है। परन्तु कारण-विपर्यय है, मूल कर्ता याका पुद्गल की प्रमाणता का है, ताकौ जानता नही। कोई परमेश्वर कौ कर्ता बतावै है, कोई नास्ति बतावै है, कोई पाञ्च तत्त्व पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश मिलि जीव नाम पदार्थ की उत्पत्ति कहै है, याका प्रमाण वा भिन्न-भिन्न, जुदा-जुदा जाति का बतावै है, तातै कारण-विपर्यय जानना। बहुरि जीव-पुद्गल मिलि मनुष्यादिक अनेक प्रकार समान जाति की पर्याया बणी है, ताकौ एक ही वस्तु मानै है सो भेद-विपर्यय है। बहुरि दूरि थकी आकाश धरती सौ लाग्या दीसै डूगर छोटा दीसै ज्योतिषी देवा का विमान छोटा दीसै वा चश्मा, दूरबीन थको पदार्थ का स्वरूप छोटा का बडा दीसै, इत्यादि स्वरूप-विपर्यय जानना। अर सम्यग्ज्ञान हुआ पदार्थ का स्वरूप जैसा का तैसा जिनदेव देख्या है, तैसे ही सरधान करने मैं आवै है। तातै उत्तर पदार्था का स्वरूप जानपणा भी सम्यग्यानी कौ सशय, विपर्यय, विमोह, विभ्रम रहित है।

बहुरि सशय, विमोह, विभ्रम का स्वरूप कहै है-जैसे च्यारि पुरुष सीप के खण्ड का अवलोकन किया, सो एक पुरुष तौ ऐसे कहने लगा- न जाने सीप है कि न जाने रूपा है? ताकौ सशय कहिये। बहुरि एक पुरुष ऐसे कहता भया- यह तो रूपा है, ताकौ विमोह कहिये। बहुरि एक पुरुष ऐसे कहता भया- 'क्यौ छे'१? ताकौ विभ्रम कहिये। बहुरि

१ कुछ है

एक पुरुष ऐसा कहता भया–"यह तो सोर का बाड है,"
ताकौ पूर्वे त्रिदोष रहित जो वस्तु का स्वरूप जानना
जैसा था, तैसा ही जानने का धारी कहिये, त्यौं ही सप्त
तत्त्व का जानपणा विषैं वा आपा-पर का जानन विषैं लगाय
लेना। सो ही कहिये है-"आतमा कौन है वा पुद्गल कौन है",
ताकौ सशय कहिये। बहुरि मै तौ शरीर ही हौ, ताकौ विमोह
कहिये। बहुरि "मैं क्यौ छौ" ताकौ विभ्रम कहिये। बहुरि
मैं चिद्रूप आतमा हूँ, ताकौ सम्यग्ज्ञान कहिये। मुख सौ
कहना, ताही माफिक मन कै विषै धारण होय, सो मन का
धारण जैसा-जैसा होय, तैसा-तैसा ही ग्यान वाके कहिये।
ऐसा सम्यग्ज्ञान का स्वरूप जानना। सम्यग्ज्ञान सम्यक्दर्शन
का सहचारी है। सो सहचारी कहा, साथ ही विचरे, लार
ही लाग्या रहे। वा विना वह नाही होय—वाका उदै होता,
वाका भी उदै होय, वाका नाश होय, तौ वाका भी नाश होय,
ताकौ सहचारी कहिये। सो सम्यक्दर्शन होते सम्यग्ज्ञान
भी होय। सम्यक्दर्शन के नाश होते सम्यग्ज्ञान का भी नाश
होय। सम्यक्दर्शन विना सम्यग्ज्ञान होय नाही, सम्यग्ज्ञान
विना सम्यक्दर्शन होय नाही, यह दुतरफा नेम है। और
भेद–विज्ञान तौ सम्यदर्शन कौ कारण है। सम्यक्दर्शन
सम्यग्ज्ञान कौ कारण है। ऐसै सम्यग्ज्ञान का स्वरूप यथार्थ
जानना। इति सम्यग्ज्ञान सपूर्ण।

सम्यक्चारित्र

आगै सम्यक्चारित्र का स्वरूप कहिये है। **चारित्र नाम
सावद्य जोग के त्याग का है। सो सम्यग्ज्ञान सहित त्याग
किया, सम्यक्चारित्र नाम पावै है।** मिथ्यात्व सहित सावद्य

जोग का त्याग किया, मिथ्याचारित्र नाम पावै है। सो सम्यक्‌दृष्टि के सरधान में वीतराग भाव है, प्रवृत्ति में किंचित् राग भी है, ताकौ चारित्रमोह कारण है। अर सरधान के राग भाव कौ दर्शनमोह कारण है। सो सम्यक्‌दृष्टि के दर्शनमोह गलि गया है, तातै सम्यक्‌दृष्टि के सरधान की अपेक्षा वीतराग भाव कहिये। सरधान का कषाय मंद है, तातै सम्यक्‌दृष्टि कौ अल्प कषाय कौ नाहीं गनिये, वीतराग ही कहिये। तातै सम्यक्‌दृष्टि कौ निर्बंध-निरास्रव कहिये, तौ दोष नाही, विवक्षा जानि लेनी। यह कथा एक जायगा शास्त्र विषै कह्या है। मिथ्यादृष्टि के सरधान मे वीतराग भाव नाही। वीतराग भाव विना जान्या निर्बंध-निरास्रव नाही। निर्बंध-निरास्रव विना सावद्य जोग का त्याग कार्यकारी नाही, स्वर्गादिक नै तो कारण हैं, परतु मोक्ष नै कारण नाही। तातै ससार का ही कारण कहिये। जे-जे भाव संसार का कारण हैं, ते-ते आस्रव है, यह देह (आस्रव नै) कार्यकारी है। तातै सम्यक् विना सावद्य जोग का त्याग करै है सो नरकादिक के भय थको करै है, परतु अतरग विषै कोई द्रव्य इष्ट लागै है, कोई द्रव्य अनिष्ट लागै है, तातै सरधान विषै मिथ्याती के राग-द्वेष प्रचुर है। सम्यक्‌दृष्टि पर द्रव्य नै असार जानि तजै है। यह पर पुरुष न कारण नाही, निमित्तभूत है। दुख नं कारण तौ अपने अज्ञानादि भाव है, सुख नं कारण अपने ज्ञानादिक भाव है– ऐसा जानि सरधान के विषै परद्रव्य का त्यागो हुवा है। तातै याको पर द्रव्य सौ राग नाही, जैसे फटकरी-लोद करि कषायला किया, त्यौ वस्त्र कै रग चढै है। विना कसायला

किया वस्त्र दीर्घकाल पर्यंत रंग के समूह विषै भी ज्या रहै; तो वाके तौ रंग लागे नाहीं, ऊपर-ऊपर ही रंग दीस्या करै। वस्त्र को पानी मे धोइये तौ रंग तुरत उतरि जाय, कसायला किया वस्त्र स्या हुवा ताका रंग कोई प्रकार करि उतरै नाही। त्यौं ही सम्यक्दृष्टि कै कषाया करि रहित जीव का परिणाम है, ताके दीर्घकाल पर्यंत परिग्रह की भीर[1] भी रहै, तो भी कर्म-मल लागै नाही। अर मिथ्यादृष्टि के कषाया करि परिणाम कसायला है, तातै कर्मा सू सदीव लिप्त होय है। बहुरि साह, गुमास्ता तथा माता, धाय, बालक कौ एकै साखि[2] लावै, एक-सा लालन-पालन करै, परंतु अतरग विषै राग भावा का विशेष बहुत है। त्यौं ही सम्यक्दृष्टि-मिथ्यादृष्टि कै रागभावा का अल्प-बहुत्व विशेष जानना। तातै वीतराग भाव सहित सावद्य जोग का त्याग कौ ही सम्यक्-चारित्र कह्या। वीतराग भाव सहित सावद्य जोग का त्याग कौ ही सम्यक्चारित्र का स्वरूप जानना। इति सम्यक्-चारित्रकथन सपूर्ण।

द्वादशानुप्रेक्षा

आगै द्वादश अनुप्रेक्षा का स्वरूप कहिये है। द्वादश नाम बारा (१२) का है। अनुप्रेक्षा नाम बार-बार चितवन करने का है। सो यहां बारा प्रकार वस्तु का स्वरूप निरंतर विचारणा। ऐसा नाही, जो एक ही बार याका स्वरूप जानि स्थित होय रहना। यह जीव भ्रम बुद्धि करि अनादिकाल से बारा स्थानक विषै आसक्त हुवा है, तातै याकी आसक्तता छुडावने के अर्थि परमवीतराग गुरु यह बारा प्रकार की

---

१ भीड २ सरीखा

भावना याके शक्ति. स्वभाव सूं विरुद्ध देखि छुडाया है । जैसे मदवान हस्ती सुछद हुवा जहां स्थानक विषैं अटकै, अपना वा बिगाना नाहि पहिचानै, माखो बहुत करै, ताकौ चरखी, भाला वारे साट मार महावत हस्ती कौ बहुत मार देय झुकावे है, त्यौं ही श्रीगुरु ग्यान-भाला की मार देय ससारी जीव मदवान हस्ती, ताकौ विपर्यय कारिज तै छुडावै हैं, सो ही कहिये है । प्रथम तो यो जीव ससारका स्वरुप नै थिर मानि रह्या है, ताकौ अध्रुव भावना करि संसार का स्वरूप अथिर दिखाया, शरीर सौं उदास किया । बहुरि जीव माता-पिता, कुटुब, राजा, देवेंद्र आदि बहुत सुभटा की शरण वाछता सता निर्भय, अमर, सुखी हुवा चाहै है । काल वा कर्म सौं डर पिया की सरणि वांछै है, ताकौ अशरण भावना करि सर्व त्रिलोक के पदार्थ, ताकौ अशरण दिखाया । अभय, शरण, एक निश्चय चिद्रूप निज आत्मा ही दिखाया । बहुरि ये जीव-जगत जो ससार वा चतुर्गति, ताके दु ख का खबरि नाही, ससार विषै कैसा दुःख है ? ताकौ जगत भावना करि नरकादिक ससार के भय करि तीव्र दुःख की वेदना का स्वरूप दिखाये, संसार के दुःख सौं भयभीत किया अर उदास किया । अर ससार के दुःख की निवृत्ति होने कौ कारण परम धर्म, ताका सेवन कराया । बहुरि यह जीव कुटुब सेवा करि पुत्र, कलत्र, धन-धान्य, शरीरादि अपने मानै है, ताकौ एकत्व भावना करि यह कोई जीव का नाहीं । जीव अनादि काल का एकला ही है । नर्क गया तौ एकला, तिर्यंच गति मे गया तौ एकला, देवगति मे गया तौ एकला, मनुष्य गति मे आया तौ एकला, पुण्य-पाप का साथ है और कोई याका साथि आवै-जाय नाहीं, तातै जीव सदा एकला

है। ऐसा जानि कुटुंब, परवारादिक का ममत्व छुडाया। **बहुरि यह जीव शरीर नै अर आपनै एक ही मानि रह्या है। ताको अनित्य भावना करि जीव शरीर तै न्यारा दिखाया।** जीव का द्रव्य, गुण, पर्याय न्यारा बताया, पुद्गल का द्रव्य–गुण न्यारा बताया, इत्यादि अनेक तरह सौ भिन्न दिखाय निज स्वरूप की प्रतीति अणाई। बहुरि यह जीव शरीर कौ बहुत पवित्र मानै है। पवित्र मानि यासौ बहुत आसक्त होय है। ताकी **आसक्ति छुडावने के अर्थि अशुचि भावना** करि शरीर विषै हाड, मास, रुधिर, चाम, नसा, जाल वा वाय, पित्त, कफ, मल-मूत्र आदि सप्त धातु वा सप्त उपधातु मयी शरीर का पिंड दिखाय शरीर सौ उदास किया। अर आपना चिद्रूप, महापवित्र, शुचि, निर्मल, परम ग्यान, सुख का पुंज, अनंत महिमा भंडार, अविनाशी, अखंड केवल कल्लोल, देदीप्यमान, निःकषाय, शांतिमूर्ति, सबकौ प्यारा, सिद्धस्वरूप, देवाधिदेव, ऐसा अद्वितीय, त्रैलौक करि पूज्य, जिनस्वरूप दिखाय, वा विषै ममत्व भाव कराया। बहुरि यह जीव सतावन आस्रव करि **पाप-पुण्य जल करि डूबै है, ताकौ आस्रव भावना का स्वरूप दिखाया** अर आस्रव है, तिनतै भयभीत किया। बहुरि यह जीव आस्रव के **छिद्र मूदने का उपाय** नही जानता संता ताकौ **संवर भावना** का स्वरूप दिखाया। सतावन संवर के कारण किसा[1] सो कहिये है–दशलक्षणीक धर्म, (१०), बारा तप (१२), बाईस परीसह (२२), तेरा प्रकार चारित्र (१३), ता करि सतावन आस्रव के मूदने का उपाय बताया। बहुरि यह जीव **पूर्व कर्म बंध किये, ताके निर्जरा का उपाय जानता संता**

---

१ किस प्रकार

ताकी निर्जरा भावना का स्वरूप दिखाया; चिद्रूप आत्मा का ध्यान सो ही भया परम तप, ताका स्वरूप बताया। बहुरि संसार विषै मोह कर्म के उदै करि संसारी जीवा कौ यह मिथ्या भ्रम लागि रह्या है। कैयक[1] तौ लोक का कर्ता ईश्वर मानै हैं, कैयक नास्ति मानै हैं, कैयक शून्य मानै हैं, कैयक वासुकि राजा के आधार मानै हैं; इत्यादि नाना प्रकार के भ्रम सोई हुवा मोह अंधकार, ता करि जीव भ्रमि रह्या है। ताके भ्रम दूरि करने कौ लोक भावना का स्वरूप दिखाया। मोह-भ्रम जिनवाणी-किरण्या[2] करि दूरि किया। तीन लोक का कर्ता षट्द्रव्य हैं। षट्द्रव्य के समुदाय का नाम लोक है। जहा षट् द्रव्य नाही, एक आकाश ही है, ताका नाम अलोक है। इस लोक का एक पदार्थ कर्ता नहीं। यह लोक अनादि-निधन, अकृत्रिम, अविनाशी, शाश्वत, स्वय सिद्ध है। बहुरि यह जीव अधर्म विषे लगि रह्या है, अधर्म कर्ता तृप्ति नाही है। अधर्म किया तै बहोत बुरा होय है, महाक्लेश पावै है। ऐसै ही अनादि काल व्यतीत भया, परन्तु धर्मबुद्धि याकै कबहू न भयी। तातै अधर्म के छुडावने कै अर्थि धर्मभावना का स्वरूप दिखाया। धर्म मे लगाया अर धर्म कौ सार दिखाया, और सर्व असार दिखाया। धर्म विना या जीव का कबहूं भला होय नाही। तातै ही सर्व जीव धर्म चाहै हैं, परन्तु मोह का उदै करि धर्म का स्वरूप जानै नाही। धर्म का लक्षण तौ ग्यान-वैराग्य है। अर यह जीव अग्यानी हुवा सराग भाव विषे धर्म चाहै है अर परम सुख की वांछा करै है सो यह बडा आश्चर्य है। अर-यह वाछा कैसी है? जैसे कोई अग्यानी सर्प के मुख सौ अमृत

---

१. कुछ, २ किरण से

पाना चाहै है वा जल बिलोय घृत काढ्या चाहै है वा वज्राग्नि विषैं कमल के बीज बोय, वाकी छाया विषैं विश्राम किया चाहै है अथवा बांझ स्त्री के पुत्र का ब्याह विषैं आकाश के पुष्प का सेहरा गूंथि मुवा पाछै वाकी शोभा देख्या चाहै है, तौ वाका मनोरथ कैसैं सिद्ध होय ? अथवा सूर्य पश्चिम विषै उदै होय, चद्रमा उष्ण होय, सुमेरु चलायमान होय, समुद्र मर्यादा लोपै वा सूकि जाय वा सिला ऊपरि कमल ऊगे, अग्नि शीतल होय, पाणी उष्ण होय, बांझ के पुत्र होय, आकाश कै पुष्प लागै, सर्प निरविष होय, अमृत विष रूप होय, इत्यादि इन वस्तुनि का स्वभाव विपर्यय हुआ, न होसी। परतु कदाचि ये तौ विपर्यय रूप होय तौ होय, परन्तु सराग भाव मे कदाचि धर्म न होय। यह जिनराज की आग्या है। तातै सर्व जीव सराग भावा नै छोडौ, वीतराग भाव नै भजौ। **वीतराग भाव है सो ही धर्म है, और धर्म नाहीं, यह नेम है।** सराग भाव है सो ही हिंसा जाननी। अर जेता धर्म का अग है, सो वीतराग भाव कै अनुसार है वा वीतराग भावा नै कारण है। ताही तै धर्म नाम पावै है। अर **जेता पाप अंग है सो सराग भावा नै पोषता है** वा सराग भावा नै कारण है, तातै अधर्म नाम पावै है। और अन्य जीव की दया आदि बाह्य कारण विषै धर्म होय वा न होय। जो वा क्रिया विषै वीतराग भाव मिलै, तौ ता विषैं धर्म होय, और वीतराग भाव न मिलै, तो धर्म नाही होय। अर हिंसा आदि बाह्य क्रिया विषै कषाय मिलै, तौ पाप उपजै, कषाय न होय, तो पाप उपजै नाही, तातै यह नेम ठहर्या वीतराग भाव ही धर्म है। **वीतराग भावा नै कारण रत्नत्रय धर्म है।** रत्नत्रय

धर्म नैं अनेक कारण हैं। तातै वीतराग भाव के मूल कारण का कारण उत्तरोत्तर सर्व कारण कौ धर्म कहिये, तौ दोष नाहीं। तातै सम्यक्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, वीतराग भाव, यह तौ जीव का निज स्वभाव है, सो मोक्ष पर्यंत शाश्वत रहै हैं। यासौ उलटा तीन भाव जीव का विभाव है, सो ही संसार-मार्ग है; मोक्षमार्ग रूप नाही। तातै सिद्धा कै नाही कह्या है। और सयोग-अयोग केवली कै चारित्र कह्या है, सो भी उपचार मात्र कह्या है। चारित्र नाम सावद्य जोग के त्याग का है। वीतराग भाव नैं कारण है, वीतराग भाव कारिज है, सो कारिज की सिद्धि हुवा पीछै कारण रहै नाही। तातै ग्यानी की क्षयोपशम अवस्था बारमा गुणस्थान पर्यंत, ताही लौ हेय–उपादेय का विचार है, तब ही हेय–उपादेय का विचार सभवै है। केवली कृतकृत हुवा कारिज करणो छो सो करि चुक्या। सर्वज्ञ, वीतराग भये, अनत चतुष्टय कौ प्राप्त भया। ताकै हेय-उपादेय का विचार काहै तै होय ? तीसौ वाके सावद्यजोग का त्याग निश्चै करि सभवै नाही। ऐसै मोक्षमार्ग धर्म ताही के प्रसाद करि जीव परमसुखी होय है। ऐसैं अधर्म कौ छुडाय धर्म कै सन्मुख किया। बहुरि यह जीव सम्यग्ज्ञान कौ सुलभ मानै है, ताको दुर्लभभावना का स्वरूप दिखाया, सन्मुख किया सो ही कहिये है। प्रथम तौ सर्व जीवा का घर अनादि तै नित्य निगोद है, तिन माहि सू निकसना महादुर्लभ है। उहा सौ निकसने का कोई प्रकार उपाय नाही। जीव की शक्ति-हीन भया है आतमा जाका, सो शक्तिहीन सू कैसै नीसरने का उपाय बने ? अर एक अक्षर कै अनतवे भाग जाकै ज्ञान है और अनेक पाप-प्रकृति का समूह का उदै पाइये है। यहा

सौ छै महीना आठ समय विषै छह सै आठ जीव नेम करि निकसै है, ता उपरांत अधिक-हीन नीसरै नाहीं। अनादि काल कै ऐसै नीसरै हैं, विवहार रासि मैं आवै है। एता विवहार रासि सौ मोक्ष जाय हैं, सो यह कालाब्धि कौ माहात्म्य जाणौ। पूर्वै अनादि काल के जेते सिद्ध हुवे वा नित्य निगोद में सौ निकसे विना ते अनत गुने एक-एक समय विषै अनादि काल सूं लगाय सासते नित्यनिगोद मे सू नीसरवो करै। तौ भी एक निगोद के शरीर माहि ता जीव-रासि का अनतवे भाग एक अश मात्र खाली होय नाही, तौ कहो राजमार्ग-बटमारा माफिक निगोद मे सू जीव का निकसना कैसे होय? अर कोई भाग उदै उहा सू निकसे, तौ आगै भी अनेक घाटा उलधि मनुष्य भव विषै उच्च कुल, सुक्षेत्रवास, निरोग शरीर, पाचो इद्री की पूर्णता, निर्मल ज्ञान, दीर्घायु, सतसगति, जिनधर्म को प्राप्ति, इत्यादि परम उत्कृष्टपने की महिमा कहा कहिये? ऐसी सामग्री पाय सम्यग्ज्ञान, रत्नत्रय की प्राप्ति नाही वाछै है, तो वाके दुर्बुद्धि की कहा पूछनी? अर वाका अपजस की कहा पूछनी? तोसौ एकेंद्रिय पर्याय सू वेंद्री पर्याय पावना महा-दुर्लभ है। वेंद्री पर्याय सू तेंद्री पर्याय होना महादुर्लभ है अर तेंद्री पर्याय सू चौद्री पर्याय पावना अति दुर्लभ है। चौइद्री पर्याय सू असैनो पचेंद्री की पर्याय पावना कठिन है। असैनी सो सैना, तामै भी गर्भज पर्याप्तक होना महादुर्लभ है। सो यह पर्याय अनुक्रम सौ महादुर्लभ, सा भी अनत वार पायो, परतु **सम्यग्ज्ञान अनादि काल तै लेय अब तक एक बार भी नाही पाया**, जो सम्यग्ज्ञान पाया होता, तौ ससार विषै क्या रहता? मोक्ष का सुख कौ ही जाय प्राप्त होता। तोसौं

भव्य जीव शीघ्र ही सम्यग्ज्ञान परम चिंतामणि रतन, महा अमोलिक, परम मंगल कारण, मंगल रूप, सुख की आकृति, पंच परम गुरु करि सेवनीक त्रिलोक के पूज्य मोक्ष सुख के पात्र ऐसा सर्वोत्कृष्ट सम्यग्ज्ञान महादुर्लभ परम उत्कृष्ट परम पवित्र उज्ज्वल जानि याको भजो। घणो कहा कहिये? कदाचि ऐसा मौसर पाय करि यहाँ सौं च्युत भया, तौ बहुरि ऐसा मौसर मिलने का नाहीं। अबार और सामग्री तौ सर्व पाइये है, एक रूचि करनी ही रही है। सो तुच्छ उपाय किया बिना ऐसी सामग्री पायो हुई अहली जाय, तौ याका दरेग कैसे सतपुरुष न करै अर कैसे सम्यग्ज्ञान होने के अर्थि उद्यम न करै? परन्तु यह जीव फेरि एकेंद्री पर्याय विषै जाय पडै, तो असख्यात पुद्गल परावर्तन पर्यंत उत्कृष्ट रहै। एक पुद्गल परावर्तन के वर्ष की सख्या अनत है। अनते सागर, अनते अवसर्पिणी–उत्सर्पिणी का काल-चक्र, अनतानत प्रमाण एक पुद्गल परावर्तन के अनतवे भाग एक अश भी पूर्ण होय नाही। अर एकेंद्री पर्याय विषै दुःख का समूह अपरिमित है, नर्क तै भी अधिक दु.ख पाइये है। ऐसा अपरपार दु ख दीर्घ काल पर्यंत सासते भोग्या जाय। परन्तु कर्म के परवसि पड्या जीव कहा उपाय करै? यहाँ अनेक रोग करि कोई काल विषै एक रोग की वेदना उदै होय। ताके दु ख करि जीव कैसा आकुल-व्याकुल होय परिणमे है, आप घात करि मूवा चाहे है, सौ अवस्था इस ही पर्याय विषै सर्व मांहि प्रवर्ते है। वा सर्व तिर्यंच पुण्यहीन मनुष्य दु खमयी प्रत्यक्ष देखने मे आवै हैं। तिनके एक-एक दु ख का अनुभव करिये, तौ भोजन रूचै नाही। परन्तु यह जोव अग्यान बुद्धि करि मोह-मदिरा पान करि रमि रह्या है, सौ कबहू एकात बैठि

करि विचार करै नाहीं। जैसे जे पर्याय वर्तमान विषै पावै, तिन पर्याय सौं तन्मय होय एकत्व बुद्धि करि परिणमै है, पूर्वापर कछु विचारै नाहीं। ऐसा जानै नाहीं, यहु अन्य जीवन की अवस्था पूर्व सर्व में अनंत बेर भोगी है अर धर्म बिना बहुता भोगेगा। यह पर्याय छूटै, पाछै धर्म बिना नीच पर्याय ही पावनी होयगी, तातै गाफिल न रहना। गाफिल पुरुष ही दगा खाय है, दुख पावै है और वैरी वसि परै है। इत्यादि विशेष विचार करि सम्यक्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्-चारित्र यह रत्नत्रय धर्म परम निधान, सर्वोत्कृष्ट, उपादेय जानि महादुर्लभ याकी प्राप्ति जानि, जिहि-तिहि प्रकार रत्न-त्रय का सेवन करना। ऐसै दुर्लभ भावना का स्वरूप जानना, वाको महादुर्लभ दिखाय या विषै रूचि कराई। इति वारा अनुप्रेक्षा कौ कथन सम्पूर्ण।

बारह तप

आगै वारा प्रकार के तप का स्वरूप कहिये है। **अनसन तप** कहिये– इनका अर्थ च्यारि प्रकार आहार अशन-पान-खाद्य–स्वाद्य। असन नाम पेट भरि खाने का है। पान नाम जल-दुग्धादि पीवने का है। खाद्य नाम बीडो का अर स्वाद्य नाम मुख-शुद्धि का है। ये च्यार्यौ जिभ्याइंद्री का ही विषय जानना, और इंद्री का नाही, और इंद्री का विषय और हैं। बहुरि अवमोदर्य कहिये क्षुधा–निवृत्ति विषै एक ग्रास घाटि, दोय ग्रास घाटि, आदि घटता-घटता एक ग्रास पर्यंत भोजन की पूर्णता विषै ऊना भोजन करै, ताको **ऊनोदर** कहिये। बहुरि आजि ई विधि सौ भोजन मिलै, तौ ल्या नाहीं मिलै, तो म्हाकै अहार-पानी का त्याग है; ऐसी

अटपटी **प्रतिग्या करै, ताकी व्रतपरिसंख्या** कहिये। बहुरि एक रस, दोय रस, आदि छहो रस पर्यंत त्याग करै, या विषै मन की लोलुपता मिटै, ताको **रसपरित्यागतप** कहिये। बहुरि शीत काल विषै नदी, तलाब, चौहट, आदि शीत विशेष पडने का स्थानक विषै तिष्ठै। ग्रीष्मकाल विषै पर्वत के शिखर, रेत के थल, वा चौहट मारग ता विषै तिष्ठै। वर्षाकाल विषै वृक्ष तलै तिष्ठै। इत्यादि तीनो रितु के उपाय करि **परीसह सहै**; इनके सहने मे दिढ रहै। बहुरि जिहि-तिहि प्रकार करि शरीर कृश करिये, शरीर कसने तै मन भी कस्या जाय है, सो इनिकौ **कायक्लेश** कहिये। इन बाह्य तप बीच अभ्यतर के तप का फल विशेष कह्या है, ऐसा अर्थ जानना। तातै छह प्रकार अभ्यतर के तप का स्वरूप कहिये है। तिन विषै आपने शुद्ध आखडी वा सजमादि विषै भौले वा जानि करि अल्प-बहुत दोष लाग्या होय, ताको ज्यो का त्यो गुरानै कहै; अश मात्र भी दोष छिपावै नाही। पीछै गुरु दड दे, ताकौ अगीकार करि, फेरि सू आखडी, व्रत, सजमादि का छेद हुवे का स्थापन करे, ताकौ **प्रायश्चित्ततप** कहिये। बहुरि श्री अरहतदेव आदि पच परम गुरु, जिनवाणी, जिनधर्म, जिनमदिर, जिनदेव, तिनि का परम उत्कृष्ट विनय करै वा मुनि, अर्जिका, श्रावक, श्राविका, चतुर्प्रकार सघ, ताका विनय करै वा दश प्रकार का सघ, ताका विनय करै वा आप सुगुण करि अधिक अव्रत सम्यक्दृष्टि, आदि धर्मात्मा पुरुष होय, ताका विनय करिये, ताको **विनयतप** कहिये। अथवा मुनि, अर्जिका, आदि धर्मात्मा सम्यक्दृष्टि पुरुषा की वैयावृत्य करि पग चापि, आदि चाकरी करिये व आहार दीजिये वा जाका

उनके खेद होय, जाको जिहि-तिहि प्रकार निवृत्ति करिये, रोग होय तो औषध दीजिये। इत्यादि विशेष चाकरी करिये, ताको **वैयावृत्यतप** कहिये। बहुरि वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय, धर्मोपदेश ये पाँच प्रकार स्वाध्याय के भेद हैं। सो वाचना कहिये, शास्त्र कौ वाचे ही जाना। पृच्छना कहिये, प्रश्न करना, पूछना। अनुप्रेक्षा कहिये, बार-बार चितवन करना। आम्नाय कहिये जी काल योग्य जो स्वाध्याय होय वा जो शास्त्र, पाठ पढने योग्य होय, तिनका तिहि काल अध्ययन करै। अर धर्मोपदेश कहिये, धर्म का उपदेश देना। ऐसे पच प्रकार स्वाध्याय कौ करना, ताकौ **स्वाध्यायतप** कहिये। बहुरि जावजीव वा प्रमाण सहित शरीर का त्याग करना, त्याग कहिये शरीर का ममत्व छोडना, बाहुबली मुनि की न ईं शरीर का कोई प्रकार सस्कार नाही करणा। अंग–उपांग की चलाचल अपनी इच्छा न करने के कारण ताकौ **व्युत्सर्ग वा उत्सर्गतप** कहिये। बहुरि "एकाग्रचिंता निरोधो ध्यान" याका अर्थ यहु आर्त, रौद्र ध्यान का छोडना, धर्म ध्यान वा शुक्ल ध्यान करना, ताको **ध्यानतप** कहिये–ऐसा बारा प्रकार तप का स्वरूप जानना।

आगै बारा प्रकार के तप का फल कहिये हैं। सो त्या विषै अनसनादि च्यारि तप करि यह जीव स्वर्ग स्थान विषै कल्पवासी देवोपुनीत पद पावै है। थोडी-सी भोग-सामग्री मनुष्य पर्याय विषै छोडिसी, ताका फल अनत गुणा पावसी, सो असख्यात काल पर्यंत निर्विघ्न पणै रहसी। अर महा सुदर शरीर, अमृत के भोग करि तृप्त असख्यात काल पर्यंत निरोग

एक-सा गुलाब के फूल सादृश्य महा मनोज्ञ, यहां बातां करि आयु पर्यंत निर्भय रहसी। ताकी महिमा वचन-अगोचर है, सो कहां लौं कहिये ? आगै स्वर्गन के सुख का विशेष वर्णन करेंगे, तहां तैं जानि लेना। बहुरि विवक्त शय्यासन काय-क्लेश तप करि अत्यत अतिशयवत, महा देदीप्यमान, तेज, प्रताप सयुक्त, इद्र, चक्रवर्ती, कामदेव, आदि महत पुरुष का शरीर पावै है। यह तौ बाह्य षट् प्रकार तप का फल कह्या। या सौ अनत गुणा फल अभ्यतर के षट् प्रकार तप तिन विषैं प्रायाश्चित्त का फल है। बाह्य के तप करि तौ शरीर दम्या जाय है अर शरीर दमिवा करि किंचित् मन दम्या जाय है। ताही तैं ये भी तप नाम पावै है। मन नाहीं दम्या जाय, तौ शरीर दम्या तप नाम पावै नाहीं। धर्मात्मा पुरुष एक मन की शुद्धता ही के अर्थि बहिरंग तप करै है। अर आन मती शरीर तौ घनो ही कसै है, परतु मन अश मात्र भी दम्या जाय नाही, तातैं वाको अश मात्र भी तप कह्या नाहीं। अर अभ्यतर के तप करि मन दम्या जाय, तातैं मन का दमिवा करि कषाय रूपी पर्वत गलै है। ज्यौं-ज्यौं कषाया की मदता सो ही परिणामा की विशुद्धता, ताही का नाम धर्म है, वही मोक्ष का मारग है। वही कर्म का वालिवा नै ध्यानाग्नि छै। सपूर्ण सर्व शास्त्र का रहस्य करि मोह कर्म के मद पाडने वास्ते, नास करने कौ है। अर जेता तप, सजम, ध्यानाध्ययन, वैराग्य, आदि अनेक कारण बताये है, सो ये कारण सर्व सराग भावां सौ छुडावने अर्थि है। अर कर्मन सौं खुले है, सो एक वीतराग भावां सौ खुले है। तातैं सर्व प्रकार तीन काल, तीन लोक विषैं वीतराग भाव ही है सो ही मोक्ष-मारग है। "सम्यक्दर्शनज्ञान-चारित्राणि मोक्ष-

मार्गः" ऐसा कह्या है सो वीतराग भाव नै कारण है। तातै कारण विषै कार्य का उपचार कह्या है। कारण बिना कार्य की सिद्धि होय नाही, तातै कारण प्रधान है। सो प्रत्यक्ष यह बात अनुभवन मे आवै है अर आगम विषै ठौर-ठौर सर्व सिद्धान्त विषै एक वीतराग भाव ही सार, उपादेय कह्या है। अर कर्म-वर्गणा सौ तीन लोक घो का घडावत् भर्या है। सो कर्म-वर्गणा सौं ही बंध होय, तौ सिद्ध महाराज कै होय, अर हिंसा सौं ही बंध होय तौ मुनि महाराज कै होय, अर विषय-भोग परिग्रह के समूह सौ ही बंध होय, तौ अव्रत सम्यक्दृष्टि, चक्रवर्ती, तीर्थंकर आदि ताकै होय। भरत चक्रवर्ती क्षायिक सम्यक्दृष्टि था। तातै सम्यक्त्व के माहात्म्य करि षट् खड की विभूति, छियानवे हजार स्त्री भोगने करि भी निर्बंध, निराश्रव ही रह्या। ताही तै दीक्षा धारे पीछै अतर्मुहूर्त काल विषै वाने केवलग्यान उपार्ज्या। सो सम्यक्त्व का माहात्म्य अद्भुत है। कोई यहा प्रश्न करै-जो मुनि महाराज वा अव्रती सम्यक्दृष्टि के बध नाही, तौ चौथा गुणस्थान पर्यंत अनुक्रम तै घटता-घटता बध कैसे कह्या है? ताका उत्तर-यह कथन है सो तारतम्य की अपेक्षा है। सो बंध नै मूलभूत कारण एक दर्शनमोह है। जैसा दर्शनमोह तै बंध है, ताके अनंतवे भाग चरित्रमोह तै बंध होय है। तातै अव्रत सम्यक्दृष्टि तै लगाय दसवां गुण-स्थान पर्यंत अल्पबंध है, तातै न गिन्या। निश्चय विचारता दसवा गुणस्थान पर्यंत रागादिक स्वयमेव पाइये है। यह भी शास्त्र विषै कह्या है, सो यह न्याय ही है। जा-जा स्थानक जेता-जेता राग भाव है, तेता-तेता मोह बध होय है-यह बात सिद्ध भई। एक असाधारण कारण अष्ट

कर्म बंधने कौ मोहकर्म है, तासो एक मोह ही का नाश करणा। सो प्रायश्चित्त विषै धर्म बुद्धि विशेष होय है। अर जाके धर्मबुद्धि विशेष होय वा ससार के दुःख का भय होय, सो ही गुरान सैं प्रायचिश्त्त दंड लेय। याके मन की बात कौ न जानै था जो याकी आखडी भग हुई है। परतु यह धर्मात्मा परलोक का भय थकी प्रायश्चित्त तप अगीकार करै है, यातै अनंत गुणा का फल विनय तप का है। या विषै मान विशेष गलै है अर पाचो इद्री वसि होय है वा चित्त की एकाग्रता होय है, सो ही ध्यान है। ग्यान मोक्ष समय विशेष होय है। सम्यक्दर्शन-ग्यान-चारित्र निर्मल होय है। अर पुन्य के सचय अत्यन अतिशय होय है। जेता धर्म का अंग है, तेता ग्यानाभ्यास ते जान्या जाय है। तातै सर्व धर्म का मूल एक शास्त्राभ्यास है, याका फल केवल-ज्ञान है। बहुरि स्वाध्याय तै अधिक व्युत्सर्ग, अर ध्यान ताका भी अनत गुणा विशेष फल है। याका फल मुख्यपणै एक मोक्ष ही है। बहुरि बाह्य तप कहै है, सो भी कषाय घटावने अर्थि कहै है। कषाय सहित बाह्य तप करै, तौ वह तप संसार का ही बीज है, मोक्ष का बीज नाही। ऐसा बारा प्रकार तप ताका फल जानना। आगै तप का फल विशेष कहिये है। सो देखो, अन्य मत वारे वा तिर्यंच मद कषाय के माहात्म्य करि सोला स्वर्ग पर्यंत जाय है, तौ जिनधर्मीक श्रद्धानी कर्म काटि मोक्ष क्यो न जाय? तातै तप करि कर्मां की निर्जरा विशेष होय है, सो ही दशसूत्र (तत्त्वार्थसूत्र) विषै कह्या है— "तपसा निर्जरा च।" तहां ऐसी निर्जरा तातै अवश्य अभ्यतर बारा प्रकार के तप अगीकार करना। तप विना कर्म कदाचि कटै नाही, ऐसा तात्पर्य जानना। एव सपूर्णम्।

बारह प्रकार का संयम

सो संयम दोय प्रकार है–एक इन्द्रिय-संयम, एक प्राण-संयम। सो इन्द्रिय-सयम छह प्रकार है अर प्राणी-संयम भी छह प्रकार है। पांच इन्द्री छठा मन का निरोध करै, षट्-काय की हिंसा त्यागै, ताकौ इन्द्रियसंयम वा प्राणसंयम कहिये। **सो संयम निःकषाय नै कारण है; निःकषाय है सो ही मोक्ष का मार्ग हैं। संयम विना निःकषाय कदाचित होय नाहीं।** निःकषाय विना बंध, उदै, सत्ता का अभाव होय नाही, तातै सयम ग्रहण करना योग्य है।

जिनबिम्ब-दर्शन

आगै जिनबिब कौ दर्शन कौन प्रकार करिये, कहा भेंट धरिये, कैसे स्तुति, विनय करिये, ताका स्वरूप विशेष करि कहिये है।

दोहा—मैं बदौं जिनबिब कौ, करि अति निर्मल भाव।
कर्म-बध नै छेदने, और न कोई उपाव॥

या भाति सामायिक किये, पाछै लघु-दीरघ बाधा मेटि, जल सौ शुचिकरि पवित्र वस्त्र पहरि और मनोग्य, पवित्र एक-दोय आदि अष्ट द्रव्य पर्यंत रकेबी विषै मेलि, आप उवाहणा[1] पगां चाम, ऊन का स्पर्श विना महा हर्ष सयुक्त मदिर आवै। अर जिनमदिर मैं धसता तीन शब्द ऐसी उचारै–जय निस्सहि, जय निस्सहि, जय निस्सहि, ताका

---

१ नगे

अर्थ यहु जो देवादिक कोई गूढ तिष्ठै होय, तौ तें दूरि हूज्यौ, दूरि हूज्यौ, दूरि हूज्यौ । बहुरि पीछै तीन शब्द ऐसे कहै- जय, जय, जय । पीछै श्रीजी कौ सन्मुख पेखि अर रकेबी कू हाथ सू मेल्हि, दोऊ हस्त जोडि, नारेल उपरे[1] पोले हाथ राखि, तीन आवर्त करि, एक शिरोनति कीजे । पीछै अष्टाग नमस्कार, ताका अर्थ तीन-मन, वचन, काय शुद्ध होय, मस्तक, दोय हाथ, दोय पग याकू अष्टाग नमस्कार कहिये । नमस्कार कीजै अर तीन प्रदक्षिणा पहली दीजै । भावार्थ आठ अग कू ही नवाइये । आठ अग कौन, ताके नाम-मस्तक हाथ, पग, मन-वचन-काय, ऐसे आठ अग ताके उत्तर-अधर अवयव मुख, आखि, नाक, कान, आगुल्या आदि उपाग जानने । भगवान सर्वोत्कृष्ट है ताकौ अष्टॉग नमस्कार करिये। बहुरि जिनवानी, निर्ग्रंथ गुरु, तिनकौ पचाग नमस्कार करिये । दोन्यौ गोडा धरती सू लगाय, दोन्यौ हस्त जोडि, मस्तक के लगाय, हस्त सहित मस्तक भूमि सू लगाय, यामें छाती, पीठ, नितब छिपाय[2] बिना पच ही अग नये[3], तातें पञ्चाग कहिये । बहुरि पीछै खडा होय, तीन प्रदक्षिणा दीजिये । एक-एक प्रदक्षिणा प्रति एक-एक दिशि की तरफ तीन आवर्त सहित एक शिरोनति कीजिये । पीछै खडा होय स्तुत्यादि पाठ पढिये । पीछै अष्टाग दडोत[4] करि, पीछै-पीछै पगा होय आपनै घर कौ उठि आजे । अर निर्ग्रंथ गुरु विराजे होय, तौ वाकौ 'नमोस्तु' कीजै, वाका मुख थकी शास्त्र-श्रवण किये विना न आइये ।

भावार्थ—जिनदर्शन का करिवा विषै आठ तौ अष्टाग

१मस्तक ऊपर २ बिना ३ झुके ४ दण्डवत प्रणाम,

नमस्कार, बारा शिरोनति, छत्तीस आवर्त करिये । अबै स्तुति करने का विधान कहिये हैं । जैसे राजादिक बड़े महंत पुरुषनि करि कोई दीन पुरुष अपने दुःख को निवृत्ति अर्थि जाय, सन्मुख खड़ा होय, मुख आगे भेट धरि, ऐसे वचनालाप करे । पहली तौ राजा की बढाई करै, पीछे आपका दुःख की निवृत्ति की वाछता सता ऐसे कहै—यह मेरा दुःख निर्वत्त करौ । जीछै वे मेहरबान होय, याका दुःख निवृत्त करै, त्यौ यह ससारी परम दुखित आतमा दीन, मोह कर्म करि पीड्या हुआ श्रीजी के निकट जाय, खडा होय, भेट आगै धरि, पहली तौ श्रीजी की महिमा-वर्णन करै, गणानुवाद श्रीजी का गावै । पीछै आपकू अनादि काल का मोह कर्म घोरान घोर नरक-निगोदादिक दुःख दिये, ताका निर्णय करै । पीछै वाके निवृत्ति करने अर्थि ये प्रार्थना करै-सो हे भगवन् ! ये अष्ट कर्म मेरी लार लागे है । मोको महा तीव्र वेदना उपजावै है । मेरा स्वभाव कौ घाति मेल्या है । ताके दुःख की बात मैं कोलू[१] कहौ ? सो अब इनि दुष्टनि का निपात[२] करिये अर मोको निरभै स्थान मोक्ष ताको दीजिये, सो मै चिरकाल पर्यंत सुखी होहु । पीछै भगवान का प्रताप करि, यह जीव सहज ही सुखी होय है अर मोह कर्म सहज ही गलै है । अब याका विशेष वर्णन करिये है ।

जय जय, त्व च जय, जय भगवान, जय प्रभु, जयनाथ, जय करूणानिधि, जय त्रिलोक्यनाथ, जय ससारसमुद्रतारक, जय भोगन सू परान्मुख, जय वीतराग, जय देवाधिदेव, जय

---

१ कहा तक, २ मार गिराइये

सांचा देव, जय सत्यवादी, जय अनुपम, जय बाधारहित, जय सर्व तत्वप्रकाशक जय केवलज्ञान–चरित्र, जय त्रिलोक शांति-मूर्ति, जय अविनाशी, जय निरजन, जय निराकार, जय निर्लोभ, जय अतुल महिमा भंडार, जय अनत दर्शन, जय अनन्त ग्यान, जय अनंत सुख करि मडित, जय अनत वीर्य धारक, ससार-शिरोमणि, गणधरा देवां करि वा सौ इंद्रां करि पूज्य, तुम जयवते प्रवर्तो, तुम्हारी जय होय, तुम बडा वृद्ध होहु। जय परमेश्वर, जय सिद्ध, जय आनदपुज, जय आनद मूर्ति जय कल्याणपुज जय ससार–समुद्र के पार–गामी, जय भव-जलधि-जिहाज, जय मुक्ति-कामिनी-कत, जय केवलज्ञान–केवलदर्शन–लोचन, परम सुख परमात्मा, जय अविनाशी, जय टकोत्कोर्ण, जय विश्वरुप, जय विश्व-त्यागी, विश्वज्ञायक, जय ज्ञान करि लोकालोक प्रमाण वा तीन कालप्रमाण, अनत गुण–भंडार, अनत गुण-खानि, जय चौसठ रिद्धि के ईश्वर, जय सुख-सरोवर-रमण, जय सपूर्ण सुख करि तृप्त, सर्व रोग-दुष्ट करि रहित, जय अज्ञान-तिमिर के विध्वसक, जय मिथ्या वज्र के फोडने कू-चकचूर करणे कू परम वज्र, जय तुगसीस, जय त्वं ज्ञानानद बर-सानै, अमोघानाप का दूरि करिवानै वा भव्यजीवां रूप खेती पोषन वा भव्यजीवां के खेती ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य अगोपांग तीन लोक के अग्र भाग तिष्ठै है, परतु तीन लोक नै एक परमाणु मात्र खेद नाही उपजावै है। भगवान के उपगार नै नाही भूलें हैं, ताते दया बुद्धि करि अल्प तिष्ठै है। तब मैं भगवान के अनतवीर्य ज्याका भार मस्तग ऊपर कैसे धारूंगा? याका भार मेरे बूते कैसे सह्या जायगा? भगवान अनंतबली, मैं असख्यात बली, ऊपरि अनतबली का भार

कैसे ठहरे ? तातैं अगाऊ जाय भगवान की सेवा करिये। तौ भगवान परमदयाल हैं सो मोने खेद नाहीं उपजावै हैं सो अबै प्रत्यक्ष देखिये। भगवान वृद्धि होने कौ मेघ सादृश्य हैं। अहो भगवानजो! आकाश विषै ये सूर्य तिष्ठै हैं, सो कहा है, मानूं तिहारी ध्यान रूपी अग्नि की कणिका ही है अथवा तिहारे नख की ललाई का आकाश रूपी आरसा[1] विषै एक प्रतिबिंब ही है। अहो भगवानजी! तुम्हारे मस्तग ऊपरि तीन छत्र सोहै है, सो मानू छत्र का मिस करि तीन लोक ही सेवने कौ आया है। अर हे भगवानजी! तुम्हारे ऊपरि चौसठ चमर ढुरै है, सो मानू चमरन के मिस करि इंद्र के समूह ही नमस्कार करै है। अर हे भगवानजी! ये तिहारे सिंघासन कैसे सोभै है ? मानू ये सिंघासन नाहीं, ये तीन लोक का समुदाय एकठोर[2] होय, तिहारे चरण-कमल सेवने कू आया है। सो कैसा सत सेवै है ? ये भगवान अनत चतुष्टय कौ प्राप्त भये है, मो सिद्ध अवस्था विषै मेरे मस्तग ऊपरि या कधा ऊपरि तिष्ठैंगे। अहो भगवानजो! ये तेरे ऊपरि अशोक वृक्ष तिष्ठै है, सो त्रिलोक का जीवां नै शोक रहित करै है। बहुरि हे भगतानजी! आपके शरीर की कांति जैसा सरोर होय, तैसा ही भामडल की ज्योति दशो दिशा विषै उद्योत[3] किया है। ता विषै भव्य जीवां सप्त भव आरसा वत प्रतिभासै है। बहुरि हे भगवनजी! आपके आभ्यतर के आत्मीक गुण तौ अनतानत है, ताको महिमा तौ कौन पै कही जाय है ? परतु आत्मा के अतिशय करि शरीर भी ऐसा अतिसय रूप प्रणम्या[4] है, ताका दर्शन करि घातिया कर्म शिथिल होय, पाप-प्रकृति प्रलय नै प्राप्त होय,

---

१ दर्पण २ एकत्र ३ प्रकाश ४ परिणमित हुआ

सम्यक्दर्शन मोक्ष का बीज उत्पन्न होय, इत्यादि सर्व अभ्यं-
तर-बाह्य बिघ्न बिलै जाय। सो हे भगवान ! ऐसे शरीर
की महिमा सहस्र जीभ करि इंद्रादिक देव क्यौ नाहीं करै?
अर हजार नेत्र करि तिहारे रुप का अवलोकन क्यों नाहीं
करै? अर इंद्रां का समूह अनेक शरीर बनाय भक्तिवान
आनद रस करि भीज्या क्यौ नाही नृत्य करे? बहुरि
कैसा है तिहारा शरीर? ता विषै एक हजार आठ लक्षण
पाइये है। तिनका प्रतिबिब आकाश रुपी आरसा विषैं
मानू आय परया है, सो तिहारे गुणां का प्रतिबिब तारेनि
के समूह प्रतिभासे है। बहुरि हे जिनेंद्रदेव ! तिहारे चरण-
कमल की ललाई कैसी है? मानू केवलज्ञानादि वस कै
उदै करवानै सूर्य ही तहा ऊग्यौ है वा भव्य जीवां के
कर्मकाष्ठ वालिवा नै तुम्हारे ध्यान अग्नि के तिणगा[1] हाय,
आनि प्राप्त नाही भया है वा कल्याण वृक्ष ताके कूपल ही
है अथवा चिंतामणि रत्न, कल्पवृक्ष, चित्रावेलि, कामधेनु,
रसकूप का पारिस[2] वा इन्द्र, धरणेद्र, नरेंद्र नारायण, बल-
भद्र, तीर्थंकर, चतुर प्रकार के देव, राजाओ का समूह अर
समस्त उत्कृष्ट पदार्थ अर मोक्ष देने का एक भाजन परम
उत्कृष्ट निधि ही है।

भावार्थ-सर्वोत्कृष्ट वस्तु की प्राप्ति तुम्हारे चरणा कौ
आराध्य मिलै है। तातै तेरे चरण ही सर्वोत्कृष्ट निधि है।
बहुरि भगवानजी ! तिहारा हृदय विस्तीर्ण[3] है, मानू गुलाब
का फूल ही विकसायमान है। अर-तिहारे नेत्रनि विषैं ऐसा
आनंद वसै है, ताके एक अंश मात्र आनद का निरमापवा
करि च्यारि जाति के देवता का शरीर उत्पन्न भया है।

---

१ चिणगारी २ पारस ३ विशाल, फैला हुआ

इत्यादि तिहारे शरीर की महिमा कहनै समर्थ त्रिलोक में कौन है ? परतु लाडले पुत्र होय, सो माता-पिता नै चाहै ज्यो बोले। पीछे माता-पिता वाको बालक जानि वासो प्रीति ही करै अर मन-मानती[1] मिष्ट वस्तु खाने को मगाय देय। तासो हे भगवान! तुम मरे उदित माता-पिता हौ। हम तिहारा लघु पुत्र है। सो लघु बालक जानि मो परि क्षमा करिये। अर हे भगवानजी! हे प्रभुजी! तुम समान और वल्लभ[2] मेरे नाही। अर हे भगवानजो! मोक्ष-लक्ष्मी का कत[3] थेई[4] छौ अर जगत का उद्धारक थेई छौ। अर भव्य जीवां के उद्धार करने कौ थेई छौ! तुम्हारे चरणार-विंदां कौ सेय-सेय, अनेक जीव तिरै, अबै तिरै है, आगै तिरेगे। हे भगवान! दु:ख दूर करिवे नै थेई समर्थ छौ। अर हे भगवान! हे प्रभु जिनेंद्रदेव! तिहारी महिमा अगम्य है। अर भगवानजो! समोसरण लक्ष्मी सौ विरक्त थेई छौ, कामबाण कै विध्वसक थेई छौ, मोहमल्ल के पछाडवा नै तुम ही अद्वितीय मल्ल हो। अर जरादि-काल त्रिलोक का जोवा कौ निगलतो, निपात करतो चल्यो आवै है। ताको निपातने कोई समर्थ नाही। समस्त लोक के जीव काल की दाढ विषै वसै है। तिनको निर्भय हुवो काल दाढ करि चिगदति चिगले है। आज भी तृप्त नाही होय है। ताकी दुष्टता अर प्रबलता नै कौन समर्थ है ? ताकौ तुम छिण[5] मात्र मे ही क्रीडा मात्र जीत्या। सो हे भगवानजी ! तुम कू हमारा नमस्कार होहु। बहुरि हे भगवानजी! तिहारे चरण-कमला के सन्मुख आवता मेरा पग पवित्र हुवा। अर तिहारो रूप अवलोकन करता नेत्र पवित्र हुआ अर तिहारे

---

१ मन मापिक २ स्वामी ३ पति ४ तुम्ही ५ क्षण

गुणनि की महिमा वा स्तुति करता जिह्वा पवित्र हुई अर तुम्हारे गुण-पंकति को सुमरता मन पवित्र हुवा अर तुम्हारे गुणानुवाद कौ सुनता श्रवण पवित्र हुवा अर तुम्हारे गुण की अनुमोदना करता विशेष करि मन पवित्र हुवा, तुम्हारे चरणा कौ अष्टाग नमस्कार करता सर्वांग पवित्र हुवा। हे जिनेंद्रदेव! धन्य आज का दिन! धन्य आजकी घडी! धन्य यह मास! धन्य यह सवत्सर! सो या काल विषै आपके दर्शन करने कौ सन्मुख भया। अर हे भगवानजी! मेरे आप कौ दर्शन करता ऐसो आनद हुवो, मानू नव निधि पाई वा चिंतामणि रत्न पाये वा कामधेनु, चित्रावेलि घर माही आई। मानू कल्पतरु मेरे आरणे[1] ऊग्यो[2] वा पारस की प्राप्ति भई वा जिनराज निरतराय मेरे कर सौ आहार लियौ वा तीन लोक का राज ही मै पायौ अथवा केवलज्ञान की आज ही मेरे प्राप्ति भई, सम्यक्‌रतन तौ मेरे सहज ही उत्पन्न भयौ, सो ऐसै सुख की महिमा हू क्यो न कहू? अर हे भगवानजी! तुम्हारे गुण की महिमा करता जिह्वा तृप्त नाही होय है अर तुम्हारे रूप का अवलोकन करि नेत्र तृप्त नाही होय है। हे भगवानजी! अबार मेरे कैसा उत्कृष्ट पुण्य उदै आया है अर कैसे काल-लब्धि आय प्राप्त हुई? ताके निमित्त करि सर्वोत्कृष्ट त्रैलोक्य पूज्य मै देव पाया, सो धन्य मेरा यह मानुष भव, सो आपके दर्शन करता सुफल भया। पूर्वे अनत पर्याय तिहारे दर्शन विना निरफल[3] गये। अहो भगवानजी! तुम पूर्वे तीन लोक की सपदा बोदे[4] तृणवत् छाडि, ससार-देह-भोग सू विरक्त होय, ससार असार जाणि, मोक्ष उपादेय जाणि, स्वयमेव आर्हती दीक्षा धरी।

---

१ आगन मे २ उदित हुआ ३ निष्फल, व्यर्थ ४ जीर्ण, सूखे-पुराने

ततकाल ही मन पर्यय ज्ञान-सूर्य उदै हुवा, पाछै शीघ्र ही केवलज्ञान सूर्य निरावरण उदै भया—लोकालोक का अनंत पदार्थ द्रव्य-गुण-पर्याय सायुक्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव नैं लिया तीन काल मध्य चराचर पदार्थ एक समै विषै, तिहारे ज्ञान रूपी आरसा विषै स्वयमेव ही बिना ऐचो[1] आणि[2] झलक्या, ताकी महिमा कहिवाने समर्थ सहस्र जिह्वा, सौ इंद्र भी वचन की रिद्धि के धारी गणधरादि महा जोगीश्वर भी नाही वरणि[3] सक्या। बहुरि भव्य जीवां का पुण्य का उदै तुम्हारी दिव्य-ध्वनि ऐसे उछरो[4], सो एक अंतर्मुहूर्त विषै ऐसा तत्त्व उपदेश करै, ताकी रचना शास्त्र विषै लिखिये, तौ उन शास्त्र सौ अनंत लोक पूर्ण होय। सो हे भगवान! तिहारे गुण की महिमा कैसै करिये? बहुरि हे भगवान! तिहारी वाणी का अतिशय ऐसो, सो वाणी खिरतो तौ अनक्षररूप अर अनभै भाषा खिरे पाछै भव्य जीवां के कान के निकट ऐसी पुद्गल की वर्गणा शब्द रूप परिणवै। असंख्याते चतुर प्रकार के देव-देवांगना ये संख्यात वर्ष पर्यंत प्रश्न विचारे थे अर सख्याते मनुष्य वा तिर्यंच घना काल पर्यंत विचारे थे। तिनको आपनो-आपनी भाषा मय प्रश्न के उत्तर हुवा। अर जिन उपरांत अनेक वाक्यां का उपदेश होता भया, तिस उपरांत अनतानंत तत्त्व के निरूपण अहला गया। ज्यो मेघ तौ अपरपार एक जाति के जल रूप वर्षा करै, पीछै आडू वा नारेल जाति के वृक्ष अपनी सामर्थ्य माफिक जल का ग्रहण करै, आपने-आपने स्वभाव रूप परिणमावे। बहुरि दरिया द तलाब, कूवा वावडी आदि निवान[5] आपने भाजन माफिक जल का धारण

---

१ खीच के २ आकर ३ वर्णन ४ उछली, प्रकट हुई ५ जलाशय

करै अर विशेष मेघ का जल अहला[1] जाय, त्यौ ही जिन-वानी का उपदेश जानना। बहुरि ता विषै भगवानजो! तुम ऐसे उपदेश देते भये जे षट् द्रव्य अनादि–निधन है। ता विषै पाच द्रव्य अचेतन, जड हैं। जीव नाम पदार्थ चेतन द्रव्य है। ता विषै पुद्गल मूर्तिक है, अवशेष पाच अमूर्तिक है। या ही छहौ द्रव्य के समुदाय कौ लोक कहिये। जहां एक आकाश द्रव्य ही पाइये, पाच द्रव्य न पाइये, ताकू आलोकाकाश कहिये। लोक-अलोक का समुदाय आकाश एक अनतप्रदेशी, तीन लोकप्रमाण, असख्यात प्रदेशी, एक-एक धर्म-अधर्म द्रव्य है। अर काल का कालाणु असख्यात, एक-एक प्रदेश मात्र है। जीव द्रव्य एक, तोन लोक के प्रमाण असख्यात प्रदेश के समूह अर ते जिन सौ अनत गुणे एक प्रदेश आकाश कौ धरै। पुद्गल द्रव्य अनते है। सो च्यारि द्रव्य तौ अनादि के थिर, ध्रुव तिष्ठै है। जोव, पुद्गल द्रव्य गमनागमन भो करै हैं। सो यह तोन लोक आकाश द्रव्य कै बोच तिष्ठै है। याके कर्ता और कोऊ नाही। ये छहू द्रव्य अनत काल पर्यंत स्वय सिद्ध बने रहे है। अर जोवनि के रागादिक भावनि करि पुद्गल पिंड रूप प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग, च्यारि प्रकार के बध, तासू जीव बधे है, वाके उदै मे जीव की दशा एक विभाव भाव रूप होय है। निज स्वभाव ज्ञानानंद मय धार्‌या जाय है। जोव अनत सुख का पुज है। कर्म के उदै करि महा आकुलता रूप परिणमे है। ताके दुःख की वार्ता कहने समरथ नाही। पाप को निर्वृत्ति के अर्थि सम्यक्‌दर्शन–ज्ञान–चारित्र है। ताके उपदेश हे भगवान! तुम कहनहारे हो।

---

[1] विफल

तुम ही संसार-समुद्र विषै डूबते प्राणी को हस्तावलंब हौ। तुम्हारा उपदेश न होता, तौ ये सर्व प्राणी ससार विषै डूबे ही रहते, तौ बडा गजब होता। परतु तुम धन्य तिहारा उपदेश धन्य ! तिहारा जिनशासन धन्य ! तिहारा बताया मोक्षमारग धन्य ! तिहारे अनुसारी मुन्यादिक सत्पुरुष, ताकी महिमा करने समर्थ हम नाही। कहा तो नर्क वा निगोदादिक के दुख वा ज्ञान-वीर्य का न्यूनता अर कहा मोक्ष का सुख अर ज्ञान-वीर्य की अधिकता ? सो हे भगवान ! तिहारे प्रसाद करि यह जीव चतुर्गति के दुख सौ छुडाय मोक्ष के सुखा नै पावै है। ऐसे परम उपगारी तुम ही हौ, तातै हम तिहारे अर्थि नमस्कार करै है। बहुरि हे भगवानजी ! तुम ऐसे तत्त्वोपदेश का व्याख्यान किया—यह अधो लोक है, यह मध्य लोक है, यह ऊर्ध्व लोक है, तीन वातवलय करि वेष्टित है वा तोन लोक का एक महा स्कध है। ता विषै अष्ट पृथ्वी वा स्वर्ग के विमान वा ज्योतिषी के विमान जड रहै है। बहुरि एकेंद्री जीव, एते बेइद्री जीव एते तेइद्री जीव, एते चौइद्री जीव एते पचेंद्री जोव, एते नारकी, एते तिर्यंच, एते मनुष्य, एते देव, एते पर्याप्ति, अपर्याप्ति, एते सूक्ष्म वा बादर, एते निगोद के जीव, एते अतीत काल के समये अनते तासौ अनत वर्गणा स्थान गुणे जीवराशि का प्रमाण है अर तासौ अनत वर्गणा स्थान गुणे आकाश द्रव्य का प्रदेशन का प्रमाण है। तातै अनत वर्गणा स्थान गुणे धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य का अगुरुलघु नामा गुण ताका अविभाग प्रतिच्छेद है। तातै अनत अलब्ध पर्याप्त के सर्व जोवा सू घाटि अनत वर्गणा स्थान गुणे एक होय, अक्षर के अनतवे भाग ज्ञान होय—ऐसा निरास

पाइये है, ताका नाम पर्यायज्ञान है। वासूं कोई कै घाटि ज्ञान त्रिलोक, त्रिकाल विषै होय नाहीं वा ज्ञान निरावरण रहै है। वा ऊपरि ज्ञानावरणो का आवरण आवै नाही, जे आवरण आवे तौ सर्वज्ञान घात्या जाय, सर्व ज्ञान घातिया कर्म करि जड होय जाय, सो होय नाही। सो वह पर्याय-ज्ञान विषै अविभागप्रतिच्छेद पाइये है, तातै अनत वर्गणा स्थान गनै, जघन्य क्षायिक सम्यक्त्व के अविभाग-प्रतिच्छेद पाइये है, सो ऐसा भी उपदेश तुम देते भये। बहुरि एक सुई की अनी की डागला[1] ऊपरि असख्यात लोक प्रमाण स्कध पाइये है। एक-एक स्कध विषै असख्यात लोक प्रमाण अडर पाइये है। एक-एक अडर विषै असख्यात लोक प्रमाण आवास पाइये है। एक-एक आवास मे असंख्यात लोक प्रमाण पुलवी पाइये है। एक-एक पुलवी विषै असख्यात लोक प्रमाण शरीर पाइये है। एक-एक शरीर विषै अनत काल के समयां सू अनतानत वर्गस्थान गुणा जीव नाम पदार्थ पाइये है। एक-एक जीव के अनतानत कर्म-वर्गणा लागी है। एक-एक वर्गणा विषै अनतानत परमाणु पाइये है। एक-एक परमाणु के साथ अनुक्रम रूप विस्रसोपचये सो जीवराशि सौ अनतानत परमाणु पाइये है। एक परमाणु विषै अनतानत गुण वा पर्याय पाइये है। एक-एक गुण वा पर्याय के अनतानत विभागच्छेद है। ऐसी विचित्रता एक सुई की अनी की डागला ऊपरि निगोद राशि के जीवां विषै पाइये है, सो ऐसे जीव, ऐसे परमाणु वा करि वेढता[2] वा वर्गणा करि आच्छादित, जीवां सू तीन लोक घृत का घडा

१ अग्र भाग   २ वेष्टित

वत् अतिशय करि भर्या है। त्यौं एक निगोदिया का शरीर माहिला जीव, ताके अनंतवे भाग भी निरंतर मोक्ष जिन करि तीन काल में घटे नाहीं–ऐसा उपदेश भी तुम देते भये। बहुरि वेई सुई की अनी का डागला ऊपरि आकाश ते पाइये है। ता विषे अनतानत परमाणु वापुली तिष्ठै है, अनता स्कंध दो-दो परमाणु वाका तिष्ठै है, ऐसे है। एक-एक परमाणु, अधिक-अधिक स्कध, तीन परमाणु, वाका स्कध सौं लगाय अनत परमाणु, वाका स्कंध पर्यंत अनत जाति के स्कध, सो भी अनतानत सुई के अग्र भाग बिषैं भी अनत गुणा अनत पर्याय, अनत अविभाग-प्रतिच्छेद, तीन काल सबधी उत्पाद, व्यय, ध्रुव की अवस्था सहित, एक समय विषै हे जिनेंद्रदेव! तुम ही देखे अर तुम ही जाने अर तुम ही कहते भये। अर या परमाणु वाके परस्पर रूखा-सचिकणा द्वयणुकादि वा तीना ही दो-दो अश की अधिकता ये सग करि सयुक्त बध विषम जातिबध, ऐसे परमाणु का परस्पर बधवा नैं कारण रूखा-सचिकणा अंसां का समूह ताकी परस्परता नैं लिया बंधने का कारण वा अकारण का सरूप भी तुम्हारे ही ज्ञान विषै झलकै अर दिव्यध्वनि करि कहते भये। सो हे जिनेंद्रदेव! तेरो ध्यान रूपी आरसो कैसोक बडो है? जाकी महिमा कौलौ कहिये? बहुरि हे भगवान! हे कलानिधि! हे दयामूर्ति! हम कहा करै? प्रथम तौ हमारा स्वरूप हम कौ दीसै नाही अर हम कौ दु.ख देने वाला दीसै नाही अर वाकी हम कहा कहै? अपराध पूर्वे किये, ता करि हमारे ताईं कर्म तीव्र दु.ख देहै अर ये कर्म किसी बात करि उपशांत होय, सो भी हमको दीसै नाही। अर हमारा निज स्वरूप कहा है, कैसा हमारा ज्ञान है, कैसा

हमारा दर्शन है, कैसा हमारा सुख-वीर्य है वा हम कौन हैं, हमारा द्रव्य--गुण--पर्याय कहा है ? पूर्वे हम किस क्षेत्र विषैं किस पर्याय कौ धरे तिष्ठे थे ? अब इस क्षेत्र, इस पर्याय विषै कौन शख्स नै यहा आनि प्राप्त किये अर अब हम कहा कर्तव्य करै है, कौन बात रूप परिणवे है, सो याका फल आछ्या[1] लागैगा कि बुरा लागेगा, फेरि हम कहां जाहिगैं[2], कैसो-कैसी पर्याय धरेंगे, सो हम कछु जानते नाही । तौ हमारे सुखी होने का उपाय ज्ञान बिना कैसे बने ? तौ हमारे एता ज्ञान का क्षयोपशम होतै भी परम सुखी होने का उपाय भासै नाही, तौ एकेंद्री, अज्ञानी, तिर्यंच जीव वा नारकी महा क्लेश करि पीडित्त, जाके आंखि फरकने मात्र निराकु-लता नाही, तौ वाका जीव नै कहा दूसण ? परतु धन्य है आपकी दयालुता ! अर धन्य है आपका सर्वज्ञ ज्ञान ! धन्य है आपका अतिशय ! धन्य है आपकी ठीमर[3] बुद्धि ! धन्य है आपकी प्रवीणता वा विचक्षणता ! सो आप दया बुद्धि करि सर्व तरह वस्तु कौ स्वरूप भिन्न--भिन्न दिखायो-आत्मा कौ निज स्वरूप अनत दर्शन, अनत ज्ञान, अनत सुख, अनत वीर्य कौ धनी आप सादृश्य बनायो अर पर-द्रव्य सौ रागादिक भावा कौ उलझाव बतायो, राग-द्वेष-मोह भावन करि कर्मनि सू जीव बधते बताये, पीछे वाके उदय--काल विषै जीव महादुखी होते दिखाये, वीतराग भावा करि कर्मनि सू निर्बंध, निरास्रव होना दिखाया, वीतराग भावा सू ही पूर्वे सचित दीर्घ काल के कर्म ताकी निर्जरा होनी बताई, निर्जरा के कारण करि निज आतमा यथाजात केवलज्ञान, केवलसुख होना प्रगट दिखाया, ताही का नाम मोक्ष कहौ वा हित

---

१ अच्छा २ जायेंगे ३ परम पवित्र

कहो वा भिन्न कहो। अर नारक विषैं जाय तिष्ठै हैं, सो वा क्षेत्र विषै मोक्ष की सिद्धि होती, तो सर्व सिद्धां की अवगाहना विषै अनंत पांचो थावर, सूक्षम बादर पाइये ते महादुखी क्या नै होते ? तातै निर्भय करि आपना ज्ञानानद स्वभाव घात्या गया छै, वाही का नाम बध था। सो ज्ञानावरणादिक कर्म के अभाव होते स्फुरायमान हुवा, जैसे सूर्य का प्रकाश बादलां करि रुकि रह्या था। बादलां के अभाव होते सते पूर्ण प्रकाश विकसायमान हुवा अर ऊर्ध्व जाय तिष्ठ्या, सो जोव का ऊर्ध्व गमन स्वभाव है, तातै ऊर्ध्व गमन किया। अर आगै धर्म द्रव्य नाही, तातै धर्म द्रव्य के कारण विना आगै नाही गमन किया, वहा ही तिष्ठै, सो अनत काल पर्यंत सासता परम सुख रूप तीन लोक के नेत्र वा तीन काल लोकालोक के देखने रूप ज्ञान-दर्शन नेत्र, अनत बल-अनत सुख के धारक महाराज तीन लोक करि तीन काल पर्यंत पूजि तिष्ठसी। सो हे भगवान! ऐसे उपदेश भी तुम ही देते भये। सो तेरे उपकार की महिमा हम कहा लग कहै ? अर कहा तिहारी भक्ति, पूजा, वदना, स्तुति करै ? तातै हम सर्व प्रकार करने को असमर्थ हैं। अर तुम परम दयाल पुरुष हौ, तातै हम पर क्षमा करो। ये मेरे ताई बडा असभव फिकर है अर हम तिहारी स्तुति, महिमा करते लजायमान होते है, पणि हम कहा करै ? तुम्हारी भक्ति मो ढिग[1] वरजोरी वाचाल करै है अर तिहारे चरणा विषै नम्रीभूत करै है। तातै तिहार चरणा नै बारबार नमस्कार होहु। ये हो चरण जुगल मौनै ससार-समुद्र विषै डूबता नै राखो। बहुरि अग्निकाय के

[1] पास

जीव असंख्यात लोक प्रदेश प्रमाण हैं। तातैं असंख्यात लोक वर्गस्थान गये, निगोद का शरीर प्रमाण है। तातैं असख्यात लोक वर्गस्थान गये, जोगां के अविभागप्रतिच्छेद है, सोभी असंख्यात का ही भेद है। सो हे भगवानजी ! ऐसा उपदेश भी तुम ही देते भये। बहुरि ये असख्यात द्वीप, समुद्र है, ये अढाई द्वीप प्रमाण मनुष्य क्षेत्र हैं, ताके भी निरूपण तुम ही किये। जो ज्योतिषी मडल है, ताके प्रमाण जुदे-जुदे द्वीप-समूह तुम ही कहे। बहुरि पुद्गल परमाणु का प्रमाण, वा द्वयणुक स्कध का प्रमाण, महास्कध पर्यंत तुम ही कहो। इत्यादि अनत द्रव्य के तीन काल सबधी द्रव्य, गुण, पर्याय वा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव सहित और स्थान लिया अनत विचित्रता एक समय विषै लोक की तुम ही देखी। सो तुम्हारा ज्ञान की महिमा अद्भुत, तुम्हारे ही ज्ञानगम्य है। तातैं तुम्हारा ज्ञान को फेरि भी हमारा नमस्कार होहु। हे भगवानजी ! तुम्हारी महिमा अथाह है। तुम्हारे गुण की महिमा देखि-देखि आश्चर्य उपजै है, आनद के समूह उपजै है, ता करि हम अत्यत तृप्त है। बहुरि हे भगवानजी ! दया-अमृत करि भव्य जीवन कौ तुम ही पोषो हो, तुम ही तृप्त करो हो। तुम्हारे उपदेश विना सर्व लोकालोक शून्य भया, ता विषै यह समस्त जीव शून्य होय गये है। सो अब तुम्हारे वचन रूप किरण कर अनादि काल को मोह-तिमिर मेरा विलै गया। अब मौनै तिहारे प्रसाद करि तत्त्व-अतत्त्व का स्वरूप प्रतिभास्या, ज्ञानलोचन मेरे उघरे, ताके सुख की महिमा न कही जाय। तीसू हे भगवानजी ! ससार-सकट काटिवानै विना कारण परमवैद्य अद्वितीय दीसो हो। तातैं तिहारे चरणारविंद सौं बहुत अनुराग वर्तै है। सो हे

भगवान ! भव–भव के विषै, पर्याय-पर्याय के विषैं एक तिहारे चरणन की सेवा ही पाऊं । वे पुरुष धन्य हैं जो तिहारा चरणा नै सेवै हैं, तिहारे गुणा की अनुमोदना करै हैं, अर तुम्हारे रूप कौ देखै हैं, तुम्हारे गुणानुवाद गावै है, तुम्हारा वचननि का नाम सुने हे, वा मन विषै निश्चय करि राखै है, वा तुम्हागी आज्ञा सिर ऊपर राखं हे । तुम्हारे चरणो विना और कौ नाही नमै है, तुम्हारा ध्यान करि अन्य ध्यान नाही करे हे, तुम्हारे चरण पूजे हे, तुम्हारे चरणां अर्घ देय है, तुम्हारी महिमा गावै है । तुम्हारे चरणतला को रज वा गधोदक मस्तग आदि, नाभि ऊपर उत्तम अग, ता विषै लगावे है । तुम्हारे सन्मुख खडे होयहस्त-अजुली जोडि नमस्कार करै है, अर तुम ऊपर चमर ढोलै हैं, अर छत्र चहोडै[1] हैं, ते ही पुरुष धन्य हैं, वाकी महिमा इद्रादिक देव गावै है । वे कृतकृत्य है, वे ही पवित्र है, वे हो मनुष्य भव का लाहा[2] लिया, जन्म सफल किया, भव-समुद्र कौ जला-जलि दिया । बहुरि हे जिनेंद्रदेव ! हे कल्याणपुज ! हे त्रिलोक-तिलक ! अनत महिमा लायक, परम भट्टारक, केवलज्ञान–केवलदर्शन जुगल नेत्र के धारक, सर्वज्ञ, वीत–राग त्व जयवता प्रवर्तो, तुम्हारी महिमा जयवती प्रवर्तो, तुम्हारा राज्य-शासन जयवता प्रवर्तो । धन्य ! यह मेरी पर्याय सोई पर्याय विषै तुम सारिखे अद्वितीय पदार्थ पाये । ताकी अद्भुत महिमा कौन को कहिये ? अर तुम ही माता, तुम ही पिता, तुम ही बाधव, तुम ही मित्र, तुम ही परम उपगारी, तुम ही छह काय के परिहारी, तुम ही भव-समुद्र

---

१ चढ़ावे २ लाभ ३ प्रमाद

विषैं पडते प्राणी को आधार हो। और कोई त्रिकाल में नाहीं, आवागमन सौ रहित करिवा नै तुम ही समर्थ हो। मोह-पर्वत का फोडिवानै तुम ही वज्रायुध हो, घातिया कर्म का चूरिवानै तुम हो अनंत बली हो। हे भगवानजी ! तुम दोऊ हाथ लाबा नाही पसार्‌या है, भव्य जीवा नै संसार-समुद्र माही सौं काढिवा नै हस्तावलंबन दिया है। बहुरि हे परमेश्वर ! हे परम ज्योति ! हे चिद्रूप मूर्ति ! आनंदमय, अनत चतुष्टय करि मडित, अनत गुणा करि पूरित, वीत-राग मूर्ति, आनंद रस करि आह्‌लादित, महा मनोज्ञ, अद्वैत, अकृत्रिम, अनाधि-निधन, त्रिलोक-पूज्य कैसे शोभे है ? ताका अवलोकन करि मन अरु नेत्र नाही तृप्त होय हैं। बहुरि हे केवलज्ञान सूर्य ! षट्‌द्रव्य, सप्त तत्त्व, नव पदार्थ, पंचास्तिकाय, चौदह गुणस्थान, चौदह मार्गणा। बीस प्ररू-पणा, चौबीस ठाणा, बारा व्रत का भेद, ग्यारा प्रतिमा का भेद, दशलक्षण धर्म, षोडश भावना, बारा तप, बारा सयम बारा अनुप्रेक्षा, अठाईस मूल गुण, चौरासी लाख उत्तर गुण, तीन सै छत्तीस मतिज्ञान का भेद, अठारा हजार शील का भेद, साढे सैंतीस हजार परमाद के भेद, अरहत के छियालीस गुण, सिद्ध के आठ गुण, आचार्य के छत्तीस गुण, उपाध्याय के पच्चीस गुण, साधु के अट्‌ठाईस गुण, श्रावक के बारह गुण, सम्यक्‌त्व के आठ अग—आठ-गुण-पच्चीस मल-दोष, मुनि के आहार के छियालीस दोष, बाईस अतराय-दश मल-दोष, नवधा-भक्ति, दाता के सप्त गुण, च्यारि प्रकार आहार, च्यारि प्रकार दान, तीन प्रकार पात्र, एक सौ अडतालीस कर्मप्रकृति, बध, उदै, सत्ता, उदीरणा, आस्रव

सत्तावन, तरेपन क्रिया[1] इनकी षट् त्रिभंगी सौं पाप प्रकृति अडसठ, पुण्य प्रकृति[2] घातिया की ४७;[3] इकबीस सर्व-घातिया[4], छब्बीस देश घातिया,[5] क्षेत्र विपाकी च्यारि[6]

---

१ गुण-वय तव सम-पडिमा, दाण-जलगालण च अणथमिय।
दसण-णाण-चरित, किरिया तेवस्स सावया भणिया॥

अर्थ—८ मूल गुण, १२ व्रत, १२ तप, १ समता भाव, ११ प्रतिमा, ४ दान, १ जल गालन, १ अथऊ (सन्ध्या के सूर्यास्त से दो घडी पहले भोजन करना), १ दर्शन, १ ज्ञान, १ चारित्र ये ५३ क्रियाएँ श्रावक की कही गई हैं।

२ पुण्य रूप प्रशस्त प्रकृतियाँ ६८ हैं—सातावेदनीय, तिर्यचायु, मनुष्यायु, देवायु, उच्च गोत्र, मनुष्यद्विक २, देवद्विक २, पचेन्द्रिय जाति १, शरीर ५, बन्धन ५, सघात ५, अगोपाग ३, शुभ स्पर्श-रस-गध-वर्ण २०, सम चतुरस्र सस्थान, वज्रवृषभनाराच सहनन, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश कीर्ति निर्माण, तीर्थंकर ये भेद की अपेक्षा से प्रशस्त कही गई हैं।

३ घातिया प्रकृति सैतालीस हैं—ज्ञानावरणीय ५, दर्शनावरणीय ९, मोहनीय २८, अन्तराय ५। ये सभी प्रकृतियाँ अप्रशस्त ही हैं।

४ सर्वघातिया प्रकृति २१ हैं—केवलज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय ६ (केवलदर्शनावरणीय, निद्रा ५), कषाय १२ (सज्वलन की ४ छोड कर), मिथ्यात्व ये २० प्रकृतियाँ बन्ध की अपेक्षा से तथा सम्यङ् मिथ्यात्व प्रकृति सत्ता और उदय की अपेक्षा ज्ञातव्य है।

५ देश घाति प्रकृतियाँ २६ हैं—ज्ञानावरणीय की ४ (मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यय), दर्शनावरणीय की ३ (चक्षु, अचक्षु, अवधि दशन), सम्यक्त्व प्रकृति, सज्वलन कषाय ४, नोकषाय ९, अन्तराय प्रकृति ५

६ क्षेत्र विपाकी प्रकृतियाँ चार हैं—नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी।

भव विपाकी च्यारि,[1] जीव विपाकी[2] ७८; पुद्गल विपाकी[3] ६२, दस करण चूलिका,[4] नव प्रश्नचूलिका, पांच प्रकार भागाहार, स्थिति-अनुभाग-प्रदेशबध, इत्यादि इनका भिन्न-भिन्न स्वरूप निरूपण करते भये अर उपदेश देते भये। बहुरि प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग, च्यारि सुकथा, च्यारि विकथा, तीन सै तरेसठ कुवाद के धारक, ज्योतिष, वैद्यक, मत्र, यंत्र, तत्र, पच वा आठ प्रकार निमित्त ज्ञान, न्याय-नीति, छन्द, व्याकरण, गणित, अलंकार, आगम, अध्यात्म शास्त्र का निरूपण भी तुम ही करते भये। चौदह धारा, तेईस वर्गणा, ज्योतिष-व्यतर-भवनवासी-कल्पवासी, सप्त नारकी तिनका आयु-बल-पराक्रम, सुख-

---

१ भव विपाकी प्रकृतियाँ चार हैं—नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु, देवायु।

२ जीव विपाकी प्रकृतियाँ ७८ हैं—घाति कर्म की प्रकृति ४७, वेदनीयकी २, गोत्रकर्म की २, नामकर्म की २७- तीर्थंकर, उच्छ्वास, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यश कीर्ति, अयश कीर्ति, -त्रस, स्थावर, प्रशस्त अप्रशस्त, विहायोगति, सुभग, दुभग, गति ४, एकेन्द्रियादि जाति नाम कर्म ५।

३ पुद्गल विपाकी प्रकृतियाँ बासठ हैं—शरीर की ५, बन्धन की ५, सघात की ५, सस्थान की ६, अगोपाग की ३, सहनन की ६, स्पर्श की ८, रस ५, गन्ध की २, वर्ण की ५, निर्माण, आताप, उद्योत, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, प्रत्येक, साधारण अगुरुलघु, उपघात, परघात।

४ बन्ध, उत्कर्षण, सक्रमण, अपकर्षण, उदीरणा, सत्त्व, उदय, उपशम, निधत्ति, निकाचना ये देश करण (अवस्था) प्रत्येक प्रकृति के होते हैं।—गोम्मटसार कर्मकाण्ड गा. ४३७

दु:ख का विशेष निरूपण तुम ही किया। अढाई द्वीप क्षेत्र कुलाचल, द्रह, कुंड, नदी, पर्वत, बन-उपवन क्षेत्र की मर्यादा, आर्य-अनार्य, कर्मभूमि-भोगभूमि की रचना, ताके आचरण, अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल की फिरनि, पल्य-सागर, आदि आठ अर सख्यात-असख्यात-अनत के इकईस भेद, पंच प्रकार परावर्तन, इनका स्वरूप भी तुम ही कहते भये। सो हे भगवान! हे जिनेंद्रदेव! हे अरहतदेव! हे त्रिलोक-गुरु! तुम्हारा ज्ञान कैसा है? एते ज्ञान तुम्हारे एक समय विषै कैसे उत्पन्न भया? मेरे या बात का बडा आश्चर्य है। तुम्हारे ज्ञान के अतिशय की महिमा हजार जिह्वा करि न कही जाय। मै तो एक ज्ञेय नै एकै काल स्थूल पणै नीठि[१] जाणि सकू। तातै हे दयालु मूर्ति! तुम सारिखा हम कौ भी कीजिये। मेरे ज्ञान को बहुत चाह है। तुम परम दयालु हो, मन वांछित वस्तु का देनहारा हो, तातै मेरा मनोरथ सिद्ध कीजिये, या बात की ढील न करोगे। हे ससार-समुद्र तारक मोह-लहरि के विजयी! घातिकर्म के विध्वसक! कामशत्रु के नाशक! ससारी लक्ष्मी सौ विरक्त वीतरागदेव! आपनै सर्व प्रकार सामर्थ्यवान जानि तारण-विरद आपको सुनिहू, आपका चरणा को सरणि आयो हू; सो हे जगत-बधव! हे माता-पिता! हे दया-भण्डार! मोनें चरणा को सरण आयो रक्ष-रक्ष! मोह-कर्म तें छुडाय। कैसा छै ये मोह कर्म? लोक का समस्त जीवा नै आपका पौरुष करि ज्ञानानद पराक्रम आदि समस्त जीवा का स्वाभाविक निधि

---

१ भलीभांति

लक्ष्मी की जानि शक्तिहीन करि, जेल में नाखि दिये। केईक तौ एकेंद्री पर्याय विषैं नाख्या सुनियें छै, घोरान घोर दुःख पावे छै। ताके दुःख के अर्थ को तौ ज्ञानी पुरुषां नै भासै छै, वचन करि न कह्या जाय। अर केई जीवां नै बे इंद्री पर्याय विषै महा दुःख दिया है, सो ताका दुःख प्रत्यक्ष इंद्री गोचर आवै है। अर तुम सिद्धांत विषै दुःख का निरूपण किया, तातैं तेरा वचन उनमान प्रमाण करि सत्य जान्या। बहुरि केई जीव नर्क विषै पडे-पडे बहुत बिलबिलावें हैं, रोवे हैं, हाय-हाय शब्द उच्चार करै हैं। आप नौ अन्य को मारै है औरनि करि आप हण्यौ जाय है। ताहि छेदन-भेदन–मारन-ताडन-शूलीरोपण ये पंच प्रकार के दुःख करि अत्यन्त पीडित भूमि को दुस्सह बेदना करि परम आकुलनाई है। कोटि रोग करि दग्ध होय गया है–ऐसा दुःख सहवानैं नारकी ही समर्थ है। कायर है, दीर्घायु-बल सागरा पर्यंत भोगै हैं। ऐसै मोह दुष्ट कै वशीभूत हुवा फेरि–फेरि मोह नै सेवै है, मोह नै भला मानै है, मोह की सरण रह्या चाहै है अर परम सुख नै वांछै है। सो यह भूलि कैसी ? यह भूलि तुम्हारे उपदेश बिना वा तुम्हारे गुण मानें बिना तुम्हारी आज्ञा सिर ऊपरि धारे बिना त्रिकाल, त्रिलोक विषै जे मोहकर्म दुःख का कारण जानैंजी, तिमकै नाही। अर-मोह नै जीत्या बिना दुःख का निर्वृत्ति नाही, निराकुलता सुख की प्राप्ति नाही। अर मो औगुण देसी का कहा देखना ? मैं तौ औगुण का पुंज ही अनादि का बन्या हूँ। सो मेरा औगुण देखौ, तौ परम कल्याण को सिद्धि होनो नाही। औगुण ऊपरे गुण तुम सारिखे सतपुरुष ही करै हैं, कुदेवादिक नीच पुरुष हैं, ते गुण ऊपरि औगुण ही किया। मै तौ वानै घणा ही

आछ्या जानि सेया छा, बंध्या छा, स्तुति करी छी; तौ भी मोनै अनंत संसार विषैं रुलाया। ताका दु खां को वार्ता वचन करि न कही जाय। सो कैसे हैं सत्पुरुष अर नीच पुरुष ? ताका दृष्टांत दीजिये है। जैसे पारस नै लोह का घण फोडै, अर बे वानै सुवर्णमयी करै है अथवा चदन नै घसे ज्यों-ज्यों सुवास ही देय, साठे नै ज्यौं-ज्यों पेलै त्यौं-त्यौं अमृत ही देहै। जल आप बलै अर दुग्ध कौ बचाय देय, सो ऐसा याका जाति-स्वभाव ही है; काहू का मेट्या मिटै नाही। सर्प नै दुग्ध पाइये, परन्तु वह वाके प्राण ही कौ नाश करै, सण[१] आपना चाम उघरावे अर अन्य कौ बांधै, मक्षिका आपनै प्राण तजै, पणि अन्य पुरुष कौ बाधा उप-जावै, सो या सादृश्य कुदेवादिक वे दुर्जन पुरुष, ताका स्वभाव जानना, याका स्वभाव मेट्या मिटै नाही। स्वभाव नै कोई औषधि नाही, मत्र-जत्र नाही, तातै स्वभाव तर्क नासे। ऐसै जिनेन्द्रदेव ! तुम्हारे प्रसाद करि कुदेवादिक का स्वरूप भलीभाँति जान्या। सो अब मै विषधरवत दूरि ही तै छोडो हौ। धिक्कार ! होहु भिष्ट पुरुषानै अर वाका आचरण नै अर वाके सेयबानै अर म्हारा मूल पूर्वली अवस्था नै धिक्कार होहु। अर अब मै जिनेन्द्र देव पाया, ताकी सरधा आई सो मेरी बुद्धि धन्य है ! अर मै धन्य हौं ! मेरा जन्म सफल भया, मै कृतकृत्य भया, मै कारज करणा छा सो किया। अब कार्य कछु करणा रह्या नाहीं—ससार के दु:खा नै तीन अजुली पानी का दिया। ऐसा तीन लोक, तीन काल

---

१ सन

विषैं पाप कौन है जो श्रीजी का दर्शन तै, पूजा तै ध्यान तै, स्मरण तै, स्तुति तै, नमस्कार तै, आज्ञा तै, जिन-शासन का सेवन तै जाय नाही। ज्यो कोई अज्ञानी, मूर्ख, मोह करि ठगी गई है बुद्धि जाकी, सो ऐसे अर्हंतदेव कौ छोडि कुदेवादिक नै सेवै है वा पूजै है अर-मनवांछित फल नै चाहै है, सो मनुष्य नाही, वे राक्षस है। या लोक विषैं वा परलोक विषै वाका बुरा होता है; जैसे कोई अज्ञानी अमृत नै छोडि विषय-विष नै पीवै है, चिंतामणि छाडि कांच का खड नै पल्ले बाधै, कल्पवृक्ष काटि धतूरा बोयै, त्यौ ही मिथ्यादृष्टि श्री जिनदेव छाडि कुदेवादिक का सेवन करै है। घणी कहा कहिये ? बहुरि हे भगवानजी ! ऐसी करिये गर्भ-जन्म-मरण का दुख तातै निर्वृत्ति करौ। अब मेरे दुख नाही सह्या जाय। वाका स्मरण किया ही दुख उपजै, तौ सह्या कैसे जाय ? तातै कोडि बात की एक बात है–मेरा आवागमन निवारिये, अष्ट कर्म तै मोक्ष करिये। केवल ज्ञान, केवल दर्शन, केवल सुख, अनन्त वीर्य, यह मेरा चतुष्टय स्वरूप घात्या गया है। सोई घातिया का नाश तै प्राप्ति होऊ, मेरे स्वर्गादिक का चाह नाही। मै तौ परमाणु पर्यंत का त्यागी हूँ। मै त्रिलोक विषै स्वर्ग चक्रवर्ती, कामदेव, तीर्थंकर पद पर्यंत चाहता नाही। मेरे तौ मेरे स्वभाव की वाँछा है, भावे जैसे स्वभाव की प्राप्ति होहु। **सुख छै सो आत्मा का स्वरूप भाव है अर मै एक सुख ही का अर्थी हूं। तातै निज स्वरूप की प्राप्ति नै अवश्य चाहूं हूं।** तुम्हारे अनुग्रह विना वा सहकारी विना ये कार्य सिद्ध होना नाही। और

त्रिलोक, त्रिकाल विषै तुम बिना सहकारी नाहीं, तातैं और सर्व कुदेवादिक नै छांडि तुम्हारे ही सरणे नै प्राप्ति भया हू । मेरा कर्तव्य था, सो तो मै करि चुक्या, अब कर्तव्य एक तुम्हारा ही रह्या है । तुम तरणतारण विरद कौ धरया हौ, सो आपना विरद राख्या चाहै, तो मोनैं अवश्य तारो । त्यौ ही तारणे ते ही तिहारी कीर्ति त्रिलोक मे फैली है, आगे अनतकाल पर्यंत रहसी । सो हे भगवान ! आप अद्वैत व्रत धरया हौ । आप अनता जीवा नै मोक्ष दीनो । अजन चोर सारिखा अधम पुरुष तानै तो शीघ्र ही अल्प-काल में मोक्ष नै प्राप्त किया और भरत चक्रवर्ति सारिखा बहुत परिग्रही तानै एक अतमुहूर्त मैं केवलज्ञान दिया । श्रेणिक महाराज जिनधर्म का अविनयी बौधमती मुन्या का गला मैं सर्प डारयौ, ताके पाप करि सातवाँ नर्क का आयु बांध्या, ताकौ तौ महरबानगी करि तुम एक भवतारी करि दिये है । इत्यादि घना ही अनत जीवां नै तारया सो अबै प्रभुजी ! मेरी वेर क्यौ ढील करि राखी है, सो कारण कहा हम न जानै ? तुम तौ वीतराग परम दयालु कहावौ हौ, तौ मेरी दया क्यौ नही आवै है ? मेरी वेर ऐसा कठोर परिणाम क्यो किया है ? सो आपनै यह उचित नाही । अर मैं घणा पापी था, तौ भी तुम पासि पूर्वे ही खिमा कराई, तातै अब मेरा अपराध भी क्यौ रह्या नाही ? तासू अब नेम करि ऐसा जानू हू, मेरे थोडे भव बाकी रहै हैं, सौ यह प्रताप एक तुम्हारा है । सो तुम्हारे जस गावने करि कैसे तृप्त हूजिये ? सो धन्य तुम्हारा केवल ज्ञान ! धन्य तुम्हारा केवल दर्शन ! धन्य तुम्हारा केवल सुख ! धन्य तुम्हारा अनतवीर्य ! धन्य तुम्हारी परम वीतरागता ! धन्य

तिहारी उत्कृष्ट दयालुता ! धन्य तुम्हारा उपदेश ! धन्य तुम्हारा जिनशासन ! धन्य तुम्हारा रत्नत्रय धर्म ! धन्य तुम्हारा गणधरादि मुनि, श्रावक, इंद्र, आदि अव्रती सम्यक् दृष्टि देव-मनुष्य ! सो तिहारी आज्ञा सिर परि धारै है, तुम्हारी महिमा गावै हैं। धन्य महिमा तुम्हारी कहा लौं कहिये ? तुम जयवंत प्रवर्तो अर हम भी तिहारा चरणां निकट सदैव तिष्ठे, महा प्रीति सौ भी जयवन्त प्रवर्ते।

आगै फेरि और कहिये। बहुरि मार्ग मे जेती बार जिन-मदिर आगै होय, निकलिये, तेती बार श्रीजी का दर्शन किया बिना आग्रे नाही जाइये। अथवा जिन-मंदिर कै निकटि आपका समागम करना पडै तौ वेती वार दर्शन का साधन सधै नाही, तौ बाह्य सौ नमस्कार ही करि आगै जाना, नमस्कार कर्‌या बिना न जाना। अर मदिर विषै जेतीवार आमू-सामू ही गमन करता प्रतिमाजी दिष्टि पडै, तेतो वार दोऊ हस्त मस्तग कै लगाय नमस्कार करिये। बहुरि असवारी परि चढि आये होय, तौ जिन मदिर दिष्टि परै, तब तै असवारी तै उतरि पयादा[१] गमन करना। ऐसै नाही कि असवारी ऊपरि चढ्या ही जिन-मन्दिर पर्यंत चल्या जाय, यामै अविनय बहोत होय है। **अविनय सोई महापाप है अर विनय सोई धर्म है। देव, धर्म, गुरु का अविनय उपरांत अर कुदेवादिक का विनय उपरांत तीन लोक, तीन काल विषै पाप हुवो न होसी;** त्यों ही यासौ उलटा देव, गुरु, धर्म का विनय उपरांत

---

१ पैदल, नगे पाव

अर कुदेवादिक की अवहेलना-अवज्ञा उपरांत धर्म तीन लोक, तीन काल विषैं हुवा न होसी। तीस्यौं देव, गुरू, धर्म का अविनय का विशेष भय राखना। जो जाका चू क्या[1] नै कहूं तै ही ठिकाना नाही। घणी शिक्षा कहा लिखिये ? कोडिवास[2] किया का सा फल एक दिन जिन-दर्शन किये का होय है, अर कोडि उपवास किया बराबर एक दिन पूजन का फल होय है। तातैं निकट भव्य जीव हैं, ते जे श्रीजी का नित दर्शन-पूजन करो। दर्शन किये बिना कदाचि[3] भोजन करना उचित नाही, अर दर्शन किया बिना कोई मूढधी, शठ, अज्ञानी रोटो खाय है, सो वाका मुख सेत[4] खाता बराबर हैं अथवा सर्प का बिल बराबर है। जिह्वा है सोई सर्पिणी है, मुख है सो ही बिल हैं। अर कुभेषी, कुलिंगी जिनमन्दिर विषै रहते होय, तौ वा मदिर विषै भूल कदाचि जावे नाही। वहां गया सरधान रूपी रत्न जातो रहै। तहा विशेष अविनय होय, सो अविनय देखने करि महापाप उपजै। जहा कुभेषी रहै, तहा श्रीजी का विनय का अभाव है। फल है सौ तौ एक श्रीजी के विनय ही का है। विनय सहित तौ एक बार ही श्रीजी का दर्शन किये का महा पुण्य बध होय है। अर अविनय सहित तौ घनी बार दर्शन करै, त्यौ-त्यौ घणा पाप उपजै है। आपणा माता-पिता का कोई दुष्ट पुरुष अविनय करता होय, अर मो करि आपनी सामर्थ्य होय, तौ वाका निग्रह अरि, आपना माता-पिता नै छुडाय ल्यावै, वाका विशेष विनय किया। अर आपनी सामर्थ्या न होय,

---

१ भूल की २ उपवास ३ कभी भी ४ शहद

तौ वा मारग न जाइये, वाका बहोत दरेग करिये, वैसे ही श्री वीतरागदेव का जिनबिंब का कोई दुष्ट पुरुष अविनय करै, तौ वाका निग्रह करि, जिनबिंब का विशेष विनय करिये। अर आपनी सामर्थ्य न होय, तौ वाका अविनय के स्थान कदाचित न जाइये। जहा कुभेषी रहे हैं, तहा घोरान घोर अनेक तरह का पाप होय है। वहाँ जाने वारे कुभेष्या का शिष्य गृहस्थ भी वाका उपदेश पापी वा सारिख ही है। अज्ञानी, मूढ, तीव्र कषायी वज्र मिथ्याती होय है। तातै वाका ससर्ग दूरि ही तै तजना उचित है। जो पूर्वे हलका मिथ्या कषाय होय, तौ तहा गये अपूठा तीव्र होय जाय तौ धर्म कहा का होय ? धर्म का लुटेरा पासि कोई धर्म चाहै है, सो वह कोई बावला होय गया है; जैसे सर्प नै दूध पाय वाका मुख सौ अमृत चाहै है तो अमृत की प्राप्ति कैसे होय ? विष की ही प्राप्ति होय; त्यौं ही कुभेष्या का ससर्ग सौ अधर्म ही की प्राप्ति होय। वे धर्म का निंदक है, परम बैरी हैं, अधर्म के पोषने वारे है, मिथ्यात कौ सहायक है। जे एक अश मात्र प्रतिमाजी का अविनय होय, तौ वाका कहा होनहार है ? सो हम न जानै, सर्वज्ञ ही जानै है। प्रतिमाजी के केसरि-चदन लगावना अयोग्य है, वाका नाम विलेपन है; सौ अनेक शास्त्रा मे कह्या है। अर भवानी, भैरो आदि कुदेवादिक की मूर्ति आगे स्थापि वाका पूजन करै अर नमस्कार करै, अर प्रतिमाजी की गिणती नाही। अर ये सिंघासन ऊपरि बैठि जगत विषै पुजावै हैं। अर मालीन सै अणछाण्या पाणी मगाय मैला चीरडा (वस्त्र) सौ प्रतिमाजी को पखाल करै। अर

जेता पुरुष-स्त्री आवे, तेता सर्व विषय-कषाय की वार्ता करें, धर्म का लवलेश भी नाही। इत्यादि अविनय का वर्णन कहां तक करिये ? सो पूर्वं विशेष वर्णन किया है ही अर प्रत्यक्ष देखने में आवै है, ताका कहा लिखिये ? स्वयभू (सुभौम) चक्रवर्ती वा हनुमानजी की माता अजना अर श्रेणिक महाराज, या नवकार मत्र, वा प्रतिमाजी का वा निर्ग्रंथ गुरु का तनक-सा अविनय किया था, सो वाके कैसा पाप उपज्या ? अर मीडक[१] वा शूद्र मालो की लडकी श्रीजी का मन्दिर की देहली परि पुष्प चढाव्रै थी, वा फूल चढावे का तनक-सा भाव किया था, सो स्वर्ग पद पाया। तासौ जिन-धर्म का प्रभाव महा अलौकिक है। तातै प्रतिमाजी वा शास्त्र जी का वा निर्ग्रथं गुरु का अविनय का विशेष भय राखना। बहुरि कोई यहा प्रश्न करै कै प्रतिमाजी तौ अचेतन है, ताको पूजे कहा फल निपजै ? ताका समाधान—रे भाई! मत्र-यत्र-तत्र-औषधि-चितामणि रत्न-कामधेनु-चित्रावेलि-पारस-कल्पवृक्ष अचेतन मन वांछित फल नै देहै अर चित्राम की स्त्री विकार भाव उपजने कौ कारण है, पीछे वाके फल नर्कादि लगे है। त्यौ ही प्रतिमाजी निराकार, शाति मुद्रा, ध्यान दशा कौ धरै है, तिनको दर्शन किये वा पूजन किये मोह कर्म गलै है, राग-द्वेष भाव विलै जाय हैं अर ध्यान का स्वरूप जान्या जाय है। तीर्थंकर महाराज वा सामान्य केवली की छबि याद आवै है, याके अवलोकन किये ज्ञान-वैराग्य की वृद्धि होय है। **ज्ञान-वैराग्य है सो ही निश्चै मोक्ष का मारग है** । अर शास्त्र हैं सो भी

---

१ मेढक

अचेतन हैं; याके अवलोकन किये प्रत्यक्ष ज्ञान-वैराग्य की वृद्धि होती देखिये हैं। जेते धर्म के अंग है, तेते अंग शास्त्र सौ जाने जाय है। पीछे जानि करि हेय वस्तु तजन सहज ही होय है, उपादेय वस्तु का ग्रहण सहज ही रहि जाय है। पीछे याही परिणामां सेती मोक्ष मार्ग सधै है। मोक्ष-मार्ग सेती निर्वाण की प्राप्ति होय है। तातै यह बात सिद्ध भई-इष्ट-अनिष्ट फल नै कारण शुद्ध-अशुद्ध परिणाम ही हैं। शुद्ध-अशुद्ध परिणाम नै कारण अनेक ज्ञेय पदार्थ है। कारण विना कार्य की सिद्धि त्रिकाल मे होय नाहीं। जैसा कारण मिले, तैसा कार्य निपजै। तातै प्रतिमाजी का पूजन, स्मरण, ध्यान, अभिषेक, आदि परम उत्सव विशेष महिमा करणा उचित है। जे कोई मूर्ख, अज्ञानी, अवज्ञा करै है, ते अनत ससार विषै भ्रमै है। **चतुर[1] प्रकार देवनि कै तौ मुख्य धर्म श्रीजी का पूजन का ही है।** तातै सर्व प्रकार म्हारा वारवार त्रिलोक के जिनबिंब को नमस्कार होहु। भव-भव के विषै मोनै याही की सरण होहु, याही को सेवा होहु, याही की सेवा विना एक समै मति जावो। मैं तो अनादि काल का ससार विषै भ्रमण करता महाभाग के उदै काल-लब्धि के योग तै यह निधि पाई। सो जैसे दीर्घ काल को दरिद्री चिंतामणि रतन पाय सुखी होय, त्यौ मै श्री जिन-धर्म पाय सुखी हुवा। सो अबै मोक्ष पर्यंत यह जिनधर्म मेरा हिरदा मैं एक समै मात्र अन्तर रहित सदैव सासतो तिष्ठौ। यह मेरी प्रार्थना श्री जिनबिंब पूर्ण करो। घनी

---

१ चार

कहा अर्जी करै ? दयालु पुरूष थोडी ही अरज किये, बहुत मानै है। इति जिन–दर्शन संपूर्ण।

सामयिक का स्वरूप

आगै अपने इष्ट देव कौ विनय पूर्वक नमस्कार करि सामायिक का स्वरूप निरुपण करिये हैं, सो हे भव्य ! सुनि।

दोहा–साम्यभाव युत वंदिकै, तत्त्वप्रकाशन सार।

वे गुरू मम हिरदै वसौ, भवदधि-तारनहार ॥

सो सामयिक नाम साम्य भाव का है। सामयिक कहो, भावै साम्य भाव कहो, भावै शुद्धोपयोग कहो, भावै वीतराग भाव कहो, भावै नि कष्पाये कहो, भावै ये सब एक कार्य कहो। सो यह तो कार्य है-या कार्य सिद्धि होने के अर्थि बाह्य क्रिया साधन कारणभूत है। कारण बिना कार्य की सिद्धि होय नाही; तातै बाह्य कारण सयोग अवश्य करणा योग्य है। सो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव च्यारि प्रकार हैं। द्रव्य करि श्रावक एक लगोट तथा एक ओछी पना की तीन वा साढे तीन हाथ की धोवती[1] अर एक मोर-पक्षिका[2] राखै। बहुरि शीतकालादि विषै शीत की परीसह उघाडा शरीर सौं न सह्या जाय, तौ एक श्वेत वस्त्र बडा मोटा सूत का सू डील[3] ढकै जेता निकटि राखै, उपरांत परिग्रह राखै नाही। तथा चौकी, पाटा वा सुद्ध भूमि का ऊपरि तिष्ठै

---

१ धोती २ मोर-पिच्छी ३ शरीर

अर सामायिक करै। एता परिग्रह उपरांत और राखै नाहीं। बहुरि क्षेत्र-शुद्धि कहिये जा क्षेत्र विषैं कोलाहल शब्द न होइ। बहुरि पुरुष-स्त्री, तिर्यंच वाका गमन नाही होय, अगल-बगल भी मनुष्या का शब्द नाही होय। ऐसे एकांत, निर्जन स्थान वा आपना घर विषै वा जिनमंदिर विषैं वा सामान्य भूमि, वन, गुफा, पर्वत के शिखर ऐसे शुद्ध क्षेत्र विषैं सामायिक करै। अर क्षेत्र का प्रमाण ऐसे करि लेय, सो जिह क्षेत्र मैं तिष्ठ्या होय, सो क्षेत्र उठता-बैठता, नम–स्कार करता दशो दिशा स्पर्शने में आवै। सो तौ क्षेत्र मोकळा होय, सो अपने प्रमाण सू उपरात क्षेत्र का सामा-यिक काल पर्यंत त्यागै। बहुरि काल-शुद्धि कहिये जघन्य दोय घडी, मध्यम च्यारि घडी, उत्कृष्ट छह घडी का प्रमाण करै। प्रभाति तौ एक घडी का तडका सू लेय एक घडी दिन चढे पर्यंत वा दोय घडी का तडका सू लगाय दो घडी दिन चढ्या पर्यंत वा तीन घडी का तडका सू लगाय तीन घडी दिन चढ्या पर्यंत जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट सामायिक-काल है। ऐसे ही मध्यान्ह समै एक घडी घाटि तै लगाय एक घडी अधिक पर्यंत, दोय घडी घाटि तै लगाय दोय घडी अधिक पर्यंत, तीन घडी घाटि तैं लगाय तीन घडी अधिक पर्यंत मध्यान्ह सामायिक-काल है। बहुरि सांझ समै विषैं एक घडी दिन रहे सू लगाय एक घडी रात पर्यंत, दोय घडी दिन रहे तै लगाय दोय घडी रात गये पर्यंत, तीन घडी दिन रहे तै लगाय तीन घडी रात गये पर्यंत ये सांझ समै सामायिक–काल है। या भांति तीनो कालो विषै सामायिक करणा। काल की जेती प्रतिज्ञा कीनी होय, तासौ सिवाय थोडा–अधिक काल बीते तहां आपना मन निश्चल

होय, तब सामायिक सौं उठै। बहुरि भावां विषैं आर्त-, रौद्र ध्यान को छांडि धर्मध्यान कौं ध्यावे। ऐसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की शुद्धता जाननी।

बहुरि आसन-शुद्धि कहिये पद्मासन वा कायोत्सर्ग आसन राखै--अंग नैं चलाचली न करै, इत-उत[1] देखै नाहीं, अंग मोडै नाहीं, अंग चालै नाही, घूमे नाही, निद्रा ले नाही, उतावला बोलै नाही, ऐसा शब्द का धीरे-धीरे उच्चारण करै, सो आपका शब्द आप ही सुनै; अन्य नाही सुनै। और का शब्द आप राग भाव सहित नाही सुनैं, और को राग भाव सहित देखै नाही, आंगली[2] कडकावै नाही, इत्यादि शरीर की प्रमाद क्रिया छाडै। बहुरि सामायिक विषै मौन राखे; जिनवानी बिना और पढै नाही। बहुरि विशेष विनय सहित सामायिक करै। सामायिक करने का अगाऊ[3] उत्सव रहै। किया पाछे पछतावो नाही करै, दोय-च्यारि घडी निरर्थक काल गया, यामैं कोई दोय-च्यार गृह-स्थापना (गृहस्थीपना) का कार्य और करते, तातैं अर्थ की सिद्धि होती, सो ऐसा भाव नाही करै। बहुरि ऐसे भावां सौ न रहै, सो मैं अवार[4] यो ही उठ्या, मेरा परिणाम घणा चोखा था, सो ऐसा ही रहता, तौ विशेष कर्मां की निर्जरा होती। बहुरि सामायिक विषै दोय वार पचाग नमस्कार पच परमगुरु को करै, बारा आवर्त सहित चार शिरोनति करै, नौ बार नौकार मंत्र पढै, एता काल पर्यंत एक बार खडा होय कायोत्सर्ग करै। सो नमस्कार तौ सामायिक का आदि-अत विषै करै।

---

१ इधर-उधर २ उंगली ३ आगे, पहले से अब ४ अब

भावार्थ—च्यारि शिरोनति, बारा आवर्त सहित एक कायोत्सर्ग ये तीनू क्रिया सामायिक का मध्यकाल विषै जो श्रावक करै, ताको ब्योरो—सामायिक का पाठ की चौईस संस्कृत-प्राकृत पाटी है, ता विषैं जाका विधान है, ता विषैं देख लेना। बहुरि सामायिक करती विरियां[1] प्रभात का सामायिक विषै बैठती बार पूर्वै रात्रि समै निद्रा, कुसीलादिक क्रिया करता उत्पन्न भया जो पाप, ताकी निर्वृत्ति के अर्थि श्री अर्हंतदेव तासों खिमा करावे। आप निंदा करै, मैं महा-पापी छूं मोसूं यो पाप छूटै माही है, वा समै कब आवेगा, तब मैं याका तजन करूंगा। याका फल अत्यन्त कडुवा है, सो हे जीव! तू कैसे भोगसी? यहां तौ तनक सी वेदना सहने को असमर्थ है, तो परभव विषै नर्कादिक के घोरान-घोर दु.ख, तीव्र वेदना दीर्घकाल पर्यंत कैसे सहौगा? जीव का पर्याय छोडते नाश तौ नाहीं होहै। जीव तो अनादि-निधन, अविनाशी है। तातैं परलोक का दु.ख अवश्य आपनैं ही भोगना पडैगा[2] परलोक का गमन कैसा है? जैसे ग्राम सूं ग्रामांतर क्षेत्र सूं क्षेत्रांतर, देश सूं देशांतर, कोई प्रयो-जन कै अर्थि गमन करिये। सो जीव क्षेत्र नैं छोड्या, तहां तौ उस पुरुष का अस्तित्व नाही रह्या। अर जीव क्षेत्र विषैं जाय प्राप्त हुवा, तहा उस पुरुष का अस्तित्व ज्यो का त्यों है। तौ वा पुरुष का क्षेत्र छोडते नै मनाही है। अर कोई क्षेत्र विषैं जाय प्राप्त भया, तौ उहां उसका उत्पाद नाहीं कहिये और पर्याय की पलटन ही है। पूर्वे क्षेत्र विषैं तौ बालक था, उस क्षेत्र विषै वृद्ध भया अथवा पूर्वे दुखी था

---

१ समय २ पड़ेगा

अब सुखी हुवा अथवा पूर्व सुखी था, अबै दुःखी हुवा। ऐसें ही परभव का पर्याय का स्वरूप जानना। पूर्वं मनुष्य क्षेत्र विषैं था, पीछे नरक की दुःखमयी पर्याय होय गई वा पूर्वं मनुष्य भव विषैं दुःखी था, पीछे देव पर्याय विषैं सुखी हुवा— ऐसे भव-भव के विषैं अनेक पर्याय की परिणति जाननी। जीव पदार्थ सासता है। तातैं हे जीव! ये पाप कार्य छोड़ै, तौ भला है। ऐसा दरेग करता सता दोऊ[1] हस्त जोडि मस्तग कै लगाय श्रीजी नै परोक्ष नमस्कार करि ऐसे प्रार्थना करै— हे भगवन्! ये मेरा पाप निवृत्त करो। तुम परम दयालु हो, सो मेरा औगुण दिशि न देखोगे। मौनै दीन, अनाथ जानि मो ऊपरि खिमा ही करो, वाका जिह-तिह प्रकार भला ही करे। सो हे जिनेद्रदेव! मो ऊपरि अनुग्रह करहु अर पाप-मल ताकू हरहु। तुम्हारे अनुग्रह विना पाप-पर्वत गलै नाहीं, तातै मो ऊपरि विशेष म्हारवान होय समस्त पाप का क्षय करहु। ऐसे पूर्वले पाप कौ हलका पाडि[2] जीरन[3] करि पीछे द्रव्य, क्षेत्र, काल का, भाव का प्रमाण बांधि वा स्वरूप पूर्वे कहि आये, ताके अनुसार भागा[4] पूर्वक त्याग करि पूर्व दिशा नै वा उत्तर दिशा नै मुख करि पीछी सूं भूमिका सोधि पंच परम गुरु कौ नमस्कार करि पद्मासन मांडि अथवा पलगटी[5] मांडि बैठि जाय। पीछै तत्त्व का चितवन करै, आपा-पर का भेद-ज्ञान करै, निज स्वरूप का भेद रूप वा अभेद रूप अनुभवन करै वा संसार का स्वरूप दुःख रूप विचारै। संसार सौं भयभीत होय बहुत वैराग्य दशा आदरै अर मोक्ष का उपाय चितवै। संसार के दुःख की निवृत्ति वांछता सता पंच परम गुरु नै सुमरै। ताके गुण की वारंवार अनुमोदना करै, गुणानुवाद गावै, वाका स्तोत्र

---

१ दोनों २ पाड़कर ३ जीर्ण ४ प्रतिज्ञा ५ पालथी, पद्मासन

पढ़ै वा आत्मा का ध्यान करै वा विशेष वैराग्य विचारै। म्हारो कांई होसी ? हूँ या घोरानघोर ससार के महा भयानक दु:खा सू कब छूटस्यौं वा समै म्हारै कब आवसी? दिगंबर दशा धारि, परिग्रह पोट[1] उतारि, वनवासी होय करि, पर घर आहार लेस्यौं, बाईस परीसह सहस्यौं, दुद्धर तपश्चरण करस्यौं, मोह-वज्र फाडि पचाचार आचरिस्यौ अर अपने निज शुद्ध स्वरूप का अनुभव करिस्यौ। ताका अतिशय करि वीतराग भाव की वृद्धि होसी, तब मोह कर्म गलसी, घातिया कर्म शिथिल है, क्षय नै प्राप्त होसी। अनत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनत सुख, अनंत वीर्य, अनत चतुष्टय प्रगट होसी। सो मै सिद्ध सादृश्य लोकालोक के देखने–जानने हार होसी। अनंत सुख, अनंत वीर्य के पुंज, कर्म-कलक सौ रहित महा निराकुलित, आनंदमय सर्व दुःख सौ रहित कब होवो ? कहा तो मेरी यह दशा अर कहां नरक–निगोद आदि महा पाप की मूर्ति, महा दुःख-मयी आकुलता के पुंज, नाना प्रकार के पर्याय के धरनहारे। मै सौ जिनधर्म के अनुग्रह विना अनादि काल सौ लेय सिंह, सर्प, कागला, कुत्ता, चिडी, कबूतर, कीडी-मकोडी, आदि महा भिष्टा पर्याय सर्व धारी। एक-एक पर्याय अनत बेर[2] धरी। तौ भी जिनधर्म विना ससार के दुखा का वोर[3] अब तक आया नाही। अब कोई महाभाग के उदै यह श्री जिनधर्म सर्वोत्कृष्ट, परम रसायण, अद्वैत, अपूर्व पाया, ताकी महिमा कौन-कौन कहिये ? कै तौ मैं ही जाणौं कै सर्वज्ञ जानै हैं। सो यह वीतराग प्रणीत जिनधर्म

---

१ गठरी २ बार ३ अत

जयवंता प्रवर्तो, नंदो, वृद्धो होहु; मोनै संसार-समुद्र सौं काढौ। घनी कहा अरज करै ? ऐसा चिंतवन करि महा वैराग्य सहित सामायिक का काल पूर्ण करे। कोई प्रकार राग-द्वेष राखै नाहीं। अर आपा—पर की सभालि करि यह चिन्मूर्ति साक्षात सबके देखने-जानने द्वारा, ज्ञाता-द्रष्टा, अमूर्तिक, आनंदमय, सुख के पुंज, असंख्यात प्रदेशी, तीन लोक प्रमाण, पर द्रव्य सौं भिन्न में अपने निज स्वभाव का कर्ता-भोक्ता पर द्रव्य का अकर्ता, ऐसा मेरा स्वसंवेदन रूप, ताकी महिमा कौन-कौन कहिये ? यह जीव पुद्गल द्रव्य पिंड को त्रिलोक विषै कर्ता-भोक्ता नाही। मोह के उदै भरम बुद्धि करि झूठ्या ही अपना मान्या था, ताहि करि भव-भव के विषै नरकादिक के परम कलेश कौ प्राप्त भये। सो मैं अबै सर्व प्रकार शरीरादिक पर वस्तु ताका ममत्व छाड़ू हू। यह पुद्गल द्रव्य चाहै ज्यौं परिणमो, मेरा यासौ राग-द्वेष नाहीं। सो यह पुद्गल द्रव्य का पसारा है। सो भावै[1] छीजौ, भावै भीजौ, भावै प्रलय नै प्राप्त होहु, भावै एकठा होहु, याका मैं मुजाम[2] नाही, याके जोग तै मेरा ज्ञानानद की वृद्धि नाहीं। ज्ञानानंद तो मेरा निज स्वाभाव है। सो अपूठा पर द्रव्य के निमित्त तै घात्या गया है, ज्यौं-ज्यौं पर द्रव्य का निमित्त सौ निवृत्ति होय है, त्यौं-त्यौं ज्ञानानद रूप की वृद्धि होय है। सो प्रत्यक्ष अनुभव मे आवै है। तातै व्योहार मात्र तौ मेरा परम वैरी घातिया कर्म चतुष्टय है। निश्चय विचार तो मेरा अज्ञान भाव परम वैरो है। मेरा मैं ही वैरो, मेरा मैं ही मित्र। सो अज्ञान भाव करि मै कार्य करना था, सो किया, सो ताके वश

१ चाहे २ गुलाम

वैसा ही आकुलता मय फल निपज्या,[1] नारकी में परम दुखी हुवा। सो वा दुःख की बात कौन सी कहिये? सर्व जगत के जीव तौ मोह-भ्रम रूप परिणमे हैं। भ्रम करि अत्यन्त प्रचुर अनादि काल का परम दुःख पावै हैं। मैं भी वाही के साथ अनादि काल का ऐसा ही दुःख पावै था। अब कोई महा परम भाग के योग तैं श्रीअरिहंत देव के अनुग्रह करि श्रीजिनवानी के प्रताप तैं मुनि महाराज आदि दे परम धर्मात्मा, दयाल पुरुष, ताका मिलाप भया, अर वाके वचन रूप अमृत का पान किया। ताके अतिशय करि मोहज्वर मिट्या, कषाय की आताप मिटी, परिणाम शांति भया; काम-पिशाच भाजि गया, इंद्री-सफरी[2] ज्ञान-जाल करि पकरी[3] गई, पांच अव्रत का विध्वंस भया, संयम भाव करि मेरा आत्मा ठंडा हुवा। सम्यक्दर्शन-ज्ञान लोचन करि मोक्ष मार्ग साक्षात अवलोकन में आये। अब हम धीरै वा शीघ्र मोक्ष-मार्ग नैं चालै हैं, मोह की सेना लुटती जाय है, घातिया कर्म का जोर मिटता जाय है, मेरी ज्ञान-ज्योति प्रगट होती जाय है। मेरा अमूर्तिक, असंख्यात प्रदेश ता ऊपरि सू कर्म-रज झडती-गिरती-गलती जाय है, ता करि मेरा स्वभाव हंस[4] अंश उज्जल होता जाय है। सो अब मैं चारित्रग्रहण करि मोह कर्म का शीघ्र ही निपात करूंगा, मोह-पर्वत कौ चूरन करूंगा अर मोह का अंश घातिया कर्मनि के परिवार सहित ध्यानमयी अग्नि विषै भस्म करौगा। ऐसा मेरे परम उच्छव वर्तै है। केवलज्ञान—लक्ष्मी, ताके देखिवे की अत्यन्त अभिलाषा चाह वर्तै है। केवलज्ञान-लक्ष्मी, ताके देखिवे की अत्यन्त अभिलाषा चाह वर्तै है। सो कब यह मेरा मनोरथ सिद्ध होयगा? मैं ई शरीर बंदीखाना सू छूटि निवृत्त होय अनंत चतुष्टय संयुक्त तीन लोक का अग्रभाग विषैं मेरा

---

[1] उत्पन्न हुआ [2] मछली [3] पकड़ी [4] आत्मा

सिद्ध भगवान-कुटुम्ब जा विषैं जाय तिष्ठौंगा। अर लोका-लोक के तीन काल सम्बन्धी द्रव्य-गुण-पर्याय सहित समस्त पर द्रव्य-पदार्थ ता एक समय विषे अवलोकन करौंगा। ऐसी मेरी दशा कब होयगी ? सो ऐसा मैं परमजोति मय आप द्रव्य ताको देखि और कौन कौ देखौ ? और तो समस्त ज्ञेय पदार्थ जड के पिंड हैं, तासौं कैसी यारी, तासौं कहा प्रयोजन ? जैसे की संगति करै तैसा फल लागै, सो जड सौ यारी[1] की थी, सो मोनैं भी जड करि नाख्या। कहां तो मेरा केवलज्ञान स्वभाव, अर कहां एक अक्षर के अनंत भाग ज्ञान का सुख, अर कहां नर्क पर्याय के सागरां पर्यंत वीर्य आकुलता मय दुख, अर कहां वीर्य अंतराय के नाश भये केवलज्ञान दशा विषैं अनत वीर्य का पराक्रम अनतानंत नै उठाय लेवा सारिखा सामर्थ्य ? केई पर्याय का वीर्य सो रूई के तार का अग्र भाग के असख्यातवे भाग सूक्ष्म एकेंद्री का शरीर है; इंद्रियगोचर नाही। वज्रादिक पदार्थ में अटकै नाही, अग्नि करि जलै नाही, पानी करि गलै नाही, इद्र महाराज के वज्र दड करि भी हणबे योग्य नाहीं, ऐसा शरीर ताकौ भी लेवा नै सारिखी सामर्थ्य एकेंद्री कौ नाहीं। याही कारण करि याका नाम थावर संज्ञा है, अर बेंद्री आदि पचेंद्री पर्यंत ज्यौ-ज्यौ वीर्य अतराय का क्षयोपशम भया, त्यौ-त्यौं वीर्य प्रगट भया। सो बेंद्री अपना शरीर कौ ले चाले, अर किंचित् मात्र खाने की वस्तु मुख में ले चाले। ऐसे ही सर्वार्थसिद्धि का देवा तीर्थंकर महाराज वा रिद्धि धारी मुनि कै वीर्य की अधिकता जाननी। सो ही केवली

---

१ मित्रता

भगवान के सम्पूर्ण वीर्य का पराक्रम जानना। जेता आकाश द्रव्य का प्रमाण है, एते रोमन का लोक होय, तौ ऐसे बडे अनंतानंत लोक उठावने की सामर्थ्य ता सिद्ध महाराज की है। एती ही सामर्थ्य ता सर्व केवली की है। दोन्या ही के वीर्य अंतराय के नाश होने तै सम्पूर्ण सुख हुवा है। सो मेरे स्वरूप की महिमा ऐसी ही है। सो मेरे प्रगट होहु, सो यह मैं अज्ञानता करि कहा अनर्थ किया? कैसी-कैसी पर्याय धारि परम दुखी हुवा, सो धिक्कार होहु मेरी भूल कौ अर मिथ्याती लोगां की सगति कौ! अर धन्य है यह जिनधर्म कौ! अर पंच परम गुरू अर सरधानी पुरुष! ताके अनुग्रह करि मैं अपूर्व मोक्षमार्ग पाया। कैसा है मोक्ष-मार्ग? स्वाधीन है, ताते अन्यन्त सुगम है। मैं तो महा कठिन जान्या था, परन्तु श्रीपरमगुरु सुगम ही बताया। सो अबै मोनै मोक्ष-मार्ग चलता खेद नाही; भ्रम करि ही खेद मानै था। अहो परमगुरु! थाकी महिमा, अनुमोदना कहां लौं करू? मैं मेरी महिमा सिद्ध सादृश्य तुम्हारे निमित्त करि जानी। इति सामायिक-स्वरूप सम्पूर्ण।

स्वर्ग का वर्णन

आगे अपने इष्टदेव कौ विनयपूर्वक नमस्कार करि, वा गुण-स्तवन करि, सामान्य पणै स्वर्ग की महिमा का वर्णन करिये है। सो हे भव्य! तुम सावधान होय कै सुणि।

दोहा—जिन चौबीसौ वंदि कै, वंदौ सारद माय।
गुरु निर्ग्रंथहि वंदि पुनि, ता सेवौं अघ जाय ॥१॥

पुण्यकर्म विपाक तैं. भये देव सुर राय।
आनदमय क्रीडा करैं, बहु विधि भेष बनाय ।।२।।

स्वर्ग सपदा लक्ष्मी, को कवि कहत बनाय।
गणधर भी जानै नाही, जानै शिव जिनराय ।।३।।

ऐसे ही श्रीगुरा पासि शिष्य प्रश्न करै हैं, सो ही कहिये हैं। हे स्वामिन् ! कृपानाथ, दयानिधि, परम उपगारी, संसार-समुद्र-तारक, दयामूर्ति, हे कल्याणपुंज ! आनन्दस्वरूप, तत्वज्ञायक, मोक्ष-लक्ष्मी का अभिलाषी, ससार सौं परान्मुख, परम वीतराग, जगत-बाधव, छहू काय के पिता, मोहविजयी, असरण कौ सरण, स्वर्गनि के सुख का स्वरूप कहौ। बहुरि कैसे हैं शिष्य ? परम विनयवान है, आत्म-कल्याण के अर्थी है, ससार के दुख सौं भयभीत है, व्याकुल भया है वचन जाका, कपायमान है मन जाका, वा कोमल भया है मन जाका, ऐसे होते सता श्रीगुरु की प्रदक्षिणा देय, हस्त जुगल जोर मस्तक कू लगाय, श्रीगुरा के चरनन कू वारवार नमस्कार करि मस्तक उनके चरण निकट धर्‍या है अर चरणतल की रज मस्तक के लगावै हैं, आपनै धन्य मानै हैं वा कृतकृत्य मानै है, विनयपूर्वक हस्त जोर सन्मुख खडा है। पीछैं श्रीगुरा का मोसर[1] पाय वारंवार दीनपना का वचन प्रकाश स्वर्गन के सुख का स्वरूप बूझे है। बहुरि कैसा है शिष्य ? अत्यन्त पुण्य के फल सुनवा की अभिलाषा जाकी। जब ऐसा प्रश्न होते संते अब वे श्री गुरु अमृत वचन करि कहे है। बहुरि कैसे हैं परम

---

१ अवसर

निर्ग्रंथ वनोपवासी ? दया करि भीजा है चित्त जिनका, सो या भांति कहते भये–हे पुत्र ! हे भव्य ! हे आर्जव[1] ! तेनै बहुत अच्छा प्रश्न किया, बहुत भलो करो। अब तू सावधान होय सुनि। मैं तोह जिनवानी के अनुसार कहों हौं। यह जीव श्रीजिनधर्म के प्रभाव करि स्वर्गन के विमानन मे जाय उपजै है, यहां की पर्याय का नाश कर अंतर्मुहूर्त काल मैं उत्पन्न होय है; जैसे मेघ-पटल विघटते दैदीप्यमान सूर्य बादल बाहर निकसै, तैसे उपपादिक सिज्या[2] के पटल दूर होते वह पुण्याधिकारी सपूर्ण कला सयुक्त, ज्योति का पुंज, आनद, सौम्यमूर्ति, सबकू प्यारा, सुन्दर देव उपजै है। बहुरि जैसे बारा बरस का राजहंस महा अमोलक आभूषण पहिरै निद्रा तै जाग उठै। कैसा है वह देव ? संपूर्ण छहौं पर्याप्ति पूर्ण करि, सरीर की कांति सहित रतनमय आभूषण-वस्त्र पहिरै सूर्यवत् उदै होय है। अनेक प्रकार की विभूति को देख विस्मय सहित दसों दिसान कू अवलोकन करै। मन में यह विचारे–मैं कौन हूं, कहां था, कहां आया ? यह स्थानक कौन है ? यह अपूर्व अर रमणीक, अलौकिक, मन रमने का कारण, अद्भुत सुख का निवास, ऐसा अद्भुत यह स्थान कौन है ? यह जगमगाट रतनो की जोति कर उद्योत हो रहा है, अर मेरा देव सारिखा सुदर आकार काहे तै भया है ? अर जैठी-तैठी[3] सुंदराकार मन कूं अत्यन्त मनोज्ञ देवनि सारिखा दीसै है, सो ये कौन हैं ? बिना बुलाय आय मेरी स्तुति करै हैं, नम्रीभूत होय नमस्कार करै हैं, अर मीठे-मीठे विनयपूर्वक

---

१ सरल चित्त २ उपपाद शय्या ३ जहां-तहां

वचन बोले हैं। सो ये कौन हैं, याका संदेह कैसे मिटै; ऐसी सामग्री कदाचि सांची भी होय। अर कैसे हैं ये पुरुष-स्त्री ? गुलाब के फूल सारिखा है मुख जिनका, अर चन्द्रमा सादृश्य है सोमे मूर्ति जाकी, अर सूर्य सादृश्य है प्रताप जाका; रूप-लावण्य अद्भुत धरे है। सारा ही की दृष्टि एकाग्र मो तरफ है। मोनै खावंद[1] सादृश्य मानै हाथ जोडि खडे हैं अर अमृत मयी मीठा, कोमल, विनय सहित म्हारा मन माफिक वचन बोलै है। ताकी महिमा कौन सौ कहिये ? धन्य हैं ये स्थानक ! अर धन्य है वा सारिखे पुरुष-स्त्री ! धन्य है जाका रूप, धन्य है जाका विनय गुण वा सौजन्यता वा वात्सल्य गुण ! बहुरि कैसे हैं पुरुष-स्त्री ? पुरुष तो सब कामदेव सादृश्य हैं अर स्त्री इद्राणी सादृश्य है। वाके शरीर की गंधता करि सर्वत्र सुगधि फैल रही है। जाके शरीर के प्रकाश करि सर्व तरफ प्रकाश फैल रह्या है। जहां-तहां रत्न-माणिक-पन्ना-हीरा-चितामणि रत्न, पारस, कामधेनु, चित्रावेलि, कल्पवृक्ष, इत्यादि अमोलक अपूर्व निधि के समूह ही दीसै हैं। अर अनेक प्रकार के मंगलीक बाजे बजे हैं। केई गान करै हैं, केई ताल-मृदंग बजावै हैं, केई नृत्य करे हैं, केई अद्भुत कौतूहल करै हैं। केई रत्न के चूरण करि मगलीक देवांगना साथ्या पूरे है। केई उत्सव वर्तै हैं, केई जस गावे हैं, केई धर्म की महिमा गावै हैं, केई धर्म को उत्सव करै हैं; सो यह बडा आश्चर्य

---

1 सौम्य २ पति

है। ये कहा है, मैं न जानूं ? ऐसी अद्भुत चेष्टा, आनंद-कारी पूर्वे कदे[1] देखने में न आई; मानू ये परमेश्वरपुरी है वा परमेश्वर का निवास ही है अथवा ये स्वपना है अथवा मेरे ताईं भ्रम उपज्या है कि इंद्रजाल है ? ऐसा विचार करते सते वे पुण्याधिकारी देवता के सर्व आत्म-प्रदेशां विषैं शीघ्र ही अवधिज्ञान स्फुरायमान हुवै है। तातै होते पूर्वला भव कूं निश्चै करि वा देखै है। ताके देखने करि सर्व भ्रम विलै[2] जाय है। तब फेरि ऐसा विचार करै है—मैं पूर्व जिन-धर्म का सेवन किया था, ताका ये फल है, सुप्न तौ नाहीं अर भ्रम भी नाही, इद्रजाल भी नाहीं। प्रत्यक्ष मेरा कलेवर कूं ले जाय, कुटुंब परवार कै मसाण भूमि का विषै दग्ध करै है, ऐसा निःसदेह है यामैं सदेह नाही। बहुरि कैसे है देव—देवागना अर कैसी विभूति अर कैसे है मंगला-चरण ? कैसे हैं जनम का जानि शीघ्र ही उच्छव सयुक्त आवता हुवा, कैसा वचन प्रकाशता हुवा ? जय-जय स्वामिन् ! जय नाथ ! जय प्रभु ! ये जयवता प्रवर्तो, नादो[3] - वृद्धा होहु। आज की घडी धन्य सो तुम्हारा जन्म भया, म्है एते दिन अनाथ था सो अब सनाथ हुवा। अर अब म्है तुम्हारा दर्शन पाय सो कृतकृत्य हुवा। हे प्रभु ! ये सपदा तुम्हारी अर राज तुम्हारा है अर यह विमान तुम्हारा है अर देवागना के समूह तुम्हारे है। ये हस्ती तुम्हारा है, ये चमर तुम्हारा है, ये सरल रत्ना के स्तूप तिहारा है। ये सात जाति की सेन्या वा गुणचास जाति की सेन्या तुम्हारी है। ये रत्नमयी मदिर तुम्हारा है, ये दश जाति

---

१ कभी २ विलीन ३ आनन्द

कै देव तुम्हारा है, ये गिलम[1] बिछायत तिहारी है। ये रत्नमयी मंदिर रत्नां करि भरे तिहारे हैं, अर हे प्रभु ! हे नाथ ! हम तिहारे दास हैं, सो म्हा ऊपरि आज्ञा कीजै, सोई म्हा नै प्रमाण छै। हे प्रभु ! हे नाथ ! हे स्वामिन् ! हे दयामूर्ति ! कल्याणपुंज। तुम नै पूर्वे कौन पुण्य किया था, कौन षट्काय की दया पाली थी अर कौन सरधान ठीक किया था अर कौन अणुव्रत वा महाव्रत पाल्या था ? कैसा शास्त्राभ्यास किया था ? कै एका विहारो होय ध्यान धर्या था, कै तीर्थयात्रा विषै गमन किया था, कै वनोपवासी ह्वै तपश्चरण किया था, बाईस परीसह सह्या था वा जिनगुण विषै अनुरक्त हुवा था, कै जिनवाणी माथा ऊपरि धारी थी ? इत्यादि जिनप्रणीत जिनधर्म ताके बहुत अंग के आचरण किये थे, ताके प्रसाद करि तुम म्हाके नाथ अवतरे। सो हे प्रभु ! ये स्वर्गस्थान है, सो पुण्य का फल है अर म्हे देव-देवांगना है अर तुम भी वे मनुष्य लोक सूं जिनधर्म का प्रभाव करि देव पर्याय पाई है, यामैं संदेह मति जानो। सो म्हे कांई करज करा ? आप भी अवधि करि सारो विरतांत जान्यो ही हो। धन्य आपकी पूर्व बुद्धि ! धन्य आप को मनुष्य भव ! सो संसार असार जाणि निज आत्म-कल्याण के अर्थि जिनधर्म आराध्यो, ताको ऐसो फल पायो। धन्य है यह जिनधर्म ! ताके प्रसाद करि सर्वोत्कृष्ट वस्तु पाइये है। जिनधर्म उपरांत संसार विषै और सार पदार्थ नाहीं। जेतोक[2] संसार विषै सुख है, सो एक जिनधर्म ही तै पाइये हैं। तातै परम कल्याण रूप एक जिनधर्म ही है,

---

[1] मखमली [2] जितना भी

ताको महिमा वचन अगोचर है। सहस्र जिह्वा करि सुरेंद्र भी पार नहीं पावै है, सो कांई आश्चर्य है। जिनधर्म का फल तो सर्वोत्कृष्ट मोक्ष है। तहां अनंत काल पर्यंत अविनाशी, अतेंद्री, बाधा रहित, अनौपम्य[1], निराकुलित, स्वाधीन, संपूर्ण सुख पावजे है अर लोकालोक प्रकाश ज्ञान पावजे है। ऐसे अनंत चतुष्टय सायुक्त आनंद–पुंज अर्हंत–सिद्ध ऐसे मोक्ष सुख कौ अंतर रहित भोगवै हैं। तातैं अत्यंत तृप्ति है, जगत करि त्रिलोक विषैं पूज्य हैं। वाके पूजने वारे बा सादृश्य ह्वै हैं। सो हे प्रभो! जिनधर्म की महिमा म्हा तै न कही जाय। अर धन्य आप! सो ऐसे जिनधर्म कौ पूर्वे मनुष्य भव में आराधे थे। ताके महातप तै यहा आय ओतार[2] लियो है सो आपकी पूर्व कुमाई[3] ताका फल जानौ। ताकौ निर्भय चित्त करि अंगीकार करौ अर मनवांछित देवोपुनीत सुख नै भोगवौ अर मन की शंका नै दूर ही तै तजो। हे प्रभो! हे नाथ! हे दयाल! जिन-धर्म–वात्सल्य! सब कौ प्यारा म्हारा सारिखा देवनि करि पूज्य असंख्यात देवांगना के स्वामी अब तुम हू अपनें किया कार्य का फल अवधारो[4]। हे प्रभो! हे सुंदराकार देवनि के प्यारे! म्हा परि आज्ञा करो, सो ही म्हे सिर ऊपरि धारैंगे अर ये असंख्यात देव-देवांगना आप के दास-दासी हैं, ताकौ आपनै जानि अंगीकार करि अनुग्रह करो। ऐसे जिन-धर्म बिना ऐसे पदार्थ कोई पावै नाहीं। तीस्यौं हे प्रभो! अबै शीघ्र ही अमृत के कुंड विषैं स्नान करि, अर मनोज्ञ वस्त्र सहित आभूषण पहरि, अन्य अमृत के कुंड तै रत्न

---

१ अनुपमता २ अवतार ३ कमाई ४ निश्चय करो।

मंमी झारी भरि, अर उत्कृष्ट देवोपुनीत अष्ट द्रव्य कौ अपनै हस्त जुगल विषैं धरि मन, वचन, काय की शुद्धता करि महा अनुराग सयुक्त महा आडंबर सौं जिनपूजन कौ पहली चालौ[1] , पाछै और कार्य करौ। जीसौ[2] पहली जिनपूजन करि, पाछै अपनो संपदा कौ समारि आपनै आधीन करी। सों आपने निज कुटुंब कौ उपदेश पाय वा स्वय इच्छा ही सौं वा पूर्वली धर्म-वासना तै शीघ्र ही बिना प्रेर्या महा उच्छव सूं जिनपूजन कौ जिनमदिर कौ जाता हुवा, सो कैसा है जिनमंदिर अर जिनबिंब सो कहिये हैं—सौ जोजन लाबा, पचास जोजन चौडा अर पचहत्तरि जोजन ऊचा ऐसा माहिला[3] मदिर, ताके अभ्यंतर[4] पूर्व सन्मुख द्वार कौ धारता ऐसा जिनमदिर उत्तुग अद्भुत सोभै है। ताके अभ्यतर एक सौ आठ गर्भ—गृह हैं। एक—एक गर्भ—गृह विषै तीन कटनी ऊपर गधकुटी निर्मापित है। ता विषैं जुदे-जुदे एक-एक श्रीजी पांच सै धनुष उत्तुग प्रमाण आसन सिंघासन ऊपरि विराजमान हे। बहुरि वेदी ऊपरि ध्वजा, अष्ट मगल द्रव्य, धर्मचक्र, आदि अनेक आश्चर्यकारी वस्तु के समूह पाइये हैं। बहुरि कैसो है गधकुटी ? ता विषैं श्रीजी अद्भुत शोभा सहित विराजै हे। एक-एक गर्भगृह विषैं एक-एक सासले, अनादिनिधन, अकृत्रिम, जिनबिंब स्थित हैं। सो कैसे हैं ? जिनबिंब समचतुरस्र सस्थान हे अर कोटिक सूर्य की जोति नै मलिन करता तिष्ठे है। गुलाब के फूल सादृश्य महा-मनोज्ञ हैं, शांति—मूर्ति ध्यान अवस्था कौ धारे, नासाग्र दृष्टि कौ धारे, परम वीतराग मुद्रा आनंदमय अति सौभै हैं।

---

१ चलो २ जिसमे ३ प्रासाद, महल ४ भीतर का

बहुरि कैसे हैं जिनबिंब ? तायो[1] सोना सारिखी रक्त जिह्वा वा होठ वा हथेली वा पगथली हैं, फटिकमणि सारिखी दांतन की पंक्ति वा हाथां-पगां के नख अत्यन्त उज्जल, निर्मल हैं अर श्याम मणिमयी महा नरम, महा सुगन्ध ऐसे मस्तक विषै केशां की आकृति ही मुरलावती वक्र मूछा की रेखा तीर्थंकर के केश सादृश्य यथावत सोभै हैं। बहुरि कैसे है जिनबिंब ? केई तौ सुवर्णमयी हैं केई रक्त माणिक के है, केई नील वर्ण पन्ना के हैं, केई श्याम वर्ण मणि के निर्मापे हैं। मस्तक ऊपरि तीन छत्र विराजै है, सो मानू छत्र के मिस करि तीन लोक ही सेवा करने को आया है। चौसठ यक्ष जाति के देवता का रत्नमयी आकार है, ताकै हस्तां विषै चौंसठ चमर है। सो श्रीजी ऊपरि बत्तीस बाई तरफ लिये खडे हैं। अनेक हजार धूप का घडा, लाखां कोड्या रत्नमयी क्षुद्र घटा, लाखा-कोड्या रत्न के दंड परि कोमल वस्त्र सहित उत्तुंग[2] ध्वजा लहलहाट कर रही है। हजारां रत्न के स्तूप नाज[3] की रासि की नाईं ढेर पर्वत सारिखे उत्तुंग सोभै है। अनेक चंद्रकांत मणि शिलान की बावडी व सरोवर वा कुंड, नदी, पर्वत, महलां की पंक्ति ता सहित वन वा फूलवाडी[4] सहित जिनमन्दिर वहां सोभै हैं। बहुरि कैसे हैं जिनमन्दिर ? एक बडा दरवाजा पूर्व दिशा सन्मुख चौघता[5] है, दोय दरवाजा दक्षिण उत्तर चौघता है। बहुरि पूर्व सन्मुख रचना कै सैकडा-हजारा योजन पर्यंत आगू[6] नै चली गई हैं। तैसे ही दक्षिण-

१ तपाया, तप्त २ ऊंची ३ अनाज ४ फुलवारी ५ चौखूटा
६ आगे

उत्तर विस्तार सभा-मंडप आदि रचना चली गई है। विशेष इतना पूर्व के द्वार आदि रचना का लांबा-चौडा, उत्तुंग प्रमाण है। तातें आधा दक्षिण-उत्तर के द्वार आदि का प्रमाण है। ताही तै उत्तर द्वार को शल्यकद्वार कहे हैं। बहुरि सर्व रचना करि बाह्य च्यारि-च्यारि द्वार सहित तीन उत्तुग महाकोट हैं। बहुरि जिनमन्दिर के लाखा-कोट्यां अनेक रत्नां करि निर्मापित महा उत्तुग स्थंभ लागे हैं। बहुरि तीनों तरफा अनेक प्रकार के सैकडा-हजारां योजन पर्यंत रचना चली गई है। कठै ही सभा-मडप है, कठै ही ध्यान-मंडप है, कठै ही जिन-गुण गाने का वा चरचा करने का स्थानक है। कठै ही छाति[१] है, कठै ही महला का पक्ति है, कठै ही रत्नमयी च्यौत्रा[२] है, दरवाजा-दरवाजा तोरण-द्वार है। कठै ही दरवाजा का अग्र भाग विषै मानस्थभ है। जो मानस्थभ देखने तै महा मानी का मान दूर होय है, तातें अत्यन्त ऊचे है, आकाश कौ परसै है। जायगा—जायगा असख्यात मोत्या[३] की सोना की वा रत्ना की माल झूमि रही है। सख्यात, लाखा-कोट्या धूप का घडा तिन विषै धूप खेइये है। जायगा-जायगा सख्यात ध्वजा है। तिनकी पक्ति वा महला की पंक्ति उत्तुग सोभै है। कैसे है महल, कैसी है ध्वजा? मानू स्वर्ग लोक के इंद्रादिक देवनि कौ वस्त्र के हालने करि मानू सैन करि बुलावै ही है। कहा कहि बुलावै है? कहै—यहा आवौ, यहा आवौ, श्रीजी का दर्शन करौ, पूजन करौ, तासौ महा पुण्य उपजै; पूर्वला कर्म-कलक ने धोवौ। बहुरि कठै ही रत्ना का पुंज डूंगर सादृश्य जगमगाट करै है,

---

१ छत २ चबूतरा, ओटला ३ मोतियों

कठै ही रंग की भूमिका है, कठै ही माणिक की भूमिका है, कठै ही सोना-रूपा की भूमिका है, कठै ही पांच-सात बरन के रत्ना की भूमिका है। केई मडप के स्थंभ हीरा के हैं, केइक पन्ना के हैं, केइक अनेक रत्नां के हैं। केई मडप सोना-रूपा के हैं, केई भूमि स्थानक विषैं कल्पवृक्ष का वन है, कठै ही सामान्य वृक्ष का वन है। कठै ही आगा नै पुष्पवाडो है, तिन विषैं भी रत्नां का पर्वत, शिला, महल, बावडी, सरोवर, नदी सोभा धरि रही हैं; च्यार-च्यार आंगुल मात्र सर्वत्र हरा पन्ना सादृश्य महा सुगन्ध, कोमल, मीठी सोभा दे रही है। मानू सावण-भादवा की हरियाली सादृश्य ही सोभै हैं अथवा आनद के अंकुरा ही है। कठै ही जिन-गुण गावै हैं, कठै ही नृत्य करै है, कठै ही राग आलाप मे जिन-स्तुति करे है, कठै ही देव-देव्या की चरचा करे है, कठै ही मध्यलोक के धर्मातमा पुरुष-स्त्री तिनका गुणां की बडाई होय है। ऐसे जिनमदिर विषे संख्यात वा असख्यात देव-देवागना दर्शन करने कौ आवै है अर जाय है अर ताकी महिमा वचन अगोचर है, देखे ही बनि आवे। तातै ऐसे जिनदेव कौ हमारा वारवार नमस्कार है। घणो कहिवा-कहिवा करि पूर्णता हो। बहुरि कैसे हैं जिनबिंब ? मानो बोलै हैं कि मानू ये मुलकै हैं कि मानू ये हंसै है कि स्वभाव विषै तिष्ठै हैं, मानू ये साक्षात् तीर्थंकर ही हैं।

भावार्थ—नख-शिख पर्यंत जिनबिंब का पुद्गल-स्कंध तीर्थंकरकै शरीरवत् अग-उपांग शरीर के अवयव हैं। हाथ, पग, मस्तक आदि सर्वांग वर्ण, गुण-लक्षण मय, स्वयमेव अनादि

निश्चल परिणमै हैं, तातैं तीर्थंकर साक्ष्य हैं। महाराज के शरीर विषैं केवलज्ञानमय आत्म द्रव्य, लोकालोक के ज्ञायक अनंत चतुष्टय मंडित विराजै हैं। जिनबिंब विषैं आत्म द्रव्य नाहीं। ताके दर्शन करत ही मिथ्यात का नाश होय है, जिनस्वरूप की प्राप्ति होय है। सो ऐसा जिनबिंब को वे देव पूजै है अर मैं भी पूजूं हूं, और भी भव्य जीव पूजन करो। एक न्याय करि तीर्थंकरां का पूजन अर प्रतिबिंबजी के पूजन करि बहुत फल होय है। कैसा है ? सो कहिये है-जैसे कोई पुरुष राजा की छबि को पूजै है। तब वह राजा देशांतर सौं आवै तब वा पुरुष सो बहोत राजी होय अर या विचारै-यो म्हां की छबि ही की सेवा करै है, तो हमारी करै ही करै। तातैं ऐसी भक्ति जानि बहोत प्रसन्न होय है, त्यौं ही प्रतिमाजी का पूजन विषैं अनुराग होता सूचै है। फल है सो एक परिणामां की विशुद्धता ही का है अर परिणाम होय है सो कारण के निमित्त तैं होय है। जैसा कारण मिलै, तैसा ही कार्य उत्पन्न होय है। निःकषाय पुरुष के निमित्त तैं पूर्व कषाय भी गलि जाय, जैसे अग्नि के निमित्त तैं दुग्ध उछलि भाजन बाह्य निकसै अर जल के निमित्त तैं भाजन विषैं निमग्न रूप परिणमै, त्यौं ही प्रतिमाजी की शांति दशा देख करि नियम थकी परिणाम निर्विकार शांति रूप होय है, सोई परम लाभ जानना। ऐसा ही अनादि-निधन निमित्त-नैमित्तिक नै लिया वस्तु का स्वभाव स्वयमेव बनै है। याके निवारने कोई समर्थ नाहीं। बहुरि और भी उदाहरण कहिये हैं-जैसे कोई जल की बूंद ताता तवा ऊपरि पडै, तौ नाश नै

प्राप्त होय अर सर्प का मुख मे पडे, तो विष ही हो जाय, कमल का पत्र ऊपरि पडै, तौ मोती सादृश्य सोभै, सीप मैं पडै, तौ मोती हो जाय, अमृत के कुंड मै पडै, तौ अमृत ही हो जाय, इत्यादि अनेक प्रकार जल की बूंद परिणमती देखिये है। ताकी अद्भुत विचित्रता केवली भगवान ही जानै है, देश मात्र सम्यकदृष्टि पुरुष जानै है। बहुरि यहां कोई प्रश्न करै–प्रतिमाजी तौ जड, अचेतन है, स्वर्ग-मोक्ष कैसे दे ? सो ताकौ कहिये-रे भाई ! प्रत्यक्ष ही संसार विषै अचेतन पदार्थ फलदायी देखिये है; चिंतामणि, कल्पवृक्ष, पारस, कामधेनु, चित्रावेलि, नव निधि, आदि अनेक वस्तु देते देखिये हैं। बहुरि भोजन करि क्षुधा मिटै है जल पिये तृषा मिटै है, अनेक औषधि के निमित्त करि अनेक जाति के रोग उपशांत होय है, सर्प वा और विष के निमित्त करि प्राणांत होय है। साची स्त्री के शरीर का पाप लागै है, त्यौ ही प्रतिमाजी का दर्शन किये, मोह कर्म गलै है। सोई वीतराग भाव होना ताही का नाम धर्म है; या ही धर्म करि स्वर्ग–मोक्ष पावै है। तातै प्रतिमाजी स्वर्ग–मोक्ष होने का कारण है। प्रतिमाजी का दर्शन करि अनंत जीव तिरे, आगै और तिरेंगे। बहुरि प्रतिमाजी का पूजा, स्तुति-करण है सो तीर्थंकर महाराज के गुण की अनुमोदना है। जो पुरुष गुणा की अनुमोदना करै, तौ वाके गुण सादृश्य वाके गुण उत्पन्न होय अर औगुणवान पुरुष की अनुमोदना किये वा सादृश्य औगुण फल लागै, त्यौ ही धर्मात्मा पुरुष की अनुमोदना किये धर्म का फल स्वर्ग-मोक्ष लागै। तातैं प्रतिमाजी साक्षात् तीर्थंकर महाराज की छबि है; ताकी

पूजा-भक्ति किये, महाफल निपजै है । बहुरि यहां कोई-फेरि प्रश्न करै--अनुमोदना करनी थी, तौ वाका सुमरण करि ही अनुमोदना कोनो होनी, आकार काहे को बनाया ? ताकौ कहिये है---सुमरण किये, तौ वाका परोक्ष दरसण होय है, सादृश्य आकार बना । प्रत्यक्ष दर्शन होय है । सो परोक्ष बोच प्रत्यक्ष विषै अनुराग विशेष उपजै है । अर आत्मद्रव्य है सो डोला का भो दोसै नाही, डोला का भी वीतराग मुद्रा स्वरूप शरीर ही दोसै है । तातै भक्त पुरुष नै तौ मुख्यपणै वीतराग का शरीर का ही उपकार है। भावै जंगम प्रतिमा हो, भावै थावर प्रतिमा हो, दोन्या के उपकार सादृश्य है । जंगम नाम तीर्थंकर का है, थावर नाम प्रतिमा का है । जैसे नारद रावण नै सीता के रूप की वार्ता कही, तब तौ रावण थोडा आसक्त हुवा । पाछै वाका पट दिखाया, तब विशेष आसक्त हुवा । ऐसे प्रत्यक्ष-परोक्ष का तात्पर्य जानना । सो वे तौ चित्रपट पत्र रूप हो था अर ये प्रतिमाजी विनय रूप आकार है । तातै प्रतिमाजी का दर्शन किये, तीर्थंकर का स्वरूप याद आवै है । ऐसा परमेश्वर की पूजा करि अब वे देव काई करै है अर कैसा है सो कहिये हैं। जैसा बारा बरस का राजहंस-पुत्र शोभाय-मान दीसै है, तासू भी असंख्यात, अनंत गुणा तेज, प्रताप कूं लिया सोभै है । बहुरि कैसा है शरीर जाका ? हाड, मांस, मल-मूत्र के समूह करि रहित है । कोटिक सूर्य की जोति नै लिया महा सुन्दर शरीर है । अर रेसम, पिलम सूं अनंत गुणा कोमल स्पर्श है अर अमृत सारिखा मोठा है ।

अर बावना[1] चन्दन वा कस्तूरी व कोट्या रुपया तोला का अतर[2] तासूं भी अनंत गुणा सुगंधमयी शरीर है । अर ऐसा ही सुगंध सांस-उस्वास[3] आवै है । बहुरि सुवर्णमयी वा ताया सोना समान लाल व ऊगता सूर्य समान लाल वा फटिक मणि समान श्वेत ऐसा वर्ण जाका । बहुरि अनेक प्रकार के आभूषण रत्नमयी पहरे है अर मस्तक ऊपरि मुकुट सोभै है । अर हजारां वर्ष पीछै मानसिक अमृतमयी आहार लेहै अर केई मास पीछै सांसोस्वास लेहै अर कोट्यां चक्रवर्ती सारिखो बल है । अर अवधिज्ञान करि आगिला पिछला भव को वा दूरवर्ती पदार्थ का वा गूढ पदार्थां को वा सूक्ष्म पदार्थां को निर्मल पुष्ट जानै है । अर आठ रिद्धि वा अनेक विद्या वा विक्रिया करि सयुक्त है । जैसी इच्छा होय, तैसे ही कौतूहल करै है । बहुरि रेसम सौ असंख्यात गुणी विमान की कोमल भूमिका है । अर अनेक प्रकार रत्ना का चूर्ण सादृश्य कोमल धूलि है । अर गुलाब, अबर, केवडा, केतकी चमेली, सेवती, रायवेल, सोनजुही, मोगरा, रायचंपा आदि पहुपनि[4] का चूर्ण समान रज है । अर कहूं ही अनेक प्रकार के फूलनि की वाडी[5] सुगन्ध सोभै है । अर कोटिक सूर्य सारिखो ताप रहित शांतिमयी प्रकाश है । अर मंद, सुगंध पवन बाजै है अर अनेक प्रकार के रत्नमयी विश्राम हैं । अर अनेक प्रकार के रत्ननि की शोभा नै धर्‌या गर दोन्यूं कोट सोभै है, अर निर्मल जल सूं भरी खाई सोभै है, अर अनेक जाति के कल्पवृक्ष आदि संयुक्त वन सोभै हैं । तंठै वन मैं अनेक बावडी, निवाण,[6]

---

१ उत्तम, श्रेष्ठ २ इत्र ३ श्वासोच्छ्वास ४ पुष्पों ५ बगीची, वाटिका
६ जलाशय

पर्यंत, सिखा सोभै है, तैठैं देव आय क्रीडा करैं हैं। बहुरि देवा का मंदिर कै अनेक प्रकार के रत्न लग्या हैं वा रत्न-मयी है। ताके ध्वजा-दंड सोभै है वा ऐसे ध्वजा हालै है, मानूं धर्मात्मा पुरुषनि को मन करि बुलावै है, कहै है—आओ, आओ; यहां ऐसा सुख है सो त्रिलोक में और ठौर दुर्लभ है। जीसू अब सुख आय भोगौ, आपना किया कर्तव्य का फल ल्यौ। बहुरि कोट्यां जाति के वादित्र बाजै हैं। अर नृत्य होय है, अर नाटिका होय है, अर अनेक कला, चतुराई वा हाव-भाव कटाक्ष करि देवांगना कोमल हैं शरीर जिनके, निर्मल है, सुगन्धमयी अर चन्द्रमा की किरण सू असंख्यात गुणा निर्मल प्रकाशमयी सुख है। बहुरि कैसी है देवागना? तीक्ष्ण कोकिला सारिखा कठ है अर मीठा मधुर वचन बोलै है अर तीखा मृग सारिखा बडा नेत्र है अर चीता सारिखा कटि है अर फटिक समान दांत हैं, ऊगता सूर्य-सी हथेली है वा पगथली है। बहुरि कैसी है देवागना? जैसे बारा बरस की राजपुत्री सोभै, तासौ असंख्यात गुणा अतुलित शोभा नै लिया आयुर्बल पर्यंत एक दशा रूप रहे हैं।

भावार्थ—या तरुण वा वृद्धपणा नै नाहिं प्राप्त होय है। ऐसा देव की बाल दशा सासती रहे है। बहुरि कैसी हैं देवांगना? मानूं सर्व खुसबोय[1] पिंड हैं, मानूं सर्व गुणा का समूह ही हैं, सर्व विद्या का ईश्वर हैं, सर्व कला-चतुराई का अधिपति हैं, सर्व लक्ष्मी का स्वामी हैं। अनेक सूर्य की

---

[1] खुशबू

कांति को जीते हैं, अनेक कामदेव करि शरीर निपजाया है। बहुरि कैसे हैं देव-देवो ? सो देव तो देवांगनानि के मनकूं हरै है अर देवागना देवनि के मन कू हरै हैं अर हंस की चाल कूं जीतै है। विक्रिया करि अनेक शरीर बनावै हैं, अनेक तरह सू नृत्य करै है ऐसो देवांगना। सो अनेक शरीर बनाय, देव युगपत् एकै काल सर्व देवागना नै भोगवै है। सो वे देव अनेक शरीर बनाय जुदे-जुदे महल विषैं सुगधमयी महा कोमल कोटिक चन्द्रमा-सूर्य के प्रकाश सादृश्य शातिमयी मन कू रजायमान करने वाले प्रकाश करि देदीप्यमान अनेक प्रकार कल्पवृक्षनि के फूलनि करि आभूषित ऐसी सेज्या ऊपरि देव तिष्ठै हैं। पीछै वे देवांगना अनेक प्रकार के भूषण पहरे जुदे-जुदे महल विषै जाय हैं। पीछै दूर ही देव कू हस्त जोडि तीन नमस्कार करै हैं। पीछै देव की आज्ञा पाय सेज्या ऊपरि जाय तिष्ठै है। पीछै देव कभी गोद में धारै हैं वा हस्तादि करि स्पर्शे है वा नृत्य करने की आज्ञा करै है। ता विषै ऐसा भाव (देवागना) ल्यावै है-हे प्रभु ! हे नाथ ! म्है काम करि दग्ध छा, ताकौ भोग-दान करि शात करो। आप म्हारे काम-दाह मेटिवा नै मेघ सादृश्य छो। बहुरि कबहुक देव का गुणानुवाद गावै है, कबहुक कटाक्ष करि जाती रहे हैं, कबहुक आनि इकट्ठी होय है, कबहुक पगा में लोटि जाय हैं, कबहुक बुलाय सू भी न आवै हैं, सो ये स्त्रियों का मायाचार स्वभाव ही है। मन में तो अत्यन्त चाहैं, बहुरि बाह्य अचाह दिखावै। बहुरि कबहुक नृत्य करती धरती सूं मुकि-

जाय हैं, आकाश मैं उडि जाय हैं वा चकफेरी[1] देहैं वा भूमि ऊपरि पगां कूं अतिशीघ्र चलावै हैं। कबहुक देव किसी निहारि मुलकि देहैं वा वस्त्र करि मुख आच्छादित करि देहै वा वस्त्र दूरि करि उघाडि देहै; जैसे चन्द्रमा कबहुक बादलां करि आच्छादित होय है, कबहुक बादलां करि रहित होय दिखाय देहैं। कबहुक देव-देवांगना ऊपरि फूलनि की मूठी[2] फेंकिये है सुगंध, वा अरगजा सू देवांगनानि का शरीर कू सीचे है। अथवा देवांगना देव ऊपरि फूल उछालि भय करि भागि जाय हैं, पीछै अनुराग करि देव के शरीर सू आनि लिपटै है, पीछै दूरि जाय दिखलाई देहैं। कबहुक इंद्र सहित बहु देवांगना मिलि चकफेरी देहै, कबहुक ताल, मृदंग, बीन बजाय देव नै रिझावै है, कबहुक सेज ऊपरि लोटि जाय हैं, कबहुक उठि भागै है। पीछै आकाश मैं तिष्ठि नृत्य करै है, मानू आकाश विषै बीजली-सो चमकै है अथवा आकाश विषै चन्द्रमा दोन्यू तारा की पंक्ति सोभै है। तैसे देव के साथ देवांगना सोभै है; अथवा चन्द्रमा के साथ चन्द्रिका गमन करती सोभै है, तैसे देव के साथ देवांगना गमन करती सोभै है। इत्यादि अनेक प्रकार की आनन्द क्रीडा करि देव-देवांगना मिलि कौतूहल करै हैं। बहुरि देवांगना नृत्य करती थकी पवन कू भूमि ऊपरि वा आकाश विषैं नेवर आदि पगां के गहने ताके झनकार सहित चलावै हैं सोई कहिये हैं—झिमि-झिमि, झिण-झिण, खिण-खिण, तिण-तिण आदि शब्द के समूह अनेक

---

१ चक्काकार घूमना २ मुट्ठी

राग ने लिया पगां के गहनां के शब्द होय रहे हैं; मानूं देव की स्तुति ही करै हैं। पीछे कोमल सिज्या ऊपरि देव का आलिंगन करै हैं; सो परस्पर पुरुष का संयोग करि ऐसा सुख उपजै है, मानू नेत्र मूंद करि सुख ने आचरै है—ऐसा सोभै है। अर तिर्यंच, मनुष्य को-सी नाईं भोग किया पाछै शिथिल नाहीं होय है, अत्यन्त तृप्ति होय है; मानूं पंचामृत पिये। बहुरि देव मै ऐसी शक्ति पाइये है, कबहुक तो शरीर नै सूक्ष्म करि लेहै, कोई समै शरीर कौ बडा करि लेहै, कबहुक शरीर कूं भारी करि लेहै, कबहुक आंखि का फरकवा मात्र असंख्यात जोजन चलै है, कबहुक विदेह क्षेत्र मै जाय श्री तीर्थंकर देव कौ बंदै हैं। अर स्तुति करै हैं—जय! जय! जय जय! जय भगवान जी! जय त्रिलोकीनाथ! जय करुणानिधि! जय संसार-समुद्र-तारक! जय परम वीतराग! जय ज्ञानानद! जय ज्ञानस्वरूप! जय मोक्ष-लक्ष्मी-कंत! जय आनन्दस्वरूप! जय परम उपकारी! जय लोकालोक-प्रकाशक! जय स्वभावमय मोदित! जय स्वपर-प्रकाशक! जय ज्ञानस्वरूप! जय चैतन्यधातु! जय अखंड सुधारस पूर्ण! जय ज्वलितमचलित ज्योति! जय निरन्जन! जय निराकार! जय अमूर्तिक! जय परमानन्द! जय परमानन्द के कारण सहज स्वभाव! जय सहज स्वरूप! जय सर्व बिघ्नबिनाशक! जय सर्वदोष-रहित! जय निःकलंक! जय परस्वभाव-भिन्न! जय भव्य जीव-तारक! जय अष्टकर्मरहित! जय ध्यानारूढ। जय चैतन्यमूर्ति! जय सुधारसमयी! जय अतुल! जय अविनाशी! जय अनुपम! जय स्वच्छ पिंड! जय सर्वतत्त्व

ज्ञायक ! जय अनंतगुणभंडार ! जय निज परिणति के रमणहार ! जय भवसमुद्र के तिरनहार ! जय सर्व दोष के हरनहार ! जय धर्मचक्र के धरनहार ! नहार हे देवजी ! पूरा देव थेई हो। अर हे प्रभुजी ! देवां का देव थेई हो। अर हे प्रभुजी ! आन मत के खंडन-हार थेई हो। अर हे प्रभुजी ! मोक्षमार्ग के चलाव देव थेई हो, भव्य जीवां नै प्रफुल्लित थेई करी। अर हे प्रभुजी ! जगत का उद्धार करवाने थेई हो, जगत का नाथ थेई हो, भव्य जीवां नै कल्याण के कर्ता थेई हो, दया-भंडार थेई हो। अर हे भगवानजी ! समोसरण सारिखी लक्ष्मी सौं विरक्त थेई हो। हे प्रभुजी ! जगत का मोहिवाने समर्थ थेई हो अर उद्धार करवानै समर्थ थेई हो। हे प्रभुजी ! थाका रूप देखि करि नेत्र तृप्त नाही होय हैं। अर हे भगवानजी ! आज की घडी धन्य है, आज का दिन धन्य है, सो म्है थाको दर्शन पायो। सो दर्शन करवा थको हूं कृत-कृत्य हुवो। अर पवित्र हुवो, कार्य करणो थो सो मै आज कियो। अब कोई कार्य करणो रह्यो नाही। अर हे भगवानजी ! थाकी स्तुति करि जिह्वा पवित्र भई अर वाणी सुनि श्रवण पवित्र हुवा अर दर्शन करि नेत्र पवित्र हुवा, अर ध्यान करि मन पवित्र हुआ, अष्टांग नमस्कार करि सर्वांग पवित्र हुवा। अर हे भगवान जी ! मोनै एता प्रश्न का उत्तर कहो। आपका मुखारविंद सौ सुन्या चाहूं हो। हे प्रभुजी ! सप्त तत्त्व का स्वरूप कहो अर चौदह गुणस्थान, चौदह मार्गणा का स्वरूप कहो अर मूल अष्ट कर्म का स्वरूप कहो वा उत्तर कर्मां का स्वरूप कहो। हे

स्वामी ! प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग ताका स्वरूप कहौ। अर हे स्वामिन् ! काल वा लोकालोक का स्वरूप कहौ अर मोक्षमार्ग का स्वरूप कहौ। अर हे स्वामी ! पुण्य-पाप का स्वरूप कहौ। अर हे स्वामी ! च्यारु गत्या का स्वरूप कहौ, जीवां की दया-अदया का स्वरूप कहौ, देव-धर्म-गुरु का स्वरूप कहौ। अर हे स्वामी ! हे नाथ ! सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का स्वरूप कहौ अर ध्यान का स्वरूप कहौ अर आर्तध्यान, रौद्रध्यान का स्वरूप कहौ अर धर्मध्यान, शुक्लध्यान का स्वरूप कहौ। अर हे भगवानजी ! हे प्रभुजी ! ज्योतिष, वैद्यक, मत्र, यंत्र वा तंत्र का स्वरूप कहौ वा चौसठ रिद्धया का स्वरूप कहौ अर तीन सै तरेसठ कुवाद का धारका का स्वरूप कहौ। और बारह अनुप्रेक्षा का स्वरूप कहौ अर दशलक्षणी धर्म अर षोडश भावना का स्वरूप कहौ। अर सप्त नय अर सप्त भगी बानी, तात्त्वा वा द्रव्या का सामान्य गुण वा विशेष गुण ताका स्वरूप कहौ वा अधोलोक व मध्यलोक, ताकी रचना का स्वरूप कहौ वा द्वादशांग का स्वरूप कहौ वा केवलज्ञान का स्वरूप कहौ, यानै आदि दे सर्व तत्त्व का स्वरूप को जाण्या चाहूं हूँ। अर हे भगवान ! नर्क किसा पाप करि जाय, तिर्यंच किसा पाप करि होय, मनुष्य किसा परिणाम सौं होय, देव पर्याय किसा पुण्य करि पावै सो कहो, निगोद क्या करि जाय ? विकलत्रय क्या करि होय, असैनी किसा पाप करि होय, सम्मूर्च्छन, अलब्ध पर्याप्तक स्थावर किसा खोटा परिणाम करि होय, आंधो, बहरो, गूंगो, लूलो, किसा

पाप करि होय, बावलो[1] कूबरो[2], विकलांगी, अधिक अंगो, किसा पाप करि होय, कोढी, दोर्घ रोगी, दारिद्री, कुरूप शरीर, किसा पाप करि होय, मिथ्यात्ती, कुविसनो, अज्ञानी, अभागी, चोर, कषायी, जुवारी, निर्दयी, अक्रिया-वान, धर्म सू परान्मुख, पाप कार्य विषैं आसक्त, अधोगामी किसा[3] पाप करि होय ? बहुरि शीलवान, संतोषी, दया-वान, सयमी, त्यागी, वैरागी, कुलवान, पुण्यवान, रूपवान, किसा पुण्य करि होय ? निरोगी, बुद्धिवान, विचक्षण, पंडित, अनेक शास्त्रां के पारगामी, धीर, साहसिक, सज्जन, पुरुषां के मनमोहन, सबको प्यारो, दानेश्वरी. अरहन्त देव का भक्त, सुगतिगामी किसा पुण्य करि होय ? इत्यादि इन प्रश्ना का दिव्यध्वनि करि याका स्वरूप सुन्या चाहूं हूं । सो मो परि अनुग्रह करि दया बुद्धि करि मेरे ताई कहौ । अहो भगवानजी ! म्हारा पूर्वला भव अर अनागत भव कहौ । अर हे भगवानजी ! म्हारे ससार केतो[4] बाकी है अर कदि दीक्षा धरि अर था सारिखो कदि होस्यौ, सो मोनै यथार्थ स्वरूप कहौ । म्हारे याका जाणिवा की घणी वाछा-अभिलाषा छै । ऐसा प्रश्न पाय श्री भगवानजी की बानी खिरती हुई अर सर्व प्रश्न का उत्तर एक साथ ज्ञान में भासता हुवा; ताकौ सुन करि अत्यन्त तृप्त हुवा, पाछै आपनै स्वर्ग स्थानक नै जाता हुवा; पाछै फेरि कबहुक[5] ये नदी-श्वर द्वीप मे जाय, वहा का चैत्याला वा प्रतिमाजी पूजे हैं । कबहुक अनेक प्रकार का भोगा नैं भोगवै हैं, कबहुक सभा विषै सिंघासन ऊपरि बैठि राज-कार्य करै है, कबहुक धर्म-

---

१ बौना २ कुबड़ा ३ किस ४ कितना ५ कभी

रक्षा करै हैं; कबहुक च्यारि जाति वा सात जाति की सैन्या सजि भगवान का पंच कल्याणक विषै जाय हैं वा वनादिक विषै वा मध्यलोक विषै क्रीडा करिवानैं जाय हैं। बहुरि वहां ऐसा नाटक होय है–कबहुक देवांगना देव का अंगुष्ठ ऊपरि नृत्य करै है अर कबहुक हथेली ऊपरि नृत्य करै है, कबहुक भुजा ऊपरि नृत्य करै है, कबहुक आंख की भौंह ऊपरि नृत्य करै है, कबहुक देवांगना आकाश मैं उझकि[1] जाय है, कबहुक धरती माहि डूबि जाय है, कबहुक अनेक-अनेक शरीर बनाय लेहै, कबहुक बाल होय जाय, कबहुक देव की स्तुति करै है। कांई स्तुति करै है ? हे देव ! थानै देखिवा करि नेत्र तृप्त नाहीं होय है। अर हे देव ! थाका गुण चितवन करि मन तृप्त नाहीं होय है। अर हे देव! थाका सयोग को अन्तर कबहु मति पडो। थाको सेवा जयवंती प्रवर्तो। थे महान कल्याण का करता हो अर थे जयवता प्रवर्तो। अर थे म्हाका मनोवाछित मनोरथ पूरो। बहुरि कैसे हैं देव अर देवांगना ? जाके नेत्र टमिकारवो[2] नाही, शरीर की छाया नाही, अर क्षुधा नाही, तृषा नाही। हजारा वर्ष पाछै किंचित् मात्र क्षुधा-तृषा लागै है, सो मन ही करि तृप्ति होय है। अर केई देव मद सुगध पवन चलावै हैं अर केई देव वादित्र बजावैं हैं अर केई देव खसबोयमयी जल का कण बरसावै है अर केई इंद्र ऊपरि चमर ढोरै हैं। कैसे हैं चमर ? मानूं चमर का मिस करि नमस्कार ही करै हैं, ऐसे सोभै हैं। अर केई छत्र लिया हैं अर केई देव अनेक आयुध ले करि

---

१ उचक २ झँपना ३ भीतरी

दरवाजे तिष्ठें हैं। अर केई देव माहिलीर[2] सभा विषै तिष्ठै हैं, केई देव मध्य की सभा विषें तिष्ठे है अर केई देव बारिली[1] सभा विषै तिष्ठै हैं अर केई देव विही होसी। देखो या विमान की सोभा अर देखो देव वा देवांगना की सोभा अर देखो राग वा नृत्य वा वादित्र वा सुगध उत्कृष्ट आवै है। सो सोभा आनि एकठो हुई है। कैसो एकठा हुई है। कठै ही तो देव मिलि गान करै हैं, कठै ही देव क्रीडा करै है, कठै ही देवांगना आनि एकठी हुई है कि मानूं सूर्य, चंद्रमा, नक्षत्र, ग्रह तारा को पक्ति एकठी होय दशो दिशा प्रकाशित कीनी है : केईक देवागना रत्नां का चूर्ण करि मगलीक साथ्या पूरै है, अर केई देवागना मीठा स्वर सूं गावै है, अर केई मगल गावै है, मानूं मगल के मिस करि मध्यलोक सू धर्मात्मा पुरुषानि कू बुलावै है। कोई देवागना देव पासि हाथ जोडे ऊभी है, कोई देवागना हाथ जोडि देव की स्तुति करै है, कोई देवांगना देव का तेज-प्रताप नै देखि भयमान होय है, कोई देवागना थर–थर धूजती जाय अर हाथ जोडि मधुर-मधुर हलवै-हलवै[2] बोलती जाय है। अर कठै ही देवागना या कहै है—हे प्रभो! हे नाथ! हे दया–मूर्ति! क्रीडा करिवा चालौ अर म्हानै तृप्त करो। बहुरि कैसा है स्वर्ग ? कठै ही तो धूप करि फैला है सुगधता, कठै ही पन्ना सादृश्य हरियाली करि सोभित है, कठै ही पुष्प वाडी करि सोभित है, कठै ही भंवर का हुकार करि सोभित है, कठै ही चंद्रकात शिला करि सोभित है, कठै ही कांच सादृश्य निर्मल शिला भूमिका

---

1 बाहर की 2 होले-होले, धीरे-धीरे

सोभै है, मानूं जल के दरियाव ही हैं, ताके अवलोकन करते ऐसी संका ऊपजै है मति या विषैं डूबि जाय। बहुरि कठै रत्नां सारिखी हरी शिलाभूमि सोभै है। कठै माणिक सारिखी लाल सोना सारिखी पीत भूमि वा सिला सोभै है, कठै ही तेल करि मथ्या काजल सादृश्य वा काली बादली की घटा सादृश्य भूमि सोभै है, मानूं पाप के भय करि छिपि रहिवानै अंधकार की माता ही है, इत्यादि नाना प्रकार के रत्न लिया, स्वर्गां की भूमि का देव ताके मन कूं रजायमान करैं हैं। अर सर्वत्र पन्ना सारिखी है अर अमृत–सा मीठा, रेसम-सा कोमल, चंदन सारिखो सुगंध, सावन-भादवा की हरियाली सादृश्य पृथ्वी सोभै है, सदा एक-सी रहै है। बहुरि जायगा ज्योतिषी देवनि के विमान सादृश्य उज्जल आनन्द मंदिर वा सिला वा पर्वत के समूह बणि रहे हैं, ता विषैं देव तिष्ठै हैं। कठै ही स्वर्ण-रूपा के पर्वत सोभै हैं, कठै ही वैडूर्य मणि, पुखराज लहसनिया, मोतिन के समूह नाज के ढेर वत् परै हैं। बहुरि कठै ही आनंद-मण्डप हैं, कठै ही क्रीडा–मंडप हैं, कठै ही चरचा-मंडप है, कठै ही केलि करने का निवास है, कठै ही ध्यान धरने का स्थानक है, कठै ही चित्रामवेलि है, कठै ही कामधेनु है, कठै ही रस-कूपिका के कुंड भर्‍या है, कठै ही अमृत के कुंड भर्‍या है अर कठै ही नव निधि परी है, कठै ही हीरा के ढेर परै है, कठै ही माणिक का समूह है, कठै ही पन्ना की ढेरी हैं, कठै ही नीलमणि आदि मण्या का ढेर परै है, यानै आदि दे करि अनेक प्रकार के

रत्नानि करि विमान व्याप्त होय रह्या है। बहुरि सरबोय का अनेक वादित्र का राग करि विमान व्याप्त हैं। सो यानै आदि दे सुख-सामग्री स्वर्ग विषैं पाइये है। सो स्वर्ग लोक का सुख वर्णन करिवाने समर्थ श्रीगणधरदेव भी नाहीं, केवलज्ञानगम्य है। सो यो जीव धर्म का प्रभाव करि सागरां पर्यंत ऐसा सुख नै पावै है। जासूं हे भाई! तू धर्म का सेवन निरंतर करि, धर्म बिना ऐसा भोग कदापि पावै नाही। तासो अपना हेत का वांछिक पुरुष है ज्यानै, धर्म परम्पराय मोक्ष नै कारण है सो ऐसा सुख नै भी आयुर्बल नै भी पूरा करि, उठा सूं भी पूरा करि चवै है। सो छह मास आयु का बाकी रहे है, तब वह देवता अपने मरण कूं जानै है। सो माला वा मुकुट वा शरीर की कांति ताकी जोति मंद पडिवा थकी, सो देव मरण जानि बहुत झूरे है। हाय! हाय! अबै हूं मरि जास्यूं, ये भोग-सामग्री कौन भोगसी? अर हूं किसी गति जास्यौ? मूनै राखिवा समर्थ कोई नाही! अब हूं काईं करूं, कौन के सरनै जाऊं? म्हारो दरद काहू कूं नाहीं, म्हारा दु:ख की बात कौन नै कहूं? ये भोग सारा म्हारा वैरी था, सो सब मिलि एकठा मोनै दु:ख देवा आया है, सो ये नर्क सारिखो मानसिक दुःख कैसे भोगूं? कहां तौ स्वर्ग सारिखा सुख, अर कहा एकेंद्री पर्याय आदि का दु:ख? सो कौडी सारे अनंता जीव बिके है अर कुहाड्या[1] सूं छिदै हैं अर हांडी में घालि रांधै हैं। सो ऐसी पर्याय कूं हूं जाय प्राप्त होस्यौ। हाय! हाय! यह कौन अनर्थ? ऐसान की ऐसी दशा होय

---

[1] कुल्हाडी

जाय। बहुरि अपने परिवार के देवनि सूं कहै है—हे देव! आजि मेरे परि जम के किंकर काल कोप्यो है। सो नवो सूं ऐसा सुर पदवी का सुखा सूं छुडावै है अर खोटी गति को प्राप्त करें है सो थे मोनै अब राखो। ई दुःख राहुवाने हूं समर्थ नाहीं। घणी कांई कहू ? म्हारा दुःख की बात सर्वज्ञ देव जानै है और जानिवा समर्थ कोई नाही। तब परिवार का देव कहता हुवा—ऐसा दीनपना का वचन क्यों कहै है ? या दशा सारा ही मैं होती है। सो काल सौ काहू को जोर नाही। ई काल के वसि समस्त लोक का जीव है। जीसौं अबै एक धर्म की शरण है। सो धर्म को सरणो ही गहौ अर आर्तध्यान छोडौ। आर्तध्यान सूं खोटी तिर्यंच गति पावै हैं अर परम्पराय अनन्त ससार विषै भ्रमण करै है। तासौ अब ताईं कांई गयो नाही। अब ही आपु सभालो, सावधान होहु अर अपना सहजानंद को सभाल करौ, स्वरूप पीवौ; ज्या सू जन्म-मरण का दुःख विलै जाय अर सासता सुख नै पावो। ई ससार सूं श्री तीर्थंकरदेव भी डर्या; डरपि करि राज-सपदा नै छोडि वन के विषै जाय वस्या। तीस्यो थानै भी यौ कार्य करनौ उचित छै, दरेग[1] करनौ उचित नाही। सो अबै वे देव ई उपदेश नै पाय अर कितेक दिन ताईं श्रीजी की पूजा करता हुवा। पाछैं वारंवार श्रीजी नै याद करता हुवा अर धर्म ही विषैं बुद्धि राखता हुवा अर वारा[2] अनुप्रेक्षा का चितवन करता हुवा। कांई चितवन करता हुवा ?

बारह भावना

देखो, भाई! कुटुम्ब परिवार है सो बादला की नाईं

---

१ छल कपट २ बारह

चिलै जासी अथवा दशों दिशा सूं सांझ समै पंछी आय वृक्ष ऊपरि विश्राम लेहै, पाछै प्रभात उडि जाय है अथवा हाट विषें वा मेला विषें अनेक व्यापारी वा तमासगीर आनि एकठा होय, पाछै दोय-च्यारि दिन में जाता रहे हैं; त्यों ही कुटुम्ब परिवार है। अर माया है सो बिजली का चमत्कार समान चंचल है अर जोवन है सो ओस की बूंद समान है। अर आयुबंल अंजली का जल समान है सो यानै आदि देय सर्व ठाठ विनासीक है, क्षणभंगुर है, कर्म-जनित है, पराधीन है। ई सामग्री मै म्हारो कोई भी नाहीं। म्हारो चैतन्य स्वरूप सासतो अविनासी है। हू कुणी[1] का सोच करू? और अबै असरनप्रेक्षा कौ चितवन करै है—

अशरण अनुप्रेक्षा—देखो, भाई! ससार के विषै देव वा विद्याधर वा इंद्र-धरणेंद्र वा नारायण-प्रतिनारायण वा बल-भद्र वा रुद्र वा चक्रवर्ती वा कामदेव याने आदि दे कोई सरण नाही। ये भी सारा काल के वश है तो और कौन नै सरणे राखै? ज्यास्यों बाह्य तो मोनै पच परमेष्ठी सरण छै। अर निश्चै म्हारो निज रूप सरण है; और सरणो मू नै[2] त्रिकाल में नाहीं।

संसार अनुप्रेक्षा—अबै ससार अनुप्रेक्षा को चितवन करै है। देखो, भाई! यो जीव मोह के वशीभूत भूल करि यों ही ससार के विषैं किसा-किसा दुःख नै सहै है? कदी तो नर्क जाय है, कदी तिर्यंच मैं जाय हैं, कदी मनुष्य ते देव मैं जाय है। ई भांति संसार सौं उदासीन होय, निश्चै-व्यवहार

---

[1] किस [2] मुझको

धर्म ही को निरंतर सेवन करनो।

एकत्व अनुप्रेक्षा–अबै एकात्वानुप्रेक्षा को चितवन करै है। देखो, भाई यो जीव तो अकेलो है। ईकै कुटुंब-परिवार है नाहीं। नर्क में गयो तो अकेलो, अैठे आयो तो अकेलो, अैठा सो जासी तो अकेलो। तीस्यो म्हारै अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख, अनंत वीर्य यो परिवार सासतो है, सो म्हारी लार है।

अन्यत्व अनुप्रेक्षा–अबै अन्यत्वानुप्रेक्षा को चितवन करै है। देखो, भाई! ये छहू द्रव्य अनादि काल का भिन्न-भिन्न न्यारा-न्यारा एक क्षेत्र अवगाह भेले तिष्ठै हैं। कोई द्रव्य काहू सू मिलै नाही, ऐसा अनादि वस्तु का स्वभाव है, तामे संदेह नाही। मै चैतन्य स्वरूप अमूर्तिक अर यो शरीर जड मूर्तिक तासू मैं कैसे मिल्या? ईको स्वभाव न्यारो, म्हारो स्वभाव न्यारो; ईका प्रदेश न्यारा, म्हारा प्रदेश न्यारा; ईका द्रव्य-गुण-पर्याय न्यारा, म्हारा द्रव्य-गुण-पर्याय न्यारा सो मैं ई सो अभिन्न कैसे? त्रिकाल भिन्न हू।

अशुचि अनुप्रेक्षा–अबै अशुच्यानुप्रेक्षा को चितवन करै हैं। देखो, भाई! यो शरीर यहु अशुचि है अर घिनावनो है। एता दिन ई शरीर नै पोषता हुवा, काम पड्यो तब दगा ही दिया। ई शरीर सारा द्वीप, समुद्र का पानी सो पखालिये अर धोइये तो भी पवित्र नाही होय। यो जड अचेतन को अचेतन ही रहै। तीसौं बुधजन ऐसा शरीर सो कैसे प्रीति करै? कदाचि नाहीं करै।

आस्रव अनुप्रेक्षा–अबै आस्रवानुप्रेक्षा को चितवन करै

है। देखो, भाई! मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग के द्वार कर्मों का द्रव्यत्व आस्रव करि संसार-समुद्र विषै डूबै है। कैसे डूबै है? जैसे जहाज छिद्रां करि युक्त समुद्र विषै डूबै है, तैसे डूबै है।

संवर अनुप्रेक्षा—अबै संवरानुप्रेक्षा को चिंतवन करै है। देखो, भाई! तप, संयम, धर्म-ध्यान करि संवर होय है। जैसे जहाज का छिद्र मूंदे जल आवता रहि जाय है, तैसे कर्म आवता रहि जाय है।

निर्जरा अनुप्रेक्षा—अबै निर्जरानुप्रेक्षा को चिंतवन करै है। देखो, भाई! आत्मा का चिंतवन करि पूर्वला कर्म नाश कूं प्राप्त होय है। जैसे जिहाज माहिला पानी उच्छेद किया हुवा जिहाज कूं पार करै है, तैसे आत्मा कूं कर्म रूपी बोझ सूं हलको करि आत्मा मुक्ति को प्राप्त करै है।

लोक अनुप्रेक्षा—अबै लोकानुप्रेक्षा को चिंतवन करै है। देखो, भाई ये त्रिलोक षट् द्रव्य का बन्या है अर कोई कर्ता नाहीं। या षट् द्रव्य मिलि त्रैलोक कूं निपजाया है।

धर्म अनुप्रेक्षा—अबै धर्मानुप्रेक्षा को चिंतवन करै है। देखो, भाई! धर्म ही संसार में सार है। धर्म ही आपनो मित्र है; धर्म ही आपनो सज्जन है; धर्म बिना कोऊ हितु नाहीं, जासूं धर्म ही का साधन करो। अब धर्म ही आराधनो। जेता त्रिलोक विषै उत्कृष्ट सुख है सो धर्म ही का प्रसाद करि पावै है अर धर्म ही करि मुक्ति पावजे है। सो धर्म ही म्हारो निज लक्षण है, म्हारो निज स्वभाव है, सोई मोनै ग्रहण करनो, औरां करि कांई?

बोधि दुर्लभ अनुप्रेक्षा—अगै बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा को चितवन करै है। देखो, भाई ! संसार विषै एकेंद्रिय पर्याय सूं बेंद्रिय पर्याय दुर्लभ है। बेंद्री सौ तेंद्री, तेंद्री सौ चौइंद्री, चौइंद्री सौ असैनी पंचेंद्री, असैनी सौ सैनी पंचेंद्री, तामें भी मनुष्य पर्याय अर मनुष्य पर्याय मे भी धर्म की सगति; धर्म का संयोग है सो दुर्लभ सौ दुर्लभ जानना। तामैं भी सम्यग्ज्ञान महादुर्लभ जानना। ऐसे वह देव भावना भावता हुवा, पाछै आयुबंल पूरी करि मनुष्य पर्याय मैं उच्च पद पावता हुवा। अर धर्म ही ससार मे सार है। धर्म समान और हितु नाही, और मित्र नाही। तासौं शीघ्र ही पाप कार्य छोडि वामैं ढील मति करो। अपना हेत का वांछक पुरुष धर्म ही की वांछा राखो, धर्म ही को सरण गहो। घणी कहिवा करि कहा ? ऐसे श्रीगुरु प्रश्न का उत्तर दिया। अर उपदेश कह्या, आशीर्वाद दिया। ये शुभ भाव को ज्ञाता जानै है। भूलि-चूक होय तो शास्त्र माफिक जानना। अर बुधजन याको शुद्ध करि लेना, मम दोष नाही। इति स्वर्गन का सुख वर्णन संपूर्ण।

समाधिमरण का स्वरूप

अंठा आगै अपने इष्टदेव को नमस्कार करि अंतिम समाधिमरण ताका स्वरूप वर्णन करिये है। सो हे भव्य ! तू सुनि सो ही लक्षण अबै वर्णन करिये है। सो समाधि नाम निःकषाय शांत परिणाम का है, ऐसा याका स्वरूप जानना। आगै और विशेष कहिये है। सो सम्यग्ज्ञानी पुरुष है, ताका यह सहज स्वभाव ही है। सो समाधिमरण ही

को चाहे। ऐसी निरंतर सदैव भावना वर्तै है। पाछे मरण को औसर[1] निकट आवै है तब ऐसा सावधान होय है। मानूं सूता[2] सिंघनै काहू पुरुष ने ललकार किया है। हे सिंघ! अपना पुरुषार्थ करो। था ऊपरि वैर्‌या की फौज आनि प्राप्त भई है। सो गुफा बाह्य सिताबी[3] निकसो। जेते वैर्‌या का वृंद कहिये समूह केताक दूरि है, तेते निकसि वैर्‌या की फौज नै जीतौ। महंत पुरुषा की यह ही रीति छै। सो उठते पहली उत सूं[4] ऐसा वचन वे पुरुष का सुनि सार्दूल, सिंघ तत्क्षण उठतो हुवो अर ऐसी गुंजार करतो हुवो। मानूं असाढ के महीने इंद्र ही धडूक्यो[5]। सो ऐसा सिंघ की गुंजार सुनि वैर्‌या की फौज विषैं हस्ती, घोडा, कंपायमान भया आगानै पैड न धारता हुवा। कैसा है? सो हस्त्या का समूह त्या का हृदै विषैं सिंघा का आकार पैठि गया है। सो हस्ती धीरज नाही धरै है। क्यों नाहीं धरै है? खिण[6]-खिण मैं नीहार करै है, ता परि सिंघ का पराक्रम सह्या नाही जाय है। त्यों ही सम्यग्ज्ञानी पुरुष सोई भया शार्दूल, सिंह ताके अष्टकर्म सोई भया बैरी सो मरण समै विषथा का विशेषपने जीतिवा को उद्यम करै है। सो ऐसा कर्मा का अनुसार जानि सम्यग्ज्ञानी पुरुष है ते सिंघ की नाईं सावधान होय है। अर कायरपना नै दूरि ही तै छांडै है। बहुरि कैसा है सम्यग्ज्ञानी पुरुष? त्या का हृदय विषै आत्मस्वरूप दैदीप्यमान प्रगट प्रतिभासै है। कैसा प्रतिभासे है? ज्ञान ज्योति नै लिया आनंद रस करि झरतो ऐसा साक्षात् पुरुषाकार अमूर्तिक चैतन्य धातु

---

१ अवसर २ सोते हुए ३ शीघ्र ४ उधर से ५ गरजा है ६ क्षण

को पिंड, अनंत गुणा करि पूरित ऐसा चैतन्यदेव आप कौ जानै है। ताका अतिशय करि पर द्रव्य सौ अंस मात्र भी रंजित कहिये रागी नाही होय है। क्यों नाहीं होय है? आपना निज स्वरूप तौ वीतराग, ज्ञाता-द्रष्टा, पर द्रव्य सौ भिन्न, सासता, अविनाशी जान्या है। अर पर द्रव्य का गलन, पूरन, क्षणभंगुर, असासता अपने स्वभाव सौ भिन्न भलीभांति नीके जान्या। तातैं सम्यग्ज्ञानी पुरुष मरण सौ कैसे डरे? सो सम्यग्ज्ञानी पुरुष मरण समै का मौसर विषै कोई भावना भावै अर कोई विचारै। ऐसा जानै है-अबै ई शरीर का आयुर्बल तुच्छ है, ये चिह्न मोनै प्रतिभासै है, तातैं मोनै सावधान होना उचित है; ढील करना उचित नाही। जैसै सुभट रण-तूर-भेरी बाज्या पाछै भेर्‌या ऊपरि चढिवा की ढील क्षण मात्र भी नाही करै है, वीर रस चढि आवै है। कद्या[१] जाय वैर्‌या सौ भिडा अर कद्या वा वैर्‌या का समूह नै जीता-ऐसा जाका अभिलाषा जागि रह्या है। त्यौं ही म्हारै भी अबै काल का जीतिवा का अभिप्राय है। सो हे कुटुंब-बंधु! परिवार के तुम सुनौ। अहो देखो! इस पुद्‌गल पर्याय का चरित्र सो आंख्या देखता ही उत्पन्न भया अबै विलै जायगा। सो मै तौ पहली ही याका स्वभाव विनाशीक जानै था। सोई अबै यह आनि मौसर प्राप्त भया। सो अबै ई सरीर का आयु तुच्छ रह्या है। तामै भी समय-समय गलता जाय है सो मै ज्ञाता-द्रष्टा हुवा देखू हू अर मैं याका पडौसी हूं। सो अबै देखू ई शरीर को आयुर्बल कैसे पूर्ण होय अर कैसै शरीर का नाश होय? सो मैं ताकि[२]

---

१ कभी तो २ टकटकी लगाकर

रह्या हूं अर तमासगीर हुवा चरित्र देखूं हूं सो ये अनंत पुद्गल की परमाणु एकठी होय पर्याय कूं निपजाया है वा निर्मापा है अर कोई शरीर जुवा ही पदार्थ नाहीं । अर मेरा स्वरूप तो एक चैतन्य स्वभाव सासता अविनाशी है, ताकी अद्भुत महिमा है सो मैं कौन को कहूं ? बहुरि देखो इस पुद्गल पर्याय का माहात्म्य सो अनंत परमाणु का एक-सा परिणमन एता[1] दिन रह्या सो बडा आश्चर्य है । अबै यह पुद्गल परमाणु वा भिन्न-भिन्न अन्य स्वभाव कूं अन्य रूप परिणमे लागी, तब यह आश्चर्य नाहीं । जैसे लाखों[2] मनुष्य एकठा होय है 'मेला' नाम पर्याय कूं निर्मापे है अर केतायक दीर्घ काल पर्यंत ये मेला नाम पर्याय रहे है तो याका आश्चर्य गनिये ? एता दिन लाखां मनुष्य का परिणमन एक-सा रह्यो-ऐसा विचार देखने वाला पुरुष आश्चर्य मानै है । पाछै वे मनुष्य जुदा-जुदा दशों दिशा नै गमन करि जाय हैं तब मेला का नाश होय है । सो एता पुरुषा का अन्य-अन्य रूप परिणमन सो तौ याका स्वभाव ही है । याका आश्चर्य कैसे गनिये ? त्यौं ही अबै ये शरीर और प्रकार परिणमे है तो अबै ये थिर कैसे रहसी ? अबै ई शरीर पर्याय का राखिवा नै कोई की सामर्थ्य नाहीं । सोई कहिये हैं । जेतेक त्रिलोक विषैं पदार्थ हैं सो अपना-अपना स्वभाव सू परिणमे हैं; कोई किसी को परणामे नाही; कोई किसी का कर्ता नाहीं अर कोई किसी का भोक्ता नाहीं । आप आवे, आप जावे, आप मिले, आप बिछुरे, आपै गलै, आपै पूरै सो मैं इसका कर्ता, इसका भोक्ता कैसे ? अर मेरा राख्या शरीर कैसे रहे ? अर मेरा दूरि करया शरीर कैसे

---

१ इतने   २ लाखों

दूरि होय ? मेरा क्यौ कर्तव्य है ही नाहीं, झूठे कर्ता मानै है। मैं तो अनादिकाल का खेद-खिन्न, आकुल होय महा दुःख पावै था। सो यह बात न्याय ही है। जाका कर्तव्य तो क्यौ चलै नाहीं, अे पर द्रव्य का कर्ता होय। पर द्रव्य कूं आपके स्वभाव के अनुसार परिणमावै ते दुःख पावै ही पावै। तातैं मैं एक ज्ञायक स्वभाव ही का कर्ता हौं अर ता ही का भोक्ता हौं अर ताही कू वेदूं हूं वा ताहि को अनुभवौ हौं। सो ई शरीर के जाते मेरा कछु भी बिगाड नाही अर शरीर के रह्या ते मेरे कछु भी सुधार नाहीं। या शरीर विषै या जाणपणा का चमत्कार है। सो तो मेरा स्वभाव है, ई शरीर का स्वभाव नाहीं। शरीर तो प्रत्यक्ष मुरदा है। मैं शरीर माहि सौ निकस्या अर शरीर को मुरदा जानि दग्ध किया। मेरे ही मुलाहजे ई शरीर का जगत आदर करै है। जगत के ताईं सो खबरि नाही। सो आत्मा न्यारा है अर शरीर न्यारा है। तातैं ये जगत भरम बुद्धि करि ई शरीर को अपना जानि ममता करै हैं। अर याके जाते बहुत झूरै हैं अर विशेष शोक करै हैं। काई शोक करै हैं ? हाय ! हाय ! म्हारा पुत्र तू कहां गया ? अर हाय ! हाय ! म्हारा पति तू कहाँ गया ? अर हाय ! हाय ! पुत्री तू कहां गई ? अर हाय ! हाय ! माता तू कहां गई ? अर हाय ! हाय ! पिता तू कहां गया ? हाय ! हाय ! इष्ट भ्राता तू कहां गया ? इत्यादि अनेक विरह का विलाप करि अज्ञानी जीव इस पर्याय कू सत्य जानि करि झूरै है अर महा दुःख-क्लेश कू पावै हैं अर ज्ञानी पुरुष ऐसे विचारै है—अहो ! कुणी[१] का पुत्र, कुणी की पुत्री, कुणी का पति कुणी की स्त्री, कुणी की माता, कुणी का पिता अर कुणी

की हवेली, कुणी का मंदिर, कुणी का धन, कुणी का राज्य, कुणी का आभूषण, कुणी का वस्त्र इत्यादि सर्व ठाकनी दीखती तौ बहुत रमणीक-सी लागी, परन्तु वस्तु-स्वभाव विचारता ये क्या भी नाहीं। जो वस्तु होती, तो वह थिर रहती, नाश को क्या नै प्राप्त होती? तीस्यौ मैं ऐसा जानि सर्व त्रिलोक विषे पुद्गल का जेतायक पर्याय है ताका ममत्व छाडू हूं; तैसे ही ई शरीर का ममत्व छोडूं हूं। शरीर के जाता मेरे परिणाम विषें अंश मात्र भी खेद नाहीं। ये शरीरादि सामग्री है सो चाहे ज्यौं परिणमो, मेरा कुछ भी प्रयोजन नाही; भावै छीजो, भावै भीजो, भावै प्रलय नै प्राप्त हो; भावै अब आनि मिलो, भावै जाती रहो, म्हारो क्यो भी मतलब नाही? अहो! देखो मोह अर स्वभाव प्रत्यक्ष, यह सामग्री पर वस्तु है अर तामैं भी विनाशीक है। पर भव विषें वा ई भव विषें दुखदायी है। तो भी यह संसारी जीव आपनी जानि रक्षा ही करै है। सो मैं ऐसा चरित देखि ज्ञाता-द्रष्टा भया हू। मेरा एक छोछा ज्ञान स्वभाव है ता ही को अवलोको हौं। अर काल का आगमन देखि मैं नाहीं डरूं हूं। काल तो या शरीर का लागू है, मेरे लागू नाही। जैसे माखी दौडि-दौडि मिष्टादि वस्तुनि विषें ही जाय-जाय बैठे है, पणि अग्नि विषें कदाचि बैठे नाहीं; त्यौं ही ये काल दौडि-दौडि शरीर को ग्रसीभूत करै है अर मो सूं दूरि-दूरि ही भाजे है। मैं तो अनादि काल का अविनाशी चैतन्यदेव लोकनि करि पूज्य इसा पदार्थ ता विषें काल का जोर नाहीं। सो अबै कौण मरै अर कौण जीवै अर कौण मरण का भय करै। मोनै तो

मरण दीसता नाहीं । मरे छै सो पहल्या ही मूवा था । अर जीवे है सो पहली ही का जीवे है सो मरे नाहीं । मोह दृष्ट करि अन्यथा भासै था सो अबै मेरा मोह कर्म विलै गया। सो जैसा वस्तु का स्वभाव छा, सो ही मोनै प्रतिभास्या । ता विषै जामन-मरण अर सुख-दुःख देख्या नाहीं तौ अबै मैं काहे का सोच करूं ? मैं एक चैतन्य धातुमयी मूर्ति सासता बन्या हूं । ताका अवलोकन करता मरणादिक को दुःख कैसे व्यापै ? बहुरि कैसा हू मैं ? ज्ञानानंद निज रस करि पूर्ण भर्‌या हूं अर शुद्धोपयोगी हू वा ज्ञान रस नै आचरूं हूं वा ज्ञान-अंजुलि करि शुद्धामृत नै पीवूं हूं । निज शुद्धामृत मेरा सुभाव थकी उत्पन्न भया है, तातै स्वाधीन हैं, पराधीन नाही; तातैं ताका भोग विषै खेद नाही । बहुरि कैसा हूं मै ? अपने निज स्वभाव विषै स्थित हूं, अडोल हू , अकंप हूं । बहुरि कैसा हूं मे ? स्वरस करि निर्भर-कहिये अतिशय करि भर्‌या हूं, अर ज्वलित कहिये दैदीप्यमान ज्ञान-ज्योति करि प्रगट अपने ही निज स्वभाव विषैं तिष्ठी हू । देखो, अद्भुत ई चैतन्य स्वरूप की महिमा ताका ज्ञान स्व-भाव विषै समस्त ज्ञेय पदार्थ स्वयमेव आय झलके हैं । पणि ज्ञेय रूप नाही परिणमे हैं अर ताके जाणता विकल्पता अंश मात्र भी नाहीं होय है । तातै निर्विकल्प, अभोगित, अतीं-द्रिय, अनोपम्य, बाधा रहित है तो अखंड सुख उपजै है सो ये सुख ससार विषै दुर्लभ है । सुख की आभा-सा अज्ञानी जीवा कौ भासे है । बहुरि कैसा हूं मै ? ज्ञानादि गुण करि पूर्ण भर्‌या हूं । त्या गुणादि गुणमय एक वस्तु वा अनंत गुणा की खानि हू । बहुरि कैसा हूं ? मेरा चैतन्य स्वरूप

जहाँ-तहाँ चैतन्य ही सर्वांग विषैं व्याप्त है। जैसे लूण की डली पिंड विषैं व्याप्त है अथवा जैसे शर्करा की डली विषैं सर्वांग मीठा कहिये अमृत रस व्याप्त होय रहा है। वा जैसे सक्कर की कणिका छोटा अमृतमय पिंड है, तैसे ही मैं एक ज्ञानमय पिंड बण्या हूं। मो विषैं सर्वांग ज्ञानमय ही ज्ञानपुंज हौ, तैसे मानि शरीर का निमित्त पाय शरीर के आकार मेरा आकार ही हैं। अर वस्तु द्रव्य-स्वभाव विचारता तीन लोक प्रमाण मेरा आकार है। सो अवगाहना शक्ति करि एते आकार विषै एता आकार समाय ही गया है। एक प्रदेश विषौं असंख्यात प्रदेश भिन्न-भिन्न तिष्ठै हैं। सर्वज्ञ देव जुदा-जुदा ऐसे ही देखे हैं; यामैं संकोच-विस्तार शक्ति है। बहुरि कैसा है मेरा निज स्वरूप ? अनत आत्मिक सुख का भोक्ता है। एक सुख ही की मूरति है, चैतन्य पुरूषाकार है। जैसे मांटी का साचा विषौं एक शुद्ध रूपा मय धातु का पिंड बिंब निर्मापिये है, तैसे ही आत्माकार स्वभाव ई शरीर विषें जानना। माटी का सांचा काल पाय गलि गया वा विलै गया वा फूटि जाय तब वे बिंब ज्यौं का त्यौं रहै; बिंब का विनाश नाहीं। वस्तु पहली ही दोय थी। एक का नाश होते दूजो का नाश कैसे होय ? ये सर्व प्रकार नेम है; त्यौं ही काल पाय ये शरीर गलै है तो गलो, मेरा स्वभाव का तो विनाश है नाही। मैं काहे का सोच करूं ? बहुरि कैसा हूं ? यह चैतन्य स्वरूप आकाश-वत् निर्मल सूं निर्मल है। आकाश विषे कोई जाति का विकार नाहीं; एक शुद्ध निर्मलता का पिंड है। अर कोई

आकाश नै खड्ग करि छेद्या चाहै अर अग्नि करि जाल्या[1] चाहै अर पाणी करि गाल्या चाहै तो वह आकाश छेद्या-भेद्या न जाय। अर कैसे बलै अर कैसे गलै कदाचि भी वाका नाश नाहीं। बहुरि कोई आकाश के ताईं पकड्या-चाहै अर तोड्या चाहै तो कैसे पकड्या जाय वा तोड्या जाय? त्यौं ही मैं तो आकाशवत् अमूर्तिक, निर्मल सूं निर्मल, निर्विकार, छोछा,[2] निर्मलता का एक पिंड हूं। मेरा नाश किसी बात करि होय नाही। काहू प्रकार करि नाहीं होय, यह नेम है। जो आकाश का नाश होय तो मेरा नाश होय, ऐसा जानना। पणि आकाश का स्वभाव में अर मेरा स्वभाव मे एक विशेष है; आकाश तो जड, अमूर्तिक पदार्थ है अर मे चेतना, अमूर्तिक पदार्थ हूं। जे चैतन्य था तो ऐसा विचार भया सो यह आकाश जड है अर मैं चैतन्य हूं। मेरे यह विद्यमान जानपना दीसै है अर आकाश मे दीसै नाही, यह नि:सदेह है। बहुरि कैसा हूं मैं? जैसा सीसा एक छोछा स्वच्छ शक्ति का पिंड है। वाकी स्वच्छ शक्ति विषैं स्वच्छ शक्ति स्वयमेव ही है; घट-पटादि पदार्थ आनि झलकै है, सीसा पदार्थ स्वयमेव झलकै है। ऐसी स्वच्छ शक्ति शुद्धातम व्यापि करि स्वभाव विषैं तिष्ठू हूं। सर्वांग विषैं एक स्वच्छता भरि रही है, मानूं यह ज्ञेय पदार्थ स्वच्छतामय होय गया है, पणि स्वच्छता न्यारी है अर ज्ञेय पदार्थ न्यारा है। सो स्वच्छ शक्ति का स्वभाव है उस विषैं पदार्थ का प्रतिबिंब आणि ही पड़ै है। बहुरि कैसा हूं मैं? अनंत, अतिशय करि निर्मल, साक्षात् ज्ञानपुंज बन्या हौं। अर अत्यन्त शांत रस करि पूर्ण भर्‌या

---

1 जलाना 2 शुद्ध, निष्पराग

हौं। एक अभेद चिदानुभित करि व्याप्त हूं। बहुरि कैसा है मेरा चैतन्य स्वरूप ? अपनी अनंत महिमा करि विराज-मान है। कोई का सहाय चाहै नाहीं अर ये स्वभाव नै धर्या है, स्वयंभू है। एक अखंड ज्ञानमूर्ति पर द्रव्य सौ भिन्न भासता अविनाशी परम देव ही है। अर ई उपरांत उत्कृष्ट देव कौन कूं मानिये ? जो त्रिलोक विषै होय तो मानिये। बहुरि कैसा है यह ज्ञान स्वरूप ? अपना स्वभाव छोडि अन्य रूप नाहीं परिणमे है, निज स्वभाव की मर्यादा नाहीं तजे है। जैसे समुद्र जल का समूह करि पूर्ण भर्या है, परन्तु स्वभाव को छोडि अन्त गमन नाहीं करे है अर अपनी तरंगावली सोई भई लहरि, त्या करि अपना स्वभाव विषै भ्रमण करे है, त्यौं ही यह ज्ञान समुद्र शुद्ध परिणति तरंगावलि करि सहित अपने सहज स्वभाव विषै भ्रमण करे है। ऐसा अद्भुत महिमा करि विराजमान मेरा स्वरूप परमदेव ई शरीर सूं न्यारा अनादि काल का तिष्ठै है। मेरा अर ई शरीर का पाडोसी का-सा संयोग है। मेरा स्व-भाव अन्य प्रकार याका स्वभाव अन्य प्रकार, मेरा परि-णमन अन्य प्रकार याका परिणमन अन्य प्रकार सो अबै ई शरीर गलन स्वभाव रूप परिणमो है, तौ मैं काहे का सोच करूं, काहे का दुःख करूं ? मैं तो तमासगीर पाडोसी हुवा तिष्ठो हूं। मेरे ई शरीर सू राग-द्वेष नाहीं। राग-द्वेष है सो जगत विषैं निंद्य है अर परलोक विषै महा दुःखदायी है। ये राग-द्वेष मोह ही तै उपजै है। जाका मोह विलै गया, ताका राग-द्वेष भी विलै गया। मोह करि पर द्रव्य विषै अहंकार-ममकार उपजै है। सो ये द्रव्य है सोई मैं हूं, ऐसा तो अहंकार अर ये द्रव्य मेरा है, ऐसा ममकार उपजै

है। पाछै ये सामग्री चाहे, तौ आवै नाहीं है अर छोड्यौ जातो नाहीं है; पाछै यह आत्मा खेद-खिन्न होय है। अर जे सर्व सामग्री पैला की जानिये तो काहे का वाका आवा-जावा का विकल्प उपजै। तातै मेरे मोह पहले ही विलै गया है। अर मैं पहले शरीरादि सामग्री बिरानी जानी है। तौ अबै भी मेरे या शरीर जाते काहे का विकल्प उपजै? विकल्प उपार्जिवा वाला मोह ताका भलीभांति नाश किया, तासू मै निर्विकल्प, आनंदमय, निज स्वरूप नै बार-बार संभालता वा याद करता स्वभाव विषै तिष्ठूं हूं। यहां कोई कहै—यह शरीर तुम्हारा तौ नाहीं। परंतु ई शरीर का निमित्त करि यही मनुष्य पर्याय विषै शुद्धोपयोग का साधन भलीभांति बनै था, ताका उपकार जानि याका राखने का उद्यम बनै, तौ उचित है, यामैं टोटा तौ नाही। ताको कहिये है–हे भाई! तै ऐसा कह्या सो या बात हम भी जानै हैं। मनुष्य पर्याय विषै शुद्धोपयोग का साधन अर ज्ञानाभ्यास का साधन अर ज्ञान-वैराग्य की बधवारी, इत्यादि अनेक गुणां की बधवारी प्राप्त होय है, जैसी अन्य पर्याय विषै दुर्लभ है। परंतु आपणा संयमादि गुण रहृ या शरीर है, तौ भला ही है। म्हाकै कोई शरीर सू वैर तो है नाही अर नाहीं रहै छै, तौ आपणा संयमादि गुण निर्विघ्नपणे राखणा। अर शरीर का ममत्व अवश्य छोडना। शरीर के वश तैं संयमादि गुण कदाचि भी खोवणा[1] नाहीं। जैसे कोई पुरुष रत्नां का लोभी परदेश सौं आया, रत्नद्वीप विषै फूस की झूपडी कूं निर्मापि है, अर

---

१ खोना

उस झूपडी विषै रत्न ल्याय-ल्याय एकठा करै। अर जो उस झूपडी के अग्नि लागि जाय, तो वह विचक्षण पुरुष ऐसा विचार करै—सो कांई विचार करि अग्नि का निवारण कीजे अर रत्न सहित इस झूपडी कूं राखिये? या झूपडी रहसी, तो ई के आसिरे घणा रत्न भेला करिस्यूं, सो वे पुरुष अग्नि को बुझतो जाने, तो रत्न राखि करि बुझावे। अर कोई कारण ऐसा देखे कि वह रत्न गया, झूपडी रहै छै, तो कदाचि भी झूपडी राखिवा को जतन करै नाहीं। झूपडी नै तो बलि जावा दे अर आप संपूर्ण रत्न ले आपणे देस सो उठि आवै। पाछै एक-दोय रत्न बेचि अनेक तरह की विभूति नै भोगवै अर अनेक प्रकार के सुवर्णमयी वा रूपा-मयो[1] महल वा हवेलो करावै वा बागादि निर्मापे। पाछे वा विषै स्थिति करि रंग-राग खुसबोय सयुक्त आनद क्रीडा करै, अर निर्भय हुवो अत्यंत सुख सों तिष्ठै। सो ही भेद-विज्ञानो पुरुष छै, ते शरीर के वास्ते सयमादि गुण विषै अतिचार भी लगावै नाही। अर ऐसा विचारै जो संयमादि गुण रहसी तोहू विदेहक्षेत्र विषै जाय औतार लेस्यौं। अर श्रीतीर्थंकर केवलो भगवान ताका चरणारविंद विषै क्षायिक सम्यक्त्व का प्रारभक निष्ठापन करिस्यौं। पाछै पवित्र होय श्रीतीर्थंकरदेव के निकटि दीक्षा धरिस्यूं। पाछै नाना प्रकार दुर्धर तपश्चरण ग्रहण करिस्यौं। अर जन्म-जन्म का संच्या पाप ताका अतिशय करि नाश करिस्यौं। अर अनेक प्रकार का सयम तिनका ग्रहण करिस्यौं। अर अनेक प्रकार का मनवांछित प्रश्न करिस्यौ।

---

१ चांदी युक्त

अर अनेक प्रकार का प्रश्ना का उत्तर सुनि करि सर्व पदार्थ का वा तत्काल का स्वरूप जानिस्यूं अर राग-द्वेष संसार का कारण छै, त्या कौ शीघ्रपणै अतिशय करि जड-मूल तैं नाश करिस्यू । अर श्री परमदयाल, आनन्दमय, केवली भगवान, अद्भुत लक्ष्मी सयुक्त ऐसा श्रीजिनेंद्रदेव, ताका स्वरूप कू देखि-देखि दर्शन रूपो अमृत, ताका अतिशय करि अर्चन करि, वा थकी म्हारा कर्म-कलंक-रज ; धोया जासी, तब मैं पवित्र होस्यू । अर सीमंधर स्वामी आदि बीस तीर्थंकर और घणा केवली और घणा मुनिराज का वृंद कहिये समूह, ताका दर्शन करिस्यू । ताका अतिशय करि शुद्धोपयोग अत्यत निर्मल होसी, तब स्वरूप विषै अत्यत लागसी, तब क्षपक श्रेणी चढिवा कै सन्मुख होस्यौ । पाछै शीघ्रपणै कर्म घणे जोरावर, तासू अडि करि राडि[१] करिस्यू । अर पटक-पटक, भचक–भचक जड–मूल सौ नाश करि कै केवलज्ञान उपावस्यौ । पाछै एक समय विषै समस्त लोकालोक के त्रिकाल संबधी चराचर पदार्थ कौ मूनै भी दीससी । पाछै ऐसा ही स्वभाव सासता रहसी । तौ मैं ऐसी लक्ष्मो का स्वामी ताके ई शरीर सौ कैसै ममत्व उपजै ? ऐसे सम्यग्ज्ञानी पुरुष विचार करता तिष्ठै है, म्हारे दोन्यो ही तरह आनद है । जे शरीर रहसी, तौ फेरि भी मे शुद्धोपयोग नै ही आराधस्यौ अर शरीर नही रहसी, तौ परलोक विषै जाय शुद्धोपयोग नै ही आराधस्यौ । सो म्हारे कोई प्रकार शुद्धोपयोग के सेवन मे तौ बिघन दीसै नाही । तो म्हारे काहे का परिणाम विषै क्लेश उपजै ? म्हारा परिणाम शुद्ध स्वरूप सूं

---

१ झगड़ा

अत्यन्त आसक्त, ताकूं छुड़ावने को ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इंद्र, धरणेंद्र, आदि कोई चलावनेको समर्थ नाही । एक मोह कर्म समर्थ था, त्याने तो मै पहली ही जीत्या, सो अब म्हारे त्रिलोक विषे वैरी रह्यो नाही अर वैर भी नाही । त्रिकाल, त्रिलोक विषै दुःख नाही । तो हे सभा के लोगो ! मेरे ई मरण का भय कैसे कहिये ? तोसू मै आज सर्व प्रकार करि निर्भय भया हू । थे या बात नीके करि जानो अर यामैं संदेह मति विचारो । ऐसे शुद्धोपयोगी पुरुष शरीर की थिति पूर्ण जानै है । तब ऐसा विचार करि आनद मैं रहे है । कोई तरह की आकुलता उपजै नाही । आकुलता है सो ही ससार का बीज है । इस ही बीज करि संसार की स्थिति है । आकुलता करि बहुत काल का संच्या हुवा संयमादि गुण जैसे अग्नि विषै रुई भस्म होय, तैसै भस्म होय । तातै सम्यक्दृष्टि पुरुष छै, त्यानै कोई प्रकार आकुलता करनी नाहीं । निश्चै एक स्वरूप ही का वारंवार विचार करना । वा ही को बार-बार देखना, वा ही के गुण का चितवन करना, वा ही के पर्याय की अवस्था का विचार करना, वा ही का स्मरण करना, वा ही विषै स्थित रहना । अर कदाचि शुद्ध स्वरुप सू उपयोग चलै, तौ ऐसा विचार करना सो यह ससार अनित्य है । ई ससार मैं क्यो भी सार नाही । जे सार होता, तौ तीर्थंकरदेव क्या ने छोडते ? तीस्यो अबै मूनै निश्चै तौ म्हारो स्वरूप ही मूनै सरण है । बाह्य पच परमेष्ठी अर जिनवाणी वा रत्न-मय धर्म सरण है । अर कदाचि स्वप्ना मात्र भूले-विसरे भी म्हारा अभिप्राय करि मोन सरण नाहीं है, म्हारै यह नेम है । ऐसा विचार करि फेरि स्वरूप विषै उपयोग

लगावै, अर फेरि भी ऊठा सूं[1] उपयोग चलै वा उतरै, तौ अर्हंत, सिद्ध ताका आत्मीक स्वरूप का अवलोकन करै अर ताका द्रव्य, गुण, पर्याय विचारै। पाछै वाका द्रव्य, गुण, पर्याय विचारता-विचारता उपयोग निर्मल होय, तब फेरि अपने स्वरूप विषै लगावै। अर आपणा स्वरूप सारिखो अरहंत, सिद्ध कौ स्वरूप छै। अर अर्हंत–सिद्ध का स्वरूप सारिखा आपणो स्वरूप छै। सो कैसै द्रव्यत्व स्वभाव मै तौ फेर नाही है अर पर्याय स्वभाव विषैं फेर है ही। अर मैं हूं सो द्रव्यत्व स्वभाव का ग्राहक हू। तौसौं अर्हंत का ध्यान करता आत्मा का ध्यान नीके सधै है। अरहंत का स्वरूप मैं अर आत्मा का स्वरूप मैं फेर नाही। भावै तौ अरहंत कौ ध्यान करौ, भावै आत्मा कौ ध्यान करौ। ऐसा विचार करतो सम्यक्‌दृष्टि पुरुष सावधान हुवो स्वभाव विषै तिष्ठै है। ऐठा आगै अब काई विचार करै है, अर कैसै कुटुंब-परिवारादिक सौ ममत्व छुडावै सोई कहिये है। अहो! ई शरीर के माता-पिता तुम नीके करि जानो। यह शरीर एता दिन तुम्हारा छा, अब तुम्हारा नाही। अब याका आयुर्बल पूर्ण भया, सो कोई का राख्या रहै नाही। याकी एती ही थिति थी, सो अबै यासौं ममत्व छाडो। अब यासौं ममत्व करिवा करि काई? अब प्रीति करिवो है सो दुःख कौ कारण है। यह शरीर पर्याय है सो इंद्रादिक देव कौ भी विनाशीक है। याका मरण समय आवै, तब इंद्रादिक देव छै, ते भी जुलक-जुलक मोहडो[2] चौषता रहै[3]। सव देवा का समूह देखता काल-किंकर छै, सो

---

[1] वहाँ से [2] मुख, मुँह [3] बार बार देखने की अभिलाषा से मुह की ओर देखता रहे है

उठाय लै जाय। या किस ही की शक्ति नाहीं जो काल की डाढ में सू छुडाय खिण मात्र तो राखै, सो यो काल-किंकर एक-एक नै ले जाय, सौ सर्व का भक्षण करसी। अर जे अज्ञान करि काल के वश रहसी, त्याकी याही गति होसी। सो थे मोह का वश करि पराया शरीर सौं ममत्व करो छो, अर राख्यो चाहो छो। सो थानै मोह का वश करि ससार को चरित्र झूठो दीस्यो नाही। सो पहला को शरीर तो राखिवो दूरि हो रहौ, थे थाको शरीर तो पहली राखो। पाछै औरां का राखिबा को उपाय कीज्यो। थाकी या भरम बुद्धि छै, सो वृथा दुःख ही के अर्थि छै। थानै प्रत्यक्ष या दीसै नाही छै। आज पहलो ई ससार विषै काल कही कूनै[1] छोड्या? अबै कही तैनै छोडिसी। सो हाय! देखो आश्चर्य की बात! थे निर्भय हुवा तिष्ठो छो। सो यो थाके कौन अज्ञानपणो छै, अर थाको काई होणहार छै, सो हू नही जानूं छू, तोसूं हू थानै पूछू छू। थानै आपा-पर की क्यो खबरि भी छै? सो म्है कौन छा अर म्है कठा सू आया छा? अर म्है पर्याय पूरी करि कठै जास्या? अर पुत्रादिक सौ प्रीति करा, सौ कर, सो कोण छै? अर एता दिन म्हाको पुत्र कठै छो! अब म्हाकै पुत्र की ममता बुद्धि हुई। अर वाका वियोग का म्हानै शोक उपज्यो, यासू अबै थे सावधान होय विचार करो अर भरम रूप मति रहो। अर थे तो थाको कार्य विचार्या सुख पावोला पर को कार्य-अकार्य पैला कै हाथि छै, थाको कर्तव्य क्यों भी नाही? थे वृथा ही खेद-खिन्न क्यो प्रवर्तो हो? अर

---

१ किस को।

आपना आपनै मोह के वशि करि संसार के बिषै क्यौं डुबोवो छो ? ससार चिषै नर्कादि का दुःख थानै ही सहना पडेला, थाको वोई और तो नही सहेला । जिनधर्म को ऐसो उपदेश है नाही, पाप करै कोई अर भोगवै कोई । अर तोसौं मूनै अपूठा थाको दया आवै है । सो थे म्हारो उपदेश ग्रहण करो । म्हारो उपदेश थानै महा सुखदायी छे । सो कैसे सुखदायी छै ? सोई कहिये है—म्है तो यथार्थ जिनधर्म को स्वरूप जान्यौ छै, अर थे न जान्यू छै, तोसू थानै मोह दुःख दे छै। अर म्है मोह ने जिनधर्म का प्रताप करि सुलभ पणै जान्यौ । एक जिनधर्म को अतिशय जान्यौ, तोम्यौं थानै भी । जिनधर्म को स्वरूप विचारिवो कार्यकारी है । देखो, थे प्रत्यक्ष ज्ञाता-द्रष्टा आत्मा छौ; अर शरीरादि पर्याय पर वस्तु छै । आपना स्वभाव रूप स्वयमेव परिणमे छै । काहू का र[illegible] रहे नाही; भोला जीव भरम बुद्धि छै, तोस्यौं थे भरम बुद्धि छोडो अर एक आपा-पर की ठीक एकता करो । तीमैं आपणो हेत सधै सोई करो, विचक्षण पुरुष की याही रीति है । एक आपणा हेत ही नै चाहै, विना प्रयोजन एक पैंड भी धरै नाही। अर थे मोसौं ममत्व जेतो घणो करिस्यो, तेतो घणा दुःख के अर्थि होसी । कार्य क्यौं भी सरनो नाही ? यो जीव अनत वार अनत पर्याय विषै न्यारा-न्यारा माता-पिता पाया, सो वे अबै कठै गया ? अर अनत वार ई जीव कै स्त्री-पुत्र-पुत्री का संयोग मिल्या, सो अबै वे कहा गया ? अर पर्याय-पर्याय के विषै भ्राता, कुटुम्ब, परिवारादि घणा ही पाया, सो अबै वे कहा गया ? ससारी जीव छै, सो तो पर्याय बुद्धि छै । जैसो पर्याय धरै तैसो ही आपो मानै । अर पर्याय सौ तन्मय होय परिणमे, या जाणे

नाहीं पर्याय का स्वभाव छै, ते विनाशीक छै। अर म्हा की निजस्वरूप छै, सो सासतो अविनाशी छै; ऐसा विचार उपजै नाहीं। तीसूं थानै कांई दूषण छै? यो मोह को माहात्म्य छै; प्रत्यक्ष झूठी बात नै सांची दिखावै है। अर जाको मोह गलि गयो सो भेद-विज्ञानी पुरुष छै, ते ई पर्याय सौ कैसे आपो मानै? अर कैसे याको सत्य जाने? अर कौन को चलायो चलै, कदाचि न चलै। तीसूं मेरे ज्ञान भाव यथार्थ भया है। अर आपा-पर को ठीक एकता भई है। सो मौनै अबै ठगिवा समर्थ कौन छै? अनादि काल को पर्याय पर्याय विषैं घणो ही ठगाय आयो जाहि करि भव-भव विषै जामन -मरण का दुःख सह्या, तीसौं थे अबै नीका करि जानो था कै अम्हारे एता ही दिन कौ संयोग सम्बन्ध छो, सो अबै पूरो हुवो। सो थानै भी आत्म-कार्य करिवो उचित है; मोह करिवो उचित नाही। तीस्यौं निज स्वरूप आपनो सासतो छै, तिहि नै सम्हालो। तामैं कोई तरह को खेद नाही, कहूं पासि जाचनो नाही। आपणा ही घर मैं महा अमोलक निधि है, तिहि नै सम्हाल्या जन्म-जन्म का दुःख विलै जाय है। जेता एक ससार विषैं दुःख छै, तेता इक आपा जाण्या विना है, तीसूं एक ज्ञान नै ही आराधौ। ज्ञान स्वभाव छै सो आपनो निजस्वरूप छै। ताकौ पाययो जीव महासुखी होय छै। ताको विना पाया ही महा दुखी छै। तीसौं यो प्रत्यक्ष देखन-जाननहारो ज्ञायक पुरुष शरोर सौं भिन्न ऐसा अपना स्वभाव, ताकौ छोडि और किसी बात विषैं प्रीति उपजै। जैसे सोलहा स्वर्ग को कल्पवासी देव ख्याल के अर्थि[1] मध्य लोक विषै आय अर एक कोई रंक पुरुष

---

[1] कौतुक वास्ते

का शरीर मैं आय पैठो, अर वे रंक को–सो क्रिया करिवा लाग्यो। कांई क्रिया करिवा लाग्यो ? कदे तो काष्ठ को भार माथे धरि बाजार विषैं बेचिवा चालै, अर कदे गारि को सकोर्‌यो ले माता वा स्त्री नखै रोटी जाचिवा लाग्यो। कदे पुत्रादिक कूं ले खिलावा लाग्यो, अर कदे राजादिक पै जाय जाचना करिवा लाग्यो। महाराज ! हूं आजीविका करि घणो दुखी हू, म्हारो प्रतिपालन करो। कदे टको मजूरी को लेय दांतलो[1] ले करिकं खडो, सोले घास काढिवा चाल्यो अर कदे रुपया, दोय रुपया को माल गुमाय रोयवा लाग्यो? सो कैसे रोयवा लाग्यो?अरे वाह् रे ! अब हू कांई करिस्यू, म्हारो धन चोर ले गयो। मैं नीठि-नीठि कमाय-कमाय एकठो कियो छो सो आज जातो रह्यो। सो अबै हू कैसे काल पूरो करिस्यौं ? फर कदे नगर विषैं भाजतो पडो। तब वे पुरुष एक लडका ने तो कांधे चढाया अर एक लडका को आंगुली पकडि लीनो अर स्त्री वा पुत्री को आगैं करि लीनो। अर तामैं छाजलो[2] वा चालणी वा रांधिवा की हाडी वा बुहारी इत्यादि सामग्री सूं छाव[3] भरि स्त्री कै माथै दीनो अर एक दोय गूदडा आदि पोट[4] मैं बाधि आपनै माथै लीनी। पाछै आधी रात का नगर मै सूं निकस्या। पाछै मारग विषै राहगीर, बटाऊ मिल्या, ते पूछता हुवा–रे भाई ! थे कठै चाल्या ? तब यह पुरुष कहता हुवा–ई नगर विषै वैर्‌या की फौज आई छै, सो म्है आपणो धन ले भाज्या छा। तीसो और नगर विषै जाय गुजरान करस्या। इत्यादि नाना प्रकार के चरित्र करितो, वह कल्पवासी देव आपणा सोलहा स्वर्ग की विभूति, तिहि नै खिण मात्र भी नाही

---

१ हंसिया २ सूपा ३ टोकरा ४ पेट

विसारे है । वा विभूति का अवलोकन करि महासुखी हुवा विचारै है—वा रंक पुरुष की पर्याय विषै भई जो नाना प्रकार की अवस्था, ता विषैं कदाचि अहंकार-ममकार नाहीं आवै है, एक सोल्हा स्वर्ग की देवांगना आदि विभूति अर आपणा देव-पुनीत स्वरूप ता विषैं ही आवै है। तैसे ही सो मैं सिद्ध समान आतम द्रव्य ई पर्याय विषैं नाना प्रकार की चेष्टा करता थका, आपनी मोक्ष-लक्ष्मी नै नाही विसारूं[1] छूं तो ही लोकां मैं काहे का भय करूं ? ऐठा आगै स्त्रीनि का ममत्व छुड़ावै है सो ही कहिये हैं। अहो ! इस शरीर की स्त्री अबै ई शरीर सूं ममत्व छांडि। तेरा अर ई शरीर का एता ही संयोग था सो अबै पूरा हुवा। तेरा गरज ई शरीर सू अबै सरणी नाही, तीसूं तू अबै मोह छोडि। बिना प्रयोजन खेद मति करै। अर थारा राख्या शरीर रहै छै तो राखि मैं तो तै वरजू[2] नाहीं। अर जो थारा राख्या शरीर रहै, ई न छै, तो मैं काई करू ? अर जे तू विचार करि देखि, तौ तू भी आत्मा है। मैं भी आत्मा हू। स्त्री-पुरुष की पर्याय है सो पुद्गलीक है, तासू कैसी प्रीति ? शरीर जड अर आत्मा चैतन्य ऊंट-बैल का-सा जोडा, सो यह संयोग कैसे बने ? अर तेरा पर्याय है सो भी तू चचल जानि, तीसूं अपना हेत क्यौ न विचारै ? हे स्त्री ! राता-दिन भोग किया ता करि कांई सिद्धि हुई ? तौ अबै सिद्धि काई होनी छै ? वृथा ही भोगा करि आत्मा नै संसार विषै डुबोयो। या मरण समै जानी नाहीं, आप मुवा पाछै तीन लोक की

---

१ भुलाता २ मना करना

संपदा झूठी। तीसूं म्हाका पर्याय कौ थानै दरेग करनौ उचित नाहीं। जो तू म्हा की प्यारी छौ तौ म्हाकौ धर्म कौ उपदेश क्यों दे ? या थाकी विरिया[1] छै अर जे तू मतलब ही को संगी है, तो तू थारो जानो। म्है थारा डिगाया किसा डिगा छा ? म्है तो थारी दया करि ही थानैं उपदेश दियो छै। मानै तो मानि, नाही मानै तौ थारो होनहार छै, सो होसी। म्हाको तो अबै क्यौ मतलब नाही, तीसूं तू अबै म्हा नखै[2] सूं जा अर परिणामा नै शात राखि आकुलता मति करै। आकुलता छै सो संसार कौ बीज छै। ऐसे स्त्री कूं समझाय सीख दी। आगै निज कुटुब, परिवार कौ बुलाय समझावै है–अहो! कुटुंब-परिवार के अबै ई शरीर की आयु तुच्छ रही है। अब म्हाके परलोक नजीक छै। तीसू अबै म्है थाने कहा छा–थे म्हा सौ कांई बात कौ राग कीज्यो मति। थाके अर म्हाके च्यारि दिन कौ मिलाप छै, ज्यादा नाही। जैसे सराय के विषै राहगीर दोय रात्रि विषै तिष्ठै, पाछै बिछुरता दरेग करै। यह कौन सयानपणो ? तीसू म्हाकै थासू खिमा भाव छै। थे सारा ही आनदमय तिष्ठौ। अनुक्रम सौं सारा ही की याही रीति होणी छै। सो ऐसो ससार कौ चरित्र जानि ऐसो बुद्धिमान कौन है, सो यासू प्रीति करै। ऐसे ही कुटुब-परिवार कौ समझाय सीख दीन्ही। अब पुत्र कौ बुलाय समझावै है - अहो पुत्र! थे सयाणा हो, म्हा सौ काइ[3] तरह सौं मोह कीजो मति। अर एक जिनेश्वरदेव कौ धर्म छै, ताकौ नीका पालिज्यो। थानैं धर्म ही सुखकारी होयलौ; माता-

---

[1] समय, वेला, घडी [2] पास [3] किसी

पिता सुखकारी नाही। माता-पिता नै कोई सुख कर्ता मानै छै, सो यह मोह को माहात्म्य जानौ। कोई किसी का करता नाहीं, कोई किसी का भोगता नाहीं। सर्व ही पदार्थ आपना स्वभाव का कर्ताभोक्ता है। तीसूं अबै म्है थानै कहा छाजे ? थे विवहार मात्र म्हाको आज्ञा मानो छौ तौ म्है कहा सो करौ। प्रथम तौ थे देव, गुरु, धर्म को अवगाढ गाढी प्रतीति करो अर साधर्म्यां स्यौं मित्रताई करो अर दान, तप, सील, संयम तासूं अनुराग करौ। अर स्व-पर विषै भेद-विज्ञान ताका उपाय करौ। अर संसारी जीव सूं ममता भाव कहिये, प्रीति ताकौ छोडौ। सरागी जीवा की सगति सू संसार विषै अनादि काल को ई जीव महा दुःख पायो छै, तातै सरागी पुरुषा की सगति अवश्य छोडनी अर धर्मात्मा पुरूषा की सगति करनी। अर धर्मात्मा पुरूषा की संगति छै, सो ई लोक विषै अर परलोक विषै महा सुखदायी छै। ई लोक विषै तो महा निराकुलता सुख की प्राप्ति होय है अर जस की प्राप्ति होय है। अर परलोक विषै स्वर्गादिक का सुख नै पाय मोक्ष विषै शिव-रमणी कौ भर्तार होय छै अर निराकुलित, अतीन्द्रिय, अनौपम्य, बाधा रहित, सासता, अविनाशी सुख नै भोगवै है। जासूं हे पुत्र ! थानै म्हाका वचन सांचा दीसै छै, अर यामै थाको भलो होनौ थानै दीसै छै, तो म्हाका वचन अगीकार करौ। अर थानै म्हाका वचन झूठा दीसै अर यामै थाको भलो होवो नाही दीसै छै, तौ म्हाकौ वचन अगीकार मति करौ। म्हाकौ थासू कोई बात को प्रयोजन नाही। दया बुद्धि करि थानै उपदेश दियो छै, सो मानौ तौ मानौ, नाहीं मानो तौ थाकी थे जानौ। अब वे सम्यक्‌दृष्टि पुरुष अपनी

आयु नजीक तुच्छ जानै है। तब दान-पुण्य करणो होय सो आपनां हाथ सूं करै है। पाछै जेते पुरुषा सों बतलावनो होय, तीसूं बतलाय निःशल्य होय है। पीछै सर्व कर्मा के नासा के जा पुरुष-स्त्री ताकूं सीख देय अर धर्म के नासा का जे पुरुष तिनको बुलाय नखे राखै है। अर आपना-आपना आयु नियम करि पूरा हुवा जानै है, तो सर्व परिग्रह का जावंजीव त्याग करै है अर च्यार प्रकार का अहार का जावंजीव त्याग करै है। अर सर्व परिग्रह का भार पुत्रा नै सौंपै है। आप विशेषपनै निःशल्य कहिये वीतराग होय है। अर आपका आयु का नियम नाही जानै है; पूरा होय वा न होय, ऐसा संदेह वर्तै है, तो दोय-च्यारि घडी आदि काल की मर्यादा करै, त्याग करै, जावजीव त्याग नाही करै। पाछै खाट ऊपरि सूं उतरे, भूमि विषै सिंह की नाईं निरभै तिष्ठै है। जैसै वैर्‍या का जीतिवानै सुभट उद्यमी होय रण-भूमिका विषै तिष्ठै; कोई जाति की अंश मात्र आकुलता नाही उपजावै है। बहुरि कैसा है शुद्धोपयोगी सम्यक्‌दृष्टि ? जाके मोक्षलक्ष्मी का पाणिग्रहण की वांछा वर्तै है, ऐसा अनुराग है सो अबार ही मोक्ष कूं जाय वरूं। ताका हृदय विषै मोक्ष लक्ष्मी का आकार उकीर राख्या है, ताकी प्राप्ति कौ शीघ्र चाहै है। अर ताही का भय थकी राग परिणति का प्रदेश नाही बांधे है। अर ऐसा विचारै है—कदाचि म्हारा स्वभाव विषै राग परिणति आणि प्रवेश किया तौ मोक्ष—लक्ष्मी मोनै वरने सन्मुख हुई है सो ओटी होय जासी, तातै मै राग परिणति नै दूरि ही तै छोडौ हौं। ऐसो विचार करतो काल पूरण करै है। ताका परिणाम विषै निराकुलता आनंद रस वरसै है। तौ शांतिक रस करि

तातैं तृप्ति है। ताके आत्मिक सुख बिना कोई बात की वांछा नाही; एक अतीन्द्रिय, अभोगल सुख की वांछा है। ताही को भोगवे ऐसा स्वाधीन सुख है। सो यद्यपि साधर्मी का संयोग है, तद्यपि वाका संयोग पराधीन आकुलता सहित भासै है। अर जानै है निश्चै विचारता ये भी सुख का कारण नाहीं सो मेरा मो पासि है, तातैं स्वाधीन है। ऐसे आनंदमयी तिष्ठै, तो शांति परिणामां संयुक्त समाधिमरण करै। पाछै समाधिमरण का फल थकी इंद्रादिक की विभूति नै पावै है। पाछै वहां थको चय करि राजाधिराज होय है। पाछै केतायक काल राज्य करि विभूति नै भोग अर्हंत दीक्षा धरै है। पाछै क्षपक श्रेणी चढि च्यारि घातिया कर्मा को नाश करि केवलज्ञान लक्ष्मी नै पावै है। कैसी है केवलज्ञान लक्ष्मी ? ता विषै समस्त लोकालोक के चराचर पदार्थ तीन काल संबंधी एक समय में आणि झलकै हैं। ताके सुख की महिमा वचन अगोचर है। इति समाधिमरण वर्णन संपूर्ण।

मोक्ष सुख का वर्णन

आगै मोक्ष सुख का वर्णन करिये हैं। ॐ श्री सिद्धेभ्य नम। श्री गुरां पासि शिष्य प्रश्न करै है–हे स्वामिन् ! हे नाथ ! हे कृपानिधि ! हे दयानिधि ! हे परम उपकारी! हे संसार–समुद्र तारक ! भोगन सूं परान्मुख, आत्मीक सुख विषै लीन तुम मेरे ताईं सिद्ध परमेष्ठी ताके सुख का स्वरूप कहो। सो कैसा है शिष्य ? महा भक्तिवान अर मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्ति की है अभिलाषा जाके। सो विशेष श्रीगुरां की

तीन प्रदक्षिणा देय: हस्तकमल मस्तक के लगाय हाथ जोडि अर गुरां का मोसर नै पाय बार-बार दीनपणा का विनय पूर्वक वचन प्रकाशतो अर मोक्ष का सुख नै पूछतो हुवो। अबै श्रीगुरु कहै हैं—हे पुत्र ! हे भव्य ! हे आर्य ! तेनै बहुत अच्छा प्रश्न किया। अब तू सावधान होय करि सुनि। यो जीव शुद्धोपयोग का माहात्म्य करि केवलज्ञान उपार्ज्या, सिद्ध क्षेत्र विषै जाय तिष्ठै है। सो एक-एक सिद्ध का अवगाहना विषैं अनतानत सिद्ध भगवान न्यारे-न्यारे भिन्न-भिन्न तिष्ठै हैं; कोई काहू सौं मिलै नाही। बहुरि कैसे हैं सिद्ध भगवान ? ताके आत्मीक विषैं लोकालोक के चराचर पदार्थ तीन काल सम्बन्धी द्रव्य, गुण, पर्याय नै लिया एक समय विषै युगपत् झलकै हैं। तिनके आत्मिक चरण युगल कौ नमस्कार करूं हू। बहुरि कैसे हैं सिद्ध भगवान ? परम पवित्र हैं, परम शुद्ध हैं अर आत्मिक स्वभाव विषै लीन हैं। अर परम अतींद्रिय, अनौपम्य, बाधा रहित, निराकुलित सुरस रस कूं निरन्तर अखड पीवै हैं। तामैं अंतर नाहीं परे है। बहुरि कैसे हैं सिद्ध भगवान ? असंख्यात प्रदेश चैतन्य धातु के पिंड अगुरुलघु रूप कू धर्या है, अमूर्तिक आकार है। सर्वज्ञदेव नै प्रत्यक्ष न्यारे-न्यारै दीसै है। बहुरि कैसे है सिद्ध प्रभु ? निकषाय है अर आवरण सौं रहित है। बहुरि कैसे है सिद्ध भगवान ? धोया है घातिया-अघातिया कर्म रूपो मल जानै। बहुरि कैसे है सिद्ध भगवान ? आपना ज्ञायक स्वभाव नै प्रगट किया है। अर समय-समय षट् प्रकार हानि-वृद्धि रूप परिणमे है। अनंतानंत आत्मिक सुख कूं आचरे हैं, आस्वादे है अर तृप्ति नाहीं होय है वा अत्यन्त तृप्ति है, अबै कुछ चाह

रही नाहीं। बहुरि कैसे हैं परमात्मदेव ? अखंड हैं अर अजर हैं अर अविनाशी हैं अर निर्मल हैं अर शुद्ध हैं अर चैतन्य स्वरूप हैं अर ज्ञानमूर्ति हैं अर ज्ञायक हैं, अर वीतराग है अर सर्वज्ञ है अर सर्व तत्व के जाननहारे हैं अर सहजानंद है, सर्व कल्याण के पुंज हैं, त्रिलोक करि पूज्य है, सर्व विघ्न के हरणहारे है। श्रीतीर्थंकरदेव भी तिनको नमस्कार करै हैं। सो मैं भी वारंवार हस्तकमल मस्तक कै लगाय नमस्कार करू हूं। सो क्या वास्ते नमस्कार करू हूं। वाही का गुणां की प्राप्ति के अर्थि। बहुरि कैसे है सिद्ध भगवान ? देवाधिदेव हैं। सो देव संज्ञा सिद्ध भगवान विषै ही सोभै है। और च्यारि परमेष्टी नै गुरु संज्ञा है, देव संज्ञा नाहीं। बहुरि कैसे है सिद्ध भगवान ? सर्व तत्व को प्रकासि ज्ञेय रूप नाही परिणमे है, अपना स्वभाव रूप ही रहे है अर ज्ञेय कू जानै ही है। कैसे जानै है ? सो ये समस्त ज्ञेय पदार्थ मानू शुद्ध ज्ञान मैं डूबि गया है कि मानू उखार निगल गया है कि मानू अवगाहना शक्ति करि समाय गया है कि मानू आचरण करि गया है कि मानू स्वभाव विषै आय वसै है कि मानू तादात्म्य होय परिणमे है कि मानू प्रतिबिंब हुवा है कि मानू पाषाण के उकीर काढ्या है कि चित्राम के चितेरे है कि मानू स्वभाव विषै आणि प्रवेश किया है। बहुरि कैसे है सिद्ध भगवान ? शांतिक रसकरि अनंत प्रदेश भरे हैं अर ज्ञान रस करि आह्लादित है अर शुद्धामृत करि स्रवै है प्रदेश जाका वा अखंड धाराप्रवाह बहै है, जा विषै ऐसे हैं। बहुरि कैसे हैं ? जैसे चन्द्रमा के विमान विषै अमृत स्रवै है। अर औरां कू आनंद, आह्लाद उपजावै है अर आताप को दूरि करै है; अर प्रफुल्लित करै है; त्यौं ही सिद्ध भगवान आप

तो ज्ञानामृत कूं पीवे है, आचरे हैं अर औरा ने भी आनंदकारी हैं, ताको नाम लेत ही वा ध्यान करता ही भव रूपी आताप मिलं जाय है। अर परिणाम शांत होय अर आपा-पर की शुद्धता होय है, अर ज्ञानामृत ने पोवै है, अर निज स्वरूप की प्रतीति आवै है—ऐसे सिद्ध भगवान को म्हारो बारंवार नमस्कार होहु। ऐसे सिद्ध भगवान जैवता प्रवर्तो, अर मोनं संसार-समुद्र मांहि तै काढो, अर मोनै संसार माहि पडता सू राखो, अर म्हारा अष्ट कर्मां को नाश करो, अर मोनै कल्याण के कर्ता होहु, अर मोनै मोक्ष-लक्ष्मी की प्राप्ति देहु, अर म्हारा हृदय विषै निरंतर बसौ, अर मोनै आप सारिखो करौ। बहुरि कैसे हैं सिद्ध भगवान ? जाके जामण-मरण नाही, अर जाकै शरीर नाही, अर जाका विनाश नाही, अर जाका संसार विषै गमन नाही, अर ज्ञान वा प्रदेश विषै अकप हैं। बहुरि कैसे हैं सिद्ध भगवान ? अस्तित्व, वस्तुत्व वा प्रमेयत्व वा अप्रमेयत्व वा प्रदेशत्व वा अगुरुलघुत्व वा चेतनत्व यानै आदि दे अनंत गुणां करि पूर्ण भरे हैं। तातै औगुण आवा नै जायगा नाही। ऐसे सिद्ध भगवान कौ फेरि भी म्हारो नमस्कार होहु। ऐसे श्रीगुरु सिद्ध परमेष्ठी के स्वरूप मे फेर नाही। जैसा सिद्ध है तैसा ही शिष्य ने बताया अर ऐसा उपदेश दिया। हे शिष्य ! हे पुत्र ? तू ही सिद्ध सादृश्य है। यामै संदेह मति करै। सिद्धनि का स्वरूप मै अर थारा स्वरूप मैं फेर नाही। जैसा सिद्ध है तैसा ही तू है। अबै सिद्ध समान तू तेनै देख, सिद्ध समान छै कि नाही ? तानै देखत ही कोई परम आनद उपजैला सो कहिवा मात्र नाही। तीसू तू अब सावधान होय अर सुलटि परिणति करि अर

एकाग्र चित्त करि साक्षात् ज्ञाता-द्रष्टा तू पर का देखन, जाननहारा ताही कू तू देखि ढील मति करै। ऐसा अमृत मयी वचन श्रीगुरां का सुनि अर शीघ्र ही आपणा स्वरूप को विचार शिष्य कहतो हुवो। श्रीगुरु परमदयाल बार-बार मोनै याही कही अर यो ही उपदेश दियो सो याके कांई प्रयोजन छै ? एक म्हारा भला करिवा का प्रयोजन छै। तीसू मोनै बार-बार कहै छै--सो देखो, हूं सिद्ध समान छूं कि नाही ? देखो, यो जीव मरण समै ई शरीर मांहि सू निकसि, पर गति माहि जाय छै, तब ई शरीर का आगोपाग, हाथ, पग, आंख, कान, नाक, इत्यादि सर्व चिह्न ज्यो का त्यो रहै छै अर चेतनपणो रहै नाही। तौ यह जान्या गया, सौ कोई जानिवा वाला, देखिवा वाला शख्स कोई और हो था। बहुरि देखो, मरण समै यो जीव परगति मै जाय छै, तब कुटुब-परिवार का मिलि ई नै घनो पकडि--पकडि राखै छै, अर ऊंडा भौहरा मै गाढा कपाट जड राखै, पणि सर्व कुटुब का देखता भीति वा धर फोडि आत्मा निकसि जाय है, सो काहू नै दीसै नाही। तातै यह जाण्या गया जो आत्मा अमूर्तिक छै। जो मूर्तिक होता तौ शरीर की नाई पकड्या रहि जाता। तातै आत्मा प्रत्यक्ष अमूर्तिक है, यामै सदेह नाही। बहुरि यह आत्मा पाच प्रकार के वर्ण कू निर्मल देखै है। अर यह आत्मा श्रोत्र इद्रिय के द्वारै तीन प्रकार वा सप्त प्रकार शब्दो की परीक्षा करै है। बहुरि यह आत्मा नासिका इद्रिय के द्वारै दोय प्रकार की सुगध-दुर्गंध कू जानै है। बहुरि यह आत्मा रसना इंद्रिय के द्वारै पांच प्रकार के रस कू आस्वादै है। बहुरि यह आत्मा स्पर्श इद्रिय के द्वारै आठ प्रकार के स्पर्श

कूं वेदे है वा अनुभवै है वा निरधार करै है। सो ऐसा जानपना ज्ञायक स्वभाव बिना इंद्रियां मैं तो नाही, इंद्रिय तो जड है–अनत पुद्गल के परमाणु मिलि आकार बन्या हैं। सो ए ही जहा इंद्री के द्वारे दर्शन, ज्ञान उपयोग आवता है, सो वह उपयोग मै हूं और नाही; भ्रम करि ही अन्य भासे है। अब श्रीगुरु का प्रसाद करि मेरा भरम विलै गया। मैं प्रत्यक्ष साक्षात् ज्ञाता-द्रष्टा, अमूर्तिक, सिद्ध सादृश्य तोकौ देखू हू अर जानू छू अर अनुभवूं छू। सो अनुभवन मैं कोई निराकुलित, शातिक, अमूर्तिक, आत्मिक, अनौपम्य रस उपजै है अर आनद स्रवे है। सो यह आनद प्रभाव मेरे असाख्यात आत्मिक प्रदेश विषे धाराप्रवाह रूप होय चलै हैं। ताकी अद्भुत महिमा मै ही जानू हू के सर्वज्ञदेव जानै हैं सो वचन अगोचर है। बहुरि देखू हू मैं कदे ऊडा[1] तहखाना विषे बैठि करि विचारू। मेरे ताई वज्रमयी भीति फोडि घट-पटादि पदार्थ दीसै हैं; ऐसा विचार होते देखो! यह मेरी हवेलो प्रत्यक्ष मोनै अबार दोसै है। अर यह नगर मोनै प्रत्यक्ष दीसै है। यह भरत क्षेत्र मोनै दीसै है अर सप्तपृथ्वी विषै तिष्ठता नारकीनि के जीव मोनै दीसै है। अर सोला स्वर्ग वा नवग्रैवेयक, अनुदिश, सर्वार्थसिद्धि वा सिद्धक्षेत्र विषे तिष्ठै है; अनतानत सिद्ध महाराज वा समस्त त्रैलोक्य वा एते हो मानि अमूर्तिक धर्म द्रव्य वा एते ही मानि अमूर्तिक अधर्म द्रव्य वा एते ही मानि एक प्रदेश विषैं एक-एक अमूर्तिक कालाणु द्रव्य एक–एक प्रदेश मात्र निष्ठै है। बहुरि अनतानत निगोदनि के जीव सूं त्रैलोक्य भर्‌या है। बहुरि और जाति के त्रस त्रसनाडो विषैं तिष्ठै

1 गहरे

है। अर नरकनि विषैं नारकीनि के जीव महा दुःख पावै हैं। अर स्वर्गनि विषैं स्वर्गवासी देव क्रीडा करै हैं अर इन्द्रिय जनित सुख कूं भोगवै हैं। बहुरि एक समय मैं अनंतानंत जीव मरते-उपजते दीसै हैं। बहुरि एक-दोय परमाणु का खध[1] आदि दे अनंता परमाणु वा त्रैलोक्य प्रमाण महास्कंध पर्यंत नाना प्रकार के पुद्गलनि के पर्याय मोनै दीसै हैं। अर समय-समय अनेक स्वभाव नै लिया परिणमता दीसै हैं। अर दशो दिशा मैं, अलोकाकाश मैं, सर्वव्यापी दीसै है। अर तीन काल का समयनि का प्रमाण दीसै है। अर तीन काल सबंधी सर्व पदार्थनि की पर्याय की पलटनि दीसै है। अर केवलज्ञान का जानपना प्रत्यक्ष मोकूं दीसै है। सो ऐसा ज्ञान का धनी कौन है? ऐसा ज्ञान किसके भया? ऐसा ज्ञायक पुरुष तौ प्रत्यक्ष साक्षात् विद्यमान दीसै है। अर यह जहां-तहा ज्ञान का प्रकाश मौनै दीसै है। शरीर कू दीसता नाही, सो ऐसा जानपना का स्वामी और ही है कि मैं हू। जो और ही होय तो मेरे ताईं ऐसी खबरि काहे कू परती? और कौ देख्या और कैसैं जाने? तातै यह जानपना मेरे ही उपज्या है अथवा जानपना है सो ही मै हू अर मैं छूं सो ही जानपना है। तातैं जानपना मैं अर मो दुजायगी नाहीं। मैं एक ज्ञान ही का स्वच्छ-निर्मल पिंड बन्या हूं। जैसैं लूण की डली खार का पिंड बन्या है अथवा जैसैं सकर की डली मिष्ट अमृत का पिंड अखंड बन्या है; तैसैं ही मै साक्षात् प्रगट शरीर तै भिन्न जाका स्वभाव लोकालोक के प्रकाश करि

---

1 स्कन्ध

चैतन्य धातु, सुख पिंड, अखंड, मूरति, अनंत गुणनि करि पूरित बन्या हूं, ता मे संदेह नाहीं। देखो, मेरे ज्ञा न की महिमा सो अबार म्हारे कोई केवलज्ञान नाही, कोई मन. पर्यय ज्ञान नाही; मति-श्रुत पायजे है, सो भी पूरा नाही, अनतवे भाग क्षयोपशम भया है। ताके होते ऐसा ज्ञान का प्रकाश भया अर ताही माफिक आनद भया। सो या ज्ञान की महिमा कुणो[१] नैकहू? सो यो आश्चर्यकारो स्वरूप म्हारो ही छै कै कोई और कौ भी छै? तोसौं ऐसा अद्भुत विचक्षण पुरुष अवलोकि कै मै और कौन सू प्रीति करू? अर मै कौन कू आराधू अर मै कौन का सेवन करू अर कौन के पासि जाय जाचना करू? **ई स्वरूप कूं जाण्या बिना मैने करना था, सो किया सो यह मोह का स्वभाव था; मेरा स्वभाव नाहीं। मेरा स्वभाव तौ एक टंकोत्कीर्ण ज्ञायक चैतन्य लक्षण** अर सर्व तत्व के जाननहारे है, निज परिणति के रमनहारे है, शिव स्थान के वसनहारे हैं, ससार समुद्र सौ तिरनहारे है, राग-द्वेष के हरनहारे है, स्वरस के पीवनहारे है वा ज्ञान-पान करनहारे है, निराबाध, निगम, निरजन, निराकार, अभोक्ता वा ज्ञान-रस के भोक्ता वा पर स्वभाव के अकर्ता, निज स्वभाव के कर्ता, सासता, अविनाशी, शरीर-भिन्न, अमूर्तिक, निर्मल पिंड, पुरुषाकार ऐसा देवाधिदेव मै हो जान्या। ताकी निरंतर सेवा, अवलोकन करना अर ताही का अवलोकन करता शातिक सुधामृत की छटा उछलै है अर आनद धारा स्रवै है। ताके रस पोय करि अमर हुवा चाहू हू। सो ये मेरा स्वरूप जैवता प्रवर्तो, इसका अवलोकन वा ध्यान जैवता प्रवर्तो अर इसका विचार

---

१ किस

जैवंता प्रवर्तो। इसका अंतर खिण मात्र भी मति परौ। ई स्वरूप की प्राप्ति बिना हूं कैसे सुखी होहु ? कदाचि नहीं होहु। बहुरि कैसैं छूं हूं ? जैसो काठ की गणगौर[1] को आकाश विषैं स्थापिये, सो स्थापत प्रमाण आकाश तो उसका प्रदेश विषै पैसि[2] जाय छै अर काठ की गणगौर का प्रदेश आकाश विषै पैसि जाय छै। सो क्षेत्र की अपेक्षा एकमेक होय भेली तिष्ठै है। अर भेली ही समै-समै परिणमे है। पणि[3] स्वभाव की अपेक्षा न्यारी-न्यारी, भिन्न-भिन्न स्वभाव नै लिया तिष्ठे है अर जुदा-जुदा ही परिणमे है। सो कैसो है ? आकाश तो समै-समै आपणा निर्मल, अमूर्तिक स्वभाव रूप परिणमे है अर काठ की गणगौर समै-समै आपणा मूर्तिक, जड, अचेतन स्वभाव रूप परिणमे है। सो काठ की गणगौर नै आकाश के प्रदेशनि तै उठाय दूरा स्थापिये, तौ आकाश का प्रदेश तो वहां का वहा हो रहै अर काठ का प्रदेश चल्या आवै। आकाश के प्रदेश के क्यों भी लागी रहै नाही। तीसौं जे भिन्न-भिन्न स्वभाव रूप पावै छा, तौ न्यारा करता न्यारा हुवा। तीसूं मै भी ई शरीर सू क्षेत्र की अपेक्षा एक क्षेत्र अवगाह होय भेला तिष्ठू हूं; पणि स्वभाव की अपेक्षा म्हारो रूप न्यारौ छै। एतो प्रत्यक्ष जड-अचेतन, मूर्तिक, गलन-पूरण स्वभाव नै लिया समै-समै परिणमे है। अर वो हू छूं जो शरीर के न्यारे होते न्यारा भी प्रत्यक्ष हू छू। सो शरीर के अर म्हारे भिन्नपणो कैसे ? ई का द्रव्य-गुण-पर्याय न्यारा अर म्हारा द्रव्य-गुण-पर्याय न्यारा; ईका प्रदेश न्यारा अर म्हारा प्रदेश न्यारा; अर ई की स्व-

---

[1] गनगौर [2] प्रविष्ट, घुसना [3] लेकिन

भाव न्यारो अर म्हारो स्वभाव न्यारो। अर कोइक पुद्गल द्रव्य सूं तो वारंवार भिन्नपणो, अभयपणो, अवशेष च्यारि द्रव्य सूं अथवा पर जीव द्रव्य सौ तो भिन्नपणो भयो नाही ? ताका उत्तर यह च्यारि द्रव्य तो अनादि काल का ठिकाना बंध अडोल तिष्ठै हैं अर पर जीव द्रव्य का सयोग प्रत्यक्ष ही न्यारा है; तीसौ वे काई भिन्न करिये ? एक पुद्गल द्रव्य ही का उलझाउ[1] है, तातैं याही तैं भिन्न करणो उचित है। घणा विकल्प करि काई प्रयोजन ? जानिवा वाला थोडा ही मैं जानि लेहै अर न जानिवा वाला घणा ही नै न जानै। तातै यह बात सिद्ध भई, यह बात कला[2] करि साध्य है, बल करि साध्य नाही। बहुरि यह आत्मा शरीर विषै वसता इंद्रिया के द्वारै अर मन के द्वारै कैसै जानै है ? सो ही कहिये हैं ? जैसै एक राजा कू काहू एक पुत्रादिक नै महा सुपेद[3] बडा सिखर[4] कहिये महल ता विषै वदीखाना दिया है सो उस महल के पांच तो झरोखा है अर एक बीच मैं सिहासन तिष्ठै है। सो कैसो है झरोखा अर सिंहासन ? सो उस झरोखा कै ऐसी शक्ति लिया चसमा[5] लागा है अर ऐसी शक्ति कू लिया सिंहासन के रत्न लागा है सो ही कहिये हैं। सो राजा अनुक्रम सौ सिंहासन ऊपरि बैठा हुवा झरोखा दिसि अवलोकन करै है। प्रथम झरोखा दिशि अवलोकन करै तब तौ स्पर्श के आठ गुण नै लिया पदार्थ दीसै; अवशेष पदार्थ छै ते दीसै नाही। बहुरि दूजा झरोखा दिशि राजा सिंहासन ऊपरि बैठो ही अवलोकन करै तब पांच जाति के रस की शक्ति नै लिया पदार्थ दीसै। अर विशेष पदार्थ तो भी दीसै नाहीं। बहुरि तीजा

---

१ उलझाव २ युक्ति ३ सफेद, श्वेत ४ महल सौध ५ चश्मा

झरोखा दिशि राजा सिंहासन ऊपरि बैठो अवलोकन करै, तब गंध जाति के दोय पदार्थ दीसै अर विशेष पदार्थ छै, तो भी दीसै नाहीं। बहुरि चौथा झरोखा दिशि राजा सिंहासन ऊपरि बैठो ही अवलोकन करै, तब पंच जाति के वर्ण पदार्थ दीसै, अवशेष पदार्थ छै, तौ भी दीसै नाहीं। बहुरि पांचमा झरोखा दिशि राजा सिंहासन ऊपरि बैठो ही अवलोकन करै, तब तीन जाति कौ शब्दमयी पदार्थ दीसै, अवशेष पदार्थ छै तो भी दीसै नाहीं। बहुरि वह राजा पांचो झरोखा का अवलोकन छोडि अर सिंहासन ऊपरि दृष्टि करि पदार्थ का विचार करै, तब बीसों जाति के पदार्थ तौ यह मूर्तिक और आकाश आदि अमूर्तिक पदार्थ सर्व दीसै। और झरोखा बिना वा सिंहासन बिना औठो नै[1] पदार्थ नै जान्यौ चाहै, तो जानै नाही। अबै राजा नै बदीखाना सू छोडि अर महल बोर[2] काढै, तौ वे राजा नै दशो दिशा का पदार्थ मूर्तिक वा अमूर्तिक बिना विचार सर्व प्रतिभासै। सो यह स्वभाव देखवा का राजा के है, कोई महल का तौ नाहीं। अपूठा महला का निमित्त करि ज्ञान आच्छाद्या जाय है। अर कोई इस जाति की परमाणु वा झरोखा सिंहासन के लागी, ताकौ निमित्त करि किंचित् मात्र जाणपणा रहे है। दूजा महल का स्वभाव तौ सर्व ज्ञान कूं घातवा कौ है। त्यौ ही ई शरीर रूपी महल विषैं यह आत्मा कर्मनि करि बंदीखाने दिया है। त्यौं ही अैठें पांच इंद्रिय रूपी तौ झरोखा है अर मन रूपी सिंहासन है। तब आत्मा इह जीति[3] इंद्रिय के द्वार अवलोकन करै, तिह

---

[1] यहीं के [2] द्वार पर [3] जीत कर, विजयी हो

इंद्रिय माफिक पदार्थ कू देखे है। अर मन के द्वारे अव-लोकन करै, तब अमूर्तिक सर्व पदार्थ प्रतिभासै हैं। अर यह आत्मा शरीर रूपी बंदीखाना सू रहित होय है, तब मूर्तिक वा अमूर्तिक लोकालोक के त्रिकाल सम्बन्धी चराचर पदार्थ एक समै मैं युगपत् प्रतिभासै है। ये स्वभाव आत्मा का है, कोई शरीर का तौ नाही। शरीर के निमित्त करि अपूठा ज्ञान घटता जाय है। अर इंद्रिय, मन का निमित्त करि किंचित् मात्र ज्ञान खुल्या रहै है। ऐसा ही निर्मल जाति की परमाणु वा इंद्रिया मन के लागी है। ता करि किंचित् मात्र दीसै है। दूजा शरीर का स्वभाव तौ एता ज्ञान कू भी घातवा का ही है। बहुरि जानै निज आत्मा का स्वरूप जान्या है, ताका यह चिह्न होय है। सो और तौ गुण आत्मा मै घणा ही है अर घणा ही नै जानै है, परन्तु तीन गुण विशेष है, ताकौ जानै तौ अपना स्वरूप जानै ही जानै। अर ताके जान्या बिना कदाचि त्रिकाल विषै भी निज स्वरूप की प्राप्ति होय नाही अथवा तीन गुण विषै दो ही कौ नीका जानै तौ भी निज सहजानन्द कौ पहचानै। दोय गुण की पिछान विना स्वरूप की प्राप्ति त्रिकाल त्रिलोक विषै होय नाही, सो ही कहिये है—प्रथम तौ आत्मा का स्वरूप ज्ञाता-द्रष्टा जानै। यह जानपना है सो ही मै हूं अर मै हूं सो ही जानपनो है। ऐसा निःसंदेह अनुभवन में आये, सो एक तौ गुण ये हैं। अर दूजा राग-द्वेष रूप व्याकुल होय परिणमे है, सो ही मैं हूं। कर्म का निमित्त पाय करि कषाय रूप परिणाम हुवा है। अर कर्म का निमित्त अल्प पडै, तब परिणाम शातिक रूप परिणमे है। जैसै जल का स्वभाव तौ शीतल वा निर्मल है, सो अग्नि

का निमित्त पाय वह जल उष्ण रूप परिणमै है अर रज का निमित्त पाय वह जल गदलता रूप परिणमे है। त्यौं ही यह आत्मा ज्ञानावरणादिक कर्म का निमित्त पाय, तौ ज्ञान घात्या जाय है अर कषायां का निमित्त पाय करि निराकुलता गुण घात्या जाय है। ज्यौं-ज्यौं ज्ञानावरणादिक का निमित्त हलका पडै, त्यौं-त्यौं ज्ञान का उद्योत होय। अर ज्यौं-ज्यौं कषाय का निमित्त मंद पड़ता जाय त्यौं-त्यौं निराकुलित परिणाम होता जाय। सो यह स्वभाव जिन नै प्रत्यक्ष जान्या अर अनुभवा, सो ही सम्यक्‌दृष्टि निज स्वरूप के भोक्ता हैं। बहुरि तीजा गुण यह भी जानै है कि मै असंख्यात प्रदेशी अमूर्तिक आकार हू। जैसे आकाश अमूर्तिक है, तैसा ही मै भी अमूर्तिक हू। परतु आकाश तौ जड है अर मैं चैतन्य हूं। बहुरि कैसा है आकाश? काट्या कटै नाही, तोड्या तूटै[1] नाही, पकड्या आवै नाही रोक्या रुकै नाही, छेद्या छिदै नाही, भेद्या भिदै नाही, गाल्या गलै नाही, बाल्या बलै नाही, यानै आदि दे कोई प्रकार ताका नाश नाही; त्यौं ही मेरा असख्यात प्रदेशनि का नाश नाही। मै असख्यात प्रदेशी प्रत्यक्ष वस्तु हू। अर मेरा ज्ञान गुण अर परिणति गुण प्रदेशनि के आसरै है। जो प्रदेश नाही होय, तौ गुण कौन के आसरे रहैं? प्रदेश बिना गुण की नास्ति होय, तब स्वभाव की नास्ति होय। जैसै आकाश के फूल क्योर[2] वस्तु नाही, त्यौं हो जाय सो मै छू नाही। मैं साक्षात् अमूर्तिक अखड प्रदेशनि कू धर्‌या हू। अर ता विषै ज्ञान गुण कू लिया हू। ऐसा तीन प्रकार करि

---

१ टूटे २ कोई

संयुक्त मेरा स्वरूप ताकी मैं नीका जानूं हूं अर अनुभवूं हूं। कैसा अनुभवी हौं ? सो या तीन गुण की मेरे प्रतीति है सो ही कहिये हैं। केई मेरे ताईं आय ऐसा झूठ्या ही कहैं कै तू चैतन्य रूप नाहीं अर परिणमन गुण में भी नाहीं। यह बात फलाणा ग्रंथ में कही है-ऐसा म्हाकूं कहै, तब मैं उसके ताईं कहूं रे दुर्बुद्धि ! रे बुद्धि रहित ! मोह करिठग्या हुवा तेरे ताई कछु सुधि नाही, तेरी बुद्धि ठगी गई है। बहुरि वह पुरुष या कहै--कांई करू ? फलाणा ग्रथ मैं कही है। ऐसा कहै मोकू, तो मै प्रत्यक्ष चैतन्य वस्तु पर के देखन-जाननहारा सो कैसै मानूं ? तब यानै शास्त्र मे ऐसा मिथ्या कहै नाही, यह नेम है। जैसै सूर्य शोतल रूप कदे हुवा नाही अर अबार है नाही, आगै होसी नाही। अर मेरे ताईं या कहै--आज सूर्य शीतल रूप ऊग्या, सो मै कैसै मानू। कदाचि न मानू। परतु मेरे ताई झूठा हो सर्वज्ञ का नाम लेय अर ऐसे कहै है--तू चेतन नाही अर तेरे परिणति भी नाही, सो मैं या कदाचि भी नाही मानू। सो क्यो नही मानू ? यह दोय गुण की तो मेरे आज्ञा करि भी प्रतीति है अर अनुभवन करि प्रतीति है। अर तीजा प्रशस्त गुण का मेरे एकदेश तो इसका भी आज्ञा करि वा अनुभवन करि प्रमाण है। कैसै ? सो मै या जानू, सर्वज्ञदेव का वचन झूठा नाही, तातै तो आज्ञाप्रमाण है। अर मै या जानू, मेरे ताई मेरो अमूर्तिक आकार मोको दोसता नाही, सो आज्ञा प्रमाण है। अर अनुभवन मैं प्रमाण कैसै होय ? परतु मैं उनमान[1] करि प्रदेशनि के आसरे बिना चैतन्य

---

[1] अनुमान

गुण किसके आसरे होय अर प्रदेश बिना गुण कदाचि भी नाहीं होय; यह नेम है। जैसै भूमिका बिना रूखादिक कौन के आसरे होय, त्यौं ही प्रदेश बिना गुण किसके आसरे होय ? ऐसा विचार करि अनुभवन भी आवे है अर आज्ञा करि प्रमाण है। बहुरि कोई मेरे ताईं आनि-आनि[1] झूठ्या ही या कहै—फलाणा ग्रंथ में या कह्यो है। थे आगै तीन लोक प्रमाण प्रदेशां का श्रद्धान किया था। अब बडा ग्रंथ में ऐसे नीसर्‌या है। सो आत्मा का प्रदेश धर्म द्रव्य का प्रदेशा सूं घाटि है। तौ मैं ऐसा विचारू-सामान्य शास्त्र सूं विशेष बलवान है। सो ऐसे ही होयगा। मेरे अनुभवन मै तौ कोई निरधार[2] होता नाही। अर विशेष ज्ञाता दीसै नाहीं, तातै मे सर्वज्ञ का वचन जानि प्रमाण करूं हूं। परंतु मेरे ताई या कहै—तू जड, अचेतन वा मूर्तिक है वा परिणति तै रहित है, तौ या में कोई मानू नाही; यह मेरे निःसदेह है। या मै कोटि ब्रह्मा, कोटि विष्णु, कोटि नारायण, कोटि रुद्र आनि करि या कहैं, तौ मै या ही जानूं कि ये बावला होय गया है, कै मोनै ठगिवा आया, कै मेरी परीक्षा ले हैं। मैं ऐसा मानूं, सो भावार्थ यहु जु ज्ञान परिणति मै आप ही है, आप ही कै होय है। सो याकौ जानै सो सम्यक्‌दृष्टि होय है। याके जान्या बिना मिथ्यादृष्टि होय। और अनेक प्रकार के गुण-स्वरूप वा पर्याय का स्वरूप कौ ज्यों-ज्यों ज्ञान होय, त्यो-त्यो जानिवो कार्यकारी होय। परंतु मनुष्यपनै या दोय का तौ जानपणा अवश्य चाहिये, ऐसा लक्षण जानना। बहुरि विशेष गुण ऐसे जानना-सो एक गुण मैं अनत गुण हैं अर

---

१ अन्य, दूसरे २ निर्णय

अनंत गुण मै एक गुण है। अर गुण सौं गुण मिलै नाही अर सर्व गुण सौं मिल्या है। जैसे सुवर्ण विषै भारी, पीला, चीकणा नै आदि दे अनेक गुण हैं सो क्षेत्र की अपेक्षा सर्व गुणा विषैं तौ पीला गुण पाइये है अर पीला गुण विषैं क्षेत्र की अपेक्षा सर्व गुण पाइये है अर क्षेत्र ही की अपेक्षा गुण मिलि रह्या है अर सर्व का प्रदेश एक ही है। अर स्वभाव की अपेक्षा सौ रूप न्यारे-न्यारे है। सो पीला का स्वभाव और ही है। सो ऐसे ही आत्मा के विषै जानना और द्रव्य विषै भी जानना। वा अनेक प्रकार अर्थ पर्याय वा व्यंजन पर्याय का स्वरूप यथार्थ शास्त्र के अनुसार जानना उचित है। बहुरि या जीव कू सुख को बधवारी व घटवारी दोय प्रकार होय है सोई कहिये है। जेता ज्ञान है, तेता ही सुख है। सो ज्ञानावरणादिक का उदै होते, तौ सुख-दुख दोन्या का नाश होय है अर ज्ञानावरणादिक का तौ क्षयोपशम होय है। अर मोह कर्म का उदै होता तब जीव के दुख शक्ति उत्पन्न होय है। सो सुख शक्ति तौ आत्मा का निजगुण कर्म का उदै विना है अर दुख शक्ति कर्म का निमित्त करि होय है सो औपाधिक शक्ति है, कर्म का उदय मिटे जाती रहै है अर सुख शक्ति कर्म का उदय मिटे प्रगट होय है। तातें वस्तु का द्रव्यत्व स्वभाव है। बहुरि फेरि शिष्य प्रश्न करै है-हे स्वामी! हे प्रभो! मेरे ताई द्रव्यकर्म वा नो कर्म सौं तौ मेरा स्वभाव भिन्न न्यारा आपका प्रसाद करि दरस्या, अबै मेरे ताई राग-द्वेष सू न्यारा दिखावौ। सो अबै श्रीगुरु कहै हैं-हे शिष्य! तू सुनि। जैसे जल कास्वभाव तौ शीतल है अर अग्नि के निमित्त करि उष्णहोय है, सो उष्ण हुवा थका आपणा शीतल गुणा नै भी खोवै है।

के निमित्त करि उष्ण होय है, सो उष्ण हुवा थका आपणा शीतल गुणा नै भी खोवै है। अर आप तप्तायमान होय परिणमे है अर औरा नै भी आताप उपजावै है। पाछै काल पाय अग्नि का सयोग ज्यौ-ज्यौ मिटै, त्यौं-त्यौ जल का स्वभाव शीतल होय है अर और को आनन्दकारो होय है। तैसे यह आतमा कषाय का निमित्त करि आकुल होय परिणमे है, सर्व निराकुलित गुण जाता रहै है, तब पर नै अनिष्ट रूप लागै है। बहुरि ज्यौ-ज्यौ कषाय का निमित्त मिटता जाय है, त्यौ-त्यौ निराकुलित गुण प्रगट होता जाय है। अर तब पर नै इष्ट रूप लागै है, सो थोडा-सा कषाय के मिटते भी ऐसा शान्ति सुख प्रगट होय है। न जानै, परमात्मा देव के सम्पूर्ण कषाय मिट्या है अर अनत चतुष्टय प्रगट भया है सो कैसा सुख होसी ? पणि थोडा सा निराकुलित स्वभाव को जान्या सम्पूर्ण निराकुलित स्वभाव की प्रतीति आवै है। सो शुद्ध आतमा कैसे निराकुलित स्वभाव होसी ? ऐसा अनुभवन मै नीका आवै है। बहुरि शिष्य प्रश्न करै है—हे प्रभो ! बाह्य आत्मा वा अतरात्मा वा परमात्मा का प्रगट चिह्न कह्या, ताका स्वरूप कहौ। सो गुरु कहै है—जैसे कोई होता ही बालक कै ताई तहखाना मैं राख्या अर केतायक दिन पाछै रात्रि नै बारै काढ्या। अर ऊनै[1] पूछे-सूर्य किसी दिशा नै ऊगै है ? अर सूर्य का प्रकाश कैसा होय है अर सूर्य का बिंब कैसा होय है ? तब वह या कहै–मै तो जानता नाही, दिशा वा प्रकाश वा सूर्य का बिंब कैसा है। फेरि ऊनै बूझै तौ क्यौ सू क्यू[2]

---

१ उससे २ कुछ से कुछ

बतावे। पाछै भाक[1] फाटै, तब ऊनै पूछै, तब वो या कहै–जैठे नै प्रकाश भया है, तैठो नै पूर्व दिशा है अर तैठो नै सूर्य है। सो क्यों? सूर्य बिना ऐसा प्रकाश होता नाहीं। ज्यों-ज्यों सूर्य ऊंचा चढ़ै, त्यौं-त्यौं प्रत्यक्ष प्रकाश निर्मल होता जाय है अर निर्मल पदार्थ प्रतिभासता जाय है। कोई आनि ई नं कहै—सूर्य दक्षिण दिशा नै है, तो यो कदाचि मानै नाही, औरा कू बावला गिनै के प्रत्यक्ष ये सूर्य का प्रकाश दीसै है। मैं याका कह्या कैसे मानू? यह मेरे नि.संदेह है, सूर्य का बिंब तो मेरे ताईं नजर आवता नाही, पणि प्रकाश करि सूर्य का अस्तित्व होय है। सो नियम करि सूर्य अैठो नै ही है, ऐसो अवगाढ प्रतीत आवै है। बहुरि फेरि सूर्य का बिंब सम्पूर्ण महा तेज प्रताप नै लिया दैदीप्यमान प्रगट भया, तब प्रकाश भी सम्पूर्ण प्रगट भया। तब पदार्थ भी जैसा था, तैसा प्रतिभासवा लाग्या, तब कछु पूछना रह्या नाही, निर्विकल्प होय चुक्या। ऐसा दृष्टांत के अनुसार दार्ष्टांत जानना सोई कहिये हैं। मिथ्यात्व अवस्था मैंई पुरुष नै पूछै कि तू चैतन्य हैं, ज्ञानमयी है तौ या कहै–चैतन्य ज्ञान कहा कहावे? वा चैतन्य ज्ञान मैं हू। कोई आय ऐसे कहै है–शरीर है सो ही तू है वा तू सर्वज्ञ का एक अंश है, खिन मैं उपजै है, खिन मै विनसै है, वा तू शून्य है तो ऐसे ही मानै। ऐसा ही हूगा, मेरे ताईं कछु खबरि परती नाही; बाह्य आतमा का लक्षण है।

बहुरि कोई पुरुष गुरु का उपदेश कहै–प्रभु! आतमा के कर्म कैसे बधे है? श्री गुरु कहै है–जैसे एक सिंह

---

[1] पौ

उजाडि विर्षें तिष्ठै था। तहां ह्ी आठ मंत्रवादी अपनी सभा विषें बन मैं था। सो सिंह उस मंत्रवादी ऊपरि कोप किया। तब वा मत्रवादी एक-एक धूलि को चिरूठी[1] मंत्री[2] सिंह का शरीर ऊपरि नाखि दीनी। सो केताक दिन पाछै एक चिमटी का निमित्त करि नाहर को ज्ञान घटि गयो अर एक चिमटी का निमित्त करि देखने की शक्ति घटि गई। अर एक चिमटी का निमित्त करि नाहर दुखी हुवौ। अर एक चिमटी का निमित्त करि नाहर उजाड छोडि और ठौर गयौ अर एक चिमटी का निमित्त करि नाहर को आकार और ही रूप ह्वै गयो। अर एक चिमटी का निमित्त करि नाहर हू आप कौ नीच रूप मानवा लाग्यो। अर एक चिमटी का निमित्त करि आपनो ज्ञान घटि गयो। ऐसे ही आठ प्रकार ज्ञानावरणादि कर्म जीवनि का राग-द्वेष करि ज्ञानादि आठ गुण को घाते है, ऐसा जानना। ऐसे शिष्य प्रश्न किया, ताका उत्तर गुरु दिया। सो भव्य जीवनि कू सिद्ध का स्वरूप नें जानि अर आपना स्वरूप विषै लीन होना उचित है। सिद्ध का स्वरूप मैं अर आपना स्वरूप मैं सादृश्यपणा है। सो सिद्ध का स्वरूप नै ध्याय निज स्वरूप का ध्यान करना। घणो कहिवा करि कहा? ऐसा ज्ञाता अपना स्वभाव को जानें है। इतिसिद्ध-स्वरूप वर्णन सपूर्णम्।

कुदेवादि का स्वरूप-वर्णन

आगै कुदेवादिक का स्वरूप-वर्णन करिये है। सो हे भव्य! तू सुणि। सो देखो जगत विषें भी यह न्याय है कै

---

१ चिकुटी भर धूल २ मंत्रित कर, मंतरकर

आप सौं गुण करि अधिक होय अर कै आप को उपकारी होय ताकौ नमस्कार करिये है वा पूजिये है। जैसै राजादिक तौ गुणां करि अधिक है अर माता-पितादिक उपकार करि अधिक है, ताहि कू जगत पूजै है अर वंदै है। ऐसा नाही कि राजादिकादि बडे पुरुष तौ रैयत[1] जन आदि रंक पुरुष ताकू वंदै वा पूजै अर माता-पितादि पुत्रादिक कू वंदै अर पूजै, सो तौ देखिये नाही। अर कदाचि मति की दीनता करि राजादिकादि बडे पुरुष होइ करि नीच पुरुष कौ पूजै अर माता-पिता भी बुद्धि की हीनता करि पुत्रादिक कौ पूजै, तौ वह जगत विषै हास्य अर निंदा कौ पावै। सो कौन दृष्टांत ? जैसे सिंह होय अर स्याल की सरणि[2] चाहै, तौ वह हास्य नै पावै ही पावै; यह युक्ति ही है। तीस्यौं धर्म विषै अर्हंतादि उत्कृष्ट देव छोडि और कुदेव कौ पूजै, सौ काई लोक विषै हास्य कू नाही पावेगा ? अर परलोक विषै नर्कादिक के दुख अर क्लेश कू नाही सहेगा ? अवश्य सहेगा। सो क्यौ सहे है ? सो कहिये हैं। सो आठ कर्मां विषै मोह नाम कर्म है सो सर्वां को राजा है। ताके दोय भेद है—एक तौ चारित्रमोह अर एक दर्शनमोह। सो चारित्रमोह तौ ई जीव कौ नाना प्रकार की कषाया करि आकुलता उपजावै है। सो कैसो है आकुलता अर कैसा है याका फल ? सो कोई जीव नाना प्रकार का संयमादि गुण करि संयुक्त है अर वा विषै किंचित् कषाय पावजै तौ दीर्घ काल के संयमादिक करि संचित पुण्य नाश कू प्राप्त होय है। जैसे अग्नि करि रुई कौ समूह भस्म होय तैसै कषाय रूपी अग्नि विषै समस्त पुण्य रूप ईंधन भस्म होय है। अर कषायवान पुरुष ई जगत विषै महा निंदा नै पावै

हैं। बहुरि कैसो है कषाय ? कोऊ्या स्त्रो का सेवन सू भी वाका पाप अनंत गुणा है। तासू भी अनंत गुणा पाप मिथ्यात्व का है। यो जीव अनादि काल कौ एक मिथ्यात्व करि ही संसार विषैं भ्रमै है। सो मिथ्यात्व उपरांत और संसार विषै उत्कृष्ट पाप है नाहीं। फेरि मोह करि ठगी गई है बुद्धि जाकी, ऐसा जो संसारी जीव ताकौ कषायादिक तौ पाप दीसै अर मिथ्यात्व पाप दीसै नाहीं। अर शास्त्र विषैं एक मिथ्यात्व का नाश किया, ता पुरुष सर्व पाप का नाश किया। अर संसार का नाश किया सो ऐसा जानि कुदेव, कुगुरु, कुधर्म का त्याग करना। सो त्याग कहा कहिये ? सो देव अरहत, गुरु निर्ग्रंथ कैसा, तिल-तुस मात्र परिग्रह सौ रहित ऐसा अर धर्म जिनप्रणीत दयामय कहिये। या उपरात सर्व कौ हस्त जोडि नमस्कार नाहीं करना। प्राण जाय तौ जावौ पणि नमस्कार करना उचित नाही।

अर्हंतादि का स्वरूप वर्णन

आगे अरहतादिक का स्वरूप-वर्णन करिये है। सौ कैसे हैं अरहत ? प्रथम तौ सर्वज्ञ हैं जाका ज्ञान विषे समस्त लोकालोक के चराचर पदार्थ तीन काल सम्बन्धी एक समय विषै झलकै हैं। ऐसी तौ ज्ञान की प्रभुत्व शक्ति है अर वीतरागी है। अर सर्वज्ञ होता अर वीतराग नही होता तौ ता विषैं परमेश्वरपणा सम्भवता नाही। अर वीतराग होता अर सर्वज्ञ न होय, तौ भी पदार्थां को स्वरूप अज्ञानता करि सम्पूर्ण कहा बनै। अर समर्थ होता, तौ ऐसा दोष

करि संयुक्त, ताकौ परमेस्वर कौन मानता ? तीसौं आ मैं ये दोय दोष--एक तौ राग-द्वेष अर एक अज्ञानपनो नाहीं ते परमेश्वर हैं अर ते ही सर्वोत्कृष्ट है। सो ऐसा दोष दोष करि रहित एक अरहन्त देव ही हैं, सो ही सर्व प्रकार पूज्य है। बहुरि जे सर्वज्ञ, वीतराग भी होता अर तारिवा समर्थ न होता, तौ भी प्रभुत्वपणा मै कसर पड जाती। सो तो आ मैं तारण शक्ति भी पायजे है। सो कोई जीव तौ भगवान का स्मरण करि ही भव--ससार--समुद्र तै तिरै है, केई भक्ति करि ही तिरै है, केई स्तुति करि ही तिरै है, केई ध्यान करि ही तिरै है, इत्यादि एक-एक गुण कू आराधि मुक्ति कू पहुंचै। परन्तु भगवानजी नै खेद नाही उपजै है सो महन्त पुरुषा की अत्यन्त शक्ति है। सो आपनै तो उपायन करणो पडे नाही अर ताका अतिशय करि सेवक तिनका स्वयमेव भला होय जाय। अर प्रतिकूल पुरुषा का स्वयमेव बुरा हो जाय। अर शक्तिहीन जे पुरुष होय है, ते डीला जाय अर पैला का बुरा-भला करै तब वासू कार्य होय सिद्ध सो भी नेम नाही, होयवान होय। इत्यादि अर्हंतदेव अनत गुणा करि शोभित है। बहुरि आगै जिमवाणी के अनुसार ऐसा जो जैन सिद्धान्त सर्व दोष करि रहित ता विषै सर्व तत्वा का निरूपण है। अर ता विषै मोक्ष का अर मोक्ष का स्वरूप का वर्णन है अर पूर्वापर दोष करि रहित है। इत्यादि अनेक महिमानै धर्या ऐसा जिनशासन है।

निर्ग्रन्थ गुरु का स्वरूप

आगै निर्ग्रंथ गुरु ताका स्वरूप कहिये है। जो राज-लक्ष्मी नै छोडि मोक्ष के अर्थि दीक्षा धरी है अर अणिमा,

महिमा आदि रिद्धि जानै फुरी है अर मति, श्रुत, अवधि मनःपर्यय ज्ञान करि संयुक्त है, अर महा दुर्द्धर तप करि संयुक्त है, अर निःकषाय हैं, अर अठाईस मूलगुण बिषे अतिचार भी नाहीं लगावै हैं, अर ईर्या समिति नै पालता थका साढे तीन हाथ धरती सोधता थका विहार करै हैं ।

भावार्थ—कोई जीव नै विरोध्या नाही चाहै है । अर भाषा समिति करि हित-मित वचन बोलै है, ताका वचन करि कोई जीव दुःख नाहीं पावै है । ऐसा सर्व जीवा के विषै दयाल जगत विषै सोभै है । ऐसा सर्वोत्कृष्ट देव, गुरु, धर्म ताने छोडि विचक्षण पुरुष हैं, ते कुदेवादिक नै कैसे पूजे ? प्रत्यक्ष जगत विषै ताकी हीनता देखिये हैं जे-जे जगत विषै राग-द्वेषादि औगुण हैं, ते-ते सर्व कुदेवादिक मैं पावजे है । त्यानै सेया जीव का उद्धार कैसे होय ? त्या ही नै सेया उद्धार होय तो जीव का बुरा कुणी कौ सेया होय ? जैसे हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, आरंभ-परिग्रह, आदि जे महा पाप त्या करि ही स्वर्गादिक का सुख नै पावजे, तौ नर्कादिक का दुःख क्या करि पावजे, सो तो देखिये नाही और कहिये है—देखो, ई जगत विषै उत्कृष्ट वस्तु हैं, ते थोडी है सो प्रत्यक्ष ही देखिये हैं । हीरा, मानिक, पन्ना जगत विषै थोडा है, ककर-पत्थर आदि बहुत हैं । बहुरि धर्मात्मा पुरुष थोडा है, पापी पुरुष बहुत है । ऐसा अनादि-निधन वस्तु का स्वभाव स्वयमेव बण्या है । ताका स्वभाव मेटिवा समर्थ कोई नाही । तीसू तीर्थंकरदेव ही सर्वोत्कृष्ट है सो एक क्षेत्र विषै पावजे । अर कुदेवा का

वृंद कहिये समूह, ते वर्तमान काल विषैं सासता अगणित पावजे है। सो किसा-किसा कुदेव नै पूजिजे ? अर वे परस्पर रागी-द्वेषी अर वे कहैं मूनैं पूजो, वे कहैं मूनैं पूजो। बहुरि पूजिवा वाला कनै[1] खावा नै मांगै ? अर या कहै-हूं घणा दिनां को भूखो छू, सो वे ही भूखा तो औरा नैं उत्कृष्ट वस्तु देवा समर्थ कैसे होसी ? जैसैं कोई रक पुरुष क्षुधा करि पोडित घर-घर सू अन्न का कणूका[2] वा रोटी का टूक[3] वा औठि आदि मागतो फिरै है, अर कोई अज्ञानी पुरुष वे नखैं उत्कृष्ट धनादिक सामग्री मागै, वाके अर्थि वाकी सेवा करै, तौ वह पुरुष कांई हास्य नै न पावै ? पावै ही पावै। तीसू श्रीगुरु कहैं हैं-हे भाई ! तू मोह का वशि करि आख्या देखी वस्तु नै झूठी मति मानैं। जीव ई भरम बुद्धि करि ही अनादि काल को ससार विषै थालो मै मूग रुलै, तैसै रुलै है। जैसै कोई पुरुष के आगै तौ दाह ज्वर का तीव्र रोग लागि रह्या है अर फेरि अजान वैद्य तीव्र उष्णता का ही उपचार करै है, तौ वह पुरुष कैसे शातिता कू प्राप्त होय ? त्यौं ही यह जीव अनादि तै मोह करि दग्ध होय रह्या है। सो या मोह की वासना तौ या जीव के स्वयमेव बिना उपदेश ही बनि रही। ता करि तो आकुल-व्याकुल महादुखी होहि। फेरि ऊपरि सू गृहीत मिथ्यात्वादिक सेय-सेय ता करि याका दुःख की कांई पूछनी है ? सो अगृहीत मिथ्यात्व बीच गृहीत मिथ्यात्व का फल अनत गुणा खोटा है। सो तौ गृहीत मिथ्यात्व द्रव्यलिंगी मुन्या सर्व प्रकार छोड्या है अर गृहीत मिथ्यात्व ताके भी अन-

---

१ किसके २ दाना ३ टुकड़ा

तवैं भाग ऐसा हलका अगृहीत मिथ्यात्व ताके पावजे है। अर नाना प्रकार का दुर्द्धर तपश्चरण करै है अर अठाईस मूलगुण पालै हैं अर बाईस परीषह सहै हैं अर छियालीस दोष टारि आहार लेहैं अर अंश मात्र भी कषाय नाही करै है। सर्व जीव के रक्षपाल होय जगत विषैं प्रवर्तै हैं। अर नाना प्रकार के शील, संयमादि गुण करि आभूषित हैं। अर नदी, पर्वत, गुफा, मसान निर्जन, सूखा वन विषैं जाय ध्यान करै हैं। अर मोक्ष की अभिलाषा प्रवर्ते है अर संसार का भय करि डरपै है। एक मोक्ष-लक्ष्मी के ही अर्थि राज्यादि विभूति छोडि दीक्षा धरै हैं। ऐसा होता संते भी कदाचि मोक्ष नाही पावै। क्यौं नाहीं पावै है? याके सूक्ष्म केवलज्ञानगम्य ऐसा मिथ्यात्व का प्रबलपणा पाठौ है। तातै मोक्ष का पात्र नाही, ससार का ही पात्र है। अर जाके बहुत प्रकार मिथ्यात्व का प्रबलपणा पावजे है, तौ ताकूं मोक्ष कैसे होय? झूठ्या ही भरम बुद्धि करि मान्या, तौ गर्ज है नाही। कौन दृष्टात? जैसे अज्ञानी बालक गारे का हाथी, घोरा, बैल, आदि बनावै अर वाकौ सत्य मानि करि बहुत प्रीति करै है अर वा सामग्री कूं पाय बहुत खुसी होय है। पीछै वाकू कोई फोडै वा तोडै वाले जाय तौ बहुत दरेग करै अर रोवै अर छाती, माथा आदि कूटै। वाके ऐसा ज्ञान नाही कि ये तौ झूठा कल्पित है। त्यौं ही अज्ञानी पुरुष मोही हुवा बालक कुदेवादिक नै तारण-तरण जानि सेवै है। ऐसा ज्ञान नाही कि ये तिरवा नै असमर्थ तौ म्हानै कैसे तारिसी? बहुरि और दृष्टांत कहिये हैं। कोई पुरुष काच का खड नै पाय वा विषै चिंतामणि रत्न की बुद्धि करै है अर या जानै है– ये चिंतामणि रत्न है

सो मूं नैं बहुत सुखकारी होसी, ये मूंनै मनवांछित फल देसी। सो भरम बुद्धि करि कांच का खंड नैं पाय अर खुसी हुवा, तौ कांई वह चिंतामणि रत्न हुवा? अर कांई वासूं मनवांछित फल की सिद्धि होय? कदाचि न होय। काम पडे वाकौ आराधसी अर बाजार विषै वाकूं बेचसी, तौ दोय कोडी की प्राप्ति होयसी। त्यौं ही कुदेवादिक नै आछ्या जाणि घणा ही जीव सेवै है, पणि वासूं क्यौं ही गर्ज सरै नाही। अर अपूठा परलोक विषै नाना प्रकार के नर्कादिक के दुख सहने पडै है। तीसौं कुदेवादिक कौ सेवन तौ दूरि ही रहौ, परतु वाका एक ठाह[1] रहना भी उचित नाही। जैसै सर्पादिक क्रूर जीवनि का संसर्ग उचित नाही, त्यौ ही कुदेवादिक का संसर्ग उचित नाही। सो सर्पादिक मैं अर कुदेवादिक मैं इतना विशेष है—सर्पादिक का सेवनै तै तौ एक ही बार प्राणनि का नाश होय है अर कुदेवादिक सेवन करि पर्याय-पर्याय विषै अनत बार प्राणनि का नाश होय है और नाना प्रकार के तीव्र नर्क-निगोद कौ सहै हैं। तातै सर्पादिक का सेवन श्रेष्ठ है अर कुदेवादिक का सेवन श्रेष्ठ नाही। ऐसा कुदेवादिक का सेवन अनिष्ट जानना। तातै जे विचक्षण पुरुष आपना हेत नै वाछै हैं, ते शीघ्र ही कुदेवादिक का सेवन तजो। बहुरि देखो, ससार विषैं तौ ये जीव ऐसा सयाणा है, ऐसी बुद्धि खरचे है जो दमडी की हाडी खरीदै, ताकै तीन कडको[2] ल्याकी देय फूटी-मारी[3] देखि करि खरीदै। अर धर्म सारिखा उत्कृष्ट वस्तु ताका सेवन करि अनत ससार का दुख सूं छूटै, ताका अंगीकार करिवा विषै अंश मात्र भी परीक्षा करै नाही। सो

---

१ स्थान २ टकोर, ३ साजी, भली

लोक विषें गाडरी प्रवाह ज्यों है और लोक पूजै वा सेवैं तैसे ही पूजै, सेवै। सो कैसा है गाडरी[1] प्रवाह ? सो गाडरी के ऐसा विचार है नाहीं आगे खाई है कि कुवा है कि सिंह है कि व्याघ्र है—ऐसा विचार बिना वा गाडरी के पीछै सर्व गाडरी चली जाय हैं। जे आगली गाडरी खाई वा कुवा मैं पडै, तो सर्व पाछली गाडरी भी खाई, कुवा मैं पडै अथवा आगली गाडरी सिंह, व्याघ्रादिक के स्थानक मैं जाय फसै, तो पाछली हू जाय फंसै। त्यौं ही ये संसारी जीव हैं, जे बडे के कुल के खोटा मार्ग चाल्या, तो यहु खोटा मारग चालै अथवा आछ्या मार्ग चाल्या, तो पणि याके ऐसा विचार नाही जो आछ्या मार्ग कैसा अर खोटा मार्ग कैसा ? ऐसा ज्ञान होय, तो खोटा कौ छोडि आछ्या का ग्रहण करै। तीसौ एक ज्ञान ही की बडाई है। जी मैं ज्ञान विशेष है, ताही कौ जगत पूजै है अर ताही कौ सेवैं हैं। अर ज्ञान है सो जीव कौ निज स्वभाव है। जासूं धर्म नै परीक्षा करि ग्रहण करौ।

अब आगै कुदेवादिक का लक्षण कहिये हैं। जा विषै राग-द्वेष पावजे अर सर्वज्ञपणा का अभाव पावजे, ते सर्व कुदेवादिक जाणिज्यो। सो कहां ताई याका वर्णन करिये? दोय-च्यार, दस-बीस होय, तो कहना भी आवै। तातैं ऐसा निश्चय करना सर्वज्ञ, वीतराग देव हैं। अर ताही के वचन अनुसार शास्त्र वा प्रवृत्ति सो ही धर्म है। अर ताही के वचन अनुसार बाह्य, अभ्यन्तर परिग्रह के त्यागी, तुरत का जाया बालकवत् तिल-तुस मात्र परिग्रह सौं रहित

[1] भेड़

वीतराग स्वरूप के धारक तेई गुरु हैं। आप भव समुद्र कूं तिरै है औरा कू तारै है। धर्म सेय जो इह लोक विर्षें बडाई नाही चाहै हैं, ऐसा देव, गुरु, धर्म उपरात अवशेषरह्या ते सर्व कुदेव, कुगुरु, कुधर्म जानना। आगै और कहिये-हैं-कोई, तौ खुदा ही कौ सर्व सृष्टि का कर्ता मानै है, कोई ब्रह्मा, विष्णु महेश को कर्ता मानै हैं--इत्यादिक जानना सो याका न्याव करिये है। जे सारा ही तीन लोक का कर्ता कह्या, सो खुदा ही तीन लोक का कर्ता है. तो हिंदू नै पैदा क्यों किया ? अर विष्णु आदि हो तीन लोक का कर्ता है, तो तुरका नै पैदा क्यौं किया ? हिन्दू तौ खुदा को निंदा करे अर तुरका विष्णु को निंदा करै। कोई या कहै पैदा करती बार तीकू ज्ञान नही छौ तौ परमेश्वर काहे का ठहऱ्या ? जाके एतो भी ज्ञान नाही। बहुरि जे तीन लोक का कर्ता ही था, तौ कोई दुखी, कोई सुखी, कोई नारकी, कोई तिर्यंच, कोई मनुष्य, कोई देव ऐसा नाना प्रकार जीव पैदा क्यो किया ? कोई कैसा, कोई कैसा जैसा शुभाशुभ कर्म जीवा नै किया, तैसा ही सुख-दुःख फल देवा के अनुसार पैदा किया, तौ यामै परमेश्वर का कर्तव्य कैसै रह्या ? कर्म का ही कर्तव्य रह्या। सो कै तौ परमेश्वर का ही कर्तव्य कहौ, कै कर्मा का ही कर्तव्य कहौ, कै दोऊ का भेला ही कर्तव्य कहौ। म्हारी मा अर बांझ ऐसे तौ बनै नाहीं। बहुरि पहली जीवन ही था, तौ शुभ, अशुभ कर्म कुणै[1] किया ? यामै कर्ता का अभाव सभवै है। बहुरि जगत विषै दोय-च्यारि कार्य कौ करिये हैं, ताकू आकुलता विशेष उपजै है : अर आकुलता है सोई परम दुःख है। अर परमेश्वर

---

१ किसने

कौ निरंतर तीन लोक विषैं अनंता जीव, अनंता पुद्गल आदि पदार्थ ताका कर्ता होना अर अनेक प्रकार जुदा-जुदा परिभोगवाना अर ताकी जुदी-जुदी यादगारी राखनी अर जुदा-जुदा सुख-दु:ख देना, ताके वास्ते महा खेद-खिन्न होना, ऐसा कर्ता होय, ताका दु:ख की कांई पूछनी ? सर्वोत्कृष्ट दु:ख परमेश्वर के बाटै[1] आया, तौ परमेश्वर पणा काहे का रह्या ? बहुरि एक पुरुष सौं एता कार्य कैसे बने ? कोई कहेगा कि जैसे राजा के अनेक प्रकार के चाकर जुदा-जुदा कार्य कौ करि लैहै अर राजा खुसी हुवौ महल में तिष्ठै है, तैसे ही परमेश्वर के अनेक चाकर हैं, ते सृष्टि कौ उपजावै है वा खिपावैं[2] हैं। अर परमेश्वर सुख सौं बैकुंठ विषैं तिष्ठै है। ताकौ कहिये है—रे भाई ! ये तौ सभवै नाही। जाका चाकर कर्ता हुवा, तौ परमेश्वर कर्ता काहे कौ कहिये ? परमेश्वर कच्छ, मच्छ, आदि बैर्या का संहार ताके अर्थि वा भक्त्या की सहाय के अर्थि चौबीस अवतार धर्या और धना कौ खेत आनि निपजायौ अर नरसिंह भक्ति कौ आनि माहिरो दियौ, अर द्रौपदी कौ चीर बढायो, अर टीटोडी की अंग की सहाय कीनी, अर हस्ती नै कीच माहि सौ उद्धार्यो; ऐसा विरुद्ध वचन यहां सभवै नाही। बहुरि कोई या कहै—श्रीपरमेश्वर कौ या चाहिये सर्व ही का भला करै, ऐसा नाही, कब ही तो वाको पैदा करै कर वा ही का नाश करै-ये परमेश्वर पणा कैसैं ? सामान्य पुरुष भी ऐसा कार्य विचारै नाही। बहुरि कोई सर्व जगत कूं वा सर्व पदार्थ कूं सून्य कहिये नास्ति मानै है, ता ताकूं कहिये

---

१ हिस्से मे २ नष्ट करे

है—रे भाई ! तू सर्व नास्ति मानै है। तो तू नास्ति कहन-हारा तो वस्तु ठहर्‌या। ऐसे ही अनंत जीव, अनंत पुद्गल आंख्या विषै प्रत्यक्ष वस्तु देखिये हैं, ताको नास्तिक कैसे कहिये ? बहुरि कोई ऐसे कहै है—जीव तौ खिण-खिण मैं उपजै है अर खिण-खिण मै विनसै है। ताकूं कहिये हैं—रे भाई ! जे खिण-खिण मै जीव उपजै हैं, तो कालि की बात आजि कौन जानी ? अर मैं फलाणा था, सो मरि देव हुवौ हूं, ऐसैं कौन कह्या ? बहुरि कोई ऐसे कहै—पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश, ये पांच तत्त्व मिलि एक चैतन्य शक्ति उपजावै है। जैसै खार, हलद शामिल लाल रग उपजि आवै है अथवा नील, हलद मिलि हर्‌या रग उपजि आवै है। ताकूं कहिये हैं—रे भाई ! पृथ्वी, अप, तेज, वायु आकाश, ये पाचो तत्त्व कह्या, सो तौ जड, अचेतन द्रव्य है। सो अचेतन द्रव्य विषै चैतन उपजै नाही, ये नियम है सो प्रत्यक्ष आंख्या देखिये है। नाना प्रकार का मंत्र, जत्र, तत्र, आदि धारक जे किसबी पुरुष पुद्गल द्रव्य कौ नाना प्रकार परिणमावैं हैं, ऐसे आजि पहली कोई देख्यौ नाही, कोई सुन्यौ नाही कि फलाणा देव, विद्याधर या फलाणा मत्र आराधि वा फलाणा पच पुद्गल कौ चैतन्य रूप परिणमायो है। अर आकाश अमूर्तिक अर पृथ्वी आदि च्यार्‌यौ तत्त्व मूर्तिक मिलि जीव नामा अमूर्तिक पदार्थ कैसे निपजै ? ऐसे होय तौ आकाश, पुद्गल का तो नाश होय अर आकाश, पुद्गल की जायगा सर्व चैतन्य ही चैतन्य दव्य होय जाय; सो तौ देखिये नाही। चैतन्य, पुद्गल आदि सर्व न्यारे-न्यारे पदार्थ आंख्या देखिये हैं। ताकू झूठा कैसै मानिये ? रे भाई ! ऐसा होय तौ बडा दोष उपजै। केईक

पदार्थ भी नाना प्रकार के देखिये हैं अर चेतन पदार्थ भी नाना प्रकार के देखिये हैं । ताकों एक कैसे मानिये ? बहुरि यो एक ही पदार्थ होय, तौ ऐसा क्या नै कहिये हैं—फलाणो नर्क गयौ, फलाणो स्वर्ग गयौ, फलाणो मनुष्य हुवो, फलाणो तिर्यंच हुवो, फलाणो मुक्ति गयौ, फलाणो दुखी, फलाणो सुखी, फलाणो चेतन, फलाणो अचेतन, इत्यादि नाना प्रकार के जुदे-जुदे पदार्थ जगत बिषै मानिये हैं। ताकू झूठा कैसे कहिये ? बहुरि सर्व जीव पुद्गल की एक सत्ता होय, तौ एक के दुःख होता सारा ही के दुःख होय, अर एक के सुखी होता सारा ही के सुख होय। अर चेतन, अचेतन पदार्थ त्याका भी सुख होय, सो तौ देखिये नाहीं। अर जो सर्व पदार्थ की एक सत्ता होय, तौ अनेक पदार्थ क्या नै करना पडै ? अर फलाणो खोटा कर्म किया, अर फलाणो आछ्या कर्म किया, ऐसा क्या नै कहना पडै ? सर्व ही मैं व्यापक है, एक ही पदार्थ हुवा, तो आप कौ आप कैसे दुःख दिया ? ऐसा कोई त्रिलोक मैं होता नाही, सो आप को आप दुःख दिया चाहै। जे आप कू आप दुःख देवा ही मैं सिद्धि होय, तौ सर्व जीव सुख क्या नै चाहै ? तीस्यौ नाना प्रकार का जुदा-जुदा पदार्थ स्वयमेव अनादि-निधन बण्या है; कोई किसी का कर्ता नाही। सर्व व्यापी एक ब्रह्म का कहवा मे नाना प्रकार की महा बिपरीतता भासै है। तीस्यौ हे स्थूल बुद्धि! ये तेरा श्रद्धान मिथ्या है। प्रत्यक्ष वस्तु आंख्या देखियै, तामै सदेह काई अर तामै प्रश्न काई ? आंख्या देखी वस्तु नै भूलै है वा और सौ और कहै है वा और सौ और मानै है। ताका अज्ञानपणा को कांई पूछणो ? जैसै कोई जीव ता पुरुष नै या कहै तू तो मरि गया, तौ

वह पुरुष आपनैं मूवा ही मानै, तौ वा सारिखा बेवकूफ कौन ? अर तू कहेसी मैं कांई करूं ? फलाणा शास्त्र मैं कही है, ये सर्वज्ञ का वचन है, ताकूं झूठ कैसैं मानिये ? ताकौ समझाइये है—रे भाई ! प्रत्यक्ष प्रमाण सौं विरुद्ध होय, ताका आगम सांचा नाहीं अर वे आगम का कर्ता प्रामाणिक पुरुष नाही। यह निःसंदेह है जाका उनमान प्रमाण सौ आगम मिलै, तेई आगम प्रमाण है अर वा ही आगम का कर्ता पुरुष प्रमाण है। पुरुष प्रमाण सौ वचन प्रमाण होय है अर वचन प्रमाण सौ पुरुष प्रमाण होय है। तोसौं जे कोई सर्वज्ञ, वीतराग हैं, ते ही पुरुष प्रमाण करवा जोग्य है। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, ये छहू पदार्थ मिलि त्रिलोक उपजाया है अर ये छहू द्रव्य अनादि-निधन है। इसका कोई कर्ता नाही। अर जे कोई इसका कर्ता होय, तौ कर्ता नै कौन किया ? अर कोई कहै-कर्ता तौ अनादि-निधन है, तौ ये भी छहूं द्रव्य अनादि-निधन है। तीसौं यही नेम ठहर्‌या, कोई पदार्थ किसी पदार्थ का कर्ता नाही। सारा ही पदार्थ अपना-अपना स्वभाव कर्ता अर आपना-आपना स्वभाव सू स्वयमेव परिणमे है। चेतन द्रव्य तौ चेतन रूप परिणमे है अर अचेतन द्रव्य अचेतन रूप परिणमे है। अर जीव द्रव्य का तौ चैतन्य स्वभाव है अर पुद्गल का मूर्तिक स्वभाव है। धर्म द्रव्य का चलन सहकारी स्वभाव है अर अधर्म द्रव्य का चेतन वा अचेतन कौ स्थिति स्वभाव है। आकाश का असाधारण अवगाहन स्वभाव है, काल का वर्तना लक्षण हेतुत्व स्वभाव है। बहुरि जीव तै अनत पदार्थ हैं। पुद्गल तासौ अनंत गुणा अनत पदार्थ हैं। अर धर्म द्रव्य, अधर्म, द्रव्य एक-

एक पदार्थ है। अर आकाश द्रव्य एक पदार्थ है अर काल का कालाणु असंख्यात पदार्थ है। बहुरि एक जीव द्रव्य का और तीन लोक प्रमाण है; सकोच-विस्तीर्ण शक्ति है। तातै कर्मा के निमित्त करि सदैव शरीर आकार प्रमाण है, अवगाहन शक्ति करि तीन लोक प्रमाण है। आत्मा का और शरीर है, अवगाहन विषै समाय जाय है। बहुरि पुद्गल का आकार एक रुई के तार का अग्रभाग का असख्यात वे भाग गोल, षट्कोण ने धर्या है। अर धर्म, अधर्म द्रव्य का आकार तीन लोक प्रमाण ताही वास्ते याकौ सर्व व्यापी कहिये है। अर काल अमूर्तिक पुद्गल सादृश्य एक प्रदेश मात्र अणौ धर्या है। बहुरि जीव तौ चेतन द्रव्य है, अवशेष पाचौं अचेतन द्रव्य है। बहुरि पुद्गल तौ मूर्तिक द्रव्य है, बाकी पाचौं अमूर्तिक द्रव्य है। बहुरि आकाश लोक विषै सारा[1] पावजे है, बाकी पाचौं लोक विषै ही पावजे हैं। बहुरि जीव पुद्गल, धर्म द्रव्य का निमित्त करि क्षेत्र सू क्षेत्रातर गमन करै है अर जीव, पुद्गल बिना अवशेष च्यारि द्रव्य अनादि-निधन, ध्रुव कहिये स्थिति रूप तिष्ठै है। बहुरि जोव, पुद्गल स्वभाव तौ शुभाशुभ रूप ही परिणमे है। अवशेष च्यारि द्रव्य स्वभाव रूप ही परिणमे हैं, विभाव रूप नाही परिणमे है। बहुरि जीव तौ सुख-दुख रूप परिणमे है, अवशेष पाचौं सुख-दुख रूप नाही परिणमे है। बहुरि जीव तौ आप सहित सर्व का स्वभाव कौ भिन्न जानै है, अवशेष पाचौ द्रव्य न तौ आप कौ जानै, न पर कौ जानै। बहुरि काल द्रव्य का निमित्त करि तौ पाचौ

---

१ सब कहीं

द्रव्य परिणमे हैं अर काल द्रव्य आप ही करि आप परिणमे हैं। बहुरि जीव पुद्गल द्रव्य का निमित्त करि रागादिक अशुद्ध भाव रूप परिणमे हैं। अर पुद्गल का निमित्त करि वा जीव का निमित्त करि रागादिक अशुद्ध भाव रूप परिणमे है। बहुरि जीव कर्म का निमित्त करि नाना प्रकार के दुःख कौ सहै है वा संसार विषैं नाना प्रकार की पर्याय कूं धरै है वा भ्रमण करै है। अर कर्म का निमित्त करि आछाया जाय है, ताही कौ औपाधिक भाव कहिये है। अर कर्म रहित हुवा जीव केवलज्ञान संयुक्त महा अनंत सुख का भोक्ता होय है अर तीन काल संबंधी समस्त चराचर पदार्थ एक समय विषै युगपत् जानै। अर दोय परमाणु आदि स्कंध अशुद्ध पुद्गल कहिये है, अर अकेला परमाणु शुद्ध पुद्गल द्रव्य कहिये। बहुरि तीन लोक पवन का वात-वलय के आधार है अर धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य का भी सहाय कहिये, निमित्त है। अर तीन लोक परमाणु का पुद्गल का एक महा स्कंध नाम स्कंध है; ता करि तीन लोक लडि रह्या है। वे महास्कंध के ताईं केतो सूक्ष्म रूप है अर केतायक बादर रूप है, ऐसे तीन लोक का कारण जानना। यहा कोई कहसी एता करणा तौ कह्या, पणि एता तीन लोक का बोध कैसे रहै? ताकौ समझाइये है—रे भाई! ये ज्योतिषी देवा का असंख्यात विमाण अधर काहे तै देखिये हैं अर बडा-बडा परवेरू[1] आकास मैं उडता देखिये है अर गुडी[2] आदि और भी पवन के आसरे अधर आकास विषै उडता देखिये है, सो ये तौ नोका बनै है अर वासुकि

1 पक्षी, पछी

राजा आदि तीन लोक का आधार मानिये है, सो ये नाहीं संभवे है। वासुकि का बिना आधार आकाश मैं कैसे रहे? अर वासुकि कू भी और आधार मानिये तो या मैं वासुकि का कहा कर्तव्य रह्या? अनुक्रम तै परंपराय आधार का अनुक्रमपना आया, तातै ये नियम करि संभवै नाहीं; पूर्वे कह्या सो ही संभवै है। ऐसे छहू द्रव्यां की वार्ता जाननी। ये छहौ द्रव्य उपरात कोई कर्ता कहिये नाहो। अर छहू द्रव्य मांहि सौं एक कौ कर्ता मानिये, तौ बनै नाही, सो ये न्याय ही है। ऐसे ही उनमान प्रमाण मैं आवे है। याही तें आज्ञा प्रधान बोचि परीक्षा प्रधान सिरे[1] कह्या है। अर परीक्षाप्रधान पुरुष का कार्य सिद्ध होय है, ऐसे षट् मतनि विषै जुदा-जुदा पदार्थ का स्वरूप कह्या है। परंतु बुद्धिवान पुरुष ऐसा विचारै-छहौ मता विषै कोई एक मत सांचो होसी; छहौ तो साचा नाही, वाके परस्पर विरुद्ध है तातै कौन मत की आज्ञा मानिये? सो ये तौ बनै नाही। तासौ परीक्षा करणी उचित है। परीक्षा किये पीछे उनमान मै बात मिलनी सो ही प्रमाण है। सो वा छहौं मत विषौं कोई सर्वज्ञ, वीतराग है। ता मत विषै ही पदार्थां का स्वरूप कह्या है सो ही उनमान मैं मिलै है। तातै सर्वज्ञ, वीतराग का मत ही प्रमाण है, सो ही उनमान मैं मिलै है। और मत विषै वस्तु का स्वरूप कह्या है, सो उनमान मै मिलै नाहीं तातै अप्रमाण है। म्हारे राग-द्वेष का अभाव है, जैसा वस्तु का स्वरूप था, तैसा ही उनमान मै प्रमाण किया। म्हारे राग-द्वेष होते मैं भी अन्यथा श्रद्धान करता, सो राग

---

1 मुख्य, उत्तम

द्वेष गया, अन्यथा श्रद्धान होय नाही । अर जानै जैसा कहिये; तौ जा विषैं राग-द्वेष नाही । राग-द्वेष याकूं कहिये है जो वस्तु का स्वरूप तौ क्यौ ही, अर राग-द्वेष कौ प्रेर्यो बतावै क्यौ ही । सो म्हारे ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम करि ज्ञान यथार्थ भया है । अर मैं भी सर्वज्ञ हौ, केवलज्ञानी सारिसो[1] म्हारो निज स्वरूप है । अबार च्यारि दिन कर्म का उदय करि ज्ञान की हीनता दीसै है, तौ काई हुवो; वस्तु का द्रव्यत्व स्वभाव मैं तो फेर नाही अर अबार भी म्हारे एतो ज्ञान पावजे है, सो यो केवलज्ञान कौ बीज है । तातै म्हारी बुद्धि ठीक है । कोई यामै संदेह मति विचारौ । ऐसा सामान्य पणै पट् मत का स्वरूप कह्या ।

आगै संसारी जीव चंद्रमा, सूर्य आदि कूं देव तारण-तरण मानै है, ताकौ कहिये है । चंद्रमा, सूर्य जगत विषैं दीसै हैं, सो तौ विमान हैं सो अनादि-निधन सासता है । या ऊपरि चंद्रमा, सूर्य अनंत होय गया है, सो चंद्रमा का विमान सामान्य पणै अठारा सै कोस चौडा है अर सूर्य का विमान सोला सै कोस चोडा है । अर ग्रह-नक्षत्र-तारा का विमान पांच सै कोस बडा, जघन्य सवा सै कोस चौडा है अर खोपरा के वा नगारा के आकार है । सो अणो तो अधो लोक मै सम चौकोर चौडा ऊपर नै है । ये विमाण पाचौं ही ज्योतिष्या के रत्नमयी है, ता ऊपरि नगर है । ताके रत्नमयी खाई है, रत्नमयी कोट, रत्नमयी दरवाजा, रत्नमयी बाजार, रत्नमयी महल, अनेक खण[2] संयुक्त वा बडा बिस्तार नै लिया विमाण विषै स्थित है । ता नगर मै

संख्यात देव-देवांगना बसै हैं, ताका स्वामी ज्योतिषी देव हैं। बारा बरस के राजपुत्र वा पुत्री सोभै, तैसे देव-देवांगना सोभै हैं। मनुष्य का-सा आकार परंतु एता विशेष देवनि का शरीर महा सुन्दर रत्नमयी, महा सुगंधमयी, कोमल आदि अनेक गुण सयुक्त है। माथै मुकुट है, रत्नमयी वस्त्र पहर्या है वा अनेक प्रकार रत्नमयी आभूषण पहरया है वा रत्नमयी वा महा सुगन्ध पुष्पनि की माला धारे है। ताके शरीर विषै क्षुधा, तृषादि कोई प्रकार के रोग नाही है। बाल दशावत् आयुबल पर्यंत देव-देवांगना का इकसार[1] शरीर रहै है।

भावार्थ-देवा के जरा[2] नाही व्यापै है। बहुरि विमाण की भूतिका विषै नाना प्रकार का पन्ना साहश्य हरियाली दूब हैं। अर नाना प्रकार के वन वा वावडी, नदी, तलाब, कुवा, पर्वत आदि अनेक प्रकार की सोभा पावजे हैं। बहुरि कठै ही पुष्पवाडी सोभै हैं, कठै ही नव निधि वा चिंतामणि रत्न सोभै है, कठै ही पन्ना, माणिक, हीरा, आदि नाना प्रकार के रत्न ताके पुंज सोभै हैं। अर अठै मध्य लोक विषै बडे मडलेश्वर राजा राज करै हैं, तैसे ही विमाण विषै ज्योतिषी देव राज करै हैं। ताका पुण्य चक्रवर्ति सू अनत गुणा अधिक है। ताका वर्णन कहा ताईं करिये ? चय करि तिर्यंच आणि उपजै हैं, ताकू ज्योतिषी देव कहिये है। सो को याने त्यारिबा समर्थ नाही। जो आप ही काल के वसि तौ औरा नै कैसे राखै ? अर जगत का जीव भरम बुद्धि करि ऐसे मानै, सो चद्रमा सूर्या तारा के विमान आकाश विषै गमन करे ?। ता विमान हीकू या कहै हैं ये चन्द्रमा, सूर्या हैं अर गाडा का पैया मानै हैं अर तारा कू कूंडा मानै हैं। सो या चन्द्रमा, सूर्या

1 एक सरीखा, एक जैसा 2 बुढापा

नै मानैं हैं वा पूजै हैं सो म्हाको सहाय करिसो। सो अज्ञानी जीवा कै ऐसा विचार नाही जो दस-पांच कागदा को गुडी सौ-दोय सै हाथ ऊंची आकाश मैं उडै है। सो भी तनक-सी कागलो-कागला सादृश्य दीसै है। सो सोला लाख कोस ऊंचा तो सूर्य का विमान है अर सतरा लाख साठ हजार कोस ऊंचा चंद्रमा का विमान है अर तारा का विमान पंदरा लाख असी हजार कोस ऊंचा है। सो एती दूरि सौं गाडा को पैया सादृश्य म्हाको भलो कैसे करिसी? और भी उदाहरण कहिये है। सो देखो, दोय-तीन कोस का चोडा अर पाँच-सात कोस का ऊंचा पर्वत सो धरता विषैं चौडे तिष्ठै है। सो दस-बीस कोस पर्यंत तौ नजर आवै, पाछै नजर आवै नाही। इन्द्री ज्ञान को ऐसी हीन शक्ति है। तासूं घणी दूरितै वस्तु निर्मल दीसै है। केवलज्ञानी व अवधिज्ञानी दूरवर्ती सूक्ष्म वस्तु भी निर्मल दीसै हैं चंद्रमा सूर्य, तारा का विमान, ऐसा छोटा होय तौ दूरि सौ कैसे दीसे ? यह नियम है। बहुरि कोई कहसी ये ज्योतिषी देव ग्रह भव्य तौ है, पर समारो जीवा कूं दुःख देहै, याकौ पूज्या, याके अर्थि दान दिया शांतिता कूं कहिये है। रे भाई! तेरे भरम बुद्धि है। ये ज्योतिषी देवा का विमान अढाई द्वीप विषै मेरु दोल्यौ गोल क्षेत्र ता विषै प्रदक्षिणा रूप भ्रमण करै हैं। सो कोई ज्योतिषी देवा का विमान शीघ्र गमन करे है, कोई विमान मंद गमन करे है। ताकी चाल कूं देखि अर वाकी चाल विषै कोई का जन्मादिक हुवा देखि करि विशेष ज्ञानी अगाऊ होतव्यता कूं बतावै है। याका उदाहरण कहिये हैं--जैसे सामुद्र का चिन्ह देखि वाके ताई होतव्यता कूं बतावै है अथवा वासौ एसो देखिवा के ताई होतव्यता कूं बतावै है। ऐसे ही होतव्यता बतावने कूं आठ प्रकार के निमित्त ज्ञान है। ता विषै एक

ज्योतिष भी निमित्त ज्ञान है। ये आठ प्रकार निमित्त ज्ञान कोई इति-भीति टालिवा नै तौ समर्थ नाही जे समर्थ होय तौ पूजिये भी। सो हिरण वा गिलहरी वा चिडी वा वायस इत्यादिक का सुकन[1] अगाऊ होतव्यता का बतावने कौ कारण है। सो याकूं पूजिये ते ईति-भीति टलै? कदाचि नाही टलै। त्यौ ही ज्योतिषी देवा नै पूजिया वा ताके अर्थि दान दिया ईति-भीति अश मात्र भी टलै नाही। अनूठा अज्ञानता करि महा कर्म बंधे हो है, सो जिनेश्वर देव कूं पूज्या शांति होय है। और उपाय त्रिकाल त्रिलोक विषे हैं नाही। अर जीवा के महा भरम बुद्धि ऐसी है। जैसे कोई पुरुष कौ महा दाह-ज्वर है, अर फेरि अग्नि आदि उष्णता का ही उपचार करे है, तौ वह पुरुष कैसे शातिता नै प्राप्त होय ? त्यौ ही आगै तौ ये जीव मिथ्यात्व करि ग्रस्त होय रह्या है अर फेरि भी मिथ्नात्व कौ ही सेवै, तौ ये जीव कैसे सुख पावे? अर कैसे याके शाति होय ? बहुरि केई महादेव कौ अयोनि शभु तरण-तारण मानै है अर या करि सर्व सृष्टि का सहार मानै हे अर याकू महा कामी मानै है अर याका गला विषे मनुष्या को मस्तक की माला मानै है। सो कैसे कामी मानै है ? या कहै है—महादेव का आधा शरीर स्त्री का है, आधा पुरुष का है। तीसौं याका नाम अर्द्धांगी कहिये, ऐसा स्त्री सू रागी है। ताकू कहिये है—रे भाई! ऐसा सर्व सृष्टि कौ मारिवा वाला अर महा विड रूप ऐसा पुरुष तारिवा समर्थ कैसे होय ? जाका नाम सुनता ही ताप उपजै है; तौ दर्शन किया कैसे सुख उपजै ? ये जगत विषे न्याय है। जैसो कारण मिलै, तैसो ही कार्य सिद्ध

---

[1] शगुन

होय। सो याका उदाहरण कहिये हैं; जैसे अग्नि का संयोग तें दाह ही उपजै अर जल का संयोग सूं शीतलता ही उपजै है। अर कुशील स्त्री का संयोग सू विकार भाव उपजैं अर शीलवान पुरुष का संयोग सू विकार भाव हैं ते विलाय जाय अर विष-पान करि प्राणा को हरण होय अर अमृत का पीवा करि प्राणा की रक्षा होय। अर सिंघ, व्याघ्र, सर्प, हस्ती, रोगादि संयोग करि भय ही उपजै अर दयाल, साधु जन का संयोग करि निर्भय, आनंद ही उपजै। ऐसा नाहीं जो अग्नि का संयोग करि तो शीतलता होय अर जल का संयोग करि उष्णता होय, इत्यादि जानना। तीसू हे भाई! अबै महादेव का असली निज स्वरूप ज्यौ छै, त्यौं ही कहिये हैं। ये महादेव कहिये रुद्र सो ये चौथा काल विषै ग्यारा उपज हैं, ताकी उत्पत्ति कहिये हैं। सो जैन का निर्ग्रंथ गुरु अर आर्यिका दोन्यो भ्रष्ट होय कुशील सेवैं है। पाछै मुनि तो तत्क्षण ही दण्ड ले छेदोप स्थापना करै, पीछै मुनि पद धरि शुद्ध होय है। अर अर्जिका नै गर्भ रहै है सो गर्भ का निपात[१] किया जाय नाही। तातैं शुद्ध जायगा नव मास पर्यंत गर्भ नै बधावैं, पाछै पुत्र जणि अर कही स्त्री-पुरुष कौ सौंपि अर्जिका भी वैसे ही दीक्षा धरै है। अर बालक वृद्ध होय है, पाछै बालक आठ-दस वर्ष का होय, तब या कौन मायडा[२] कह करि लडका हास्य करै। तब यह बालक जीके पलै तीनै जाय पूछै—म्हारा माता-पिता कौण छै? अर कौन को बेटो छू? तब वे ज्यो को त्यो मुनि-अर्जिका को वृत्तांत कहै। यह बालक माता-पिता मुनि-अर्जिका

---

१ गिराया २ माता का

जानि अर वा स्त्री मुन्या पासि दीक्षा धरै है। पछै महादेव तो मुनि-अर्जिका का वीर्य सूं उपज्यो, तातै महापराक्रमी हो ही, पाछै दीक्षा धरि मुनि पद सम्बन्धी तपश्चर्या करि अनेक रिद्धि फुरै वा अनेक विद्या सिद्धि होय, पीछे केवली वा अवधिज्ञानी मुनि ताका मुख थकी कथा सुणै है—ये महादेव स्त्री का संयोग करि मुनि पद सूं भ्रष्ट हो सी। पाछै महादेव मुनि भ्रष्ट होवा का भय थकी। एकांत डूगर[1] ऊपरि जाय ध्यान धरै है, सो वहा अनेक लडकियां आय स्नान आदि क्रीडा करै हैं। पाछै वा लडकियां का सर्व वस्त्र वे मुनि ले आवै है अर लडकियां मांगे तो भी दे नही। अर वा लडकिया नै या कहै है—थे मूनै परणो तो वस्त्र द्यो। तब वे लडकिया कहै—म्हे कांई जाना ? म्हाका मां–बाप जानै। तब ये महादेव या कहै—जो थाका मा-बाप परणावै तो परणोली तब आरे[2] करी। ऐसे कौल[3] करि वाका वस्त्र देइ। वा लडकिया आपणा माता-पिता सूं सारो महादेव मुनि का वृत्तांत कह्या। तब वा लडकियां का माता-पिता जानिये—महादेव महा पराक्रमी है। जो नही परणावस्या, तो महादेव दुःख देसो। ऐसे जानि सारो लडकियां परणाय दीनी। पाछै महादेव सारो लडकिया भोगी, सो याका वीर्य का तेज करि सारी लडकियां मरि गई। पाछै अत के विषै महादेव पर्वत राजा की पुत्री पार्वती परणी। सो याका भोग आगै टिकी, सोई पार्वती नै रात वा दिन चाहै जेठ भोगवै, कोई की शंका राखै नाही। सो या विपरीतना देखि सर्व नगर का स्त्री-पुरुष वा देश का राजा या वार्ता सुनि घणा दुखी हुवा अर ईका

---

१ पहाडो २ हा, स्वीकार ३ सौगन्ध

जीतिवा नै असमर्थ हुवा, तातै वे बहुत दुखी हुवा। पाछै पार्वती का माता-पिता नै ई कही तू महादेव नै पूछि—था सूं विद्या दूरि कदि रहै छै। तब पार्वती नै ऐसे ही पूछी, तब महादेव नै कही—और बार तो दूरि रहै नाही, था सू भोग करता दूरि रहै छै। ये समाचार पार्वती माता-पिता नै कह्या। तब राजा पर्वत जो यो दाव जानि भोग करता महादेव नै मारचो। तब ई का इष्ट दाता देव था, ते सारा नगर मैं महा पीडा करता हुवा अर या कही--म्हाका खावंद[1] नै थै क्यो मारचो? तब राजा कही--मारचो सो पाछो आवै नाहीं और थे कही सो करा। तब वा व्यंतर देव कही—भग सहित महादेव का लिंग की पूजा करो। तब पीडा का भय थकी नगर का लोग ऐसे हो आकार-बनाया पूजा करी। पाछै ऐसे ही व्यांतर देवा का भय थकी केतायक काल ताईं पूजता हुवा। पाछै गाडरी प्रवाह सारिखो जगत है, सो देख्या देखि सारी धरती का पूजता हुवा। सो वा ही प्रवृत्ति औरू चली आवै है। अर जगत का जीवा के ऐसो ज्ञान है नाहीं, सो हम कुणी नै पूजो हा अर याको फल कांई है। सो मिथ्यात्व की प्रवृत्ति बिना चलाई बरजोरी सू चालै है। अर धर्म की प्रवृत्ति चलाई भी चलै नाही हैं। सो यह बात न्याय ही है, संसार विषै जीवा नै घणो रहणो छै। अर संसार सू रहित थोडा जीवा नै होणो छै। अर देखो, स्त्री का स्वभाव दगाबाज सो जगत के दिखावनै ऐसी लज्जा करै जो शरीर के आंगोपांग अंश मात्र भी दिखावै नाहीं अर माता-पिता, भाई ईत्यादि देखता महादेव का लिंग की अर पार्वती की भग की

[1] पति

चौहटे[1] मैं निःशंक पूजा करै। अर कोई बरजै, तौ भी मानै नाहीं, सो यात न्याय ही है। सर्व संसारी जीवा के विषया सौं आसक्तता स्वयमेव मोह कर्म का उदै करि बिना ही चाह बन रही है। पाछैं यामै विषय पोष्या जाय, तामैं कदे[2] धर्म हुवो ? जो विषय पोषिवा मैं धर्म होय, तौ पाछैं पाप किसो बात मैं होय ? सो ये श्रद्धान अयुक्त है। आगै और कहे है--कोई या कहे कृष्णजी सब का कर्ता है। अर पाछैं वाकी या कहै है--ये कृष्णजी ढांढा[3] चराया अर माखन चोरि-चोरि खाया। अर परमेश्वर रम्या अर पर स्त्रिया सू क्रीडा करी। ताकौ कहिये हैं--रे भाई ! ऐसा महन्त पुरुष होय, ऐसा नीच कार्य कदे न करै, ये नियम हैं। नीच कार्य करै, तौ बडा पुरुष नाही। कार्य के अनुसार ही पुरुष विषै नीच--ऊंचपणा आवै है। ऐसा नाही कि नीच कार्य करता प्रभुत्व पणा पावै अर ऊंच कार्य करता नीचता नै प्राप्त होय। यह जगत विषै प्रत्यक्ष आख्या देखिये हैं। एक-दोय गाव का ठाकुर है, ते भी ऐसा निंद[4] कार्य करे नाही, तौ बडा पृथ्वी पति राजा वा देव वा परमेश्वर होय कैसे करे ? यह प्रकृति स्वभाव ही है। बालक होय सो तरुण अवस्था का वा वृद्ध अवस्था का कार्य नाही करै अर तरुण होय बालक अवस्था का कार्य नाही करै वा वृद्ध होय तरुण अवस्था का वा बालक अवस्था का कार्य नाही करै, इत्यादि ऐसे सर्वत्र जानना। सो कृष्णजी की प्रभुत्व शक्ति का वर्णन जैन सिद्धांत विषै किया है और मत विषै ऐसा वर्णन नाही। सो वह कृष्ण जी तीन खंड का स्वामी है अर घणा देव, विद्याधर, अर

---

१ चौराहे २ कब ३ पशु, ढोर ४ निन्दनीय, निन्दा

हजारी मुकुट बद्ध राजा जाकी सेवा करैं हैं अर कोटि शिला उठावा सारिखा यामैं बल है । अर नाना प्रकार की विभूति करि संयुक्त है अर निकट भव्य है । शीघ्र ही तीर्थंकर पद को धारि मोक्ष जासो । सो भी यह राग अवस्था विषैं नमस्कार करवा योग्य नाही । नमस्कार करिवा योग्य दोय पद है–कै तो केवलज्ञानी के निर्ग्रंथ गुरु । तासो मोक्ष के अर्थि राजा नै नमस्कार कैसे संभवै ? अर कृष्ण गोपियां संयुक्त गल्या-गल्या[1] नाचता फिर्‌या अर बांसुरी बजाता फिर्‌या, इत्यादि नाना क्रिया सद्‌भाव कहै है । सो कैसे हैं ? कोई कहिये हैं–भाई का स्नेह करि बलभद्रजी स्वर्ग लोक सूं आय नाना प्रकार की चेष्टा करी थी सो यह प्रवृत्ति चली आवै है । अर जगत का यह स्वभाव है जिसी देखै तिसी ही मानिवा लागि जाय, नफा-टोटा गिनै नाहीं । सो अज्ञान के वसि यह जीव कांई अश्रद्धान न करै ? आगै और कहिये हैं–कोई या कहै है–हरि की जोति छै, ती मांहि सौ चौईस औतार नीकस्या है । कोई या कहै है–बडी-बडी भवानी है । अर कोई या कहै चौईस तीर्थंकर अर चौबीस अवतार अर चौईस बधडावत अर चौईस पीर एक ही है । कहवा मात्र नाम विषैं, सज्ञा विषैं भेद है; वस्तु-भेद नाहीं । कोई गगा, सरस्वती, जमुना, गोदावरी इत्यादि नद्या नै तारण-तरण मानै है, कोई गऊ नै तारण-तरण मानै है अर गऊ की पूछ मैं तैतीस कोडि देवता मानै है; कोई जल पृथ्वी पवन वनस्पति यानै परमेश्वर के रूप मानै है कोई भेरू, क्षेत्रपाल, हनुमान को मानै हैं; कोई गणेश नैं पार्वती को पुत्र मानै है; ऐसा विचारै नाहीं.

---

[1] गली-गली

गंगादिक नद्या जड़-अचेतन कैसे तारिसी ? अर गाय पशु तिर्यंच कैसे तारिसी ? अर वाका पूंछ विषैं तैतीस कोटि देव कैसे रह्या अर पार्वती स्त्री के गणेश पुत्र कैसे होसी ? अर समुद्र तौ एकेंद्री जल है सो ताके चद्रमा पुत्र कैसे होसी ? सो यह हनुमान पवनंजय नाम महा मंडलेश्वर राजा ताका पुत्र है सो या बात सभजो। अर बाली, सुग्रीव, हनुमान आदि वानर बंशी ये महा पराक्रमी विद्याधरा का राजा है। अर ये बांदरा को रूप बणाय लेहै अर और अनेक प्रकार को रूप बणाय लेहै। सो याके ऐसी हजारा विद्या है। त्या करि अनेक आश्चर्यकरी चेष्टा बनावै हैं। अर केई या कहै यो तो बादर[1] है सो ऐसा बिचारै नाही, जो तिर्यंच के ऐसा बल, पराक्रम कैसे होमो जो सग्राम मैं लड़वा का अर रामचद्रजी आदि राजा सौ बतलावा को ज्ञान कैसे होसी अर मनुष्य को-सो भाषा कैसे बोलसी ? अर ऐसे ही रावण आदि राक्षसबशी विद्याधरा का राजा अर ताकै राक्षसी विद्या आदि हजारा विद्या करि बहुत रूप आदि नाना प्रकार क्रिया करै है। अर लंका कचन को-सो छो,[2] तौ अग्नि सौ कैसे जरी ? अर कोई या कहै वासुकि राजा नै फणा ऊपरि धरती धर्‍या है अर ये ध'तो सदा अचल है अर सुमेरू भी अचल है। परतु कृष्णजी सुमेरु को रई कीधी अर वासुकि राजा को नेतौ कियो अर समुद्र को मथ्यो अर मथ करि लक्ष्मी को स्तभ मानि पारिजात कहिये फूल अर सुरा कहिये दारु अर धन्वतरि वैद्य, चद्रमा, कामधेनु गऊ, ऐरावत हस्ती, रभा कहिये देवागना, सात

---

१ बन्दर २ थी

मुख को घोड़ो, अमृत, पंचानन शंख, विष, कमल, ये चौदह रत्न काढ्या, सो ऐसे विचारैं नाहीं कि जे वासुकि राजा नैं धरती तला सू काढि ल्यायो, तो धरती कुण कै आधार रही ? और सुमेरु ऊखल्यो[1] तो सासतो कैसे कहिये ? अर चंद्रमा आदिक चौदह रत्न अब ताइं समुद्र मांहि था, तो चंद्रमा बिना आकाश विषै गमन कौण करै छै ? अर चांदनी कौन करै है अर एक-दोय आदि पंदरा तिथि वा उजालो-अंधारो पखवाडो अर महीनो अर वरस याकी प्रवृत्ति कौण सू थी ? अर लक्ष्मी बिना धनवान पुरुष कैसे था ? सो ये प्रत्यक्ष विरुद्ध सो सत्य कैसं संभवै ? अर कोई कहै-है कोई राक्षस धरती नै पाताल विषैं ले गयो, पाछै वराह रूप धरि करि पृथ्वी का उद्धार किया। सो ऐसा विचार नाही, ये पृथ्वी सासता थी तौ राक्षस कैसं हरि ले गयो ? अर कोई या कहै है-सूर्य काश्यप राजा को पुत्र है, अर बुध चद्रमा को पुत्र छे, अर शनीचर सूर्य को पुत्र है, अर हनुमानजी वानरी का कान को बोडो[2] पुत्र हुवो। अर द्रौपदी कौ कहै है-या महासती छै, परतु याकै पाच पाडव भर्तार छै। सो ऐसा विचारै नाही कि काश्यप राजा के एते मणि का विमाण गर्भ विषे कैसं रहिसो ? अर चद्रमा-सूर्य विमाण हैं, ताके शनीचर वा बुध पुत्र कैसे होसी ? अर कवारी स्त्री के कान को बोडी कैसे पुत्र होसी ? अर द्रौपदी के पच भर्तार हुवा, तो सतीपणो कैसं होसी ? सो ये भी प्रत्यक्ष विरुद्ध है, सो या बात साच कैसे सभवै ? इत्यादि भरम बुद्धि करि जगत भ्रम रह्या है। ताका वर्णन कहां ताइं करिये ? सो या बात न्याय ही है; ससारी जीव के हो भरम बुद्धि न

---

१ उखाड़ दिया २ मैल

होय, तौ और कुणी के होय ? कोई पंडित, ज्ञानी, पुरुषा के तो हो वै नाहीं अर ऐसे ही पंडित ज्ञानी पुरुषा मैं भरम बुद्धि होय, तौ संसारी जीवा मैं अर पंडित ज्ञानी मैं विशेष कांई ? धर्म छै सो लोकोत्तर छै।

भावार्थ—लोक-रीति सौ धर्म-प्रवृत्ति उपटी है। लोक की प्रवृत्ति के अर धर्म की प्रवृत्ति के परस्पर विरोध है, ऐसा जानना। आगै और भी जगत की विडंबना दिखाइये है। केई तौ बड, पीपल, आवला आदि नाना प्रकार का वृक्ष एकेंद्री वनस्पति ताकौ मनुष्य पचेंद्री होय पूजै है अर वाको पूजि फल चाहै है। सो धणो फल पावस्यो, तौ पचेंद्री सौ पूठा फल एकेंद्री होसी सो यह बात युक्त है। कोई हजार रुपया कौ धनी-है सो कोई याकी घणा सेवा करै अर वह घणा तुष्टमान होय, तौ हजार रुपया दे काढै। अथवा देवा नै समर्थ नाही, त्यौ ही एकेंद्री पूज्या सौ मरि करि एकेंद्री होय। अर गाय, हाथी, घोडा बलद[1] यानै पूज्या या सारिखो होय, या सूं वाधि[2] मिलिवा की नेम[3] नाही। अर केई हाथा सू लकडी काटि वा कू वालि देय, पाछै वा को दोल्यौ फेरा लेय अर वा ही का वादणा[4] गावै अर वा ही को माता कहै अर माथा मैं धूलि राख नाखि विपरीत होय चावर-दालि[5] आदि खाय कार विकार चेष्टा रूप प्रवर्तै। अर माता-पिता, बहण-भौजाई, आदि तिन की लाज कहिये सरम तजै। आप नाना प्रकार छोटा भाई की स्त्री, इत्यादि पर रमणी विषै जल-क्रीडा आदि अनेक क्रीडा

---

१ बैल २ बढ़कर, वृद्धि ३ नियम ४ गीत ५ चावल-दाल

करै । अर कुचेष्टा करि आकुल-व्याकुल होय महापकालिक का पाप ने उपार्जे अर आप कूं धन्य माने अर फेरि पर-लोक विषें ऐसा महा पाप करि शुभ फल को चाहे ? ऐसा कहै है—म्हे होली माता ने पूजा छा, सो म्हा नै आछ्यो फल देसी । ऐसी विडंबना जगत विषें आख्या देखिये हैं । सो ऐसा विचार संसारी जीव करै नाहीं, सो ऐसा म्हा पाप कार्यकारी ताका फल आछ्या कैसै लागसी ? अर या होली वस्तु कोई छै, सो अबै होली का स्वरूप कहिये है । सो होली एक साहूकार की बेटी थी । सो दासी का निमित करि पर पुरुष सौ रत थी । सो वा पुरुष सौ निरंतर भोग भोगवै । पाछै होली मन मैं विचार कियो, सो वा बात और तौ जाणे छे नही अर या दासी जाणै छै । सो या कठै कहि देसी, तौ म्हारो जमारो खराब होसी, तोसौं ई नै मारि नाखिजो । सो ऐसो विचार करि पाछे ई ने अग्नि मैं जालि दीनी, सो या मरि करि व्यतरणी हुई । पाछै ई व्यतरी पाछिलौ सारो वृत्तांत जान्यौ । तब यह महा कोपायमान होय वा नगर का सगला लोगा रोग करि पोडित किया । पाछै वा नगर का लोग या प्रार्थना करता हुवा कि भाई कोई देवातर हो सो प्रगट होहु अर जोगि मागि ल्यो सो ही म्हानें कबूल छै । सो तब व्यतरी प्रगट हुई अर सारो पाछिलौ होली कौ वृत्तात कह्यौ । तब सब नगर का लोगा कही—अब तू म्हा नै आज्ञा करि, तू कहै सोई थारी मानिता करा । तब केनायक हठ किया पीछै व्यतरणी कह्यौ-काठ की होली बनावौ अर याकूं कठोगरा फूस लगाय वालि धौ अर याकी दोल्यू सारा नगर का फेरा ल्यौ अर या वादण गावौ अर याकू भाउ करौ अर सारा माथा मैं धूलि माखो

अर नाची, अर या की वरसा-वरसी स्थापना करै सो पाछै भय का मार्‍या नगर का लोग ऐसे ही करता हुवा। सो जीवा नैं ऐसी विषय-वासना की चेष्टा सुहावैं छै। पाछै यह निमित्त मिल्या, जैसे भूलै चोर कटारी पाछै—ई प्रवृत्ति कौ कौण मेटिया समर्थ होय ? तोसूं ये बात सारा जगत विषैं फैल गई छै सो अब ताई चली आवै छं; ऐसा जानना। ऐसे ही गणगोर, राखी, दिवाली, यानै आदि नाना प्रकार की प्रवृत्ति जगत विषैं फैली छै। ताका निवारिवा नैं कौण समर्थ ? और भी जीवा की अज्ञानता को स्वरूप कहिये है। सो सोतला, बोदरी, फोडा आदि शरीर विषै लोही[1] कौ विकार छं, सो इन कूं बहुत आदर सूं पूजै। पाछै केयाकूं पूजतां पूजता ही पुत्रादिक मरि जाय है अर केई नाही पूजै है, त्याका जीवता देखिये है। तौ भी वे अज्ञानी जीव वा कूं वैसं हो मानै है और कहै है-छाणा को जालो वा रोडो वापरे को। देहली, पथवारी, गाडा को पैंजनो, दवात, बही, कुलदेवी, चौथ, गाज, अणत, इत्यादि कोई वस्तु ही नाही। पथवारी त्यानै बहुत अनुराग करि पूजै है। अर सती, अहूत पितर आदि पूजै है। सो इत्यादि कुदेवा कौ कहा ताईं वरनन करिये ? सो सर्व जगत ही कुदेव तिनका सर्व जगत ही याकौ पूजे, ताका वर्णन करिवानै ऐसो बुद्धिवान पण्डित कौन नखै दीनता न भाषै ? अर कुण-कुण का पगा नीचै यो मस्तक नैन नवावे ? अवश्य हो नवावै, सो यह मोह का माहात्म्य है। अर मोह करि अनादि काल कौ ससार विषैं भ्रमै है अर नर्क-निगोदादिक का दुःख सहै है।

---

[1] रक्त, खून

ता दुःख का वर्णन करिवा समर्थ श्री गणधरदेव भी नाहीं। तीसू श्री गुरु परमदयाल कहै है–हे वच्छ ! हे पुत्र ! जै तू आपना हित नै वांछै छै अर महा सुखी हुवो चाहै है, तौ मिथ्यात्व का सेवन तजि। धणा कहिवा करि काई ? सो विचक्षण पुरुष है सो तौ थोडा ही मैं समझि जाय है अर जे दीठ पुरुष है, त्यानै चाहै जितनो कहौ, ते नाही मानै सो ये बात न्याय ही है। **जैसौ जीव कौ होणहार होय, तैसी ही बुद्धि उपजै**। ऐसे सक्षप मात्र कुदेवा का वर्णन किया।

आगै कुशास्त्र वा कुधर्म का वर्णन करिये है। सो कुशास्त्र काहे कू कहिये ? जा विषै हिंसा, झूठ, कुशील, परिग्रह की वाछा, त्या विषै धर्म थाप्या होय अर दुष्ट जीवा कू अर बैर्या कू सजा करनो अर भक्ता की सहाय करनी अर राग-द्वेष रूप प्रवर्तना अर आपनो बडाई अर पर को निंदा ऐसा जा विषै वर्णन होय। पाचौ इन्द्रिया का पोषण विषै धर्म जानै वा तालाब, कुवा, बावडी आदि निवाण का खिणायवा विषै अर जज्ञ का करावा विषै धर्म मानै अर ताका करावा का जा विषै वर्णन होय अर पाकर प्राग आदि तीर्थ का करावा विषै अर विषय करि आसक्त नाना प्रकार के कुगुरु ताका पूजिवा विषै धर्म जानै, ताका वर्णन होय। अर दश प्रकार का खोटा दान त्याकौ व्यौरौ- स्त्री, दासी-दास कौ दान, हाथी, घोड़ा, ऊट, भैसा, वलद, गाय, भैसी वा धरती, गाव, हवेली ताका दान करना अर छुरी, कटारी, बरछी, तरवारि, लाठी आदि शस्त्र का अर राहु, केतु, आदि ग्रहा निमित्त लौह, तिल तेल, वस्त्र आदि

देना अर सुवर्ण का देना। अर मूला, सकरकंद का देना अर ब्रह्म भोजन का करावना अर कुल आदि न्यौत के जिमावणा, काकडी-खरबूजा आदि का दान करना इत्यादि नाना प्रकार का खोटा दान है, ताका जा विषै वर्णन होय। या जाणै नही, जो ये दान तीन प्रकार के पाप का कारण है– हिंसा, कषाय अर विषयां की आसक्तता-तीव्रता या दान विषै होय छै। तातैं ये दान महा पाप का कारण है, याका फल नर्कादिक है। अर जा विषै सिंगार, गीत-नृत्यादि, अनेक प्रकार की कला-चतुराई, हाव-भाव-कटाक्ष जा विषै जाका वर्णन होय। अर खोटा मंत्र, यंत्र, तंत्र, औषधि, वैद्यक, ज्योतिष, ताका वर्णन होय। इत्यादिक जीवनै भव-भव विषै दुःख के कारण, ताका जा विषै वर्णन होय। अर परमार्थ का जा विषै वर्णन नाही, ऐसा शास्त्र का नाम कुशास्त्र है। सो या शास्त्र कू सुण्या अर सरध्या नियम करि जीव का बुरा ही होय; भला अंश मात्र भी नाही होय, ऐसे कुशास्त्र का स्वरूप जानना।

आगै कुगुरु का स्वरूप कहिये हैं। सो कैसे है कुगुरु ? केई तौ बहुत परिग्रही हैं, केई महा क्रोध करि संयुक्त हैं, केई मान करि संयुक्त है, केई माया कहिये दगाबाजी करि संयुक्त हैं, केई लोभ करि संयुक्त हैं, जाकै पर स्त्री सू भोग करिबा की सका नाही है। बहुरि कैसे हैं कुगुरु ? केई सामग्री माहि जीवा कौ होम करै हैं, केई अणछाण्या पाणी सू सापडि[१] ही धर्म मानै हैं, केई शरीर के विभूति लगाया है केई जटा बधाया है, केई ठाढेश्वरी कहिये एक हाथ, दोय हाथ ऊंचा किया है, केई अग्नि ऊपरि अधोमुख करि

---

१ स्नान

झूलै हैं, केई ग्रीष्म रितु समै बालू रेत विषैं लोटै है, केई झरझर कथा पहरै हैं, केई बाघंबर धारै हैं, केई लांबी माळा गळा विषैं धारै हैं, केई काथ्या कपड़ा पहर्या है। केई टाट का कपडा पहर्या है, केई मृग की खाल पहर्या है, ताका कल्याण होय। अर छापा, तिलक सौं ही कल्याण होय, तौ खंखरा के दिन बलद आदि का सर्व शरीर छपाय[1] दीजिये हैं, त्याका कल्याण होय। अर ध्यान धर्या ही कल्याण होय, तौ बुगला[2] ध्यान धरै है, ताका कल्याण होय। राम-राम कह्या ही कल्याण होय, तौ पींजरा कौ सूवो सासतो राम-राम कहै है, ताका कल्याण होय। घर-वार छोडि वन मैं वस्या ही कल्याण होय, तौ बादता सासत वन विषै नग्न रहै है, ताका कल्याण होय। सो इनि सबनि का कदाचि कल्याण नाही होय। सिद्ध होवा का कारण और ही है। ऐसे कुगुरु का स्वरूप जानना।

सो हे भव्य ! ऐसे कुदेवादिक ताका सेवन दूरि ही तैं तजि। घणी कहिवा करि कांई ? विचक्षण पुरुष है सो थोडा ही मैं समझि लेहै अर अज्ञानी घणा कहिवा करि भी नाही समझै है। अर देव, गुरु, धर्म का स्वरूप एक प्रकार हैं, बहुत प्रकार नाही। ताका स्वरूप पूर्वे वर्णन करि ही आये हैं सो जानना। सो ही मोक्षमार्गी है; अन्य का सेवन संसार का मार्ग है। सो श्रीगुरु कहै है–हे वच्छ ! हे पुत्र ! जो तू नै आछ्या लागै जानैं सेय, म्हाका कहना ऊपरि मति रहै। परीक्षा करि देव, गुरु, धर्म की प्रतीति करि। अर देव, गुरु, धर्म; की प्रतीति बिना जेता धर्म कीजै है, ते

---

१ छपा २ बगला

निफंल होय है, जैसे एका बिना बींदी गिणती में आवै नाहीं। सो केई सिंघ की खाल पहर्‌या है, केई नग्न होय नाना प्रकार का शस्त्र धारै है, केई वन-फल खाई है, केई कूकरा[१] आदि तिर्यंच ताकू राखै है, केई मौन धर्‌या है, केई पवनाभ्यास करै है, केई ज्योतिष, वैधक, मंत्र, यंत्र, तंत्र, करैं हैं, केई लोक दिखावने कू ध्यान धर्‌या है; केई आप कू महत मानै हैं, केई आप कू सिद्ध मानै हैं, केई आपनै पुजाया चाहै है; केई राजाविक नखै पुजाय बहुत राजी होय है अर कोई न पूजै तो ता ऊपरि क्रोध करै है, केई कान फडाय[२] रगवा कपडा पहर्‌या है अर मठ बांधि अर लाखा रुपया की दौलत राखै है अर गुरु को ठसक धरावै है भोला जीवा नै पगा पाडै हैं, इत्यादि नाना प्रकारआरक कुगुरु ये हैं, ताका कहा ताइं वर्णन करिये ? और युक्ति करि समझाइये है–जे नागा रह्या कल्याण होय, तो तिर्यंच सासता नागा रहै है याका कल्याण क्यों न होय ? अर राख लगाया कल्याण होय, तो गर्दभ[७] सासता राख विर्षे लोटै है, याका कल्याण क्यों न होय ? अर माथा मुडाया ही कल्याण होय, तो गाडर[४] कू छटे महीने मूडिये है, याका कल्याण क्यो न होय ? अर स्नान किया ही कल्याण होय, तो मैंढक, मच्छी, आदि जलचर जोव सासता पाणी मै रहै है, याका कल्याण क्यों न होय ? अर जटा बधाया[५] ही कल्याण होय तो; केई वड[६] आदिक ताकी धरती पर्यंत जटा वधै है; इत्यादि सर्व कुगति का पात्र हैं, ऐसे जानना। और भी श्रीगुरु कहै है–हे पुत्र ! तू नै दोय बाप का बेटा

---

१ कुत्ता २ फड़वाकर ३ गधा ४ भेड़ ५ बढाने से ६ वट वृक्ष

कहै तो तू लडै अर दोय गुरु थारै बतावै तौ तू अंश मात्र भी खेद मानै नाही। सो माता-पिता तौ स्वारथ का सगा अर वा सू एक पर्याय का संबंध ताकी तौ थारै ऐसो ममत्व बुद्धि छै अर ज्या गुरु का सेवन करि जरा-मरण का दुःख विलय जाय अर स्वर्ग-मोक्ष की प्राप्ति होय, त्याकी थारे या प्रतीति, सो या थारी परिणति तू नै सुखदायो नाही। तौसू जे तू आपना हेत नै वाछै छै, तौ एक सर्वज्ञ, वीतराग देव, ताका वचन अगीकार करि अर उस ही के वचन अनुसार देव, गुरु, धर्म ताका श्रद्धान करि, इति श्री श्रावकाचार ग्रंथ की भाषा वचनिका सपूर्ण।

श्रावक का धर्म

रात्रि भोजन मे अहिंसा होती है, इसलिए श्रावक को उसका त्याग होता ही है। इसी प्रकार अनछने पानी मे भी त्रस जीव होते है। शुद्ध और मोटे कपडे से छानने के पश्चात् ही श्रावक पानी पीता है। अस्वच्छ कपडे से छाने तो उस कपडे के मैल मे ही मे जीव होते है, इसलिए कहते है कि शुद्ध वस्त्र से छने हुए पानी को काम मे लेवे। रात्रि को तो पानी पिये ही नही और दिन मे छान कर पिये। रात्री को त्रस जीवो का सचार बहुत होता है, इस रात्री के खानपान मे त्रस जीवो की हिंसा होती है। जिसमे त्रस जीवो की हिंसा होती है—ऐसे कार्य के परिणाम व्रति श्रावक को नही हो सकते।

पू श्री कानजी स्वामी

श्रावक धर्म प्रकाश पृष्ठ 53-54 (नया सस्करण

परिशिष्ट १

जीवन-पत्रिका

(ब्र प. रायमल्ल)

अथ आगे केताइक समाचार एकादेशी जघन्य संयम के धारक रायमल्ल ता करि कहिए है। इह असमानजाति-परजाय उत्पन्न भए तीन वर्ष नौ मास हुए, हमारे ता समै ज्ञेय का जानपना की प्रवृत्ति निर्मल भई सो आयु पर्यंत धारण शक्ति के बल करि स्मृति रहै। तहा तीन वर्ष नौ मास पहली हम परलोक सम्बन्धी च्यारी गति मांसू कोई गति विषै अनन्त पुद्गल की परणुवां[1] अर एक हम दोऊ मिलि एक असमानजातिपर्याय कौ प्राप्त भया था, ताका व्यय भया। ताही समैं हम वै पर्याय सम्बन्धी नोकर्म शरीर कूं छोडि कार्माण शरीर सहित इहा मनुष्य भव विषै वैश्य कुल तहां उत्पन्न भया। सो कैसे उत्पन्न भया? जैसे भिष्टादिक असुचि स्थानक विषै लट-कमि आदि जीव उपजै तैसे माता-पिता के रुधिर शुक्र विषै आय उहां नोकर्म जाति की वर्गणा का ग्रहण करि अंतर्मूहूर्त काल पर्यंत छहूं पर्याप्त पूर्ण कीए। ता समै लोही[2] सहित नाक के श्लेष्म का पुंज सादृश्य शरीर का आकार भया। पीछैं अनुक्रम सूं बधता-बधता केताक दिना मैं मास को बूथी[3] सादृश्य आकार भया।

बहुरि केताइक दिन पीछै सूक्ष्म आंखि, नांक, कान,

---

१ परमाणु २ रुधिर, खून ३ लोथड़ा

मस्तक, मुख, हाथ-पाव इंद्रया गोचर आवै अैसा आकार भया। ऐसै ही बधता-बधता बिलसति[४] प्रमाण आकार भया। असै नौ मास पर्यंत औंधा मस्तक ऊरि पाव, गोडा विषे मस्तक, चाम की कोथली करि आच्छादित, माता के भिष्टादिक खाय महाकष्ट सहित नाना प्रकार की वेदना कू भोगवता सता, लघु उदर विषे उदराग्नि मैं भस्मीभूत होता संता, जहा पौन का संचार नाहीं अैसी अवस्था नै धरया नौ मास नर्क सादृश्य दुख करि पूर्ण कीया। पीछे गर्भ बाह्य निकस्या बाल अवस्था के दुख करि फेरि तीन वर्ण पूर्ण कीये। अैसा तीन वर्ष नौ मास का भावार्थ जानना।

अर या अवस्था कै जो पूर्वे अवस्था भई ताका जानपना तौ हमारै नाही। तहां पीछला जानपना की यादि है सोई कहिए है। तेरा-चौदा वर्ष की अवस्था हुए स्वयमेव विशेष बोध भया। ता करि अैसा विचार होने लागा जीव का स्वभाव तौ अनादिनिधन अविनासी है। धर्म के प्रभाव करि सुखी होय है। पाप के निमत्त करि दुखी होय है। तातै शर्म ही का साधन कर घना पाप का साधन न करना परन्तु सक्तिहीन करि वा जथार्थ ज्ञान का अभाव करि उत्कृष्ट धर्म का उपाय बनै नाही। सदैव परणामा की वृत्ति अैसे रहै, धर्म भी प्रिय लागै अर ई पर्याय सम्बन्धी कार्य भी प्रिय लागै।

बहुरि सहज ही दयालसुभाव, उदारचित्त, ज्ञान वैराग्य

---

१ लोथड़ा

को चाहिं सतसंगति का हेरु, गुणीजन का चाहक होता सता इस पर्याय रूप प्रवर्ते। अर मन विषैं असा सदेह उपजै ए सासता एता मनुष्य ऊपजे है, एता तिर्यंच ऊपजे है, एती वनस्पति ऊपजे हैं, एता नाज सप्त धात, ई, षट्रस, मेवा आदि नाना प्रकार की वस्तु उपजे हैं, सो कहां सूं आवे है अर विनसि कह्य जाय है। इसका कर्ता परमेश्वर बतावे हैं सो तौ परमेश्वर कर्त्ता दीसै नाही। ए तौ आपै उपजे हं, आपै आप विनसे हैं, ताका स्वरूप कौन कू बूझिये।

बहुरि अपरनै कहा-कहा रचना है। अधो दिशा नै कहा-कहा रचना है, पूर्व आदि च्यारा दिशा नै कहा-कहा रचना है, ताका जानपना कैसे होइ। याका जानपना कोई कै है या नाही, ऐसा स देह कैसे मिटै?

बहुरि कुटु[1] बादि बडे पुरुष तानै याका स्वरूप कदे पूछे तब कोई तौ कहै परमेश्वर कर्ता है, कोई कहे कर्म कर्ता है, कई कहैं हम तौ क्यूं[1] जानै नाही, बहुरि कोई आनमत[2] के गुर वा ब्राह्मण ताकूं महासिद्ध वा विशेष पडित जानि वाकूं पूछे तब कोई तौ कहै ब्रह्मा, विष्णु, महेश ए तीन देव इस सृष्टि के कर्ता है, कोई कहै राम कर्ता है, कोई कहैं बडा-बडो भवानी कर्ता है, कोई कहै नारायण कर्ता है, बेहमाता लेख घाले है, धर्मराय लेखा ले है, जम का डागो इस प्राणी कूं ले जाय है, वा सिगनाग[2] तीन कू फण ऊपरे धारे है। ऐसा जुदा जुदा वस्तु का स्वरूप कहै। एकजिभ्या कोई बोले नाही। सो ए न्याय है–

---

१ कुछ २ अन्य मत वेष नाम

सांचा होय तौ सर्व एक रूप ही कहै। अर जानैं क्यूं भी खबरि नाहीं, अर माही मान कषाय का आशय ता करि चाहै ज्यौं वस्तु का स्वरूप बतावै अर उनमान सूं प्रतक्ष विरुद्ध, तातैं हमारे सदैव या बात को आकुलता रहै, सदेह जाभै नाही।

बहुरि कोई कालि ऐसा विचार होइ अठै साधन करिए पीछै वाका फल तैं राजपद पावै, ताके पाप करि फेरि नर्कि[1] जाय तौ अैसा धर्म करि भी कहा सिद्धि? अैसा धर्म करिए जा करि सर्व ससार का दुख सूं निवृत्ति होइ। अैसी ही विचार होती होतै बाईस वर्ष की भई।

ता समै साहिपुरा नग्र विषै नीलापति साहूकार का सजोग भया। सो वाकै सुद्ध दिगंबर धर्म का श्रद्धान, देव गुरू धर्म की प्रतीति, सागम अध्यात्म शास्त्रा का पाठी, षट्, द्रव्य, नव पदार्थ, पचास्तिकाय, सप्त, गुणस्थान, मार्गणा, बश-उदय-सत्व आदि चरचा का पारगामी, धर्म की मूर्ति, ज्ञान का सागर, ताकै तीन पुत्र भी विशेष धर्म बुद्धी और पाच सात दस जन धर्मबुद्धी; ता सहित सदैव चर्चान[2] होइ, नाना प्रकारु के सास्त्रा का अवलोकन होइ। सो हम वाके निमित्त करि सर्वज्ञ वीतराग का मय सत्य जान्या अर वाके वचना के अनुसार सर्व तत्वा का स्वरुप यथार्थ जान्या।

थोरे ही दिना मैं स्वपर का भेद–विज्ञान भया। जैसे सूता आदमी जागि उठै है तैंसे हम अनादि काल के मोह

---

१ नरक २ चर्चाएं

निद्रा करि सोय रहे थे सो जिनवाणी के प्रसाद तैं वा नीलापति आदि साधर्मी के निमित्त तैं सम्यग्ज्ञान–दिवस विषै जागि ऊठे। साक्षात ज्ञानानंद स्वरूप, सिद्ध सादृश्य अपना जान्या और सब चरित्र पुद्गल द्रव्य का जान्या। रागादिक भावां की निज स्वरूप सूं भिन्नता वा अभिन्नता नीकी जानी। सो हम विशेष तत्त्वज्ञान का जानपना सहित आत्मा हुवा प्रवर्तें। विराग परिणामा के बल करि तीन प्रकार के सौगंद–सर्व हरित काय रात्रि का पाणी, विवाह करने का आयुपर्यंत त्याग कीया। ऐसैं होते सत सात वर्ष पर्यंत उहां ही रहे।

पीछे राणा का उदैपुर विषै दौलतराम तेरापंथी, जैपुर के जयस्यंघ राजा के उकील[1] तासूं धर्म अर्थि मिले। वाकै संस्कृत का ज्ञान नीका, बाल अवस्था सूं ले वृद्ध अवस्था पर्यंत सदैव सौ-पचास शास्त्र का अवलोकन कीया और उहा दौलतराम के निमित्त करि दस–बीस साधर्मी या दस-बीस बाया सहित सैली का बणाव बणि रह्या। ताका अव-लोकन करि साहिपुरै पाछा आए।

पीछे केताइक दिन रहि टोडरमल्ल जैपुर के साहूकार का पुत्र ताकै विशेष ज्ञान वासूं मिलने के अर्थि जैपुर नगरि आए। सो इहां वाकूं नहीं पाया अर एक बंसीधर किंचित संजम का धारक विशेष व्याकरणादि जैन मत के शास्त्रां का पाठी, सौ-पचास लडका पुरुष बाया जा नखै[2] व्याकरण, छंद, अलंकार, काव्य, चरचा पढै, तासूं मिले।

पीछे वानै छोडि आगरै गऐ। उहां स्याहगंज विषैं

1 वकील 2 जिसके पास

भूधरमल्ल साहूकार व्याकरण का पाठी घणां जैन के शास्त्रां का पारगामी तासूं मिले और सहर विषैं एक धर्मपाल सेठ जैनी अग्रवाल व्याकरण का पाठो मोतीकटला के चैताले शास्त्र का व्याख्यान करै, स्याहगंज कै चैताले भूधरमल्ल शास्त्र का व्याख्यान करै, और सौ-दोय सै साधर्मी भाई ता सहित वासूं मिलि फेरि जैपुर पाछा आए।

पीछै सेखावाटी विषै सिंघाणा नग्र तहां टोढरमल्लजी एक दिल्ली का बडा साहूकार साधर्मी ताकै समीप कर्म कार्य कै अर्थि वहां रहै, तहा हम गई अर टोडरमल्लजी सूं मिले, नाना प्रकार के प्रश्न कीए, ताका उत्तर एक गोमट्टसार नामाग्रथ की साखि सूं देते भए। ता ग्रंथ की महिमा हम पूर्वे सुणी थी, तासूं विशेष देखी। अर टोडर-मल्लजी का ज्ञान की महिमा अद्भूत देखी।

पीछै उनसूं हम कही—तुम्हारे या ग्रथ का परचै भया है। तुम करि याकी भाषा टीका होय तौ घणा जीवा का कल्याण होइ अर जिन धर्म का उद्योत होइ। अबैही[1] काल के दोष करि जीवा की बुद्धि तुच्छ रही है, आगै यातैं भी अल्प रहैगी, तातैं ऐसा महान् ग्रथ पराकृत[2] ताकी मूल गाथा पद्रह सै १५०० ताकी टीका सस्कृत अठारह हजार १८००० ता विषै अलौकिक चरचा का समूह सदृष्टि वा गणित शास्त्र की आम्नाय सयुक्त लिख्या है, ताका भाव भासना महा कठिन है। अर याके ज्ञान की प्रवृत्ति पूर्वे दीर्घ काल पर्यंत तो लगाय अब ताई नाही तौ आगै भी

१ वर्तमान में ही २ प्राकृत

याकी प्रवृत्ति कैसे रहैगी । तातैं तुम या ग्रंथ की टीका करने का उपाय शीघ्र करो, आयु का भरोसा है नाहीं।

पीछै ऐसे हमारे प्रेरकपणा का निमित्त करि इनकै टीका करने का अनुराग भया । पूर्वै भी याकी टीका करने का इनका मनोरथ था ही, पीछै हमारे कहने करि विशेष मनोरथ भया ! तब शुभ दिह मुहूर्त विषै टीका करने का प्रारम्भ सिघाणा नग्र विषैं भया । सो वै तौ टीका बणावते गए, हम बाचते गए। बरस तीन मैं गोमट्टसार ग्रंथ की अठतीस हजार ३८०००, लब्धिसार क्षपणासार ग्रंथ की तेरह हजार १३०००, त्रिलोकसार ग्रथ की चौदह हजार १४०००, सब मिलि च्यारि ग्रंथो की पैसठि हजार टीका भई ।

पीछै सवाई जैपुर आए । तहां गोमटसारादि च्यारौं ग्रथा कू सोधि याकी बहोत प्रति उतराई । जहां सैलो छी तहा सुधाई-सुधाइ पधराई। ऐसै या ग्रंथा का अवतार भया । अबार के अनिष्ट काल विषै टोडरमल्लजी कै ज्ञान का क्षयोपसम विशेत्र भया । ए डोमटसार ग्रथ का बचनो पांच सै बरस पहलो था । ना पीछै बुधि की मदता करि भाव सहित बचना रहि गया । बहुरि अबै फेरि याका उद्योत भया ।

बहुरि वर्तमान काल विषै इहां धर्म का निमित्त है तिसा अन्यत्र नाही । वर्तमान काल विषै जन धर्म को प्रवृत्ति पाइये है ताका विशेष आगै इंद्रध्वज पूजा का विधान लिखैगे, ता विषै जानना ।

बहुरि काल दोष करि बीचि मैं एक ऊपद्रव भया सो

---

१ वर्तमान मे ही २ प्राकृत

कहिए है। सवत् १८१७ कै सालि असाढ कै महिनै एक स्यामराम ब्राह्मण वाके मत का पक्षी पाप पूर्ति उत्पन्न भया। राजा माधवस्यंह का गुर ठहरया, ता करि राजा नैं वसि किया। पीछै जिनधर्म सूं द्रोह करि या नग्र के वा सर्व ढुढाड देश का जिनमदिर तिनका विघ्न कीया, सर्वं कू वंसनू करने का उपाय कीया, ता करि लाखा जीवा नै महा घोरान घोर दुख हुवा अर महा पाप का बध भया। सो एह उपद्रव बरस ड्योढ पर्यंत रह्या।

पीछै फेरि जिनधर्म का अतिशत करि या पापिष्ट का मान भग वा जिनधर्म का उद्योत हुवा। सर्व जिन मदिरा का फेरि निर्माण हुवा। आगा बीचि दुगुणा तिगुणा चौगुणा जिनधर्म का प्रभाव प्रवर्त्या। ता समै बीस तीस जिनमदिर या नग्र विषै अपूर्व बणे। तिन विषै दोय जिन मदिर तेरापथ्यां की शैली विषै अद्भूत सोभा नै लीया, बडा विस्तार नें धरया बणे। तहा निरतर हजारा पुरुष-स्त्री देवलोक की सी नाई चैत्यालै आय महा पुन्य उपारजै दीर्घ काल का सच्या पाप ताका क्षय करै। सौ पचास भाई पूजा करने वारे पाइये, सौ पचास भाषा शास्त्र बाचन वारे पाइये, ये दश-बीस सस्कृत शास्त्र बाचने वारे पाइये, सो-पचास जने चरचा करने वारे पाइये और नित्यान[१] का सभा के शास्त्र का व्याख्यान विषै पाच सौ-सात सै पुरुष तीन सौ-च्यारि सै स्त्रीजन सब मिलि हजारा बारा सै पुरुष स्त्री शास्त्र का श्रवण करै, बीस-तीस बाया शास्त्राभ्यास करै, देश-देश का प्रश्न इहा आवै तिनका समाधान होय उहा पहुचै, इत्यादि अद्भुत महिमा चतुर्थकालवत या नग्र विषै जिनधर्म की प्रवृत्ति पाइये है।

---

१ नित्य प्रति की

२

इन्द्रध्वजविधान-महोत्सव पत्रिका

(ब्र. श्र. रायमल्ल)

आगैं माह सुदि १० संवत् १८२१ अठारा सै इकबीस कै सालि इन्द्रध्वज पूजा का स्थापन हूवा। सो देस-देस के साधर्मी बुलावने कौं चीठी लिखी ताकी नकल इहां लिखिये है। दिल्ली १, आगरै १, भिंड १, कोरडा जिहानाबाद १, सिरोज १, वासोदो १, इंदौर १, औरंगाबाद १, उदैपुर १, नागोर १, बीकानेर १, जैसलमेर १, मुलतान १ पर्यंत चीठी ऐसी लिखी सो लिखिये हैं—

स्वस्ति दिल्ली आगरा आदि नग्र के समस्त जैनी भाया योग्य सवाई जयपुर थी रायमल्ल कंनिश्री शब्द वाचना। इहां आनन्द वर्ते है। था कै आनन्द की वृद्धि होउ। थे धर्म के बडे रोचक हो।

अपरंच इहां सवाई जयपुर नग्र विषै इन्द्रध्वज पूजा सहर के बारै अधकोस परै मोतीडूंगरी निकठि ठहरी है। पूजा का रचना का प्रारम्भ तो पास वदि १ सूं ही होने लागा है। चौसठि गज का चौडा इतना ही लांबा एक च्यौंतरा बण्या है। ता उपरि तेरह द्वीप की रचना बणी है। ता विषैं यथार्थं च्यारि से अठावन चैत्यालय, अढाई द्वीप के पांच मेरु, नंदीश्वर द्वीप के बावन पर्वत ता उपरि जिनमंदिर बणे हैं। और अढाई द्वीप विषैं क्षेत्र, कुलाचल, नदी, पर्वत, वन, समुद्र ताकी रचना बणी है। कठै ही कल्प

वृक्षां का वन ता विषैं कठै ही चैत्य वृक्ष, कठै हो सामान्य वृक्षां का वन, कठै ही पुष्प-बाडी, कठै हो सरोवरी, कठै हो कुंड, कठै ही द्रह माहिं सूं निकसि समुद्र मे प्रवेश करती नदी, ताकी रचना बणी है। कठै ही महला की पंक्ति, कठै ही ध्वजा के समूह, कठै ही छोटी–छोटी ध्वजा के समूह का निर्मापण हूवा है।

पोस बदि १ सूं लगाय माह सुदि १० ताई सौ ड्योढ सै कारीगर, रचना करने वाले सिलावट, चितेरे, दरजी, खराधी, खाती, सुनार आदि लागे है। ताकी महिमा कागद मै लिखी न जाय, देखे ही जानी जाय। सो ये रचना नौ पत्थर–चूना के चौसठि गज का च्यौतरा ता उपरि बणो है। ताकै च्यार्‌यौ तरफ कपडा का सरायचा के कोट बणेगा। और च्यार्‌यो तरफ च्यारि वीथी कहिए गली, च्यार्‌यौ तरफ के लोग दरवाजा मै प्रवेश करि आवने कौ अैसो च्यारा तरफा च्यारि वीथी की रचना समोसरण की वीथी सादृश्य बनेगी। अर च्यारा तरफा नै बडे-बडे कपडा के वा भोडल का काम के वा चित्राम का काम के दरवाजे खडे होयगे। ताकै परै च्यार्‌यौ तरफ नौबतिखाना सरू होयगे। और च्यौतरा को आसिपासि सौ दो सै डेरे तंबु कनात खडे होयगे। और च्यारि हजार रेजा पाघ राता[1] छीट लागी आए है। सो निसान, धुजा, चदवा बिछायत विषै लागैगे।

दोय सै रूपा[2] के छत्र झालरी सहित नवा घडाए है। पाच-सात इन्द्र बणैगे, तिनकं मस्तकै धरने कूं पाच-सात

---

१ लाल २ चांदी

मीना का काम के मुकुट बणैगे। बीस-तीस चालीस गड्डी कागदां को बागायति[1] वा पहोपवाडी[2] कै ताई अनेक प्रकार के रंग की रंगी गई हैं। और बीस-तीस मण रद्दी कागद लागे हैं, ताकी अनेक तरह की रचना बाणी है। पांचसैं कडी वा सोटि बास रचना विषै लागैंगे।

और चौसठि गज का च्यौंतरा उपरि आगरा सूं आए एक ही बडा धरता सूं बीज गज ऊंचा इकचोभा[3] दोय सै फरास[4] आदम्यां करि खडा होयगा। ताकरि सर्व च्यौंतरा उपरि छाया होयगो। और ता डेरा कै च्यारां तरफा चौईस-चौईस द्वार कपडा के वा भोडल के झालरी सहित अन विषैं च्यौंतरा को कोर उपरि बणै है। च्यारा तरफ के छिनवै द्वार भए। और डेरा कै बीचि ऊपर नै सोना के कलश चढै है और ताकै आसि-पासि घणा दरबार का छोटा बडा डेरा खडा होयगा। ताकै परै सर्व दीवान मुतसद्या का डेरा खडा होइगा। ताकै परै जात्र्यां का डेरा खडा होयगा।

और पोस बदि १ सूं लगाय पचास रुपया को रोजीनो कारीगरा को लागे है। सो माह सुदि १० ताईं लागैगा। पाछै सो रुपया को रोजीनो फागण बदि ४ ताईं लागैगा। और तेरह द्वीप, तेरा समुद्र कै बीचि-बीचि छब्बीस कोट बणैगा। और दरबार को नाना तरह की जलूसि आई है अथवा आगरै इन्द्रध्वज पूजा पूर्ण हुई थी ताको सारो मसालो वा जलूस इहां आया है।

और इहां सर्व सामग्री का निमित्त अन्यत्र जायगा तै

---

१ बाग २ पुष्प वाटिका ३ फर्श ४ कनात, टेन्ट

प्रचुर पाईये है तातैं मनोरथ अनुसार कार्य सिद्धि होहिंगे।

एह सारी रचना द्वीप, नदी, कुलाचल, पर्वत आदि की घन रुप जाननी। चावल, रोली का मंडल की नाईं प्रतर रूप नाही जाननी। ए रचना त्रिलोकसार ग्रथ के अनुसार बणी है। और पूजा का विधान इंद्रध्वज पूजा का पाठ सस्कृत श्लोक हजार तीन ३००० ताकै अनुसारि होयगा। च्यारों तरफा नै च्यारि बडी गधकुटी ता विषै बडे बिब बिराजैगे। तिनका पूजन च्यारा तरफा युगपत् प्रभाति मुखिया साधर्मी करैगे।

पीछै च्यारां तरफा जुदा-जुदा महत्‌बुद्धि का धारक मुखिया साधर्मी सास्त्र का व्याख्यान करैगे। देस-देस के जात्री आए वा इहा के सर्व मिलि सास्त्र का उपदेश सुणैगे। पीछै आहार लेना आदि शरीर का साधन करि दोपहर दिन चढे तैं लगाय दोय घडी दिन रहे पर्यंत सुदर्शन मेरु का चैत्यालय सूं लगाय सर्व चैत्यालया का पूजन इन्द्रध्वज पूजा अनुसारि होयगा। पीछै च्यौंतरा की तीन प्रदक्षिणा देय च्यारा तरफा आरती होयगी। पीछै सर्वरात्रि विषै च्यारा तरफा जागरण होयगा।

और सर्वत्र रूपा सोना के जरी का वा तबक[1] का वा चित्राम का वा भोडल के काम का समवसरणवत् जगमगाट नें लिया सोभा बनैगी और लाखा रूपा-सोना के दीप वा फूल पूजन कै ताईं बनै है। और एक कल का रथ बण्या है सो बिना बलधा बिना आदम्या कल के फेरने करि गमन करैगा। ता ऊपरि भी श्रीजी बिराजैगे और भी अनेक

[1] सोने चाँदी के बरक

तरह को असवारी बाणंगी। इत्यादि अद्भुत आश्चर्यकारी सोभा जानोगे।

और सौ-दो सै कोस के जैनी भाई सर्व सग बणाय कबीला सुधा आवेंगे। अर इहा जैनी लोगा का समूह है ही अर माह सुदि दसै के दिनि लाखो आदमी अनेक हाथ, घोरे, पलिकी, निसाण, अनेक नौबति नगारे आखी[1] बाजे सहित बडा उछव सू इन्द्रा करि करी हुई भक्ति ताकी उपमा नैं लीया ता सहित चैत्यालय सू श्रीजी रथ उपरि बिराजमान होइ वा हाथी के होदै बिराजमान होई सहर कै बारै तेरह द्वीप को रचना विषैं जाय बिराजेगे।

सो फागुण बदि ४ ताई तहा ही पूजन होयगा वा नित्य शास्त्र का व्याख्यान, तत्वा का निर्णय, पठन-पाठन, जागरण आदि शुभ कार्य चौथि ताइँ उहा ही होयगा। पीछे श्रीजी चैत्यालय आय बिराजेंगे। तहा पीछे भी देश-देश के जात्री पाँच-सात दिन पर्यंत और रहैगे। इँ भाति उछव की महिमा जानोगे। तातैं अपने कृतार्थ कै अर्थि सर्व देस वा प्रदेस के जैनी भाया कू अगाऊ समाचार दे वाकूं साथि ले सग बणाय मुहूर्त पहली पाच-सात दिन सीघ्र आवोगे। ए उछव फेरि इँ पर्याय मैं देखणा दुर्लभ है।

ए कार्य दरबार को आज्ञा सू हूवा है और ए हुकम हुवा है जो थाकै पूजाजी कै अर्थि जो वस्तु चाहिजे सो ही दरबार सू ले जावो। सो ए बात उचित ही है। ए धर्म राजा का शलाया ही चालै है। राजा का सहाय बिना ऐसा महत परम कल्याणरूप कार्य बणै नाँही है। अर

१ सब प्रकार के

दोन्यूं दीवान रतनचन्द वा बालचन्द या कार्य विषै अग्रेसरो[1] हैं, तातै विशेष प्रभावना होयगी।

और इहां बडे-बडे अपूर्व जिनमन्दिर बणे हैं। सभा विषै गोमट्टसारजी का व्याख्यान होय है। सो बरस दोय तो हूवा अर बरस दोय तांई और होइगा। एह व्याख्यान टोडरमल्लजी करै हैं। और इहां गोमट्टसार ग्रन्थ की हजार अठतीस ३८०००, लब्धिसार क्षपणासार ग्रन्थ की हजार तेरा १३०००, त्रिलोकसार ग्रन्थ की हजार चौदह १४०००, मोक्षमार्ग प्रकाशक ग्रथ की हजार बीस २०००० बडा पद्मपुराण ग्रन्थ की हजार बीस २०००० टीका बणी है, ताका दर्शन होयगा और एहा बडे-बडे संयमी पाइये है, ताका मिलाप होयगा।

और दोय-च्यारि भाई धव, महाधवल, जयधवल लेने कू दक्षिण देश विषै जैनबद्री नगर वा समुद्र ताई गए थे। उहा जैनबद्री विषै धवलादि सिद्धान्त ताडपत्रां विषै लिख्या कर्णाटी लिपि मैं बिराजै है, ताकी एक लाख सत्तरि हजार मूल गाथा है। ता विषै सत्तरि हजार धवल की, साठि हजार जयधवल की, चालीस हजार महाधवल की है। ताका कोई अधिकार कै अनुसारि गोमटसार, लब्धिसार, क्षपणासार बणे हैं।

अर उहा के राजा वा रैति[2] सर्व जैनी है अर मुनि धर्म का उहां भी अभाव है। थोरे से बरस पहली यथार्थ लिंग के धारक मुनि थे, अबै काल के दोष करि नाही।

---

१ मुखिया २ रैयत, प्रजा

अगल-बगल क्षेत्र घणा ही है, तहां हींयघा । और उहां कोड्यां[1] रुपया के काम के सिगोबध[2] मौंघा[3] मोल के पथरनि के वा ऊपरि सर्वत्र तांबा के पत्रा जडे ताके तीन कोट ताका पाव कोस का व्यास है, ऐसे सोला बडा-बडा जिन मन्दिर बिराजे हैं। ता विषें मूंग्या, लसण्यां आदि रतन के छोटे जिनबिंब घणा बिराजे हैं और उहां अष्टाह्निका का दिना विषे रथयात्रा का बडा उछव होइ है।

और उहां एक अठारा धनुष ऊचा, एक नो धनुष, ऊचा, एक तीन धनुष ऊचा कायोत्सर्ग जुदा-जुदा तीन देशां विषैं तीन जिनबिंब तिष्ठै हैं। ताकी यात्रा जुरै है। ताका निराभरण पूजन होय है। ताका नाम गोमट्टस्वामी है। अंसा गोमट्टस्वामी आदि घणा तीर्थ है।

वा उहा सीतकाल विषै ग्रीष्म रिति[4] की-सी उष्णता पाइये है। उहा मुख्यापनै चावलो का भखन[5] विशेष है। उहा की भाषा विषैं इहा के समझै नाही। इहां की भाषा विषैं उहां के समझै नाही। दुभाष्या तै समझ्या जाय है। सो सुरगपट्टण पर्यंत तौ इहां के देश के थोरे बहुत पाइये है। तातै इहा को भाषा कू समझाय दे हैं। अर सुरगपट्टण के मनुष्य भी वैसे ही बोले हैं। तहा परै इहा का देस के लोग नाही। सुरगपट्टण आदि सूं साथि ले गया जाय है। सो ताका अवलोकन करि आए हैं।

इतां सूं हजार-बारासै कोस परै जैनबद्री नग्र है। तहां जिन-मन्दिर विषैं धवलादि सिद्धान्त नैं आदि दे और भी पूर्व वा अपूर्व ताडपत्रा मैं वा बास के कागदा मैं कर्णाटो

---

१ करोड़ो २ शिखरबध ३ महगे ४ ऋतु ५ भोजन

लिपि मैं वा मरहठो लिपि मैं वा गुजराती लिपि मैं वा तिलंग देश की लिपि मैं वा इहाँ के देश की लिपि मैं लिख्या बऊगाडाँ[1] के भार शास्त्र जैन के सर्व प्रकार के यतियाचार वा श्रावकाचार वा तीन लोक का वर्नन के वा विशेष बारीक चर्चा के वा महत पुरुषाँ के कथन का पुराण, वा मत्र, यत्र, तत्र, छद, अलंकार, काव्य. व्याकरण न्याय, एकार्थकोस, नाममाला आदि जुदे-जुदे शास्त्र के समूह उहाँ पाइये है। और भी उहाँ बडा-बडा सहर पाइये है, ता विषैं भी शास्त्राँ का समूह तिष्ठै है। घणा शास्त्र तो ऐसा है सो बुद्धि की मदता करि कहो सूँ खुलै नाँहो। सुगम है ते बचै ही है।

उहाँ के राजा वा रैति भी जैनी है। वा सुरंगपट्टण विषै पचास घर जैनी ब्राह्मणा का है। वका[2] राजा भी थोडा सा बरस पहलो जैनी था। इहाँ सूँ साढा तोन सै कोस परै नौरगाबाद है, ताकै परै पांच सै कोस सुरगपट्टण है, ताकै परै दोय सै कोस जैनबद्री है, ता उरै बोचि-बाचि घणा ही बडा-बडा नग्र पाइये है, ता विषै बडे-बडे जिन-मन्दिर बिराजै है और जैनी लोग के समूह बसै है और जैनबद्री परै च्यार कोस खाडो समुद्र है इत्यादि, ताकी अद्भुत वार्ता जानोगे।

धवलादि सिद्धान्त तो उहाँ भी बचै नाँही हैं। दर्शन करने मात्र ही हैं। उहाँ वाकी यात्रा जुरै है अर देव वाका रक्षिक है, तातैं ई देश मैं सिद्धाता का आगमन हूवा नांही। रुपया हजार दोय २०००) पांच-सात आदम्याँ कै जाबे-

---

१ कई गाड़ियो २ वहाँ का

आवै खरचि पड़या। एक साधर्मी डालूराम की उहां ही पर्याय पूरी हुई। वा सिद्धांतां के रक्षिक देव डालूराम कै स्वप्नै आए थे। तानै ऐसा कह्या हे भाई! तू यां सिद्धांतां नै लेनै कूं आया है सो ए सिद्धांत वा देश विषै नाहीं पधारैगे। उहां म्लेच्छ पुरषों का राज है। तातैं जाने का नांही। बहुरि या बात के उपाय करने मैं वरस च्यारि-पांच लागा। पांच विश्वा औरू भी उपाय वर्तै है।

औरंगाबाद सू सौ-कोस परै एक मलयखेडा है। तहां भी तीनू सिद्धात बिराजै है। सो नौरंगाबाद विषै बड़े-बडे लखेस्वरी, विशेष पुन्यवान, जाकी जिहाज चालै, अर जाका नवाब सहायक, ऐसा नेमीदास, अविचलराय, अमृतराय, अमीचन्द, मजलसिराय, हुकुमचन्द, कोशपति आदि सौ-पचास पाणीपथ्या अग्रवाले जैनी साधर्मी उहां है। ताकै मलयखेडा सू सिद्धान्त मंगायबे का उपाय है। सो देखिए ए कार्य बणनं विषै कठिनता विशेष है, ताकी वार्ता जानोगे।

और हम मेवाड विषै गए थे। सो उहाँ चीतोडगढ है। है। ताकै तले तलहटी नग्र बसै है। सो उहाँ तलहटी विषै हवेली निर्मापण के अर्थि भौमि खणतै एक भैंहरा निकस्या। ता विषै सोला बिंब फटिकमणि सादृश्य महा मनोज्ञ उपमा रहित पद्म आसण बिराजमान पद्रा-सोला बरस का पुरुष के आकार सादृश्य परिमाण नै लीया जिनबिंब नीसरे। ता विषै एक महाराजि बावन के साल का प्रतिष्ठया हुवा भौंहरा का अतिसय सहित नीसरे। और घणा जिनबिंब वा उपकरण धातु के नीसरे ता विषै सुवर्ण पीतल सादृश्य दीसै ते नीसरे। सो धातु का महाराजि तो गढ उपरि भौंहरा

विर्षै बिराजै हैं। उपरि किलआदार वा जोगो रहै है। ताकै हाथि ता भौंहरा की कूंची है। औरपाषाण के बिब नलहटी के मन्दिर विषैं बिराजै है। घर सौ उहां महाजन लोगाँ का है। ता विषै आधे जैनी हैं। आधे महेश्वरी हैं। सो उहां की यात्रा हम करि आए। ताके दरसण का लाभ की महिमा वचन अगोचर है। सो भी वार्त्ता थे जानोंगे।

और कोई थांकै मनविषै प्रश्न होय वा सदेह होय ताकी विशुद्धता होयगी। और गोमट्टसारादि ग्रथा को अनेक अपूर्व चर्चा जानोंगे। इहा घणाँ भायाँ कै गोमट्टसारादि ग्रंथाँ की का अध्ययन पाइये है। और घणी बायाँ कै व्याकरण वा गोमट्टसारजी को चर्चा का ज्ञान पाइये है। विशेष धर्म बुद्धि है ताका मिलाप होयगा। साराँ हो विषै भाईजी टोडरमलजी कै ज्ञान का क्षयोपशम आलौकिक है जो गोमट्टसारादि ग्रथाँ की सपूर्ण लाख श्लोक टोका बणाई और पाँच-सात ग्रथाँ का टीका बणायवे का उपाय है। सो आयु को अधिकता हुवा बणैगा। अर धवल, महाधवलादि ग्रथाँ के खोलबा का उपाय कीया वा उहाँ दक्षिण देस सू पाँच-सात और ग्रथ ताडपत्रां विषै कर्णाटी लिपि मैं लिख्या इहाँ पधारे है, ताकू मलजी बाँच है वाका यथार्थ व्याख्यान करै हैं वा कर्णाटी लिपि मैं लिखि ले है। इत्यादि न्याय, व्याकरण गणित, छद, अलकार का याकै ज्ञान पाईए है। ऐसे पुरुष महत बुद्धि का धारक ईं काल विषै होना दुर्लभ है। तातै यांसू मिले सर्व सदेह दूरि होइ है। घणी लिखबा करि कहा ? आपणा हेय का बाँछीक पुरुष सीघ्र आय यासू मिलाप करो। और भी देश-देश के साधर्मी भाई आवैंगे, तासू मिलाप होयगा।

और इहाँ दश-बारा लेखक सदैव सासते [illegible]
लिखते हैं वा सोधते हैं। और एक ब्राह्मण पंडित [illegible]
चाकर राख्या है सो बीस–तीस लडके बालकन कूं न्याय,
व्याकरण, गणित शास्त्र पढावै है। और सो-पचास भाई
वा बायाँ चर्चा, व्याकरण का अध्ययन करे हैं। नित्य सौ-
पचास जायगा जिन पूजन होइ है। इत्यादि इहाँ जिनधर्म
को विशेष महिमा जाननी।

और ईं नग्र विषै सात विसन का अभाव है। भावार्थ
ईं नग्र विषैं कलाल, कसाई, वेश्या न पाईए है। अर जीव-
हिंसा की भी मनाई हैं। राजा का नाम माधवसिंह है।
ताके राज विषैं वर्तमान एते कुविसन दरबार की आज्ञातैं
न पाइये है। अर जैनी लोग का समूह बसै है। दरबार के
मुतसद्दी सर्व जैनी है और साहूकार लोग सर्व जैनी हैं।
जद्यपि और भी है परि गौणता रूप है, मुख्यता रूप नांही।
छह–सात वा आठ-दस हजार जैनी महाजनाँ का घर
पाइये है। अैसा जैनी लोगाँ का समूह और नग्र विषै
नाही। और इहाँ के देश विषै सर्वत्र मुख्यपणै श्रावगी लोग
बसै हैं। तातैं एह नग्र वा देश बहोत निर्मल पवित्र है।
तातै धर्मात्मा पुरुष बसने का स्थानक है। अबार तौ ए
साक्षात धर्मपुरी है।

बहुरि देखो ए प्राणी कर्म कार्य के अथि तौ समुद्र
पर्यंत जाय है वा विवाहादिक के कार्य विषै भी सो-पचास
कोस जाय है, अर मनमान्या द्रव्यादिक खरचै है। ताका
फल तौ नर्क निगोदादि है। ता कार्य विषैं तौ या जीव के
अैसी आसक्तता पाइये है, सो ए तौ वासना सर्व जीवनि के

बिना सिखाई हुई स्वयमेव बणि रही है; परंतु धर्म की लगनि कोई सत्पुरुषां कै ही पाईये है।

विषय-कार्य के पोषने वाले तौ पैंड-पैंड विषै देखिए है, परमार्थ कार्य के उपदेशक वा रोचक महादुर्लभ बिरले ठिकाणे कोई काल विषैं पाइये है। तातैं याकी प्रापति महाभाग्य कै उदै काललब्धि कै अनुसारि होय है। यह मनुष्य पर्याय जावक खिनभगर[1] है, ता विषैं भी अबार के काल मैं जावक अल्प बीजुरी का चमत्कारवत थिति है। वाकै विषै नफा-टोटा बहुत है। एक तरफा नै तौ विषय-कषाय का फल नरकादिक अनंत संसार का दुख है। एक तरफ नै सुभ सुद्ध धर्म का फल स्वर्ग मोक्ष है। थोडा सा परणामा का विशेष करि कार्य विषै एता तफावत[2] परै है। सर्व बात विषै एह न्याय है। बीज तौ सर्व का तुछ[3] ही होइ है अर फल वाका अपरपार लागै है, तातैं ज्ञानी विचक्षण पुरषन कै एक धर्म ही उपादेय है।

अनंतानंत सागर पर्यंत काल एकेन्द्री विषै वितीत करै है तब एक पर्याय त्रस का पावै है। अैसा त्रस पर्याय का पायबा दुर्लभ है, तौ मनुष्य पर्याय पायबा की कहा बात? ता विषैं भी उच्च कुल, पूरी आयु, इन्द्री प्रबल, निरोग शरीर, आजीविका की थिरता, सुभ क्षेत्र, सुभ काल, जिन-धर्म का अनुराग, ज्ञान का विशेष क्षयोपशम, परणामां की विशुद्धता, ए अनुक्रम करि दुर्लभ सूं दुर्लभ ए जीव पावै है। कैसं दुर्लभ पावै है? ७ बार अैसा सयोग मिल्या है सो पूर्वं अनादि काल का नही मिल्या होगा। जो अैसा सजोग

१ क्षणभगुर २ अंतर ३ छोटा

मिल्या होय तो फेरि संसार विषै क्या नै रहै ? जिनधर्म का प्रताप ऐसा नाँहीं के साचो प्रीतीति आया फेरि ससार के दुख कू पावै । तातैं थे बुद्धिमान हो । जामै अपना हित साधै सो करना । धर्म के अर्थी पुरुष नै तो थोडा-सा ही उपदेश घणा होइ परणमै है । घणी कहबा करि कहा ?

और ईं चीठी की नकल देस-बीस और चोठी उतराय उहाँ के आसि पासि जहाँ जैनो लाग बसते होइ तहाँ भेजनी । ए चोठो सर्व जैनी भाया कूं एकठे करि ताकै बोचि बाँचणी । ताकूं याका रहस्य सर्व कू समझाय देना। चोठो को पहोंचि सिताबी[1] पाछो लिखनो । लिख्याँ बिनाँ चोठी पहोचो वा न पहोचो को खबरि पडै नाँहो । आबा न आबा की खबरि पडै नाँहो । मितो माह बदि ९ संवत् १८२१ का ।

---

१ तुरन्त

शुद्धाशुद्धि पत्रक

पृ सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृ स	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
1	18	अथ	अघ	2	7	अरहंत	अरहन्त
2	2	हैं	है	2	14	भरया	भर्या
2	16	का	की	3	3	घात	घातु
3	26	उप देश	उपदेश	4	16	उच्ति	उचित
4	18	हैं घातिया	है घातिया				
5	4	घनरुप	घनरूप	6	1	हैं	है
6	21	काउयो	काड्यो	6	23	अह्लादित	आह्लादित
7	25	श्रवै	श्रवै	7	25	जिनवाणी	से
8	1	गयधरदेवा	गणधरदेवा	8	8	उज्वल	उज्ज्वल
8	24	1 से	1 मुख-कमल से				
9	11	हो	ही				
11	3	बहुरि कैमे हैं।	बहुरि कैसे हैं				
12	2	मासै	भासै	12	26	2 जीवो का	2 जीवो का
13	5	वधै	वर्धं	13	11	येता	एता
15	7	कार्यं	कार्य	15	8	अर्थ	अथ
15	25	मैं	म्है	16	2	पर्यायित्ताकू	पर्याप्तताकू
16	19	वारते	वास्ते	16	24	पूर्णपंक्ति गलत छप गई	
14	3	है	है	17	4	क	कै
21	10	विना और	विना	23	11	केतइक	केलाइक
27	9	राग-द्वेष	राग-द्वेष	21	28	मेरा	मेरी
29	8	ज्ञानज्यनि	ज्ञानज्योति				
32	15	आखडी सजय	आखडी सजम				
38	17	अरिकेला	अरकेला				
38	26	6 कुप्पा, चर्म निर्मित पात्र	गलत छपा है				
39	2	यह पंक्ति नही है	कुप्पा, चर्म निर्मित पात्र				
40	26	यह पंक्ति नही है	1 व्यापार				
40	2	ऐसी	ऐसा	45	7	या	वा
45	17	दिवा	दिशा	48	4	वाअ वकल	वा अक्कल
50	25	पाइ	पाय	52	20	खासि	खौसि
54	8	ता सू भी	तासू भी	55	14	डबोया	डुबोया
61	15	तदाहृतादान	तदाहृतादान	62	11	बस्तनि	वस्तुनि

66	11	भ्रिवलित	त्रिवलित				
68	12	सारी गुह्य गूहन	गुह्य गूहन				
70	3	विषय	विष्टा	73	11	घोवती	प्रोवती
78	17	गन्धर्व	गर्धव (गधा)	80	8	आवै	आवै है
87	13	पालकी	पाप की	89	20	ताते	तातै
90	3	तुष्छ	तुच्छ	90	9	अवधि	अवधि
92	9	नाख्या, तोनै	नाख्या तौ तोनै				
93	1	जाव	जीव	94	8	पाणि	पाणी
94	10	सेवी	सेती	94	16	येक	एक
95	12	का राख सर्व कादि	की राख सर्व कादि				
96	5	तापारि	तापरी	97	1	दवा	दया
97	4	दीघा	वीघा	98	13	जाक	जाके
102	2	अधर-अधर	अधर अधर	102	11	कहिये	कहिये है
104	10	मर्याद्	मर्यादा	105	17	कुमलौ	कुमल्यौ
105	21	उपजै	ऊपजै	106	6	विष	विषै
107	13	जाव	जाय	107	18	नीलगार	नीलगर
107	19	च्यारी	च्यारि	108	10	जीवा का	जीवा की
110	8	राजा	राज	111	16	शास्त्रादि	शस्त्रादि
112	9	निरामरण	निराभरण	112	10	चटी	चूंटी
112	14	चभर	चमर	112	24	जो	सो
113	7	तूजा करनी	पूजा न करनी				
114	19	बाकी	ताकी	114	20	बदी रखाना	बदीखाना
115	2	आपणा	आपणा	115	13	हुवे	हुते
118	9	काय	काम	121	18	आग	आगै
121	24	कास । तासरा	कोस । तीसरा				
122	4	नाभिराजा	नामिराजा	122	5	राह्य	रह्या
122	13	ज्योंही सो थाने स	हौ सो थाने सज्या				
124	4	प्ररुप्या	प्ररूप्या	124	18	विमुख ? होय	विमुख होय
129	1	चौरासी	चौरासी	129	13	क्षधा	क्षुधा
131	19	लपेठे	लपेटे				
131	22	म्है ल्याया	छै-वाक गर्भ	ल्याया छै, वाके गर्भ			
132	10	रह्ययौ	रह्यौ	132	20	निंद्वक	निंधक
133	15	प्रायाश्चित	प्रायश्चित				
135	15	ताही	नाही	135	22	चराय	चुराय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
135	23	सम	सभै	135	24	चखादार	चरवादार
138	6	गोम्मप्पसारजी	गोम्मटसारजी				
139	2	यत	मत	139	19	काह्य	कह्या
142	11	पूरुष	पुरुष	143	10	माहात्म्म	माहात्म्य
143	11	निदूय	निंद्य	143	15	भान	मान
144	10	है।	है। ता	144	13	प्हलुवा	टहलुवा
145	14	वाले	बोलै	145	24	नैन	नै न
147	1	कर हू	करहु	147	13	ये लक्षण	लक्षण
148	1	बात्सल्य	वात्सल्य	151	22	ज्ञानापया	ज्ञानोपयोग
153	17	तप्वार्थसूत्र	तत्त्वार्थसूत्र				
153	23	हा है	ही है	153	25	कहा	कहौ
155	4	तातैं	तातैं	155	19	सत्तावन	ये सत्तावन
156	9	हा	ही	159	12	सम्यग्यान	सम्यग्ज्ञान
162	2	वीतराध	वीतराग				
162	21,22	न	नैं	166	14	लगि	लागि
169	4	कालाब्धि	काललब्धि	169	12	उलधि	उलधि
169	17	दुबुद्धि	दुर्बुद्धि	171	12	रूचि	रुचि
171	25	त्या	त्याग	178	20	स्तुस्यादि	स्तुन्यादि
179	7	जीछै	पीछै	179	11	गणानुवाद	गुणानुवाद
179	17	मौक्ष	मोक्ष	180	3	f राकार	निराकार
180	20	पोपन	पोषनैं	181	2	मानै	मोनै
181	22	ताका	ताकी	183	14	अर	अर है
184	11	माही	माहि	185	24	कूवा	कूवा
186	8	आलोकाक्राश	आलोकाकाश				
187	19	अपर्याप्ति	एते अपर्याप्ति				
187	24	अनत अलब्ध	अनत वर्गणा स्थान गुणे सूक्ष्म निगोदिया अलब्ध				
187	25	घाटि	अनत वर्गणा स्थान घाटि				
187	26	गुणे एक	एक	189	6	है, ऐसे है	हैं, ऐसे हैं
189	21	है	हे	1'0	11	पीडिन	पीडित
190	23	दीर्घ	दीर्घ	192	3	सोभी	सो भी
193	7	चरणो	चरणा	194	6	याही	माहि
197	21	माह-कर्म	मोह कर्म	198	6	विषै	विषैं
198	19	तम्हारी	तुम्हारी	199	1	बधा	वधा
199	18	म्हारा	म्हारी	201	11	अतमुहूर्त	अतर्मुहूर्त
203	2	गुरू	गुरु	203	23	अरि	करि
204	8	सारिख	सारिखे	207	3,9	सामयिक	सामायिक
207	8	गुरू	गुरु	207	11	नि कष्पाये	नि कषाय
207	18	राख	राखै	210	9	माही	ताही
210	11	तनक सौ	तनक सी	211	14	म्हाखान	म्हरवान

212	9	है,	ह्वै	215	14	हुई	हुई
215	23	सवार्थसिद्धि का देवा	सवार्थसिद्धि का देव वा				
219	4	सोमे	सोम	219	5	घरे	धरे
221	14,17	म्हे	म्है	224	1	बहूरि	बहुरि
224	21	रून्मुख	सन्मुख	224	21	दीय	दोय
226	8	बावडा	बावडी	227	9	जसे	जैसे
229	9	वातराग	वीतराग	230	17	मोगग	मोगरा
230	22	गर	अर	232	16	है	हैं
235	3	नहार	×	235	6	चलाव	चलावनहार
237	25	कमी	5 कमी	238	1	का	की
238	8	धरता	धरती	238	20	बजावे	बजावैं
239	9	हाय	होय	239	23	सोमत	सोंमत
242	16	समार	ससार	245	13	मक्ति	मुक्ति
248	1ı	मौन	मोनैं	251	16	चरित	चरित्र
252	15	झर्या	भर्या	256	10	कहे	कहै
256	20	सयमादि	सयमादि	257	19	निष्ठापन	निष्ठापन
258	13	घण	घणे				
258	18	सम्यण्ज्ञाना	सम्यग्ज्ञानी				
259	25	मोन	मोनै	261	16	छ	छै
264	13	कर	अर	264	20	ूछता	पूछता
270	4	गुरू	गुरु	270	16	अखड	अखड
272	21	हे पुत्र ?	हे पुत्र !	273	16	धर	घर
273	25	द्वारैं	द्वारै				
275	6	पुद्गिलनी	पुद्गलनी	275	18	कसै	कैसै
281	7	पडता	पडता	283	4	अनुभबन	अनुभवन
285	1	पूर्णपक्ति	×				
285	2	शीतल गुणा नै भी खोवै है अर					
286	6	ई न	ई नै	289	1	सू	सू
289	11	गुरु निर्गंथ	गुरू निर्ग्रन्थ	290	12	उपायन	उपाय
290	18	जिमवाणी	जिनवाणी	291	3	विषे	विषै
291	13	मव	सर्व	291	16	झू ठ	झूठ
292	7	क्षधा	क्षुधा	293	3,5	है	है
294	2	नै	नै	294	7	क्यौं	क्यौं
94	22	तार्के	ताकै	294	23	धर्मं	धर्म
295	22	हा	ही	297	21	कर	अर
297	24	ता	तौ	298	5	क हिये	कहिये
298	8	पृष्वी	पृथ्वी	298	16	पुरुष	पुरुष
298	17	परिणआवै	परिणमाव	298	24	दव्य	द्रव्य
299	9	हाय	होय	300	13	अनानि	अनादि

300	14	नै	नै	302	8	आछाया	आछाद्या
302	18	ऐले	ऐसै	302	21	दिभाण	बिमाण
302	22	परवेरु	पखेरू	303	2	आकात	आकास
304	11	पट्भत	षट्भत	301	19	जधन्य	जघन्य
305	2,3	सोमै	सोभै	305	9	पर्षंत	पर्यंत
305	12	भूतिका	भूमिका	305	12	हा	ही
305	25	हा ता विमान हीकू या कह	है। ता विमान ही कू या कहै				
306	1	म्हाको	म्हाकी	306	8	करिसा	करिसी
306	9	भा	भी	206	10	चोडा	चौडा
306	20	भेरु	भेरु	306	22	ह	है
306	24	धतावै	बतावै				
306	26	अथना वासौं एसो	अथवा वासौं ऐसो				
306	28	है	है	307	2	भीत्ति	भीति
307	7	अनूठा	अपूठा	307	8	थधै	बधे
307	14	मिथ्नात्व	मिथ्यात्व	.07	18	को	की
308	6	को	की	308	13	उपज	उपजै
308	16	पीछ	पीछै	309	4	बा	वा
309	23	जेठ	जेठै	3ı0	3	पार्वतो	पार्वती
310	7,9	मारचो	मार्यो	310	17	नाहो	नाही
310	24	ईत्यादि	इत्यादि	311	2	यात	या बात
311	9	रभ्या	रम्य।	311	22	इत्यादि	इत्यादि
312	2	सारिखा	सारिखो	312	18	तीथकर	तीर्थंकर
313	18	केसे	कैसे	314	1	घोडो	घोडो
314	5	ताइ	ताई	3'4	19	गर्म	गर्भ
314	27	614	314	315	3	पठित	पडित
315	5	उपटी	उल्टी	315	11	होसा	होसी
3'5	12	घणा	घणी	315	13	रूपया	रुपया
315	20	काप	काम	3 5	21	ब्रह्मण	बहृण
316	2	उपार्ज	उपार्जै	316	24	धौ	द्यौ
316	26	भाउ	भाइ	317	1	नायौ	नाचौ
317	4	प्रवृति	प्रवृत्ति	317	9	आज्ञानता	अज्ञानता
317	15	वापरे को	वापरेडो	317	22	नैन	नै न
318	4	धणा	घणा	318	18	पाकर	पोखर
318	23	भैसा वा धरतो	भैसी वा धरती				
319	2	ब्रह्मा	ब्रह्म	319	10	आषधि	औषधि
319	19	दगाबाज	दगाबाजी	320	2	बाधबर	बाघबर
320	11	बादता	बादरा	320	21	सा	सो
320	22	कह्यना	कह्या (कह्यया)				

प्रस्तुत ग्रन्थ का मूल्य कम करने हेतु आर्थिक सहयोग देने वालों की नामावली

1 श्री दि जैन महिला-मण्डल, तुकोगज, इन्दौर 3,500)
द्वारा-श्रीमती पुष्पाबाई

2 श्री दि जैन-मुमुक्षु मण्डल, मलकापुर 2 351)
द्वारा-श्री प राजमलजी

3 श्री दि जैन-मुमुक्षु मण्डल, छिंदवाडा 1,000)
द्वारा-श्री प राजमलजी

4 स्व श्रीमती ताराबाई (धर्मपत्नी श्री गुलाबचदजी) की स्मृति मे श्री जवाहरलाल गुलाबचन्द जैन, विदिशा वालो की ओर से 751)

5 श्रीमती सौ कपूरीबाईजी धर्मपत्नी आनन्दीलालजी जैन, गया 1,001)

6 गुप्तदान, मार्फत श्रीमती गुलाबबाईजी स्व विलमचन्दजी गगवाल 1,001)

7 श्रीमती सुदर्शनाबाईजी धर्मपत्नी स्व कैलाशचन्द्रजी अग्रवाल, इन्दौर 1,001)

8 श्रीमती नेमीबाईजी जैन, इन्द्रभवन इन्दौर 101)

9. श्रीमती रामेरीबाईजी धर्मपत्नी सुखलालजी, विनोता मातु प रतनलालजी (राजस्थान) 501)

10 श्रीमती सुभद्राबाईजी चन्द्रमतीजी, इन्द्रभवन, इन्दौर 501)

11 श्रीमती पुष्पाबाई धर्मपत्नी, अजितकुमारजी जैन, भोपाल 501)

12 श्रीमती शृगारबाई धर्मपत्नी बागमलजी सर्राफ, भोपाल 501)

13 श्री लखमीचन्द शिखरचन्द, विदिशा 501)

14 श्री दि जैन महिला-मण्डल, भोपाल 501)

15 श्री फूलचन्द्र विमलचन्द्र झांझरी, उज्जैन 501)

16 श्रीमती आशारानी धर्मपत्नी प्रेमचद्रजी बडजात्या, दिल्ली 501)

17 श्रीमती राजकुमारी धर्मपत्नी कोमलचन्द्रजी गोधा, जयपुर 501)

18 श्रीमती मिश्रीबाई धर्मपत्नी श्रीराजमलजी एस ई भोपाल 501)

19 डॉ भूपेन्द्रकुमारजी, खण्डवा 501)

20 श्रीमती कुसुमलता पाटनी, ध प शान्तिलालजी, छिंदवाडा 501)

21 श्री मदनलालजी मदन मेडिको, भोपाल 501)

22 श्रीमती मजुकुमारी पाटनी ध प सन्तोषकुमारजी, वाशिम 501)
23 श्रीमती पुष्पाबाई एव सपरिवार, खण्डवा 460)
24, श्रीमती रतनबाई भण्डारी ध, प नन्नूमलजी बुधवारा,भोपाल 301)
25 श्रीमती प्यारीबाई जैन, द्वारा-अनिल ट्रेडर्स, मुगावली 301)
26 श्री दरबारीलाल राजेन्द्रकुमार, भोपाल 251)
27 श्री शीतलप्रसादजी जैन, बेगमगज 251)
28 श्री नन्नूमलजी, फर्म, चुन्नीलाल दौलतराम, भोपाल 251)
29 जैन युवा फेडरेशन, उज्जैन 251)
30 गुलाबचन्द सुभाषचन्द्र जैन, मगलवारा, भोपाल 251)
31 दानवीर श्रीमन्त सितावराय सेठ लखमीचदजी, विदिशा 251)
32 श्रीमती शकुन्तला ध प रतनलालजी सोगानी, भोपाल 251)
33 श्रीमती सुहागबाई ध प बदामीलालजी, इब्राहीमपुरा,भोपाल 251)
34 श्रीमती तुलसाबाई ध प. स्व श्री मिश्रीलाल, अलकार लॉज, भोपाल 201)
35 गुप्तदान, द्वारा—प राजमलजी, भोपाल 201)
36 श्री कमलचन्दजी, आयकर-सलाहकार, भोपाल 201)
37 श्री हुकमचन्द सुयतप्रकाश, इतवारा, भोपाल 201)
38 श्रीमती स्नेहलता, ध प देवेन्द्रकुमारजी, भोपाल 201)
39 श्री लाभमल सागरमल, मगलवारा, भोपाल 201)
40 महिला युवा फेडरेशन, सागर 201)
41 श्री दि जैन मुमुक्षु मण्डल, सिवनी 201)
42 श्री सरदारमल प्रदीपकुमार बेरसिया, भोपाल 151)
43 श्री जयकुमारजी वज, कोयाफीजा, भोपाल 151)
44 श्रीमती इन्द्राणी ध प बागमलजी पवैया, भोपाल 151)
45 श्री प राजमलजी, भोपाल 101)
46 श्री प्रो जमनालालजी, इन्दौर 101)
47 श्रीमती चम्पाबाई ध प रामलालजी सर्राफ खिमलासा 101)
48 श्रीमती चन्द्राबाई ध प अमोलकचन्दजी, गुना 101)
49 श्री ब्र हेमचन्दजी पिपलानी, भोपाल 101)
50 श्री भानुकुमार इन्दौरीलालजी बडजात्या, इन्दौर 101)
51 श्रीमती रतनबाई पाड्या इन्दौर 101)
52 श्री प्रबोधचन्द्रजी एडवोकेट, छिंदवाडा 101)
53 श्री देवेन्द्रकुमारजी, करेली 101)

54 श्री केवलचन्दजी कुम्भराज वाले, द्वारा मयक टेक्सटाइल, उज्जैन 101)

55 श्री अरिदमन जैन, कोटा 101)

56 श्रीमती मक्खनबाई गोमटी, भिण्ड 101)

57 श्री नेमीचन्द कौशल किशोर, भिण्ड 101)

58 श्री लखमीचन्द नाथूराम, बीना 101)

59 श्री माणिकचन्द अजमेरा, खादी भण्डार, भोपाल 101)

60 प जुगलकिशोरजी 'युगल' कोटा 101)

61 श्रीमती सुगनबाई ध प फूलचन्दजी, एस के इण्डस्ट्रीज, भोपाल 101)

62 श्रीमती कमलाबाई ध प स्व श्री सूरजमलजी, भोपाल 101)

63 श्रीमती विमलाबाई अयर पाटन 101)

64 कु सन्ध्या जैन, द्वारा-तुलसा होटल, भोपाल 101)

65 श्री प्रेमचन्दजी जैन, भोपाल 101)

66 चौ रामलाल रतनचन्द, पिपरई 101)

67 श्री ज्ञानचन्द बडकुल, बरेली 101)

68. श्री लालकुमारजी सागर 101)

69 श्री ब्र दीपचन्दजी, पारमार्थिक फड, उदासीनाश्रम, इन्दौर 101)

70 श्री जयकुमार पुत्र श्री रतनलालजी, भोपाल 101)

71 श्री मगनलाल चुन्नीलाल, बर्तन-व्यापारी 101)

72. श्रीमती सुमित्रा जैन, पिपलानी, भोपाल 101)

73 जौहरी सुबोध सिंघई, सिवनी 101)

74 श्री विनोदचन्द भूपकिशोर मुरार-ग्वालियर 101)

75 श्री आनन्दीलालजी जैन किरी मोहल्ला, विदिशा 101)

76 श्री चन्दनमल सरदारमल सर्राफ, भोपाल 101)

77 श्री कस्तूरचन्दजी सिलवानी वाले, भोपाल 101)

78 श्रीमती चमेलीबाई ध प कस्तूरचदजी सिलवानी वाले 101)

79 श्री माणिकचदजी शक्तिनगर, भोपाल 101)

80 श्री महेन्द्रकुमारजी सोमवारा, भोपाल 101)

81 श्रीमती नवलकुमारी सोगानी, भोपाल 101)

82 श्रीमती ऊषाबाई भोपाल 101)

83 श्रीमती रेशमबाई ध प श्री सौभाग्यमलजी, इतवारा, भोपाल 101)

84 श्रीमती कमल श्रीबाई ध प स्व श्री डालचन्दजी सर्राफ, भोपाल 101)

85.	श्रीमती आशाबाई धर्मपत्नी पदमचन्दजी, भोपाल	101)
86	श्री कोमलचन्दजी जैन, मॉडर्न ड्रेसेस, भोपाल	101)
87	श्रीमती गिरजाबाई ध प शिखरचन्दजी दलाल भोपाल	101)
88	श्री मोहनलालजी ट्रान्सपोर्ट, इतवारा, भोपाल	101)
89	श्री तेजराम फूलचन्दजी, भोपाल	101)
90	श्री बाबूलालजी इन्दौर बैंक वाले, भोपाल	101)
91	श्री पन्नालाल विनोदकुमार, भोपाल	101)
92	श्रीमती धर्मपत्नी मूलचन्दजी, इतवारा, भोपाल	101)
93	श्री सौभाग्यमलजी, इतवारा, भोपाल	101)
94	श्री मानकचन्दजी गुडवाले भोपाल	101)
95	श्री सुभाषचन्द चौधरी, फम-चौधरी सेल्स कार्पोरेशन, भोपाल	101)
96	श्री कपूरचन्दजी जैन, करेली	101)
97	श्री कबूलचन्दजी जैन, बरेली	101)
98	स्व श्रीमती मुन्नीबाई विनोद, भोपाल	101)
99	श्री सुरेशचन्द रामकिशोर शाहपुरा वाले	101)
100	श्रीमती कमलाबाई जैन, भोपाल	101)
101	श्री भँवरलाल पवनकुमार कासलीवाल, भोपाल	101)
102	श्री कचरुमल राजेन्द्रकुमार छावडा, धार वाले	101)
103	श्रीमती सुखवतीबाई धर्मपत्नी श्री बाबूलालजी पीपल्या वाले, भोपाल	101)
104	श्रीमती मनोरमाबाई ध प श्री गुलाबचदजी, मेल, भोपाल	101)
105	श्रीमती पुन्नोबाई ध प स्व श्री बाबूलालजी नम्बरदार, भोपाल	101)
106	श्रीमती हीराबाईजी सोनगढ	102)
107	श्री पन्नालाल निर्मलकुमारजी, भोपाल	101)
108	जैन ट्रेडिंग क भोपाल	101)
109	श्रीमती जानकीबाई ध प श्रीसुशीलालजी, इतवारा, भोपाल	101)
110	श्री बाबूलालजी हुकमचन्दजी, उज्जैन	101)
111	चौ बिहारीलाल राजमल, बेरासिया	101)
112	श्री श्यामलालजी जैन, द्वारा-महावीर मगल भवन, लाला का बाजार, लश्कर	101)
113	श्री नेमीचन्दजी जैन, कपडा के दलाल उज्जैन	101)
114	श्री राजमल मगनलालजी, भोपाल	101)
115	श्री धन्नालाल महेन्द्रकुमारजी-मुगावली	01)
116	श्री सूरजमल शैलेन्द्रकुमार, सोमवारा, भोपाल	101)
117	श्री गोपीलाल बिनोदकुमारजी बेरासिया	101)
118	फुटकर प्राप्त	3,693)
		33,918